आधुनिक हिन्दी में अभिव्यक्ति की संवेगात्मक एवं भावात्मक रीतियां

किरण रानी

डाक्टर आफ फिलासफी की उपाधि
के लिये प्रस्तुत शोध पत्र

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

१९७०

- आमुख -

भाषा के दो कार्य हैं। प्रथम है, विचारों का आदान-प्रदान। यह ज्ञान विज्ञान का क्षेत्र है। द्वितीय कार्य भावाभिव्यक्ति है। इसका क्षेत्र साहित्य है। साहित्य में भी निबन्ध आलोचना में बहुधा विचार रहते हैं किन्तु भावों की प्रधानता के कारण ही साहित्य ललित कला है। साहित्य का अपार भण्डार मानव भावों की अभिव्यक्ति ही है। इनके अतिरिक्त दैनिक जीवन में भावाभिव्यक्ति का साधन भी भाषा है। भावाभिव्यक्ति का क्षेत्र भावों की भांति ही विशद है। अत: हिन्दी में अभिव्यक्ति की भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक रीतियों के अध्ययन के पूर्व इसका विस्तार क्षेत्र ज्ञात कर लेना आवश्यक है।

अंग्रेजी भाषा में भावाभिव्यक्ति की रीतियों पर विभिन्न दृष्टिकोणों से पर्याप्त विचार हो चुका है। इसका सूत्रपात डार्विन से हुआ। उसने सर्वप्रथम संवेगों की अभिव्यक्ति पर अपनी पुस्तक 'Emotional Expression in Men & Animal' लिख कर विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। किन्तु यह अध्ययन मानव की मूलप्रवृत्यात्मक प्रतिक्रियाओं को आधार मान कर किया गया था। इसके पश्चात् अन्य विद्वानों ने भावाभिव्यक्ति पर कलात्मक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया। हिन्दी में 'भावाभिव्यक्ति' पर कलात्मक और साहित्यिक दृष्टि से तो विचार हुआ है किन्तु जहां तक मेरा ज्ञान-क्षेत्र है भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कोई कार्य नहीं हुआ है।

इस शोध विषय का प्रेरणा स्त्रोत बान विश्वविद्यालय (जर्मनी) से सन् १९६० में प्रकाशित एक शोध प्रबन्ध "Studies of the Emotional and Affectiv Means of Expression in Modern English"। इसके लेखक श्री बी०एम० चार्ल्सटन (B.M. Charleston) ने विभिन्न भावों के प्रकाशन में भाषा में होने वाली नाना घटनाओं पर प्रकाश डाला है। छ: अध्यायों में इन्होंने क्रमश: भाषा का उद्देश्य, विचार और भाषा, भाव और भाषा, भाषा और संकेत (Gesture Language), भाषा की लय, मात्रा, विस्तार, बलाघात, स्वराघात, विराम,

अनुकरणात्मक शब्द, अनुप्रास, तुक, विभिन्न विस्मयादिबोधक शब्द, शब्द चयन, शब्द क्रम, व्याकरण तथा अलंकार को लिया है। अन्त में एक अध्याय भावों के प्रकार पर है। इन्होंने भावाभिव्यक्ति में भाषा पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर विचार किया है अलग अलग भावों की अभिव्यक्ति पर नहीं। इनके इस अध्ययन का विषय अंग्रेजी है।

इसी से प्रेरणा और रूपरेखा लेकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का आरम्भ हुआ। धीरे धीरे इसका क्षेत्र विस्तृत होता गया। भावों से सम्बद्ध होने के कारण मनोविज्ञान भी इसके अन्तर्गत आ गया। भावाभिव्यक्ति के ऊपर मनोवैज्ञानिकों ने बहुत कुछ विचार किया है किन्तु उनका अध्ययन केवल मुखमुद्रा तथा शारीरिक अभिव्यक्ति एवं परिवर्तनों तक ही सीमित रहा। विभिन्न संवेगों के उत्पन्न होने पर क्या क्या आन्तरिक एवं बाह्य परिवर्तन होते हैं, कौन कौन सी ग्रन्थियों का स्राव होता है तथा उनका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह मनोविज्ञान के अन्तर्गत आ जाता है। किन्तु भाषा एवं भावाभिव्यक्ति पर लगभग नहीं के समान विचार हुआ है।

भाव के अनुभूति पक्ष को लेकर भारतीय विद्वानों का मत जानने के लिये काव्यशास्त्र का अध्ययन करना पड़ा। भारतीय काव्यशास्त्र इस दृष्टि से प्राय: महत्व हीन है। कुछ बंधी बंधायी परिपाटी में भावों उपभावों का भेद तथा उनके शारीरिक अनुभावों पर ही विवेचन हुआ है। रसों के उदाहरणों में स्थायी भाव की शारीरिक प्रतिक्रियाओं का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव में अनुभावों को सबसे कम महत्व दिया गया है और वाचिक अनुभावों की तो बिलकुल ही अवहेलना की गई है। कुछ विस्मयादिबोधक शब्दों - आह, ओह, अरे, आहाहा आदि का यत्र-तत्र उल्लेख अवश्य है।

साहित्य में भावाभिव्यक्ति की विभिन्न शैलियां मिलती अवश्य हैं किन्तु उनका रूप और क्षेत्र भी सीमित है। वाचिक अभिव्यक्ति से अधिक प्रभावोत्पादक शारीरिक प्रतिक्रियायें एवं मुखाकृतियां होती हैं अत: साहित्य में इनका प्रयोग अधिक होता है। विभिन्न भावों की जो वाचिक अभिव्यक्तियां मिलती हैं उनमें भी रूढ़िवद्धता एवं साहित्यिक अलंकार अधिक होते हैं। साहित्य में भावाभिव्यक्ति के

के मार्मिक रूप गद्य की अपेक्षा पद्य में अधिक मिलते हैं। अतएव विविधता के लिये एवं भावाभिव्यक्ति की सजीव तथा मार्मिक रीतियों के अध्ययन के लिये लोक-व्यवहार की भाषा का अध्ययन करना पड़ा इस प्रकार इस विषय का सम्बन्ध एक ओर तो मनोविज्ञान से है दूसरी ओर काव्यशास्त्र तथा साहित्य से और तीसरी ओर भाषा विज्ञान से है।

इस शोध प्रबन्ध की रूप रेखा बिलकुल मौलिक है। मुझे ऐसा कोई कार्य एवं आधार नहीं मिला जिसमें इसके पूर्व भी अभिव्यक्ति की रीतियों के अध्ययन का प्रयास हो। विशेषकर हिन्दी भाषा में यह प्रयास अपने ढंग का बिलकुल नया और प्रथम है। इस प्रयास में कहां तक पूर्णता एवं सफलता मिली इसे तो भविष्य बतायेगा। किन्तु मैंने इसे अपनी ओर से पूर्णता देने का पूरा यत्न किया है। भविष्य में शोधार्थी इस कार्य को आगे बढ़ा सके तो अच्छा है। यह अध्ययन का एक नवीन क्षेत्र होगा।

यद्यपि भावों एवं उपभावों की संख्या अनन्त है, तथापि इस शोध प्रबन्ध में मानव के सम्पूर्ण भाव क्षेत्र को लेने का प्रयास किया है। कुछ भाव सूक्ष्म भेदों के साथ एक ही वर्ग में आ जाते हैं ऐसे भावों में अभिव्यक्ति की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता है अत: इन्हें एक साथ लिया गया है। स्वतन्त्र शीर्षक न होने पर भी एक प्रधान भाव के भेद-उपभेद अभिव्यक्ति की विभिन्न रीतियों के साथ आ गये हैं।

जैसे प्रत्येक भाव की व्याख्या नहीं की जा सकती वैसे ही एक एक भाव की अभिव्यक्ति की असंख्य रीतियों का संकलन भी नहीं किया जा सकता। फिर भी अधिक से अधिक रीतियों को देने का प्रयास है। प्राय: व्यवहारिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली लगभग सभी रीतियों का संकलन है। इसके लिये साहित्य, नाटक, उपन्यास कहानियां, रेडियो नाटक एवं लोक भाषा सभी स्थानों से सामग्री एकत्र करना पड़ा। यह संकलन मुख्यत: भाषा वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तथा गौण रूप से काव्यशास्त्रीय दृष्टि से किया गया है।

अभिव्यक्ति की रीतियों का संकलन मात्र ही नहीं है वरन् मनोविज्ञान के अनुसार इन्हें भावों की तीव्रता, गहराई, मन:स्थिति, स्वभाव, व्यक्तित्व, आयु, परिस्थिति, संस्कार, लिंग के आधार पर वर्गीकृत भी किया गया है । विभिन्न भावों एवं व उपभावों का अभिव्यक्ति के स्तर पर परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट करने का प्रयास है । किसी भी भाव एवं मन:स्थिति की अभिव्यक्ति प्राय: स्वतन्त्र एवं शुद्ध रूप में नहीं होती । इसके साथ सदैव कुछ अन्य भाव किसी न किसी मात्रा में सम्मिलित रहते हैं । अत: किसी भाव की वाचिक अभिव्यक्ति में अन्य किन किन भावों की प्रतिच्छाया है इसे भी स्पष्ट करने का यत्न है । सम्पूर्ण अध्ययन, संकलन, वर्गीकरण एवं विश्लेषण का आधार मनोविज्ञान और भाषा विज्ञान है ।

`भूमिका ` में सर्वप्रथम `भाषा और भाव ` तथा `भाषा एवं अभिव्यक्ति को स्पष्ट किया गया है । तत्पश्चात् भाव, स्थायी भाव, उपभावों की व्याख्या, परस्पर अन्तर, तथा उनकी संख्या निर्धारण, अनुभूति पक्ष को लेकर पूर्व एवं पाश्चात्य विद्वानों का मत, अभिव्यक्ति पक्ष, भाषागत अभिव्यक्ति, भाषेतर और शारीरिक अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति पक्ष के विषय में काव्यशास्त्र के मत, भावात्मक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने वाले तत्व - बलाघात, सुराघात, अवधि ध्वनि आदि तथा भावात्मक अभिव्यक्ति की रीतियों को निर्धारित करने वाले तत्व - आयु, लिंग, परिवेश, व्यक्तित्व आदि तत्वों पर विचार किया गया है ।

प्रथम अध्याय में लगभग सभी भावों एवं उपभावों की संक्षिप्त व्याख्या है । वास्तव में यह अध्याय सबसे अन्त में लिखा गया सब भावों पर अलग अलग विचार करने के पश्चात् भी कुछ भाव एवं रे उपभाव ऐसे शेष गये जिनको कहीं स्थान नहीं मिल सका या अन्य भावों के साथ गौण रूप में आने के कारण उनका रूप स्पष्ट नहीं हो पाया । ऐसे भावों का उल्लेख एवं आवश्यकता पड़ने पर विस्तार भी प्रथम अध्याय में किया गयाइ है । यह अध्याय एक प्रकार से सम्पूर्ण अध्ययन की सूचि एवं परिशिष्ट दोनों हैं । जिन भावों का यथास्थान विस्तार हो गया है उनका भी क्रम में उल्लेख कर दिया गया है सम्पूर्ण भावों को तीन वर्गों - सुखात्मक, दु:खात्मक एवं संकर में वर्गीकृत किया गयाइ है ।

मुख्य एवं प्रधान भावों में सबसे पूर्व `क्रोध` (द्वितीय अध्याय) को लिया है। अनुभूति की दृष्टि से चाहे महत्वपूर्ण न हो किन्तु इसका अभिव्यक्ति क्षेत्र सबसे विस्तृत है। सबसे पहले क्रोध पर काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार हुआ है। तत्पश्चात उसकी महत्वपूर्ण शारीरिक अभिव्यक्रियां, कंठस्वरगत विशेषतारं, विशिष्ट शब्द, मुहावरे, विस्मयादिबोधक शब्द, क्रोध एवं हास्य, शब्दावृति, अर्थ की पुनरावृति, विरोधी के शब्दों की आवृति स्वर भंग, क्रोध में वाक्यों का क्रम परिवर्तन, अनर्गल, अर्थहीन एवं अतिशयोक्तिपूर्ण कथन को सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में व्याख्ययित करने का यत्न है। क्रोध के विभिन्न रूप एवं श्रेणियां - व्यंग्य, भर्त्सना, चेतावनी, तिरस्कार, अभिशापत, धमकी, चुनौती, शपथ ग्रहण आदि के मनोवैज्ञानिक कारण एवं इनकी अभिव्यक्ति के विविध रूपों पर प्रकाश डाला गया है। क्रोध के क्रमिक विकास में रोष अमर्ष आदि मन:स्थितियां तथा उत्तर प्रत्युत्तर की दृष्टि से क्रोध के स्वरूप एवं अभिव्यक्ति पर विचार किया गया है। अन्त में क्रोध में अन्य भावों के आविर्भाव एवं तिरोभाव तथा उनका वाचिक अभिव्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का संक्षेप में विवेचन है।

तृतीय अध्याय है `भय` है। यह अभिव्यक्ति की दृष्टि से क्रोध का बिलकुल विलोम है। सर्वप्रथम काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से `भय` की प्रकृति का अध्ययन है। तत्पश्चात भय की प्रमुख शारीरिक अभिव्यक्रियां, कंठस्वरगत विशेषतारं, कंठावरोध अधूरे वाक्य, हकलाहट, विस्मयादिबोधक शब्द, विस्मयात्मक वाक्य प्रश्नात्मक वाक्य, शब्दों एवं वाक्यों की पुनरावृति आदि भाषागत विशेषतारं, आकस्मिक भय की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप - दुहायी या पुकार, स्तुति-प्रशंसा, निन्दा, नैराश्य-पूर्ण कथन, तथा स्थायी भय की अभिव्यक्ति के रूप शंका आशंका चिन्ता आदि पर विचार किया गया है। अन्त में संक्षेप में भयभीत करने की प्रवृति तथा भय एवं अन्य भावों के मिश्रण को अभिव्यक्ति के स्तर पर स्पष्ट करने का प्रयत्न है।

चतुर्थ अध्याय `घृणा` भी दु:खात्मक भावों में ही एक है। अत: इसे भय के बाद लिया गया है। पहले घृणा का काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन फिर उसकी प्रमुख शारीरिक अभिव्यक्रियां, कंठस्वर, घृणा की अभिव्यक्ति में वाक्यों के विशिष्ट रूप, घृणाप्रदर्शन मे प्रयुक्त विशिष्ट एवं विस्मयादिबोधक शब्द,

सौम्ययुक्त एवं शुद्ध घृणा की अभिव्यक्ति में अन्तर, घृणा और क्रोध, घृणा और भय, घृणा के विभिन्न स्तर - अरुचि, ऊब, चिढ़, झुंझलाहट एवं उदासीनता तथा उनकी वाचिक अभिव्यक्ति में भिन्नता आयु के आधार पर घृणा की अभिव्यक्ति में अन्तर, तथा विभिन्न भावों में घृणा के क्रमश: परिवर्तन पर विचार किया गया है ।

पांचवा अध्याय 'शोक' है । सर्वप्रथम इस पर काव्यशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया गया है । शोक या दु:ख का भाव बहुत व्यापक है और सुखद भावों से भी किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहता है । अत: पहले शोक के साथ क्रोध, भय, घृणा, करुणा आदि भावों का सम्बन्ध अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर स्पष्ट करने का प्रयास है अर्थात् इनमें से दो या दो से अधिक भावों के मिश्रण से वाचिक अभिव्यक्ति का क्या रूप होता है । साधारणत: करुणा एवं शोक को एक साथ रक्खा गया है जब कि ये बिलकुल पृथक पृथक भाव है । करुणा की अभिव्यक्ति में - शारीरिक प्रतिक्रियायें, कंठस्वर गत विशेषतायें, विशिष्ट शब्द एवं सहानुभूति प्रदर्शन में प्रयुक्त वाक्यों का विवेचन है । इसके बाद शोक की शारीरिक प्रतिक्रियायें, कंठस्वरगत विशेषतायें, विशिष्ट शब्द, बैन या विलाप का मनोवैज्ञानिक आधार तथा उनके विभिन्न रूपों पर, एवं अन्त में शोक के विभिन्न रूपों पर अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से विचार किया गया है ।

छठां अध्याय विस्मय है । यह सुखात्मक एवं दुखात्मक दोनों वर्गों में आ सकता है अत: इसे मध्य में स्थान दिया गया है । अन्य भावों की भांति ही इसका भी अध्ययन क्रम है । काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि, कंठस्वर गत विशेषतायें, शारीरिक प्रतिक्रियायें, विशिष्ट शब्दों का प्रयोग, वाक्यों के विशिष्ट रूप, शब्द वाक्यांश एवं वाक्यों की आवृत्ति तथा अन्य भाषागत विकृतियां, कारण एवं आधार के अनुसार विस्मय की अभिव्यक्ति में भिन्नता आयु के अनुसार विस्मय की अभिव्यक्ति में भिन्नता, तथा अन्त में विस्मय एवं अन्य भावों का मिश्रण अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर स्पष्ट करने का प्रयास है ।

पूर्णत: सुखात्मक भावों में सर्वप्रथम 'प्रेम' (सातवा अध्याय) का स्थान है । प्रेम की वाचिक अभिव्यक्ति अपने शुद्ध रूप में प्राय: दुर्लभ होती है । फिर भी प्रेम पर

काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि, शारीरिक प्रतिक्रियाओं, कंठस्वरगत परिवर्तनों आदि का विवेचन कर लेने के बाद प्रेम की विभिन्न प्रवृत्तियों और स्तरों के अनुसार वाचिक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। प्रेम की प्रवृत्ति के आधार पर आकर्षण, समर्पण, विश्वास, आस्था, शुभकामना, हर्ष, विषाद, उपालम्भ आदि की अभिव्यक्ति को लिया गया है। इसके अतिरिक्त देश प्रेम, ईश्वर प्रेम आदि की वाचिक अभिव्यक्ति को अलग अलग दिया गया है। अन्त में उत्तर प्रत्युत्तर म की दृष्टि से प्रेम का विकास और अन्य भावों के साथ प्रेम के रूप परिवर्तन को स्पष्ट करने का यत्न है।

आठवां अध्याय `वात्सल्य ` है। प्रकृति की दृष्टि से यह भी प्रेम का ही एक रूप है। वात्सल्य का काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने के पश्चात् उसकी प्रमुख शारीरिक अभिव्यक्तियां, कंठस्वरगत विशेषताओं आदि को लिया गया है। वात्सल्य में दिये गये विभिन्न सम्बोधन एवं विशिष्ट शब्दों, मंगल कामनाओं, आशीर्वादों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि एवं विभिन्न रूपों को दिया गया है। इसके बाद वात्सल्य भाव के साथ गर्व, हर्ष, शोक और क्रोध की मिश्रित अभिव्यक्ति का अध्ययन है। अन्त में आयु के साथ वात्सल्याभिव्यक्ति में आने वाली भिन्नता, आश्रय के आधार पर वात्सल्याभिव्यक्ति में आने वाली भिन्नता तथा संतान या शिशु द्वारा किये गये स्नेह प्रदर्शन को लिया गया है।

नौवां अध्याय `उत्साह ` है। अन्य अध्यायों की भांति इसका भीअध्ययन क्रम है - काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि, शारीरिक प्रतिक्रियायें, कंठस्वरगत विशेषताएं, उत्साह की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त विशिष्ट शब्द एवं विस्मयादि बोधक शब्द, शब्दावृत्ति एवं वाक्यांश आवृत्ति तथा अन्य भाषागत विशेषताएं, उत्साह एवं हर्ष, गर्व, दृढ़ता और साहस की मिश्रित अभिव्यक्तियां, उत्साह का दूसरा पक्ष - उत्साह दिलाना (उद्बोधन), उद्बोधन की विभिन्न रीतियां, उत्साह का विलोम `निरुत्साह` तथा निरुत्साह की मन:स्थिति के विभिन्न रूप दैन्य, नैराश्य, शैथिल्य और किंकर्तव्यविमूढ़ता की वाचिक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास है।

दसवें अध्याय `हास्य ` में काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शारीरिक प्रतिक्रियायें, कंठस्वरगत विशेषताएं होने के पश्चात् अक्षरों शब्दों एवं वाक्यों के

विशिष्ट रूपों को दिया गया । सम्पूर्ण अध्ययन दो दृष्टियों को ध्यान में रख कर किया गया है - हास्यपूर्ण मन:स्थिति की भाषागत अभिव्यक्ति में भाषा की विशेषताएं और हास्य को सप्रयास उत्पन्न करने में भाषा का विशिष्ट प्रयोग । पहला रूप स्वाभाविक रहता है जब कि दूसरे में चेतनरूप से भाषा को विकृत करके हास्य उत्पन्न करते हैं । शब्दों का अपकर्ष, विपर्यय आवृत्ति, असंगति, हास्यपूर्ण उपमायें एवं सम्बोधन, तुकबन्दी, तकियाकलाम का प्रयोग, हास्याभिव्यक्ति में व्यंजना, श्लेष, अतिशयोक्ति, और विरोधाभास और असंगति का प्रयोग, आदि को लेने के बाद अन्त में हास्यपूर्ण मन:स्थिति के विभिन्न भेद उपभेद विनोद, परिहास, उपहास, की भाषागत अभिव्यक्ति, हास्य रस के कुछ स्थायी आलम्बनों के प्रति हास्य की भाषागत अभिव्यक्ति तथा आयु संस्कार एवं लिंग के आधार पर हास्याभिव्यक्ति में होने वाले परिवर्तनों पर प्रकाश डाला गया है ।

अन्तिम एवं ग्यारहवां अध्याय 'निर्वेद' है । यह सुख दु:ख दोनों से परे है । इस पर काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि, शारीरिक अभिव्यक्ति, कंठस्वर, आदि पर विचार कर लेने के पश्चात् विरक्ति के विभिन्न सोपान, क्रमश: तटस्थ एवं निर्लिप्त मन:स्थिति की प्राप्ति 'ईश्वर के प्रति आस्था तथा विश्वास की वाचिक अभिव्यक्ति को दिया गया है । वास्तव में इस भाव का वाचिक अभिव्यक्ति से स्वाभाविक और स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है । फिर भी हर संभव दृष्टिकोण और पक्ष से अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास है ।

विषय की नवीनता और मौलिकता के कारण ग्रन्थों एवं पुस्तकों से मुझे अधिक सहायता नहीं मिल सकी आरम्भ में तो विषय की रूपरेखा अनिश्चित होने के कारण सहायक पुस्तकों के चुनाव में भी कठिनता हुई । जिन ग्रन्थों एवं पुस्तकों से मुझे अपने कार्य में लेशमात्र भी सहायता मिली है उनके लेखकों के प्रति मैं आभारी हूं । परम आदरणीय गुरुवर डा० हरदेव बाहरी जिनके आशीर्वाद से, एवं मार्गनिर्देशन में इस शोध प्रबन्ध का निर्माण हुआ है के प्रति कृतज्ञता के दो शब्द मात्र कह कर उऋण नहीं हो सकती ।

किरण रानी

किरन रानी

अनुक्रम

०. भूमिका

१- सामान्य भाव

२. क्रोध

३ - भय

४- घृणा

५- शोक

६ - विस्मय

७- उत्साह

८- प्रेम

९- वात्सल्य

१०- हास्य

११- निर्वेद

भूमिका

भूमिका

०. १- भाषा और भावाभिव्यक्ति

भाषा का निर्माण अभिव्यक्ति के लिये हुआ है। आदिम मानव पशु-पक्षियों की भांति इंगितों एवं भाषेतर संकेतों के माध्यम से स्वयं को व्यक्त करता था। किन्तु उस काल में अनुभूति का क्षेत्र सीमित था। मानव मस्तिष्क अपरिपक्व एवं विकास के प्रथम स्तर पर था। कालान्तर में मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ भावों का क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। भावात्मक जटिलता क्रमश: बढ़ती गयी, संकेत एवं इंगित अभिव्यक्ति में असमर्थ होने लगे तब भाषा का उदय हुआ। भाषा की उत्पत्ति एवं विकास की पृष्ठ-भूमि में भावों का अधिक योग रहा अथवा विचारों का, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। साधारणत: यह मानते हैं कि भाषा की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में भावों का अधिक महत्व रहा। इस विषय में भाषाशास्त्री मैक्समूलर के विचार द्रष्टव्य हैं --

"बहुत से विद्वान् जिनमें काण्डिलियाक जैसा कैन्थ विद्वान् भी सम्मिलित है शब्दों की ध्वनिमूलक उत्पत्ति के विषय में घोर विरोध करते हैं क्योंकि यदि यह मान लिया जाय तो मनुष्य पशु-पक्षियों से भी नीचे गिर जायगा। यह विद्वान् कहते हैं कि यह कल्पना ही क्यों की जाय कि मनुष्य ने पशु-पक्षियों से भाषा सीखी। क्या मनुष्य चीख या चिल्ला नहीं सकता? क्या वह रोने में नहीं सिसकता है? और जब अकस्मात डर लगता है या और की पीड़ा होती है या वह खुशी में नाच उठता है तो क्या वह अपने मुंह से अपनी स्थिति को नाना उच्च ध्वनियों से व्यक्त नहीं करता? ये ध्वनियां या विस्मयवाचक शब्द इन विद्वानों की सम्मति में मनुष्य की भाषा के वास्तविक आरंभ के रूप में प्रकट हुए हैं। इन शब्दों के बाद भाषा में जो शक्ति व शब्द शक्ति है, वह धीमे-धीमे ढांचे के भीतर बनायी गयी है। इस सिद्धान्त को मैं विस्मयबोधक शब्द-मूलक या पूह पूह सिद्धान्त कहता हूं।"[१]

१- पृष्ठ ३६८, भाषा विज्ञान पर भाषण -- मैक्समूलर।

यह कथन भाषा की उत्पत्ति का आधार भावों को मानता है तथापि उपर्युक्त कथन की भाषा-वैज्ञानिकों ने बहुत आलोचना की । यह माना गया कि विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग किसी भाव [प्रेम, घृणा आदि] के आकस्मिक अनुभव एवं आवेश की चरम स्थिति पर ही होता है । इस अवस्था में कुछ क्षणों के लिए व्यक्ति भाषा-रहित हो जाता है । कभी-कभी भावों की आकस्मिक अनुभूति पर व्यक्ति उत्तर देने में असमर्थ हो जाता है तब तब प्रतिक्रिया स्वरूप केवल विस्मयसूचक शब्द मुख से निकल पड़ते हैं । इस प्रकार विस्मयादिबोधक शब्दों को भाषा का एकमात्र स्रोत मानना ठीक न होगा । यह अवश्य माना जा सकता है कि इन विस्मयादिबोधक शब्दों के द्वारा भी एक प्रकार की भाषा का निर्माण कभी हुआ होगा । वास्तव में एक छोटा-सा विस्मयसूचक शब्द भाषा के कई वाक्यों से अधिक शक्तिशाली, अर्थ बताने में अधिक व्यंजक और भाव बताने में अधिक समर्थ हो सकता है । यह भी स्पष्ट है कि जो बात हम तर्क-वितर्क की भाषा में बोलने की चेष्टा करते हैं, यदि उन्हें हम सीधी-सादी भाषा में कहें तो सारा कष्ट बच जाय और अभिव्यक्ति कहीं अधिक संवेगात्मक प्रभावोत्पादक हो जाय । "हमें यह न भूलना चाहिए कि हुं ! ट्व ! छिः छिः ! धिक् धिक् ! आदि ऐसे ही शब्द हैं जिनमें शब्दों के साथ हमारे अनिच्छा से आकर उनकी उपयोगिता बढ़ा जाते हैं ।[१]

भाषा की उत्पत्ति या निर्माण में बुद्धि या विचार का हाथ उतना नहीं है जितना भाव एवं मूल प्रवृत्तियों का है । मूलप्रवृत्यात्मक संवेग भाषा को जन्म देते हैं । आवेश की मात्रा अधिक होने पर अनुभूति स्वयं अभिव्यक्ति के लिये तत्पर हो जाती है । फलस्वरूप शारीरिक प्रतिक्रियाओं एवं संकेतों के अतिरिक्त व्यक्ति वाणी का आश्रय लेता है ।[२]

१- पृष्ठ ३६३, रामचंद्र -- भाषा विज्ञान पर भाषण ।

२- Thoughts were not the B first thing to press forward and crave for expression, emotions and instincts were more primitive and# far more powerful. But what emotions were most powerful in producing germs of speech ? To be sure not hunger and that which is connected with hunger; mere individual self assertion and the struggle for material existence. This prosaic side of life was only capable of calling forth short monosyllabic interjection howls of pain and grunts of satisfaction or dissatisfaction, but these are isolated and incapble of much further development and remain now at essentially the same stand pointed as thousands of years ago.

-- Page. 433, Language its nature development and origin by Otto Jesperson.

जेस्पर्सन का यह कथन आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी सत्य है। यद्यपि आरंभ में शिशु [यदि उसकी अस्पष्ट ध्वनियों को छोड़ दिया जाय तो] अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भाषा का प्रयोग करता है तथापि ऐसा मात्र बड़ों के अनुकरण के कारण होता है। उसकी आरम्भिक भाषा [चीखना, रोना, किलकना आदि] विभिन्न भाव पीड़ा, क्रोध, हर्ष आदि को व्यक्त करते हैं।

कालान्तर में भाषा में धीरे-धीरे भावों की अपेक्षा विचारों की प्रधानता होती गयी। और आज सभ्यता के इस चरण में हृदय के आन्तरिक और शुद्ध भावों के प्रकाशन में समसामयिक भाषा असमर्थ हो गयी है। उसमें इतनी अधिक कृत्रिमता आ गयी है कि वह भावों के विश्लेषण में चाहे जितनी समर्थ हो प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति की क्षमता खो बैठी है। विचारों की अपेक्षा भावना अधिक आन्तरिक एवं सूक्ष्म होती है अतः इसकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा को भी कहीं अधिक संवेदनशील एवं व्यंजक होना आवश्यक है।

०.२- अभिव्यक्ति का अर्थ

भाषा के माध्यम से भावाभिव्यक्ति में क्रमशः तीन तत्व आते हैं -- भाषा अभिव्यक्ति एवं भाव। भाषा के पश्चात् अब 'अभिव्यक्ति' को समझ लेना आवश्यक है। साधारणतः अभिव्यक्ति शब्द के तीन अर्थ हैं। पहला एवं प्रचलित अर्थ जिसका उल्लेख आक्सफोर्ड डिक्शनरी में है -- " To express is to reveal or mainfeast by external tokens" क्रोचे ने 'अभिव्यक्ति' शब्द का प्रयोग केवल एक कलाकार के संदर्भ में किया है। उसके अनुसार अभिव्यक्ति वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक कलाकार का सत्यज्ञान रूपायित होता है, यहाँ अभिव्यक्ति के साथ सौन्दर्य का भाव अपने आप ही जुड़ जाता है। डार्विन ने अभिव्यक्ति शब्द का प्रयोग कुछ भिन्न अर्थों में किया है। उसने अभिव्यक्ति शब्द का प्रयोग उस असाधारण व्यवहार के लिये किया है जो किसी कुछ प्रवृत्ति से सम्बद्ध संवेग के उत्पन्न होने पर व्यक्ति करता है। इस प्रकार उनका तात्पर्य मात्र भावात्मक और विशेषकर शारीरिक प्रतिक्रियाओं से है।

अभिव्यक्ति से दो अर्थ लिये जा सकते हैं -- विचारों की अभिव्यक्ति एवं भावों की अभिव्यक्ति। विचारों की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन भाषा है किन्तु भावों की अभिव्यक्ति भाषेतर साधन भी है। एक मनोविज्ञान के शब्दकोश में अभिव्यक्ति के तीन अर्थ दिये हुए हैं। --

(१) प्राणी की प्रकृति द्वारा निर्धारित किया गया कार्य। यह उस अनुक्रिया से भिन्न है जिसके निर्धारण में मनोभाव के साथ-साथ वातावरणीय कारक और पेशीय क्रिया का अधिक सहयोग हो और जो पेशीय अनुक्रिया तक ही सीमित हो।

(२) अनुक्रिया का अप्रधान संगत और आपेक्षिक लघु अंश जो सम्पूर्ण अनुक्रिया का सूचक हो जब कि इसका अधिकांश भाग अवरुद्ध या छिपा रहे --उदाहरणार्थ-लज्जा से गाल लाल हो जाना। अनुक्रिया स्वयं मनोभाव नहीं है। यह उसे पथ-भ्रष्ट करता है परन्तु यह व्यवहार में दृढ़तापूर्वक लाया जाता है।

(३) कंठध्वनि का वह परिवर्तन जो बोलने या गाने में आकर मनोभावों के अस्तित्व की सूचना देता है।[१]

शीर्षक में आया हुआ 'प्रभावोत्पादक' (संवेगात्मक) शब्द इसी अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है। यह 'प्रभावोत्पादकता' (संवेगात्मकता) दो स्तरों पर घटित होती है। एक ओर तो आन्तरिक प्रभाव की तीव्रता एवं विशदता अभिव्यक्ति के स्वरूप का निर्धारण करती है। यह प्रक्रिया अचेतन स्तर पर होती है। दूसरी ओर व्यक्ति चेतन स्तर पर अपनी भावात्मक अभिव्यक्ति द्वारा दूसरों को प्रभावित करने के लिये उसे विशिष्ट रूप देता है। इसी से अभिव्यक्ति की विभिन्न रीतियों का निर्माण होता है। अतः 'भावात्मक' एवं 'अभिव्यक्ति की रीतियाँ' के मध्य प्रभावोत्पादक (संवेगात्मक) शब्द स्वतः एवं स्वाभाविक रूप से आ जाता है।

०.३- अनुभूति पक्ष

भाषा और अभिव्यक्ति के पश्चात् भाव का विश्लेषण आवश्यक है।

१- **Expression** :

1. Any thing an organism does with the implication that the act is determined by the nature of the organism. Distinguished from response, which emphasizes somewhat more that the act is codetermined by environmental factors; and from motor function which is (properly) restricted to muscular response.
2. A subsidiary accompaniment of relatively minor part of a response that is indicative of the total response when most of the latter is, hidden or suppressed : e.g. blushing. The phrase expression of emotion is misleading in suggesting that the response denoted are not part of the emotion itself, but it is firmly entrenched in usage.
3. Change in voice that indicates the emotional value of what is spoken or sung.

-- Page 195. The Comprehensive Dictionary of Psychological and Psychoanalytical Terms.

भावों का साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त अध्ययन हुआ है किन्तु भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से इस पर अधिक विचार नहीं हुआ । भावों का इस नवीन दृष्टि से अध्ययन करने से पूर्व उसकी पृष्ठभूमि के लिये साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी इसे समझना आवश्यक है ।

०.३.१- भाव

भाव क्या है इस पर बहुत विचार हो चुका है । निष्काम/और निर्विकल्प मन का प्रथम विकार भाव है । शुक्ल जी के शब्दों में ,"प्रत्यय बोध, अनुभूति और वेग-युक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ़ संश्लेष का नाम 'भाव' है । मन के प्रत्येक वेग को भाव नहीं कह सकते, मन का वही वेग भाव कहलाता है जिसमें चेतना के भीतर आलम्बन आदि प्रत्यय रूप में प्रतिष्ठित होंगे ।"[१]

सर्वप्रथम भरत ने भाव की व्याख्या नाट्य प्रदर्शन के संदर्भ में की । उन्होंने माना कि ये 'भावयन्ति' (परिव्याप्त) होने के कारण भाव कहलाते हैं । अनुभावों के वाचिक सात्विक, आंगिक तथा अर्थ प्रदर्शन द्वारा ये नाटकों के अर्थ को भावयन्ति अर्थात् व्यंजित करते हैं । 'भाव' शब्द 'भावय' मूल धातु से बना है जिसका अर्थ है परिव्याप्त होना ।

धनंजय ने आन्तरिक भाव स्थितियों के ज्ञापन को भाव माना है । उनके अनुसार निर्विकार चित्त में यौवनोद्गम के समय होने वाला विकार रूप आदि स्पष्ट ही भाव हैं ।[२] देव ने भाव को भरत के व्यापक अर्थ में धनंजय के आधार पर ग्रहण किया ।[३] अमरकोश में मनुष्यों मन के विकार को भाव कहा गया है ।[४] रस के अनुकूल मन का विकार भाव है तथा अज्ञायमान वस्तु का ज्ञायमान होना ही मन का विकार है । केशवदास के अनुसार जब मुख, नेत्र एवं वचनों द्वारा 'मन की बात' प्रकट होती है तब सुकविगण उसे भाव कहते हैं ।

१- पृष्ठ १९८, रस-मीमांसा -- रामचन्द्र शुक्ल ।

२- निर्विकारात्मके चित्ते भावस्तत्राद्यविक्रिया -- दशरूपक २।३३ ।

३- ताते सुख-दुख को सदा रस सिंगार सिंगार,
   ताके कारण भाव है तिनको करत विचार ।

४- विकारो मानसो भावः विकारो न्यथाभावः ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी भाव पर विचार करना आवश्यक है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भाव (feeling) वह कूटस्थ सरल मानसिक प्रक्रिया है जिसमें जीव सुखद या दुखद अनुभव करता है।[१] यह चंचल तथा क्षणिक होता है। भाव का सम्बन्ध जीव के किसी अंग विशेष से नहीं रहता अतः इसकी अभिव्यक्ति को किसी अंग विशेष पर केंद्रित नहीं किया जा सकता है। भाव की अनुभूति और अभिव्यक्ति सम्पूर्ण शरीर के माध्यम से होती है। भाव की अभिव्यक्ति क्रमिक होती है अर्थात् एक भाव के समाप्त होने पर ही दूसरे की अभिव्यक्ति संभव है साथ-साथ नहीं। भाव आत्मगत होता है। अधिकांश विद्वानों ने भाव को दो प्रकार का ही माना है -- सुखद तथा दुखद। रायस नामक मनोवैज्ञानिक ने भावों के दो जोड़े माने हैं। इस प्रकार भाव चार प्रकार के होते हैं। उसके अनुसार सुखद, दुखद, उद्दीप्त और शान्त ये चार भाव प्रकार हैं। वुण्ड ने एक नये जोड़े को स्थान दिया और इस प्रकार कुल छः भाव माने -- सुखद, दुखद, उद्दीप्त, शान्त तथा तनाव-शिथिलता।

कुछ लोगों ने भाव के ही उग्र रूप को संवेग कहा है किन्तु संवेग जटिल एवं सक्रिय अनुभव है जो बाह्य परिस्थिति पर भी प्रकाश डालता है। वुडवर्थ ने माना कि संवेग जीव की वह उद्वेलित मानसिक अवस्था है जिसमें एक निश्चित क्रियात्मक वृत्ति (Conativ Tendency) रहती है। पी० टी० यंग ने माना कि संवेग मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न सम्पूर्ण जीव का तीव्र उपद्रव है जिसमें व्यवहार, चेतन अनुभूति एवं शारीरिक क्रियायें सम्मिलित रहती हैं। भाव तथा संवेग में निम्नलिखित अन्तर है --

१- भाव सरल किन्तु संवेग जटिल मानसिक प्रक्रिया है।

२- किसी उत्तेजना के प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, कल्पना या किसी क्रिया की सफलता-विफलता के परिणाम स्वरूप भाव की उत्पत्ति होती है। लेकिन परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण, स्मरण या कल्पना से संवेग जागृत होता है।

३- भाव संवेगहीन किन्तु संवेग भावयुक्त होते हैं।

४- भाव साधारणतः सुखद तथा दुःखद है किन्तु संवेग कई हैं।

१- Feeling -- An elementary mental process which differs from sensation and which has the dimension of pleasantness -- unpleasantness. Other writers identify it with a vague pattern of sensation, principally organic which furnishes the hedonic tone -- ?
-Page 137.

५- भाव में व्यक्ति सामान्य किन्तु संवेग की स्थिति में प्राय: असामान्य रहता है। संवेग इतना उग्र रूप धारण कर लेता है कि क्रियायें पूर्णत: अव्यवस्थित हो जाती हैं और व्यक्ति जड़, मूक तथा पंगु बन जाता है।

६- भाव के समय व्यक्ति सामान्य रहता है अत: भाव को जानना कठिन होता है किन्तु संवेग तुरन्त स्पष्ट हो जाता है। भाव में मनोवृत्ति आत्मगत और संवेग में विध्यात्मक होती है।

०.३.२- भाव तथा अन्य मन:स्थितियां

भाव के साथ कुछ अन्य मन:स्थितियों का विश्लेषण करके उनमें परस्पर भिन्नता जान लेना आवश्यक है। एक स्थिति है संवेदना [sensation]। यह मन की प्राथमिक, सरल, कूटस्थ और निष्क्रिय प्रक्रिया है। कुछ लोग भ्रमवश इसे भाव कहते हैं किन्तु संवेदना और भाव में अन्तर है। वास्तव में संवेदना वह भाव है, कूटस्थ मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हमें किसी उत्तेजना के गुण की चेतना मात्र होती। यह पूरी अनुभूति भी नहीं है, अत: अभिव्यक्ति का इस स्तर पर प्रश्न ही नहीं उठता। संवेदना के बाद द्वितीय स्तर प्रत्यक्षीकरण [perception] का है। संवेदना के द्वारा हमें उत्तेजना का चिन्ह मात्र प्राप्त होता है। उसी चिन्ह की व्याख्या करने वाली प्रक्रिया प्रत्यक्षीकरण है। प्रत्यक्षीकरण वह ज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी उपस्थित उत्तेजना का तात्कालिक ज्ञान होता है। किसी उत्तेजना के उपस्थित होने पर उससे आबद्ध उत्तेजना प्रभावित होकर नाड़ी प्रवाह मस्तिष्क केन्द्र को भेजती है। इसके बाद साहचर्य क्षेत्र के उत्तेजित होने से संवेदना में आबद्ध अन्य संवेदनाओं का स्मरण प्रतिमा [image] के रूप में होता है। फिर इन विभिन्न संवेदनाओं से अर्थपूर्ण समन्विति [intigrated] का ज्ञान होता है। फलत: हमें सुखद या दु:खद अनुभव होता है। उमंग [mood] संवेग से मिलता-जुलता एक मानसिक भाव है। यह संवेग से तीव्रता में कम किन्तु अधिक समय तक रहने वाला होता है। संवेग के बाद की मानसिक स्थिति को उमंग कहते हैं। इस काल में साधारण उत्तेजना भी उमंग से सम्बद्ध संवेग को जागृत कर देती है जैसे क्रोध के पश्चात् या पूर्व की चिड़चिड़ाहट या झुंझलाहट की स्थिति। उमंग का सदाकाल दीर्घ होता है। वाचिक अभिव्यक्ति सम्बद्ध संवेग की अपेक्षा कम मुखर और संवेग से असम्बद्ध भी होती है। किसी के प्रेम में मिला तुष्टिजन्य हर्ष अन्य किसी कार्य में उत्साह के रूप में व्यक्त होता है।

०.३.३- भावों का वर्गीकरण

ड्रेंड आदि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने भावों एवं मूल प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए भाव के दो भेद किये हैं --

१- प्राथमिक (Primary)

२- संश्लिष्ट (Complex)

ड्रेंड ने सहज प्रवृत्ति की इकाई को प्राथमिक भाव माना है और भिन्न-भिन्न सहज-प्रवृत्तियों के योग से जो मिश्रित भाव बनते हैं उन्हें संश्लिष्ट भाव बताया है। पाश्चात्य मूल प्रवृत्ति या सहज प्रवृत्ति का उदात्त रूप ही हमारे स्थायी-भाव के निकट ठहरता है। मैक्डुगल ने मनोवेगों को ही सहजवृत्ति कहा है किन्तु हम समझते हैं कि मैक्डुगल का यह कथन उसी दृष्टि में सत्य है जिस दृष्टि में हम कहते हैं कि स्थायी भाव ही रस है अर्थात् सहजवृत्ति स्थायी भाव की तरह ही एक सुप्त (unstimmed) अवस्था है और मनोवेग रस की तरह उद्बुद्ध या परिपुष्ट (stirred दशा)। सामान्यत: दो रूप होते हैं -- १- लौकिक तुच्छ या भाव या वैयक्तिक संक्रमित भाव, २- उदात्त भाव। ये दूसरे प्रकार के भाव ही स्थायी भाव हैं।

एडलर एवं युंग के अनुसार मनुष्य की समस्त मूलप्रवृत्तियों को तीन भागों में बांटा जा सकता है, दूसरे शब्दों में मनुष्य जीवन के आधारभूत यही तीन स्थायीभाव हैं :--

१- पुत्रैषणा

२- वित्तैषणा

३- लोकैषणा

इन्हें भारतीय दर्शन के अनुसार क्रमश: काम भावना (तम), स्वत्व भावना (रज) और समाज भावना (सत्) माना गया है। फ्रायड ने दो मूल प्रवृत्तियां मानी हैं :-- जिजीविषा (life instinct) और मुमूर्षा (death instinct)। उसने मूल-प्रवृत्तियों का वर्णन तीन स्रोतों के आधार पर किया है -- इदम (id), अहं (ego) और नैतिकाहं (super ego)।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भावों को दो श्रेणियों मौलिक (primary) और व्युत्पन्न (derivative) में विभाजित किया है। स्थायी भावों की स्थिति जीवन के उन तीव्र एवं व्यापक मनोविकारों की है जो मानव स्वभाव के मूल अंग हैं तथा जिन्हें पाश्चात्य दर्शन में साधारणत: मौलिक मनोवेग (elemental passions) कहा गया है।

जिस भाव की अनुभूति किसी दूसरे भाव की पूर्वानुभूति की आश्रित न हो वह मूल भाव है जैसे -- क्रोध, भय, हर्ष, शोक, आश्चर्य। जो दूसरे भाव की अनुभूति के आश्रय से उत्पन्न हो वह गौण है जैसे दया, कृतज्ञता, पश्चाताप,इत्यादि।

काव्यशास्त्र में भावों को दो भागों में विभाजित किया गया है -- स्थायी भाव तथा संचारी भाव (जिन्हें हमने इस प्रबंध में गौण भाव कहा है)।

0.3.4- स्थायी भाव

धनंजय के अनुसार जो भाव विरोधी एवं अविरोधी भावों से विच्छिन्न नहीं होते अपितु विपरीत भावों को अपने में शीघ्र मिला लेता है उसका नाम स्थायी है।[1] विश्वनाथ कहते हैं -- "अविरुद्ध या विरुद्ध भाव जिसे छिपा न सकें वह आस्वाद का मूलभूत भाव स्थायी है"।[2] "पण्डितराज जगन्नाथ का कथन कुछ अधिक महत्वपूर्ण है"-- जिस भाव का स्वरूप सजातीय एवं विजातीय भावों से तिरस्कृत न हो सके वह स्थायी भाव कहलाता है"।[3] डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित के अनुसार --"हृदय में वासना रूप में संस्थित अन्य भावों द्वारा किसी प्रकार भी न दबने वाले, प्रधान, विरोधी-अविरोधी भावों को अन्तर्निहित करके आत्मभाव प्राप्त करा सकने वाले चिरकाल, अथवा आप्रबन्ध स्थायी रहने वाले आस्वाद योग्य मानोभावों को स्थायी भाव कहते हैं।"[4] इन सब परिभाषाओं के आधार पर स्थायी भाव के कुछ लक्षण निर्धारित किये जा सकते हैं जिनमें आस्वाद्यत्व, उत्कटत्व, सर्वजन-सुलभत्व, पुरुषार्थोपयोगिता, उचित विषय निष्ठत्व या औचित्य महत्वपूर्ण है।

मनोविज्ञानिकों के अनुसार स्थायी भाव (sentiment) जब किसी व्यक्ति, पदार्थ, विचार अथवा आदर्श के प्रति किसी प्रकार का संवेग-संवेग स्थायी रूप से आबद्ध हो जाता है तो वह स्थायी भाव कहलाता है। एक ही उमंग का बार-बार अनुभव भी स्थायी भाव बन जाता है। मैक्डूगल का सिद्धान्त है कि मूल प्रवृत्तियों के परिवर्तनों से

१- दशरूपक, ४ : ३४।

२- साहित्यदर्पण ४ : १७४।

३- हिंदी र० ग०, १ : पृ० ८६।

४- रस सिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण, पृ० ४७।

ही स्थायी भाव का निर्माण होता है और किसी एक प्रकार के स्थायी भाव के निर्माण में कई मूल प्रवृत्तियों का योग रहता है। जिस प्रकार मूल प्रवृत्ति किसी क्रिया विशेष के लिये प्रेरित करती है उसी प्रकार स्थायी भाव भी करते हैं। मैक्डुगल ने उन स्थायी भावों को जन्मजात नहीं वरन् अर्जित माना है। ड्रेवर का कथन है कि स्थायी भाव संवेग के कारण उत्पन्न हुई आदत है। जिस प्रकार किसी आदत के कारण हम किसी विशेष प्रकार का कार्य करते हैं, उसी प्रकार स्थायी भाव के कारण भी हमारी क्रियायें होती हैं। अतः स्थायी भाव के इच्छात्मक एवं भावनात्मक दोनों पक्ष रहते हैं।

स्थायी भाव एवं संवेग में अन्तर

१- स्थायी भाव हमारे मन में स्थायी बना रहता है, पर संवेग अस्थायी।

२- एक स्थायी भाव कई संवेग उत्पन्न करता है। किन्तु एक संवेग कई स्थायी भाव नहीं उत्पन्न कर सकता।

३- स्थायी भाव हमारे मन में सदा अव्यक्त रूप से वर्तमान रहता है जबकि संवेग अव्यक्त रहता है।

४- संवेग उपस्थित एवं प्रस्तुत के प्रति होता है स्थायी भाव अनुपस्थित एवं अप्रस्तुत के प्रति भी रहता है।

५- स्थायी भाव एक मानसिक रचना है किन्तु संवेग एक मानसिक प्रक्रिया है। हममें जिस प्रकार का स्थायी भाव रहता है उसी प्रकार के अनुसार हमारा व्यवहार होता है। स्थायी भाव व्यक्ति में संस्कार के रूप में रहता है किन्तु संस्कार के रूप में नहीं रहता।

मनोविज्ञानिकों ने स्थायी भाव के दो रूप माने हैं -- मूर्त तथा अमूर्त। मूर्त स्थायी भावों में घृणा, द्वेष, सहानुभूति, मैत्री, प्रेम आदि का स्थान है। अमूर्त स्थायी भाव के चार वर्ग हैं --

१- बौद्धिक (intellectual)
२- नैतिक (Ethical)
३- सौन्दर्यात्मक (aesthetic)
४- धार्मिक (religious)

जब अनुकूल अवसरों पर इन्हीं स्थायी भावों का प्रकाशन होता है तब इन्हें संवेग कहते हैं।

किसी भाव से सम्बद्ध सम्पूर्ण वाचिक अभिव्यक्ति तो स्थायी भाव की अभिव्यक्ति है और अवसर विशेष पर तीव्र एवं आवेशयुक्त अभिव्यक्ति संवेगीय अभिव्यक्ति है। मां का सन्तान के प्रति साधारण प्रेम प्रदर्शन वात्सल्य के स्थायी भाव की अभिव्यक्ति होगी किन्तु अवसर विशेष पर सन्तान पर संकट आने पर अथवा पुत्र द्वारा कोई महान् कार्य करने पर क्रमशः जो दुःख एवं हर्ष मिश्रित वात्सल्य का संवेग जागृत होता है उसकी अभिव्यक्ति पुत्र को -- चिपटाना, प्यार करना, बलैया लेना, आशीर्वाद देना आदि के रूप में व्यक्त होती है। जहां तक अमूर्त स्थायी भावों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है ये मूर्त स्थायी भावों की पृष्ठभूमि के रूप में ही आते हैं। घृणा, द्वेष, करुणा, सहानुभूति, मैत्री, प्रेम आदि के साथ बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एवं सौंदर्यात्मक भावनायें जुड़ी रहती हैं। यदि ये अमूर्त स्थायी भाव अधिक दृढ़ हो जाते हैं तो मूर्त स्थायी भाव महत्वहीन एवं कृत्रिम हो जाते हैं। यदि किसी में नैतिकता का स्थायी भाव बहुत बढ़ दृढ़ है तो वह साधारण व्यक्तियों की भांति प्रेम, घृणा, द्वेष, सहानुभूति नहीं रख सकेगा। हर भाव को वह नैतिकता के संदर्भ में रख कर देखना चाहेगा। फलस्वरूप उसका द्वेष प्रभावहीन या कम-से-कम अभिव्यक्तिहीन तो हो ही जायेगा। अतः अमूर्त स्थायी भावों की मूर्त स्थायी भाव जैसी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से आठ स्थायी भावों की कल्पना की गयी है -- रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय। कालान्तर में भक्ति शान्त और वात्सल्य नामक स्थायी भावों को भी स्थान मिला। भोजराज ने गर्व [उद्धत रस], स्नेह [प्रेय रस], धृति [शान्त रस], मति [उदात्त रस] स्थायी भावों को माना। कवि बनारसीदास के अनुसार शोभा, आनन्द, कोमलता, पुरुषार्थ, चिन्ता, ग्लानि तथा वैराग्य भी स्थायी भाव है। आत्माराम रावजी देशपाण्डे ने अपनी पुस्तक `प्रकाभि रस व्यायमम्` में धर्म नामक स्थायी भाव का प्रतिपादन किया। श्री जावडेकर ने `क्रान्ति [क्रान्ति रस] स्थायी भाव की परिकल्पना की।

भोजराज द्वारा गिनाये गये नवीन स्थायी भावों में गर्व [उद्धत रस] क्रोध के अन्तर्गत आ जाता है। धृति [शान्तरस] एवं मति [उदात्त रस] निर्वेद के ही विभिन्न रूप हैं और `स्नेह' को सरलता से प्रेम के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है।

बनारसीदास की द्वारा मान्य स्थायी भावों में से शोभा, पुरुषार्थ एवं कोमलता को स्थायी भाव की संज्ञा किसी प्रकार नहीं दी जा सकती। `आनन्द` को

प्रेम, उत्साह एवं वात्सल्य के साथ स्वीकृत किया जा सकता है, यह संवेग है, स्थायी भाव नहीं। चिन्ता और ग्लानि मानसिक स्थितियाँ हैं उन्हें शोक के साथ रखा जा सकता है। और 'वैराग्य' को निर्वेद से अलग करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

देशपाण्डे जी द्वारा मान्य 'प्रक्षोभ रस' को अलग स्थान दिया जा सकता है किन्तु क्रोध को उपभाव के रूप में लेना अधिक उपयुक्त होगा। जावड़ेकर जी के क्रांति स्थायी भाव को स्थायी भाव माना ही नहीं जा सकता। इसे एक मन:स्थिति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है और 'उत्साह' के संवेग के क्रमिक विकास का एक सोपान मानना अधिक समीचीन होगा।

स्थायी भाव की पूर्व दी गयी पांच विशेषताओं के आधार पर ही आचार्यों ने सर्वसम्मति से रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शम या निर्वेद ये नौ स्थायी भाव स्वीकार किये हैं। भरत ने पहले निर्वेद को स्थायी भाव नहीं माना किन्तु बाद में उन्होंने शान्त रस को भी स्वीकृत कर लिया। बाद में वात्सल्य भी गृहीत कर लिया गया, क्योंकि वह भी आस्वाद्यत्व, उत्कटता इत्यादि कुछ गुणों में अन्य भावों के समान ही है। इस प्रकार कुल दस स्थायी भाव हो जाते हैं। इनमें से प्रत्येक एक-एक रस का स्थायी है। यदि अपने नियत रस से अन्यत्र कोई भाव उत्पन्न होता है तो वह स्थायी न रहकर व्यभिचारी बन जाता है। इसे दृष्टि में रखकर कन्हैयालाल पोद्दार का कथन है कि --"वास्तविक स्थायी भाव के उदाहरण तो रस के परिपक्व अवस्था में ही मिल सकते हैं अन्यत्र नहीं।"

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों में मैक्डुगल ने मनुष्य के स्थायी भावों का वर्गीकरण चौदह मूल प्रवृत्तियों के नाम से किया है। उन्होंने माना कि मनुष्य की सहज मूल प्रवृत्तियां (instincts) का क्रियात्मक प्रकाशरूप ही भाव है और प्रत्येक प्रधान प्रवृत्ति एक विशिष्ट प्रकार का भावात्मक चापल्य व्यंजित करती है। ये प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं :--

१- पलायन की प्रवृत्ति,	५- दैन्य वृत्ति,
२- युद्ध प्रवृत्ति,	६- काम वृत्ति,
३- जुगुप्सा,	७- जिज्ञासा,
४- पालन वृत्ति,	८- शरणागति,

९- अहं भाव,　　　　१२- अर्जन,
१०- संघ वृत्ति,　　　　१३- नव निर्माण,
११- मध्यान्वेषण,　　　　१४- हास्य ।

इन चौदह मूल प्रवृत्तियों का समाहार सरलता पूर्वक भारतीय मत के अनुसार मान्य दस स्थायी भावों में हो जाता है। पलायन की मूल प्रवृत्ति भय का संवेग है। रौद्र के अन्तर्गत युद्ध प्रवृत्ति, घृणा स्थायी भाव के अन्तर्गत जुगुप्सा की प्रवृत्ति, करुणा के अन्तर्गत दैन्य एवं शरणागति, श्रृंगार के अन्तर्गत पालन, काम और संघ वृत्ति, अद्भुत के अन्तर्गत जिज्ञासा और नव निर्माण, वीर रस के अन्तर्गत अहं और अर्जन, हास्य के अन्तर्गत संघ वृत्ति और हास्य की मूल प्रवृत्ति आती है । वास्तव में यह मनुष्य की नैसर्गिक प्राथमिक आवश्यकता है, भाव नहीं है।

मैक्डूगल द्वारा मान्य चौदह मूल प्रवृत्तियों में से सब की भाषागत अभिव्यक्ति नहीं हो सकती जैसे अर्जन, नव निर्माण, मध्यान्वेषण आदि जबकि भरत द्वारा स्थापित सभी स्थायी भावों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी स्वीकार किया जा सकता है। कालान्तर में मैक्डूगल ने भी अपने वर्गीकरण की सीमाओं को मानते हुए कहा --

" मैं स्वीकार करता हूं कि सही एवं व्यापक अर्थ में मूलप्रवृत्यात्मक क्रियायें भिन्न प्राणियों के व्यवहार की ही विशेषतायें होती हैं। उन्हें अन्य प्राणियों एवं मनुष्य पर घटित करने से जो वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ है उससे क्रियाओं के भिन्न एवं उच्च रूपों का कोई स्पष्टीकरण नहीं हो पाया ।

०.३.५ गौण भाव

प्रमुख स्थायी एवं प्रधान भावों के अतिरिक्त अनेक उप भाव एवं गौण भाव हैं। ~~स्वतः~~ इनकी संख्या अनन्त है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इन उप भावों को संचारियों की संज्ञा दी गयी है। 'संचारी' शब्द नाट्यकला के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। संचारी भाव अथवा स्थायी उप भाव के सन्दर्भ में स्थायी भाव को दीपित करते हैं। स्थायी के साथ उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है।

इन उप भावों की निश्चित संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती । साधारणत: संचारियों की संख्या तैंतीस मानी गयी है। स्वीकृत तैंतीस संचारी क्रमश इस प्रकार

हैं -- निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, विबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, वितर्क, व्याधि, उन्माद, त्रास तथा मरण । इनके अतिरिक्त सात्विक अलंकार, सात्विक भाव, समस्त अनुभाव तथा कामदशाओं तक को व्यभिचारी भाव में परिवर्तनीय मान लिया गया है । हेमचन्द्र ने दम्भ, उद्वेग, द्युत, तृष्णा और रामचन्द्र गुणचन्द्र ने द्युत, तृष्णा, मैत्री मुदिता, श्रद्धा, दया, उपेक्षा, अरति, सन्तोष, क्षमा, मार्दव आर्जव, तथा दाक्षिण्य आदि को संचारी स्वीकार किया है । भानुदत्त ने कामदशाओं को व्यभिचारी मानने के साथ ही `छल ` नामक संचारी की कल्पना की है । भानुदत्त के अनुसार नायिका के दस स्वभावज अलंकारों में से मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक तथा विकृत आन्तर विकार क्रम के रूप में तथा किलकिंचित उभयात्मक होने के कारण व्यभिचारी कहे जायेंगे । कामदशाओं में से अभिलाषा, गुणकथन तथा प्रलाप क्रमशः औत्सुक्य, स्मृति तथा उन्माद में अन्तर्भुक्त मान ली गयी हैं । विकृत भी औत्सुक्य के अन्तर्गत आता है और किलकिंचित स्वयमेव अनेक श्रमाभिलाषादि संचारियों का समाहार है । कुट्टमित संचारी नहीं है । आधुनिक काल में आचार्य शुक्ल ने `तुलसीदास की भावुकता` शीर्षक के अन्तर्गत चकपकाहट, उदासीनता, क्षोभ तथा अनिश्चय को तथा `रस मीमांसा ` के पृष्ठ २१५-२१६ पर आशा नैराश्य तथा विस्मृति और अन्य पृष्ठ २२७ पर धैर्य तथा सन्तोष एवं पृष्ठ २८८ पर असन्तोष तथा चपलता को संचारियों में स्वीकार किया है । स्व० पं० रामदहिन मिश्र ने भी `काव्य दर्पण ` में आशा, निराशा, पश्चाताप, विश्वास तथा दया-दाक्षिण्य को संचारियों में गिनने का यत्न किया है । इनके अतिरिक्त विभिन्न आचार्यों ने विभिन्न संचारियों का उल्लेख किया है । नवीन संचारियों में प्राय: सभी का किन्हीं न किन्हीं पुराने संचारियों में अन्तर्भाव मान लिया जा सकता है । किन्तु यह निश्चित है कि इस प्रकार भावों/उपभावों की सीमा निश्चित कर देना न तो अन्तर्दृष्टि के उपकर्ष का परिचायक हो सकता है और न व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी ही । वस्तुत: प्रत्येक भाव एवं स्थिति में कुछ न कुछ प्रभाव का अन्तर तो बना ही रहता है, एक ही शब्द के अनेक पर्याय भी प्राय: सूक्ष्म अर्थों में पृथक ही होते हैं । उदाहरणात: दया में जो प्रस्तुत है वही मार्दव तथा आर्जव में नहीं है । पहले में स्वभाव का द्योतन होते हुए भी शक्ति या सामर्थ्य का बोध होता है और अन्य दो से केवल स्वाभाविक विनम्रता एवं सज्जनता का पता

चलता है । इसी प्रकार आशा में आत्मविश्वास, उत्साह, औत्सुक्य और चिन्ता का मिश्रण होता है केवल चिन्ता का ही नहीं । निराशा भी दैन्य, मोह, निर्वेद, विषाद तथा ग्लानि में पृथक् पृथक् रूप धारण कर सकती है । अत: भावों का संख्या-निर्धारण व्यर्थ है ।

डा० वाटवे के अनुसार तैंतीस संचारियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे सदोष हैं । उनमें सभी भाव भावना स्वरूप नहीं हैं । उनमें कुछ शारीरिक आवश्यकतायें हैं, कुछ ~~भक्त~~ भावनाओं के भीतर तीव्रता प्रदर्शन के प्रकार हैं, और कुछ प्राथमिक भावनायें हैं, कुछ सभिन्न भावनायें हैं और कुछ ज्ञानान्तर अवस्थायें हैं । [१]

रामचन्द्र शुक्ल ~~ब~~ के विचार भी लगभग इसी प्रकार के हैं । गिनाये ~~ह~~ हुए संचारियों की सूची से ही पता चलता है कि उनका क्षेत्र बहुत व्यापक है । संचारी के अन्तर्गत भाव के पास पहुंचने वाले अर्थात् स्वतंत्र विषययुक्त और ~~लक्ष्ययुक्त~~ लक्ष्ययुक्त मनोविकार और मन के क्षणिक वेग ही नहीं बल्कि शारीरिक तथा मानसिक अवस्थायें तथा स्मरण वितर्क आदि अन्त:करण की वृत्तियां भी आ जाती हैं ।" [२]

प्रगतिवादी आलोचक भावों उपभावों की इस बंधी बंधायी परिपाटी और रस सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध हैं । डा० रामविलास शर्मा अपने एक लेख "रस सिद्धान्त एवं आधुनिक साहित्य" में लिखते हैं --"साहित्य विकासमान है और वह एक महान् सामाजिक क्रिया है । इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि प्राचीन आचार्यों ने भविष्य देख कर जो सिद्धान्त बनाये थे वे आज नये साहित्य पर पूरी तरह लागू नहीं किये जा सकते । उन्हें लागू करने से या तो पैमाना टूट जायगा या फिर अपने ही पैरों को थोड़ा तराशना पड़ेगा । काव्य के नौ रसों से नये साहित्य की परख नहीं होती है... जीवन की धारायें एकदूसरे से इतनी मिलती-जुलती हैं कि नौ रसों से ~~नये साहित्य की परख नहीं होती है~~... मेंड़ बांध कर उन्हें अपने मन के मुताबिक नहीं बढ़ाया जा सकता"[3]।

प्रत्येक प्रधान भाव के साथ संचारी अथवा गौण भावों का योग तो रहता ही है, इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रधान भाव के साथ आने वाले विभिन्न उप भाव जो अपनी

१- रस विमर्श, पृष्ठ १२८ ।

२- रस मीमांसा, पृष्ठ २०५ ।

३- "सिद्धान्त और समीक्षा" संपादक सन्तराम विचित्र, पृ० ८८-९० से उद्धृत ।

प्रकृति की दृष्टि से प्रधान भाव का ही अंग होते हैं, को उनसे पृथक् नहीं किया जा सकता। यद्यपि उन विभिन्न उपभावों में तथा प्रधान भाव में परस्पर कुछ अन्तर अवश्य रहता है तथापि मूलत: वे अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक ही होते हैं जैसे क्रोध के साथ रोष, अमर्ष, आक्रोश, झुंझलाहट, आत्म-भर्त्सना। भय के साथ -- शंका, आशंका, आतंक, त्रास, भीरुता। घृणा के साथ -- अरुचि, ऊब, वितृष्णा, आत्मघृणा। शोक के साथ -- क्लेश, व्यथा, विषाद, वेदना, निराशा। विस्मय के साथ औत्सुक्य, कौतूहल, आश्चर्य, भ्रान्ति, सन्देह एवं अविश्वास। उत्साह के साथ आत्मप्रशंसा, आत्मविश्वास, हठ, साहस, दृढ़ता, उद्बोधन। प्रेम के साथ मान्य संचारियों के अतिरिक्त आकर्षण, समर्पण, विश्वास, क्रोध, देश प्रेम, श्रद्धा-भक्ति। वात्सल्य के साथ हर्ष, गर्व, आशंका, चिन्ता शोक आदि। हास्य के साथ हास, परिहास, विनोद, उपहास, कटु व्यंग्य तथा वैराग्य के साथ अरुचि, वितृष्णा, घृणा, तटस्थता, निर्लिप्तता, तृष्णाभाव एवं स्थितप्रज्ञ आदि मन:स्थितियां।

०.४ अभिव्यक्ति पक्ष

०.४.१ भारतीय दृष्टि

भाव के दो पक्ष होते हैं -- अनुभूति पक्ष एवं अभिव्यक्ति पक्ष। अभिव्यक्ति पक्ष को लेकर भी विभिन्न धारणायें एवं वाद बने हुए हैं। काव्यशास्त्र में अभिव्यक्ति पक्ष के लिए 'अनुभाव' शब्द का प्रयोग हुआ है। अनुभाव के शाब्दिक और व्युत्पत्तिलभ्य अर्थों में परस्पर भेद है। शाब्दिक अर्थ के अनुकूल अनुभाव शब्द से अभिनय, रूप विशेष तथा आंगिक, वाचिक चेष्टाओं का संकेत मिलता है जो आश्रय के हृदय-स्थित भावों का व्यक्त बाह्य रूप होती हैं और सहृदय में उस भाव विशेष का भावन कराती हैं। किन्तु व्युत्पत्ति के अनुसार --"अनु पश्चात् भाव: उत्पत्ति येषाम् यह स्थायी भावों के जागृत होने के पश्चात् जागृत होती हैं अत: इन्हें कार्य रूप मानना चाहिए। भरत वाणी तथा अंग संचालनादि के द्वारा व्यक्त अभिनय रूप भावाभिव्यंजन को अनुभाव कहते हैं"।[१]

१- नाट्यशास्त्र, ७।५ ।

विश्वनाथ के अनुसार अनुभाव आलम्बन, उद्दीपन आदि कारणों से उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करने वाले कार्य हैं।[१]

इनकी संख्या अनिश्चित है। शारदातनय तथा शिंगभूपाल ने कायिक, मानसिक, आहार्य, वाचिक, एवं सात्विक नामक भेदों को क्रमशः गात्रारम्भानुभाव, बुद्ध्यारम्भानुभाव, तथा वागारम्भानुभाव नाम दिया है और सात्विकों का भाव के अन्तर्गत पृथक् रूप से वर्णन किया है। वाचिक अनुभाव के अन्तर्गत आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुलाप, संलाप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, निर्देश, उपदेश, अपदेश तथा व्यपदेश नामक बारह अनुभाव माने गये हैं जिन्हें भानुदत्त, शिंगभूपाल एवं शारदातनय ने स्वीकार किया है। चाटुक्ति आलाप, दुःखमय वचन विलाप, निरर्थक बकना प्रलाप, बार-बार कहना अनुलाप, पहले कहे हुए का अन्य अर्थों में प्रयोग अपलाप समाचार भेजना सन्देश, प्रस्तुत वस्तु की अन्य अभिधेय से सूचना देना अतिदेश, अपने सम्बन्ध में "यह मैं हूं" कह कर समझाना, निर्देश, शिक्षा देना उपदेश, "मैंने या उसने इस प्रकार कहा" ऐसा कहना अपदेश तथा व्याजपूर्वक अभिलाषा प्रकट करना व्यपदेश कहलाता है।

तन की कृत्रिम चेष्टा को 'कायिक' अनुभाव माना है। भृकुटि चढ़ाना, कटाक्षपात, मुट्ठी बांधना, आदि आंगिक क्रियायें कायिक अनुभाव हैं। अन्तःकरण की भावना के अनुरूप मन में हर्ष विषाद आदि उद्वेलन को मानसिक अनुभाव कहते हैं। मन में उत्पन्न भावों के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की कृत्रिम वेश रचना करने को आहार्य अनुभाव कहते हैं। अन्तःकरण के विशेष धर्म सत्व से उत्पन्न ऐसे अंगविकारों को सात्विक अनुभाव कहते हैं जिससे हृदयगत रस या विकार का पता लगता है। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय नाम से उनके आठ भेद हैं। भानुदत्त ने 'रसतरंगिणी' में जृम्भा नामक एक अन्य भेद का भी उल्लेख किया है।

पाश्चात्य दृष्टि

भावों के अभिव्यक्ति पक्ष को लेकर पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न ढंग से विचार किया है। मैक्डुगल ने माना है कि प्रत्येक मूलप्रवृत्ति के साथ-साथ एक संवेग जुड़ा रहता है। मूलप्रवृत्ति के जागृत होने पर संवेग क्रियाशील हो उठता है।

१- उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्। - सा०द० ३:१३२।

फलस्वरूप भाव की वाह्य शारीरिक, आंगिक एवं वाचिक अभिव्यक्ति होती है। जैसे भय की मूल प्रवृत्ति जागृत होने पर व्यक्ति भयभीत होकर भागता है उसके चेहरे का रंग बदल जाता है, आंखें फैल जाती हैं। मैक्डुगल ने वाह्य अभिव्यक्ति की अपेक्षा आन्तरिक परिवर्तनों पर अधिक बल दिया है। जेम्स एवं लैंग ने अभिव्यक्ति पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया। उनके अनुसार हम कांपते हैं इसलिये भयभीत होते हैं। वे मानते हैं कि पहले वस्तु या परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण होता है फिर उसकी शारीरिक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है और तब संवेग उत्पन्न होता है।[१]

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संवेगात्मक प्रकाशन के निम्नलिखित रूप माने गये हैं :-

[१] मुखमण्डलीय प्रकाशन [~~postural~~ facial changes]

[२] आसनिक परिवर्तन [postural changes]

[३] दैहिक परिवर्तन [physiological changes]

क- सांस की गति में परिवर्तन

ख- रक्त संचार परिवर्तन

ग- रक्तचाप परिवर्तन

घ- रक्त रसायन परिवर्तन

ङ- रस पाक परिवर्तन

च- त्वक प्रतिक्रिया परिवर्तन

छ- मस्तिष्क तरंग परिवर्तन

ज- मूत्रस्राव तथा शौच परिवर्तन

[४] स्वराभिव्यक्ति [Vocal Expression] -- अभिव्यक्ति का यह अधिक सशक्त माध्यम है। साधारण बातचीत की अपेक्षा संगीतात्मक स्वर लहर अभि-

---

१- Every-one knows how panic is increased by flight, and how the giving way to the symptoms of grief or anger increases these passions themselves. Each fit of sobbing makes the sorrow more acute, and calls forth another fit stronger still, until at last repose only ensues with lassitude and with the apparent exhaustion of the machinery. In rage, it is notorious how we 'work ourselves up ' to a climax by repeated out breaks of

[शेष अगले पृष्ठ पर]

व्यक्ति में और अधिक सक्षम होते हैं क्योंकि जैसे संवेगों को प्रकट करना है वैसे ही व कोमल या कठोर उतरती-चढ़ती, धीमी या बुलन्द आवाज़ बनायी जा सकती है। श्रोता, प्रश्न करने वाली उठती हुई आवाज़ को, निश्चय प्रकट करने वाली धीमी आवाज़ को और व्यंग्य करने वाले दीर्घ उच्चारण के भेद को अच्छी तरह समझ लेता है। वुडवर्थ एवं मार्क्विस की पुस्तक "मनोविज्ञान" में पृ० ३३८ पर एक प्रयोग की व्याख्या की हुई है -- एक वाक्य : "इसका कोई उत्तर नहीं है, तुमने मुझसे यह प्रश्न हज़ारों बार पूछा और मैंने तुम्हें सदा वही उत्तर दिया है। मेरा उत्तर सदा वही होगा" को एक योग्य अभिनेता ने एक समुदाय के सामने पांच बार पढ़ा और क्रमशः घृणा, क्रोध, भय, शोक और औदासीन्य पांच भावों की अभिव्यक्ति की। अभिनेता की आवाज़ अन्य संवेगों की अपेक्षा क्रोध और भय की अभिव्यक्ति में एक स्तर पर ऊंची हो गयी थी। सम्भवतः किसी भी आवेश की अवस्था में आवाज़ को तीव्र कर लेना और उसे सघन बना लेना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है परन्तु उच्चारण के अन्य परिवर्तन सामाजिक रीति-रिवाजों से संबंध रखते हैं और वे एक समूह से दूसरे समूह में भिन्न होते हैं।[१]

०.४.२ अनुभूति-अभिव्यक्ति

जहां तक वाचिक अभिव्यक्ति का प्रश्न है भाव एवं संवेग की अभिव्यक्ति के स्तरों में अन्तर होगा। क्रोध का भाव एक वस्तु है एवं क्रोध का ~~भाव~~ संवेग दूसरी। यह भेद तीव्रता के स्तर पर भी हो सकता है। जब किसी व्यक्ति के मन में क्रोध भाव रूप में होगा तो उसकी वाचिक अभिव्यक्ति एवं क्रोध के संवेग की वाचिक अभिव्यक्ति में तीव्रता के आधार पर भेद होगा। इसी प्रकार प्रेम के भाव और प्रेम के संवेग (काम) की वाचिक अभिव्यक्ति में अन्तर ~~अनेक~~ होगा। भाव की अभिव्यक्ति में भाषा

पिछले पृ० का शेषांश १ - expression. Refuse to express a passion, and it dies. Count you before venting your anger, and its occasion seems rediculous whistling to keep up courage is no longer mere figure of speech, on the other hand sit all day in a moping posture, sigh, and reply to every thing with a dismal voice and our melancholy lingers. --Page 27 'Emotion and Organic Sensation' by W. James. The Nature of Emotion.

१- मनोविज्ञान, पृ० ३३८।

साधारण, संयमित एवं बलाघातहीन होगी जबकि ~~संवेगावस्था~~ संवेगावस्था में भाषा मर्यादाहीन, अप्राकृतिक, अस्वाभाविक और व्याकरणमुक्त होगी।

कुछ भावों की वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती। अधिकतर वाचिक अभिव्यक्ति उन्हीं भावों की होती है जिनकी स्पष्ट शारीरिक अभिव्यक्ति भी होती है। विस्मय, उत्सुकता, क्रोध, भय, प्रेम, लोभ, मोह (rapture) और इसी प्रकार की कुछ अन्य मानसिक अवस्थाओं का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और इनकी स्पष्ट भाषागत अभिव्यक्ति भी होती है। कभी-कभी संवेग कोई बाह्य परिवर्तन नहीं करते किन्तु संवेग के कारण पैदा हुए आन्तरिक तनाव से बोलने के टोन एवं बलाघात में अन्तर आ जाता है।[१]

भावों एवं संवेगों की भावाभिव्यक्ति या भावाभिव्यंजना साधारणतः दो रूपों में होती है। एक तो किसी भाव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है -- भाव या संवेग के जागृत होने पर उसे ~~व~~ वैसे का वैसा ही भाषा के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास। परन्तु साधारणतः इसके विपरीत ही होता है। भावों या संवेगों की शुद्ध भाषागत अभिव्यक्ति प्रायः कठिन होती है। इसका कारण आज की सभ्यता की कृत्रिमता तो है ही स्वयं मानव का जटिल- भावनात्मक ग्रंथियों से युक्त मन एवं प्रतिकूल परिस्थितियां भी रहती हैं। ऐसी स्थिति में भावाभिव्यक्ति में इतना अंतर आ ~~जा~~ जाता है कि बिना अनुभव के उसे समझना असम्भव ~~सा~~ है। कभी-कभी अभिव्यक्ति की यह रीति या प्रणाली बहुत प्राचीन एवं रूढ़ होकर व्यवहार का एक अंग बन जाती है। इस प्रकार अभिव्यक्ति की एक कृत्रिम शैली या रीति बन जाती है। यह शैली संस्कार एवं सामाजिक विरासत के रूप में एक समुदाय या वर्ग के लोगों ~~को~~ में प्रचलित हो जाती है। इसीलिए विभिन्न प्रान्त के एवं जाति के लोगों की अभिव्यक्ति की शैलियों में अन्तर दिखायी पड़ता है।

१- **Even when no change of outward attitude is produced, their inward tension alters to suit each varying mood and it is felt as a difference of tone or strain. "What is emotion". W. James, Page 36**
-- The Nature of Emotion

भाव एवं संवेग की अभिव्यक्ति का वर्गीकरण एक अन्य आधार पर भी किया जा सकता है -- मुख्य वाचिक अभिव्यक्ति के अन्तर्गत भाव एवं संवेग का सीधा प्रकाशन, चाहे वह शुद्ध हो अथवा कृत्रिम, आयेगा और गौण वाचिक अभिव्यक्ति के अन्तर्गत इस भाव से सम्बन्धित, किन्तु इतर बातों का कथन आयेगा। जैसे प्रेम भाव के प्रदर्शन में प्रेम पात्र से संबंधित वस्तुओं की प्रशंसा करना। अनुभवों के परिपक्व होने के साथ-साथ गौण अभिव्यक्ति ही अधिक विस्तृत एवं महत्वपूर्ण होती चली जाती है।[१]

अभिव्यक्ति का एक अन्य दृष्टि से वर्गीकरण भी महत्वपूर्ण है। हमारे मन में तीन प्रकार की प्रतिक्रियायें होती हैं -- ज्ञानात्मक (Cognitive), भावात्मक (Affective) तथा इच्छात्मक (Conative)। ज्ञानात्मक प्रक्रिया के द्वारा हम अपने चारों ओर की परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करते हैं। यह ज्ञानात्मक प्रक्रिया पूर्णतः मानसिक है, अतः इसकी अभिव्यक्ति नहीं होती है। मात्र अनुभूति होती है। मन में सुखद अथवा दुःखद भाव उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया को भावात्मक कहते हैं जैसे किसी के करुण शब्द को सुन कर उसकी स्थिति का ज्ञान होने पर दया का भाव उत्पन्न होता है। यहीं से अभिव्यक्ति की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। पुत्र को देखकर माँ प्रसन्न होती है और दुलार भरे शब्द कहती है, पुनः वह उसको छूती है और गोद में लेती है। यह छूना एवं गोद में लेना इच्छात्मक प्रक्रिया है। अतः वाचिक अभिव्यक्ति के भी दो रूप एवं दो स्तर हो गये। प्रथम में प्रसन्नता की मात्र शाब्दिक अभिव्यक्ति और द्वितीय में उस प्रसन्नता को क्रियात्मक रूप देने की अथवा देने की इच्छा की शाब्दिक अभिव्यक्ति। एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। क्रोध में कष्ट या पीड़ा देने वाले का ज्ञान मानसिक प्रक्रिया उसके प्रति घृणा, द्वेष आदि भाव की वाचिक अभिव्यक्ति, व्यंग्य-भर्त्सना तथा इच्छात्मक प्रक्रिया की वाचिक अभिव्यक्ति अभिव्यक्ति ललकार एवं चुनौती के रूप में होगी। वाचिक अभिव्यक्ति की

१- **As we advance in life, these acquired constituents, which modify the inherited stmucture of fear, become even more numerous and important in correspondance with the growth of our experience.**

-- The Nature of Emotional System--
by A.F. Shand
(The Nature of Emotion)

दृष्टि से क्रमशः आवेश एवं मुखरता में वृद्धि होती जाती है। क्रियात्मक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति शारीरिक अधिक होती है। प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, कल्पना, तर्क [Reasoning] निर्णय [judgment] आदि ज्ञानात्मक प्रक्रियायें हैं। संवेग स्थायी भाव, उमंग [mood] आदि भावात्मक प्रक्रियायें हैं तथा सहज क्रिया [reflex action] ऐच्छिक क्रिया [voluntary action], मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया [instinctive action] आदि मन की इच्छात्मक प्रक्रियायें हैं।

अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर सामान्य व्यक्तियों की क्रियायें मिली-जुली रहती हैं किन्तु असामान्य [शारीरिक और अथवा मानसिक दृष्टि से] व्यक्ति में ऐसा नहीं होता। जब कोई व्यक्ति विशेष प्रकार के मानसिक रोगों का शिकार हो जाता है तो उसके मन की ये तीनों प्रक्रियायें अव्यवस्थित हो जाती हैं। मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति जब अपने निकटवर्ती की मृत्यु का सामाचार सुनता है तो उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति एवं अनुभूति नहीं होती है। वह उस दुखद समाचार को सुन कर मात्र इतना कह कर अपने पूर्व कर्मों में लग जाता है --"वह मर गया, अच्छा" अर्थात् अनुभूति केवल ज्ञानात्मक प्रक्रिया तक ही सीमित रहती है।

०.५ भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने वाले तत्व

०.५.१ बलाघात एवं सुराघात

भाषा और भावाभिव्यक्ति का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है -- ध्वनि को प्रभावित करने वाला बलाघात और सुराघात। यह आघात शब्द अंग्रेजी के "Accent" का हिन्दी अनुवाद है। भाषाशास्त्र में आघात ध्वनि से सम्बद्ध है। इसके अन्तर्गत ध्वनि उच्चारण में प्रयुक्त दो प्रकार के आघात आते हैं :--

[१] - बलाघात [stress or expiratory stress]

[२] - सुराघात [Pitch accent, tone, tone accent, chromatic accent, or musical accent, गीतात्मक या गीतात्मक स्वराघात]

ध्वनि बलाघात

वह बलाघात जो किसी एक ध्वनि [स्वर या व्यंजन] पर हो। यदि किसी अक्षर में एक से अधिक ध्वनियाँ हों तो उनमें से एक पर बलाघात भाव विशेष की ओर संकेत करता है जैसे `वाह` शब्द में `आ` पर बलाघात [वाऽऽह] आश्चर्ययुक्त प्रशंसा या केवल आश्चर्य की अभिव्यक्ति करता है। यदि बलाघात `व` पर होगा तो `वाह` तिरस्कार या व्यंग्य को व्यक्त करता है।

अक्षर बलाघात

वह बलाघात जो किसी एक से अधिक अक्षरों वाले शब्द में किसी एक अक्षर पर हो। जैसे `आपसे मिलिये` में `आ` पर बलाघात `आपसे मिलिये` व्यंग्य का बोध कराता है। `आइये-आइये` में दोनों प्रथम `आ` पर बलाघात आइये आइये आन्तरिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति करता है। इसी प्रकार निम्न कथन में `ख` पर बलाघात वाक्य को साधारण कथन से चुनौती में परिवर्तित कर देता है -- देखूं क्या कर लेते हो मेरा -- देखूं क्या कर लेते हो मेरा।

कई अक्षरों वाले शब्द में एक अक्षर पर बलाघात सबसे अधिक होता है। दूसरे पर कम और तीसरे पर और अधिक कम। अंग्रेज़ी आदि बलाघात प्रधान भाषा में यह तथ्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। एक से अधिक अक्षर वाले सभी शब्दों में एक अक्षर बलाघातयुक्त कहलाता है और शेष में कुछ बलाघातहीन या अल्पबलाघातयुक्त कहलाते हैं। बलाघात का ये अर्थ न नहीं कि वे अक्षर बिना बलाघात के होते हैं वरन उनका बलाघात अन्यों की तुलना में नहीं के बराबर होता है। बलाघात को क्रम से प्रथम बलाघात [प्रबलतम], द्वितीय बलाघात [उससे दुर्बल], तृतीय बलाघात [उससे भी निर्बल] तथा चतुर्थ बलाघात [तीसरे से निर्बल] आदि कह सकते हैं। इसी रूप में बलाघात के सापेक्षिक बल को लेकर विद्वानों ने इसके उच्च [loud], उच्चार्द्ध [half loud], सशक्त या प्रबल [strong], अशक्त या निर्बल [weak] तथा मुख्य [primary], गौण [secondary], गौणातिगौण या तृतीयक [tertiary] आदि भेद किये हैं।

शब्द बलाघात

एक सामान्य वाक्य में सभी शब्दों पर लगभग बराबर बलाघात रहता है। किंतु वाक्य के किसी शब्द पर अधिक बल डाल कर विशेष भाव को व्यक्त किया जा सकता है, जैसे --"मैं नहीं आऊंगा" साधारण अस्वीकृति है किन्तु नहीं का बलाघातयुक्त उच्चारण हठ की व्यंजना करता है। "मैं आऊंगा" साधारण कथन है किन्तु "मैं" पर बल पड़ने से उत्साह एवं दृढ़ निश्चय की अभिव्यक्ति होती है -- और कोई नहीं मैं आऊंगा।

शब्द बलाघात में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं --

१- इस रूप में बलाघात निश्चित न रह कर अनिश्चित रहता है और अपनी आवश्यकतानुसार वक्ता किसी भी शब्द पर उसे डाल सकता है। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से तो बलाघात का कोई भी प्रकार निश्चित नहीं है।

२- इस बलाघात का सीधा सम्बन्ध अर्थ से है। थोड़ा भी हेरफेर करने से अर्थ बदल जायेगा। शब्द बलाघात संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, प्रधान क्रिया एवं क्रिया विशेषण किसी पर भी हो सकता है। इसी को भाषा विज्ञान के विद्वानों ने वाक्य बलाघात (sentence stress) कहा है।

वाक्य बलाघात

सामान्य वाक्य में प्रायः सभी वाक्य बलाघात की दृष्टि से सामान्य ही रहते हैं किन्तु कभी-कभी आश्चर्य, भावावेश, आज्ञा या प्रश्न आदि से सम्बद्ध कुछ वाक्य अपने आसपास के वाक्यों से अधिक ज़ोर देकर कहे जाते हैं। ऐसे वाक्यों में बल कभी-कभी तो कुछ ही शब्दों पर होता है और कभी-कभी पूरे वाक्य पर। एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा :--

"राम --"तुम जो भी कहो मैं नहीं जा सकता।"

श्याम--"वाह यह तो अच्छी रही। जिस पतरी में खाओगे उसी में छेद करोगे और उस पर भी कहोगे मैं नहीं जा सकता।" जाओगे कैसे नहीं (हाथ उठा कर भागने की दिशा में फेंकते हुए) भाग जाओ नालायक कहीं का।"

उपर्युक्त उद्धरण में `भाग जाओ ` पर सबसे अधिक बलाघात होगा । इस प्रकार के बलाघातयुक्त वाक्य छोटे होते हैं । इन्हें विस्फोटात्मक वाक्य कहना ठीक होगा । कभी-कभी बलाघात वाक्य के कुछ विशिष्ट शब्दों तक सीमित रह जाता है । इस प्रकार के बलाघात को एक अलग नाम `वाक्यांश बलाघात` दिया जा सकता है ।

बलाघात का वर्गीकरण अन्य कई रूपों में भी किया गया है । भाषा, व्यक्ति, सन्दर्भ आदि के पक्ष में इसके उच्च, उच्चार्द्ध, निम्न, निम्नार्द्ध सामान्य आदि भेद किए जा सकते हैं । अर्थ के आधार पर बलाघात के दो भेद किये जा सकते हैं -- सार्थक एवं निरर्थक । सार्थक बलाघात उसे कहते हैं जिसके द्वारा अर्थ स्पष्ट एवं परिवर्तित होता है । भावाभिव्यक्ति में प्रयुक्त सभी प्रकार के बलाघात सार्थक होते हैं । कुछ का प्रयोग चेतन स्तर पर होता है जैसे क्रोध उत्साह आदि की वाचिक अभिव्यक्ति में प्रयुक्त बलाघात और कुछ का अचेतन स्तर पर होता है जैसे भय, घृणा आदि की वाचिक अभिव्यक्ति में प्रयुक्त बलाघात । निरर्थक बलाघात वे होते हैं जो अर्थ में परिवर्तन नहीं लाते हैं । जैसे `सितार ` के `सि ` पर बल है । यदि यही बल `ता ` के `आ` पर किया जाय तो अस्वाभाविक लगेगा किन्तु अर्थ वही रहेगा ।

जेस्पर्सन तथा कुछ अन्य विद्वानों ने बलाघात के परम्परागत [traditional] तथा मनोवैज्ञानिक [psychological] भेद भी माने हैं । कभी-कभी भावावेश के कारण नयी जगह पर बलाघात आ जाता है । जोन्स तथा कुछ अन्य विद्वानों ने बलाघात के स्पष्ट तथा अस्पष्ट [objective stress and subjective stress] माने हैं । स्पष्ट है बलाघात सुनाई पड़ता है । किन्तु अस्पष्ट बलाघात नहीं । यह वक्ता की एक मानसिक क्रिया मात्र है । प्रत्यक्ष उच्चारण से इसका संबंध नहीं है । स्पष्ट बलाघात की तरह सभी लोग इसे पहचान नहीं सकते । इसे केवल वही जान सकता है जो भाषा की प्रकृति से पूर्णतया अवगत हो और यह जानता हो कि बलाघात किस ध्वनि पर पड़ेगा । जैसे आशंका की वाचिक अभिव्यक्ति के इस उद्धरण में-- "मैं असफल हो गया मैं, अब क्या होगा" -- में `मैं` का अत्यन्त हल्का और अस्पष्ट बलाघात होगा जो अविश्वास एवं भय को व्यक्त करता है ।

बलाघात का प्रयोग कुछ मात्रा में शरीर पर भी पड़ता है । बलाघातयुक्त ध्वनि के उच्चारण के साथ-साथ कुछ बाहरी अंग परिचालन भी होता है -- आंख, पलक,

भौं, सिर, हाथ, उंगली, कन्धा या पैर में से एक या अधिक उच्चारण की तीव्रता को तनकर, चढ़कर, झटककर, नाच कर या फेंके जाकर प्रकट करते हैं। यह प्रवृत्ति भावुक लोगों में अधिक मिलती है।

बलाघात का प्रभाव ध्वनि पर पड़ता है। बलाघातयुक्त होने पर शिथिल ध्वनि दृढ़ और दृढ़ ध्वनि दृढ़तर हो जाती है। मात्रा की दृष्टि से ध्वनि (स्वर एवं व्यंजन दोनों) बलाघातयुक्त होने पर बड़ी (ह्रस्व कुछ दीर्घ और दीर्घ ध्वनि दीर्घतर) हो जाती है। जैसे विस्मय में `अरे` के स्थान पर `अरे ऽ ऽ` उच्चारण। बलाघात के कारण सुर भी ऊंचा हो जाता है जैसे क्रोध में। बलाघात में श्वास अधिक रहती है इस कारण बलाघातयुक्त अल्पप्राण कभी-कभी महाप्राण स्पर्श के रूप में सुनाई पड़ता है। कोई डांट कर पूछे कि क्यों आये ? तो लगेगा कि वह `ख्यों` कह रहा है। इसके विपरीत यदि बलाघात बहुत कम है तो महाप्राण ध्वनि भी अल्पप्राण सुनाई पड़ेगी। दैन्य, भय ग्लानि आदि की वाचिक अभिव्यक्ति में यह लक्षण प्राय: मिलता है जैसे `भूख लगी है कुछ खाने को दो` के स्थान पर `भूक लगी है` सुनाई देता है। इसीलिए उपर्युक्त भावों में कंठस्वर के लिए `मिमियाना`, `घिघियाना`, `रिरियाना` आदि विशेषणों का प्रयोग होता है। कभी-कभी बलाघात के कारण अक्षरों का द्वित्व रूप भी सुनाई देता है जैसे अत्याधिक आश्चर्य में `अरे` का `अर्रे`, क्रोध में `बको मत` का `बक्को मत`।

सुर स्वराघात या सुराघात

बलाघात की भांति ही सुराघात भी एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जो स्वर तंत्रियों के कम्पन द्वारा प्रकट की जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति को बोलने का सुर अलग-अलग होता है। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति भी सदा एक सुर एक सुर पर नहीं बोलता है। भाषा की स्वाभाविक गति में प्रयुक्त सुर उच्चता या सुर निम्नता तथा भावात्मक स्थिति के कारण सुर का आरो-अवरोध एक व्यक्ति की भाषा में भी मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति की सुर की दृष्टि से अपनी उच्चतम एवं निम्नतम सीमा भी होती है। उसके सुर का उतार-चढ़ाव उसी के बीच होता रहता है। सूक्ष्म दृष्टि से इसके अनेक भेद किये जाते हैं। यों इसके उच्च,

मध्य, सम तथा निम्न स्वर है। वैदिक साहित्य में उदात्त स्वरित और अनुदात्त। ग्रीक में एक्यूट [acute accent], ग्रेव [grave accent] तथा सरकम्फ्लेक्स [circumflex accent] ये तीन सुर भेद किये थे। इनके अतिरिक्त इनके आरोही तथा अवरोही दो भेद माने गये हैं। वास्तव में हर भाषा की प्रकृति के अनुसार इनकी संख्या घटती बढ़ती रहती है। दो या दो से अधिक सुरों का उतार-चढ़ाव या आरोह-अवरोह "सुरलहर" [intonation] कहलाता है। यह सुर के दो रूप हैं। एक ध्वनि में यह सुर है और सम्बद्ध ध्वनियों में एक से अधिक होने पर सुर लहर है। सुर के भेद भी अर्थ के आधार पर दो प्रकार के हैं -- सार्थक एवं निरर्थक। स्थिति के आधार पर चल या अचल दो भेद माने गये हैं। चल सुर किसी भावात्मक मन:स्थिति को व्यक्त करने के लिए शब्दों में सप्रयास लाया जाता है जैसे -- तुम SSS, क्याSSS, अरेSSS, वाSSS ह आदि। अचल सुर वाक्य के साधारण एवं स्वाभाविक सुर को कहते हैं।

मोटे तौर पर सुर लहर के भी दो भेद किये जा सकते हैं -- शब्द सुर लहर तथा वाक्य सुर लहर। तान भाषाओं में शब्द, सुर, लहर तथा वाक्य सुर लहर दोनों ही सार्थक होते हैं। किन्तु अतान या अन्य भाषाओं में केवल वाक्य सुर लहर। हिन्दी अतान भाषा है किन्तु इसमें भी एक शब्द विशिष्ट सुर लहरों में अलग-अलग अर्थ देता है। उदाहरणार्थ "राम" को यदि विभिन्न सुर लहरों में कहें तो [1] सामान्य [2] राम यहाँ आओ, [3] क्या राम, [4] अरे राम आदि अर्थ होंगे, वस्तुत: ये भिन्न कोशार्थ नहीं हैं किन्तु कोशार्थ के ऊपर लाये लादे हुए अर्थ हैं।

सुर-लहर का भाषा एवं भावाभिव्यक्ति में बहुत महत्व है। तान एवं अतान दोनों ही वर्गों की भाषायें सुर लहर का भावुकता, दु:ख, विवशता, क्रोध, सहानु-भूति, घृणा आदि मानसिक अवस्थाओं की सूचना देने के लिए प्रयोग करती हैं। मनो-वेगों की स्थिति में श्वासोच्छ्वास की क्रिया पर जो प्रभाव पड़ता है उसका सीधा प्रभाव वाणी पर पड़ता है। इसकारण वाणी का समप्रयोग संवेगात्मक स्थितियों में संभव नहीं है। बौद्धिक उतार-चढ़ाव में तथा तर्कशील भाषा में स्वर लय के क्रम की सीमा कम हो जाती है। विस्मयादिबोधक वाक्यों में भावात्मक स्थिति प्रत्यक्षत: व्यक्त होती है। इस कारण इसका स्वर लय स्वरित ध्वनियों से होता है। वाक्य भावावेग की स्थिति के अनुसार उतार-चढ़ाव की वक्र गति से चढ़ता है। उदाहरणार्थ --"क्या मज़े की बात है यह तो बहुत ही अद्भुत है।" इस वाक्य में प्रत्येक शब्द का

स्वर लय वक्र रेखा में चलता है।

०.५.२ अवधि (व ताल-मात्रा)

संवेदनात्मक वाक्य के उच्चारण में ताल तथा मात्रा की उपयोगिता वास्तव में बहुत है क्योंकि अवधि का समुचित ध्यान न रखने से भावात्मक प्रदर्शन एवं उच्चारण में व्यवधान उपस्थित हो सकता है। स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति में तो अवधि का महत्व है। अस्वाभाविक एवं असंयमित अभिव्यक्ति भी अवधि के आधार पर स्पष्ट होती है। कभी-कभी वाक्य में अत्याधिक एवं आवश्यकता से अधिक विराम भी किसी विशेष भावस्थिति की ओर संकेत करता है।

बौद्धिक कार्यों में विचार शृंखला लगभग सम-तल पर ही चलती है अतः ताल और मात्रा की वहाँ कोई उपयोगिता नहीं है।

जीवनी शक्ति के अनुसार वाक्यों में शब्दों के उच्चारण पर मात्राकाल का प्रभाव पड़ सकता है। निर्बल तथा शक्तिशाली व्यक्ति के उच्चारण में बलाघात, स्वर लय तथा मात्रा काल का अन्तर हो सकता है परन्तु इसका निर्धारण संवेगात्मक स्थिति के आधार पर ही हो सकता है।

वास्तव में उपर्युक्त सभी सिद्धान्त और नियम, रीतियाँ, शैलियाँ, अलंकार आदि अपने रूप ग्रहण के लिए व्यक्ति विशेष की अभिव्यक्ति क्षमता पर निर्भर करते हैं। कुछ व्यक्ति अधिक संवेदनशील होते हैं अनुभूति के स्तर पर भी और अभिव्यक्ति के स्तर पर भी।[१]

इसके अतिरिक्त भाव विशेष का भी बलाघात और स्वराघात आदि पर प्रभाव पड़ता है। कुछ भावों में यह तत्व अधिक स्पष्ट होते हैं जैसे दंभ, क्रोध, भय, विस्मय में किन्तु कुछ में बहुत हल्का-सा स्पष्ट होता है जैसे प्रेम, घृणा आदि में। सभ्यता एवं शिक्षा के विकास के साथ-साथ भाषा में भी कृत्रिमता आ गयी है। आदिम

१- Thus those individuals who better identify emotional expression in content standard speech also tend to identify expression more accurately in graphic and musical modes.

--Page 37, 'The Communication of Emotional Meaning' by Joel R. Davitz.

भाषा एवं भावाभिव्यक्ति इस दृष्टि से कहीं अधिक संवेदनशील एवं प्रभावोत्पादक रही होगी। आज भी ग्रामीण बोलियाँ एवं आदिम जातियों की भाषा में भावाभिव्यक्ति एवं भावाभिव्यंजना की सामर्थ्य शिष्ट वर्ग की मानक भाषा से कहीं अधिक है।[१]

०.६ अभिव्यक्ति के भाषेतर साधन

भावाभिव्यक्ति की कुछ भाषेतर रीतियाँ एवं शैलियाँ भी होती हैं। इनमें सर्वप्रथम शारीरिक अभिव्यक्ति है। मनुष्य एवं पशुओं की गतियों का अध्ययन करने के बाद डार्विन ने यह निष्कर्ष निकाला कि जो चेष्टायें एवं प्रतिक्रियायें किसी समय व्यक्ति या जाति के जीवन में व्यावहारिक उपयोग के थे, ये चेष्टायें उन्हीं कार्यों का अवशेष मात्र है। इनके मतानुसार घृणा के मारे दाँत निकालना, लड़ने के लिये नाखून का प्रयोग, आदिम प्रवृत्तियों का सूचक है। इन शारीरिक अभिव्यक्तियों में से कुछ तो बिना सीखी हुई और स्वाभाविक होती हैं जैसे -- मुस्कराना, हँसना, सुबकना, चिल्लाना, रोना आदि। बच्चा जैसे जैसे बड़ा होता है जाता है, अपनी प्रसन्नता एवं क्रोध की शारीरिक प्रतिक्रियाओं को सीमित करता जाता है उनका स्थान भाषा लेती जाती है।[२]

वस्तुतः भावों की अपनी एक भाषा ही होती है जो संकेतों, शारीरिक सांस्थितियों (postures), विस्मय के उद्गारों, बदलती हुई आवाज़ों, बोली के स्वरों और चेहरे की अभिव्यक्तियों से निर्मित होती है। इसमें सन्देह नहीं कि यह भाषा बिना सीखी हुई अभिव्यंजक गतियों पर आधारित रहती है किन्तु कालान्तर

१- Now it is a consequence of advancing civilization that passion or atleast the expression of passion is moderated and we must therefore conclude that the speech of uncivilized and primitive men was more passionately agitated than ours, more like music or song.

-- Page 420 'Language its nature, developmant and origin' by Otto Jesperson.

में इसका एक स्वरूप निर्धारित हो चुका है और अब यह एक सामाजिक प्रचलन एवं रीति रिवाज़ की वस्तु हो गयी है। बच्चा इस भाषा को प्रचलित देखता है और कुछ हद तक इसे अपना लेता है। धीरे-धीरे भावाभिव्यक्ति की यह भाषा वयस्कों की सामान्य भाषा से कहीं अधिक अभिव्यंजक एवं प्रभावोत्पादक हो गयी है।

०.६.१ मुखमुद्रा एवं भावाभिव्यक्ति

भावों में मुखमुद्रा कितनी अभिव्यंजक होती है ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। कुछ मुद्रायें बहुत स्पष्ट होती हैं और उन्हें समझने में कोई कठिनाई नहीं होती है। कुछ भाव ऐसे होते है जो मुखमुद्रा द्वारा बिलकुल स्पष्ट हो जाते हैं जैसे क्रम क्रोध घृणा या भय। किन्तु प्यार और उत्साह की मुखमुद्रा एवं साधारण प्रसन्नता की मुख मुद्रा में विशेष अन्तर नहीं बताया जा सकता है। इसी प्रकार एक मुख मुद्रा कई-कई भावों को व्यक्त करती है जैसे एक साधारण-सी मुस्कान -- व्यंग्य, घृणा, तिरस्कार, उपहास, हास्य, क्रोध प्रेम, उत्साह आदि कई भावों को व्यक्त करती है यद्यपि इन सब की 'मुस्कुराहट' में अत्यन्त सूक्ष्म भेद होता है।

मुखमुद्रा में भी सबसे सशक्त अभिव्यक्ति नेत्रों के द्वारा होती है। नृत्यकला में इसके प्रमाण मिलते हैं। लगभग हर जाति और देश के परम्परागत नृत्य में विभिन्न भावों एवं उपभावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिलती है।[१] इस दृष्टि से भारतीय नृत्य-कला बड़ी समृद्ध है। 'भरतनाट्यम्' नृत्य में नेत्राभिनय एवं हस्तमुद्राभिनय द्वारा सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यक्ति होती है। शान्त को छोड़कर शेष आठ या नौ रसों का अभिनय नेत्र से किया जा सकता है। प्रत्येक भाव के साथ एक विशेष विशिष्ट दृष्टि का संबंध जोड़ा गया है। जैसे —

१- In the international dancing language of Japan, China, Korea, Indo China and the Dutch East Indies there is a series of conventionalized gesture which serve to convey both the narrative and the emotional state that are to be symbolized. Among the latter there are said to be some two hundred symbols to express various phases of love. The flirt - language of the fan widely used by lovers. ~~The centuries~~ in past centuries, conveyed very complecated message.

-- Page 14, 'The Story of Language' by Mario Pei .

कान्ता

यह दृष्टि श्रृंगार रस में होती है। हर्ष और प्रसाद (अनुग्रह) से यह उत्पन्न होती है। इसमें कामातुरता अधिक होती है। भ्रूक्षेप एवं कटाक्ष भी इसमें होते हैं।

भयानका

भयानक रस की दृष्टि में पलकें खूब खुली हुई और स्तब्ध रहती हैं। आंखों के तारे बीच-बीच में चंचल होते हैं। आंखों से भय टपकता है।

हास्या

यह हास्य रस की अभिव्यक्ति करती है। इसमें पलकें क्रम से सिकुड़ती हैं और आंखों के तारे बहुत चंचल होते हैं।

करुणा

इस दृष्टि में पलकें झुक कर भी कुछि कुछ खुली रहती हैं। आंखें गीली रहती हैं। तारे शोक के कारण स्तब्ध रहते हैं। दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर केंद्रित रहती है।

अद्भुता

इस दृष्टि में पलकों का अग्रभाग कुछ आकुंचित-सा रहता है। तारे फैले रहते हैं। संपूर्ण दृष्टि में सौम्यता रहती है और दृष्टि खिली रहती है।

रौद्री

इस दृष्टि में क्रूरता, रूखापन, और ललाई होती है। तारे स्थिर और दीप्त होते हैं। भृकुटि कुटिल होती है।

वीरा

यह दृष्टि दीप्त, विकसित, क्षुब्ध और गम्भीर होती है, तारे आंखों के मध्य स्थिर रहते हैं। यह दृष्टि मध्य भाग में खिली-सी रहती है।

बीभत्सा

इस दृष्टि में आंखों के अन्तिम भाग बन्द सा से रहते हैं। तारे घृणा से युक्त होते हैं। पलकें एक दूसरे से मिली-सी रहती हैं।

इनके अतिरिक्त भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में संचारी भावों की दृष्टियों का उल्लेख भी अभिनय की दृष्टि से किया है। शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्जान्विता, ग्लाना, शंकिता, विषादिनी, मुकुला, कुंचिता, अभितप्ता, जिह्म, सस्मिता, ललिता, वितर्किता, अर्धमुकुला, विभ्रान्ता, विप्लुता, आकेकरा, विकोशा, त्रस्ता, और मदिरा नाम दृष्टियों के अन्तर्गत लगभग सभी भावों की अभिव्यक्ति मान ली है।

मुखमुद्रा द्वारा अभिव्यक्ति अपने आप में बहुत समर्थ होती है । अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से चाहे वह इतनी महत्वपूर्ण न हो किन्तु प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से इसका बहुत महत्व है । जिस बात को भाषा के माध्यम से बहुत प्रयत्न करके कठिनाई से व्यक्त कर पाते हैं उसे मुख मुद्रा या नेत्रों द्वारा सहज ही अभिव्यक्त कर सकते हैं ।[१]

०.६.२ अन्य शारीरिक प्रतिक्रियाएं

जो उत्तेजना भाषा को जन्म देती है वही शरीर में कुछ अन्य परिवर्तन भी ला देती है । इनमें कुछ तो आन्तरिक होते हैं जैसे ग्रंथिस्राव एवं पेशियों सम्बन्धी परिवर्तन । शेष क्रियाकलाप बाह्य होते हैं । ये बाह्य परिवर्तन एवं शारीरिक प्रतिक्रियाएं प्रत्येक व्यक्ति के साथ भिन्न-भिन्न रूप ले लेती हैं । विभिन्न समाज एवं जाति में अभिव्यक्ति के रूपों में अन्तर होता है । कुछ जातियों में शारीरिक हाव-भाव का प्रयोग अधिक होता है । इटली के मूल निवासी इस प्रकार के भाषेतर शारीरिक हाव-भावों का प्रयोग अधिक करते हैं । भारत में अन्य जातियों की अपेक्षा बंगाली भावाभिव्यक्ति में मुखमुद्रा से अधिक सहायता लेते हैं । सभ्यता के आदि-काल में शारीरिक अभिव्यक्ति आजकल की अपेक्षा अधिक प्रचलित थी ।

यह सांकेतिक अभिव्यक्ति दो प्रकार की होती है । एक स्वाभाविक दूसरी कृत्रिम स्वाभाविक दशा में विभिन्न मुखमुद्रायें, शारीरिक प्रतिक्रियाएं जैसे चेहरे का तमतमाना, विस्मय से आँखें फैलाना, लज्जा से कपोल लाल होना आदि प्रत्येक देश, जाति एवं काल में एक-सी होती हैं । किन्तु कृत्रिम भावात्मक अभिव्यक्तियों में अन्तर रहता है जैसे आदर-प्रदर्शन हेतु कहीं सर झुकाते हैं, भारत में हाथों को जोड़ कर नमस्ते करते हैं

१- A significant correlation was found between vocal and facial emotional expressive abilities. Comparison of the comparative accuracy of communication showed that the emotional meaning were more effectively communicated facially than vocally. Vocal-facial communication, while superior to vocal communication was not more effective than facial communication alone. No significant sex differences were found in expressive ability.

-- Page 100 - Communication of Emotional Meaning.

या हाथों से चरण छूते हैं। योरप में हाथ सिर से लगा कर सलाम करते हैं और मुत्तक मुसलमानों में सीधा हाथ उठा कर सर को किंचित झुका कर आदाब करते हैं। इसी प्रकार तिरस्कार एवं अवहेलना प्रदर्शन के लिये कहीं जीभ निकाल कर दिखाते हैं तो कहीं आंख दिखाते हैं।

कुछ जातियों की अपनी पृथक् सांकेतिक भाषायें होती हैं और अवसर विशेष पर उनका प्रयोग होता है। उत्तरी अमेरिका की सांकेतिक भाषा वहां के मूल निवासियों के मध्य आदान प्रदान का साधन है। गूंगों की अपनी भाषा होती है। कैनारी द्वीप (Canary island) के गोमरा मूल जाति में एक भाषा सीटियों पर आधारित है। इसी प्रकार तालु और जीभ की सहायता से निकाली गयी कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ भी भाषेतर साधनों में ही आयेंगी जैसे च्च.... च्च.... टिक.... टिक..... हश.... फुफुस आदि।

आधुनिक भाषेतर साधनों में कई कृत्रिम संकेत तो पूर्वनिर्धारित होते हैं जैसे कुश्ती में ताल ठोंककर उत्साह प्रदर्शन करना, कान के पीछे हाथ लगा कर गाने के द्वारा मस्ती का प्रदर्शन। भरत के नाट्यशास्त्र में सम्पूर्ण अभिनय को चार प्रकार का बताया है -- आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक। इनमें भी आंगिक के तीन प्रकार माने हैं -- शरीर, मुखज तथा चेष्टाकृत। इनमें भी आंगिक के तीन प्रकार माने हैं -- शरीर, मुखज तथा चेष्टाकृत। इस प्रकार इन भाषेतर शारीरिक अभिव्यक्तियों की संख्या अनन्त है।[१]

सुखद तथा दुःखद भावों की भाषेतर अभिव्यक्ति एवं शारीरिक प्रतिक्रियाओं में कुछ अन्तर है। प्रसन्नता में अभिव्यक्ति अधिक व्यंजक और मुखर होती है, तथा आवेश की

१- It is further estimated that some seven hundred thousand distinct elementary gestures can be produced by facial expression, postures, movements of the arms, wrists, fingers etc. and their combination. This imposing array of gestural symbols would be quite sufficent to provide the equivalent of a full blown modern language.

--Page 13. The Story of Language by Maria Pei.

और उत्तेजित करती है। व्यक्ति सुखद भावों को इस प्रकार व्यक्त करके और अधिक सुख पाता है। किन्तु दुःखद भावों में ये अभिव्यक्ति विवशता होती है, इनमें से अधिकांश अचेतन स्तर पर होती है। ये अभिव्यक्ति दुःखद होती है अतः व्यक्ति इनसे बचने का प्रयास करता है। साथ ही सुखद भावों की अभिव्यक्ति का अपना कोई विशेष लक्ष्य नहीं होता मात्र अभिव्यक्ति के किन्तु दुखद भावों की अभिव्यक्ति या तो दुःख के कारण को दूर करने का प्रयास होती है अथवा दुःख के तनाव को कम करने का माध्यम।[१]

०.७ भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति को निर्धारित करने वाले तत्व

अभिव्यक्ति की भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक रीतियों के अध्ययन के पूर्व उसे प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्वों का अध्ययन आवश्यक है। अभिव्यक्ति का स्रोत एवं आश्रय मनुष्य है अतः विभिन्न दृष्टिकोणों से मनुष्य के सन्दर्भ में भावाभिव्यक्ति को रख कर देखना होगा। सर्वप्रमुख तत्व आयु है।

०.७.१ आयु एवं भावाभिव्यक्ति

०.७.१.क शैशवावस्था शैशवावस्था में भावों की क्या स्थिति होती है तथा उनकी अनुभूति का रूप क्या होता है यह एक विवादास्पद प्रश्न है। वस्तुतः आरम्भ में सुख

१- **** The intenser the feeling, the intenser the reaction no doubt weather it be smile or tears jumping for joy or writhing in agony but in the movements consequent on pleasure the diffusion is the result of mere exuberance, an overflow of gg good spirits as we some times say and these movements, as already remarked, are always comparatively purposless or playful. Even the earliest expression of the pain on the contrary seems but so so many efforts to escape from the cause of it. In them there is atleast the blind purpose to flee from a definite ill, but in pleasure only the enjoyment of pleasure fortune. escas

—Encyclopeadia Britannica, 9th. Edition, Vol.XX.

और दुःख दो ही भावों का अनुभव शारीरिक स्तर पर हो सकता है।

तीन महीने की अवस्था में शिशु आनन्द एवं कष्ट का संवेग दिखाता है। छः महीने में उसमें भय घृणा एवं क्रोध भी आ जाता है। एक वर्ष में उसमें प्रेम और उल्लास दिखाने की शक्ति आ जाती है। डेढ़ वर्ष का होने पर ईर्ष्या भी दिखाने लगता है। दो वर्ष की अवस्था से उपर्युक्त भाव अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। सबसे पूर्व शिशु रो कर अथवा किलक कर अपने सुखात्मक एवं दुःखात्मक भावों की अभिव्यक्ति करता है। शैशवावस्था के भावात्मक विकास की एक रूपरेखा ब्रिजेस नामक मनोवैज्ञानिक ने दी है

--- ब्रिजेस[1]
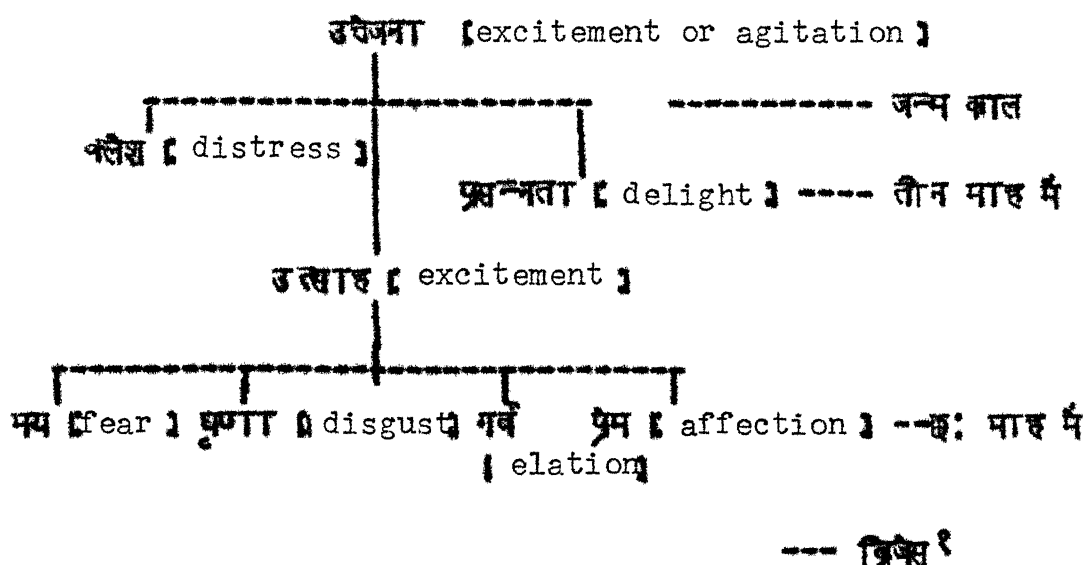
जहां तक अभिव्यक्ति का प्रश्न है सद्यः जन्मे शिशु की वाचिक या भाषागत अभिव्यक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता है। धीरे-धीरे वह अपनी विशिष्ट भाषा [रोने चिल्लाने, किलकने, चीखने] का निर्माण करता है तब इनके माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति का आरम्भ होता है।

शिशु द्वारा प्रयुक्त प्रथम ध्वनि उन स्थिति को व्यक्त करती है जब वह आराम महसूस कर रहा हो।[2] कुछ विद्वान उसे मात्र अस्पष्ट ध्वनि [babbling -जल्पना]

१- Emotion in man and animal 1947, page 163.

२- A child's very first sounds represent some emotion usually pleasure at the mother's reaction to him.. some times anxiety in response to a repeated command. A child's anger, fear, pleasure, jealousy, affection, wonder, and sadness [शेष आगे पृ० पर]

मात्र मानते हैं। लेरिनर [Leriner] ने इसे ध्वनि-खेल नाम दिया है। ब्यूहलर ने कष्ट प्रदर्शन की ध्वनि एवं आनन्द-प्रदर्शन की ध्वनि में आरम्भ से ही अन्तर माना है, उसने जल्पना [babbling] को मूल प्रवृत्यात्मक माना है। कैम्पियर के अनुसार शिशु में सहज एवं स्वभावजात होती है जबकि कष्ट की अभिव्यक्ति सप्रयास होती है।

'जल्पना' मात्र हर्ष या प्रसन्नता व्यक्त करने का माध्यम नहीं है वरन कष्ट या पीड़ा भी व्यक्त करता है। शिशु द्वारा प्रदर्शित कष्ट प्रदर्शन की ध्वनि में म [M] और न [N] नासिक व्यंजन प्रधान रहता है। एक माह के अन्तर्गत ही शिशु विभिन्न सुर-लय-क्रम [intonation] का प्रयोग विभिन्न भावात्मक स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए करने लगता है। धीरे-धीरे इन प्रयोगों में विस्तार एवं गहराई आने लगती है और शिशु अधिक से अधिक मन:स्थितियों को इनके माध्यम से व्यक्त करने में समर्थ हो जाता है। शोक एवं हर्ष की अभिव्यक्ति शिशु क्रमश: रोकर एवं हंस कर करता है। आरम्भ में रुदन का रूप एक ही रहता है। कालान्तर में पीड़ा, भय, भूख, क्रोध आदि के रुदन में अन्तर आ जाता है। यद्यपि यह अन्तर इतना सूक्ष्म रहता है कि माँ ही इसे समझ सकती है। शैशवावस्था की अभिव्यक्ति की इन शैलियों को भाषा का ही एक रूप माना जा सकता है।[१]

पांच वर्ष तक के बालक भय लगने पर चिल्ला उठेंगे, रोयेंगे और मां की सुरक्षा में जाने का यत्न करेंगे। काम का प्रदर्शन इस काल में नहीं होता है। किन्तु फ्रायड के अनुसार स्तन पीना, मल त्याग, अंगूठा चूसना, एवं मातृ-प्रेम काम का ही प्रदर्शन

पिछले पृ० का शेष] develop very early and come out openly at first. Particularly before he acquires language as an outlet, he needs and finds other channel for expression of his feeling such as destructiveness withdrawal, laughter a tantrum, a whine a cry -- Page 97, 'slow to walk' by Jane Beasley.

टि०
1- The linguist who -- in the past at any rate has been concerned mainly with language as an institution is likely to say the infant has no language, but although this may be true the infant certainly has speech, he cries rapidly become an instrument mediating between himself and his social environment. -- Page 7, Infant Speech.

है। वस्तुत: यह काल स्व-प्रेम का काल है। क्रोध की अभिव्यक्ति शिशु रोकर, हाथ की वस्तु फेंक कर, जमीन पर लौट कर, वस्तुओं को तोड़ कर और आज्ञा का उल्लंघन करके करता है।। विस्मय एवं उत्सुकता की अभिव्यक्ति, आंखें फाड़, एकटक देख कर, लगातार प्रश्न पूछ कर करता है। स्नेह एवं वात्सल्य का प्रदर्शन बड़ों के अनुकरण पर करता है, घृणा की अभिव्यक्ति स्वयं को आलम्बन से दूर हटा कर करता है। उत्साह का प्रदर्शन अलग नहीं होता साधारण प्रसन्नता की भांति ही होता है किन्तु आत्म-गौरव का प्रदर्शन नये अच्छे वस्त्र पहन कर अपनी वस्तुओं और गुणों का प्रदर्शन करके कर करता है।

शैशवावस्था की भावाभिव्यक्ति की कुछ अपनी विशिष्टतायें होती हैं। शिशु सभी प्रकार के उद्दीपनों के प्रति प्रतिक्रियायें नहीं करता है। उसमें स्थायी भावों का अ अभाव रहता है, अत: अभिव्यक्ति का रूप तात्कालिक एवं संवेगात्मक होता है। उसमें पूर्व एवं पश्चात् से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। अधिकतर अभिव्यक्ति अस्पष्ट होती है। परिचित एवं निकट संबंधी ही उसे जान सकता है। भाषा से अधिक भाषेतर साधनों का महत्व इनमें होता है। वायु के साथ-साथ अभिव्यक्ति का रूप परिवर्तित होता जाता है। पहले वह एक ही भाव को व्यक्त करने के कई साधन एक साथ अपना लेता है जैसे रोना, हाथ पैर पटकना। किन्तु बाद में वह इनमें से एक साधन चुन लेता है। यह साधन अन्य की अपेक्षा अधिक सार्थक होता है। कालान्तर में वह अभिव्यक्ति के नये रूप सीखता है। तथा उसे प्रकट करने के लिए उपयुक्त सन्दर्भ एवं परिस्थिति का ज्ञान भी प्राप्त करता है। क्रमश: वह अधिक उपयुक्त, अधिक सटीक, अधिक सूक्ष्म और अधिक सांकेतिक अभि अभिव्यक्ति को अपनाता जाता है।[१]

शैशवावस्था समाप्त होते-होते शिशु के शब्द सागर में बहुत वृद्धि हो जाती है। तीसरे एवं चौथे वर्ष तक उसके शब्द भण्डार में लगभग ५०० शब्द हो जाते हैं और वह कठिनतर भावों एवं विचारों की भी अभिव्यक्ति करने लगता है। इस काल तक लिंगगत भिन्नता का अभिव्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

१- In all children, however, a tendency toward more subtle, symbolic and devious, affective expression is a regular accomponiment of emotional development.

— Page 450.

०.७.१.ख बाल्यावस्था

शैशवावस्था के पश्चात् बाल्यावस्था आती है। बाल्यावस्था को दो भागों में बांटा गया है -- पूर्व बाल्यावस्था (५ वर्ष से १० वर्ष तक) एवं बाल्यावस्था (१० वर्ष से १५ वर्ष तक) यह काल बालक के स्वभाव एवं व्यक्तित्व के निर्माण का रहता है। यही कारण है जब स्थायी भावों की नींव सुदृढ़ होती है।[1] बालक प्रत्येक भाव को मौलिक रूप में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरों पर ग्रहण करता है। अभी तक अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष और सीधी रहती है अर्थात् मात्र अभिधा शैली का प्रयोग ही होता है। किन्तु पूर्व बाल्यावस्था के पश्चात् लक्षणा एवं व्यंजना का प्रयोग भी आरम्भ हो जाता है। जहां तक भावों के विकास का प्रश्न है लगभग हर भाव किसी न किसी रूप में आ जाता है किन्तु भावात्मक जटिलता नहीं रहती।

इस काल में लैंगिक भिन्नता भी भाषा पर प्रभाव डालती है। बालक एवं बालिका की अभिव्यक्ति भावाभिव्यक्ति में स्वतः अन्तर आ जाता है। यद्यपि बालक एवं बालिका की भाषा में स्पष्ट अन्तर बताना कठिन है तथापि बालिका की भाषा स्त्रियों की भाषा की विशेषतायें अपनाने लगती है और बालक की भाषा पुरुषों की।

पूर्व बाल्यावस्था में के पश्चात् अभिव्यक्ति की रीतियों में भी अन्तर आ जाता है। बालिका की भावात्मक अभिव्यक्ति में विस्मयादिबोधक शब्दों, मुहावरों का प्रयोग, संगीतात्मकता, स्वर लय, स्वराघात की प्रधानता रहती है। बालकों की अभिव्यक्ति पुरुषों की भांति रुक्ष और बलाघातयुक्त होती है। इस काल में बालकों में एक विशेष प्रकृति दिखायी पड़ती है। भावाभिव्यक्ति के प्रति उनमें लज्जा और उदासीनता की भावना रहती है। कोमल भावों जैसे प्रेम, करुणा, शोक आदि से वह स्वयं को बचाना चाहता है। अतः भाषा में अक्खड़पन एवं रुक्षता आ जाती है। वस्तुतः अनुभूति के स्तर पर वह पूर्ण संवेदनशील होता है, किन्तु अभिव्यक्ति में अक्षम होता है।

०.७.१.ग किशोरावस्था

बाल्यावस्था के पश्चात् किशोरावस्था आती है। इस काल में अनेक शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं। उनका प्रभाव भावों पर भी पड़ता है। इस काल

में किसी नये भाव का निर्माण नहीं होता है। पूर्व भाव ही परिपुष्ट होते हैं।[1] किशोरावस्था तक बालक सब भावों की अनुभूति करने लगता है। वह कई अकारण के भय से मुक्ति पा जाता है और क्रोध, घृणा आदि का दमन करना भी सीख जाता है। वास्तव में किशोरावस्था के भावों की वर्तमान रूप की नींव पूर्व बाल्यकाल में ही पड़ चुकी होती है। लड़कियों में संवेगात्मक संयम अपेक्षाकृत और अधिक होता है। किशोरावस्था का यह संयम आन्तरिक नहीं होता वरन् शिक्षा और अनुशासन के कारण उत्पन्न होता है।[2]

भावात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से किशोरावस्था में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं रहती है। उसकी अभिव्यक्ति अपरिपक्व रहती है। कभी तो वह बालकों की भांति अभिव्यक्ति करता है तो कभी प्रौढ़ों की भांति। कुछ किशोर बहुत ही भावुक होते हैं। ऐसे लोगों की भावाभिव्यक्ति कोमल भावों में बहुत स्पष्ट होती है। व्यावहारिक अभिव्यक्ति चाहे उतनी स्पष्ट न हो। बलाघात, स्वराघात, आदि का प्रयोग वयस्कों की भांति ही करता है। अलग- अलग भावों में प्रयुक्त विशेष वाक्यों के प्रयोग में किशोर एवं वयस्क में अन्तर मिलता है। इसका संकेत प्रत्येक अध्याय में किया जा चुका है। इस समय आयु से अधिक लैंगिक भिन्नता अभिव्यक्ति पर प्रभाव डालती है। चूंकि इस काल में किशोर भावुक एवं अपरिपक्व प्रौढ़ के रूप में रहता है अतः किशोर की भावात्मक अभिव्यक्ति के कभी-कभी स्त्रीसुलभ विशेषतायें भी पायी जाती हैं।

१- We can find no valid evidence that adolesecence introduces any new emotions with the possible exception of certain features of sex. We have been unable to observation or otherwhse to find any other emotion which is present during the teens but absent before the time.

-- Page 215. Psychology of Adolescence.

२- Opinions of High School teachers -- our own data indicate that anger, fear and other non sexual emotions normally are better controlled during adolescence that before and that in respect to them the adolescent is more stable than he was before puberty, not that adolesence itself has a stabilizing effect but rather that experiance, training, guidence and control usually facilitate stability.

--Page 231, The Psychology of Adolescence.

०.७.१.घ वयस्कता

किशोरावस्था के बाद युवावस्था आरम्भ हो जाती है। इस काल में व्यक्ति पूरी तरह वयस्क हो जाता है। इसके पश्चात् प्रौढ़ावस्था आती है। अभी तक आयु का तत्व महत्वपूर्ण था किन्तु इस स्तर पर आकर लिंग एवं व्यक्तित्व के तत्व अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। भावात्मक दृष्टि से इस आयु तक व्यक्ति पूर्ण परिपक्व हो जाता है। लगभग प्रत्येक स्थायी भाव परिपुष्ट हो जाते हैं। यही नहीं विभिन्न भाव एवं उपमान तथा उनके मिश्रण से अन्य अनेक भावों का निर्माण भी हो जाता है। यह जटिलता दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती है। भावों के रूप भी बहुत परिवर्तित होते जाते हैं। कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा।

शैशवावस्था	परिवर्तन एवं परिपक्वता की प्रक्रिया	प्रौढ़ावस्था
आशंका	--	शोक
लज्जा	--	आत्मग्लानि
भय	--	पीड़ा
क्रोध	--	अमर्ष
घृणा	--	ऊब
ईर्ष्या	--	दुःख

वास्तव में यह निश्चित भी नहीं रहता कि कौन-सा भाव कब क्या रूप ग्रहण करेगा।

०.७.२ लिंग एवं भावाभिव्यक्ति

स्त्री-पुरुष की भावाभिव्यक्ति में अन्तर

जहाँ तक भाव का प्रश्न है स्त्री एवं पुरुष में कोई भेद नहीं है। एक सामान्य धारणा है कि स्त्रियों में कोमल भाव अधिक तीव्र होते हैं। वास्तव में यह कोई निश्चित मत नहीं है। कुछ पुरुष नारियों से भी अधिक संवेदनशील होते हैं। किंतु स्त्री में पुरुष जितनी गम्भीरता एवं गहनता नहीं होती है। अतः अनुभूति में समानता होते हुए भी अभिव्यक्ति में अन्तर आ जाता है। नारी में अनुभूति की

क्षमता अधिक होती है अत: वह किसी भी भाव को गहराई से अनुभव करती है और उतनी गहराई से व्यक्त भी करती है।

इसके अतिरिक्त स्त्री एवं पुरुष की भाषा एवं अभिव्यंजना शक्ति में भी अन्तर रहता है। संसार में कुछ जातियां तो ऐसी हैं जिसमें स्त्री एवं पुरुष वर्ग परस्पर वार्तालाप के लिए भिन्न-भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं अथवा एक ही प्रान्तीय भाषा का प्रयोग करने पर भी उनमें पर्याप्त कुछ वर्णिकावर भिन्नता दृष्टि-गोचर होती है। इसका एक अच्छा उदाहरण लघु एन्टिला द्वीप के निवासी कर्बि या कर्बियन जाति की भाषा में मिलता है। रैचफोर्ड (Rochfort) नामक विद्वान् ने जो कि १७ वीं शताब्दी के मध्य लम्बे समय तक कार्बियनों के साथ रहा, अपनी पुस्तक "एंटिलस द्वीपों के निवासियों का प्राकृतिक एवं नैतिक इतिहास"[१] में उसने एक स्थान पर लिखा है --

"पुरुषों की भाषा में अभिव्यक्ति के अनेक ऐसे ढंग थे जिन्हें स्त्रियां तो समझती थीं पर उनका प्रयोग नहीं करती थीं। दूसरी ओर स्त्रियां कुछ ऐसे शब्दों एवं मुहावरों का प्रयोग करती थीं जिनका प्रयोग पुरुष नहीं करते थे क्योंकि ऐसा करने से उनका मज़ाक बनने का भय रहता था। फलस्वरूप स्त्री एवं पुरुष का परस्पर वार्तालाप सुनने से ऐसा प्रतीत होता है मानों वे दो भिन्न-भिन्न भाषायें बोल रहे हों।"

रैचफोर्ट ने स्त्री एवं पुरुष की भाषा को भिन्न-भिन्न भाषा नहीं कहा वरन् एक ही भाषा के प्रयोग करने के ढंग में अन्तर बताया है। स्त्री एवं पुरुष के शब्द-भण्डार में भी भिन्नता रहती है। रैचफोर्ट ने अपनी पुस्तक के साथ दिये पारिभाषिक शब्दकोश में 'एच' (H) से आरम्भ होने वाले शब्दों को विशेषत: पुरुषों द्वारा प्रयुक्त एवं 'एफ़' (F) से आरम्भ होने वाले शब्दों को ~~ऐसे~~ उदाहरण स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त माना है। परन्तु पूरे शब्दकोश में ऐसे उदाहरण दस प्रतिशत से अधिक नहीं प्राप्त होंगे।

१- Historie naturelle et morale des Antilles 2e'ed Rotterdam, 1965. P. 449 ff.

वास्तव में पुरुषों की भाषा का कार्यक्षेत्र विस्तृत रहता है अत: उनकी भाषा में भिन्न-भिन्न जाति एवं देशों के शब्दों और ध्वनियों का समावेश रहता है किन्तु प्रयोग की दृष्टि से उनकी भाषा में विशदता नहीं मिलती है। अपने पेशे और कार्य से सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग अवश्य अधिक मिलता है। अभिव्यक्ति में नये अप्रचलित शब्दों के प्रयोग में पुरुष वर्ग संकीर्ण बुद्धि का परिचय देता है। स्त्रियों का शब्द भण्डार जहां पुराने एवं अप्रचलित शब्दों से भरा रहता है वहीं पुराने शब्दों का नये अर्थों एवं संदर्भों में प्रयोग भी वे अधिक करती हैं। देशज एवं गंवारू शब्दों का प्रयोग भी स्त्रियां अधिक करती हैं। इसके अतिरिक्त लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग भी उनकी भाषा की विशेषता है।

भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से स्त्रियाँ स्वराघात, आरोह-अवरोह, लय आदि पर अधिक निर्भर करती हैं जबकि पुरुष वर्ग बलाघात की सहायता लेता है।

स्त्रियों की भावाभिव्यक्ति में तीव्रता रहती है। वे भावों की अभिव्यक्ति अपने पूर्ण रूप में करती हैं जबकि पुरुष गम्भीर हो जाता है। उसकी यह गम्भीरता ही उसका अभिव्यक्तिगत पौरुष है और नारी की भावुकता एवं मुखरता ही उसका नारीत्व है।

स्त्रियों की भावात्मक अभिव्यक्ति की तीसरी विशेषता है भाषा का अपेक्षाकृत अधिक आलंकारिक प्रयोग। यदि एक पुरुष कहेगा कि "मैं उसे देख कर दु:खी हूं" तो स्त्री कहेगी "उसे देखकर मेरा कलेजा फटा जा रहा है।" विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग भी स्त्रियों द्वारा अधिक होता है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा धैर्य एवं सहनशीलता कम होने के कारण भावोद्रेक की स्थिति में विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। "पुरुष विचारों की अभिव्यक्ति में अधिक समर्थ होता है, स्त्री भावों की अभिव्यक्ति में।"[१]

पुरुष भावाभिव्यक्ति में शब्द एवं उसके अर्थ पर अधिक बल देते हैं जब कि स्त्रियां शब्दों के प्रयोग में बिलकुल असावधान रहती हैं। सम्भवत: इसी लिए किसी

१- Man and Woman, 4th Ed. by Havelock Ellies, Page 189.

2

भाव की वाचिक प्रक्रिया में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक तीव्र होती हैं।[१]

स्त्रियों द्वारा कठोर भावों की अभिव्यक्ति उतनी प्रभावोत्पादक नहीं हो पाती जितनी पुरुषों के द्वारा होती है। वीर रौद्र और वीभत्स रस पुरुषों की कठोर कर्कश वाणी में और श्रृंगार करुणा और वात्सल्य स्त्रियों की कोमल मधुर वाणी में अधिक व्यंजक होते हैं। प्रेम एवं वात्सल्य जितनी अच्छी तरह एवं सरलतापूर्वक नारी व्यक्त कर सकती है उसका आधा भी पुरुष नहीं व्यंज कर पाता। बच्चों के प्रति पुरुष की अपेक्षा नारी की भावाभिव्यक्ति कहीं अधिक मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक होती है। पुरुष इन भावों को व्यक्त करने में लज्जा का अनुभव करता है।

भावात्मक अभिव्यक्ति में पुरुषों के वाक्य प्राय: लम्बे एवं संयुक्त होते हैं (आवेश की स्थिति को छोड़ कर) जबकि स्त्रियों के वाक्य छोटे-छोटे एवं अपूर्ण होते हैं। भावुकता उन्हें वाक्य पूरा नहीं करने देती है।[२] नारी की भाषा की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर एक चीनी कहावत है कि 'जीभ नारी की उस तलवार के समान है जिसे वह कभी कुन्द नहीं होने देती।'

स्त्रियों की भावाभिव्यक्ति में उपर्युक्त विशेषतायें होने के बाद भी एक प्रकार की जटिलता रहती है। अपनी शीघ्रता के कारण चाहे अनुभूति की गहराई एवं गम्भीरता नहीं आ पाती। वास्तव में बहुत अधिक अलंकार, विस्मयादिबोधक शब्दों आदि के प्रयोग से अभिव्यक्ति में कृत्रिमता आ जाती है। प्रभाव की दृष्टि से भले ही प्रभावशाली हो। स्त्री एवं पुरुषों की भावाभिव्यक्ति को लेकर डेविट्ज़ (davitz)

१- Woman is linguistically quiker than man, quiker to hear quiker to answer. A man is slower, he hesitates, he chews the cud to make sure of the taste of words and there by comes to discover similarities and with difference from other words both in sound and in sense.

—Page 249, Language its Nature, Development and Origin.

2- Woman much more often than men break off without finishing there sentences because they start talking without having thought out what they are going to say.

— Page 25, Language, its nature, development and origin.

ने अनेक प्रयोग किये हैं।[१] और अन्त में यह निष्कर्ष निकाला की साधारणत: स्त्री एवं पुरुषों की भावाभिव्यक्ति में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं रहता है।

०.७.२ परिवेश एवं भावाभिव्यक्ति

अभिव्यक्ति की भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक रीतियों को परिवेश भी प्रभावित करता है। यह प्रभाव कई रूपों में पड़ता है। प्राणी जन्म लेते ही परिस्थितियों से प्रभावित होने लगता है। अत: सबसे पहला प्रभाव पारिवारिक जीवन का पड़ता है। स्वस्थ एवं सुसंस्कृत परिवार के बच्चों का भावात्मक विकास स्वाभाविक रूप में होता है। उनकी भाषा भी अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध रहती है। किन्तु असंस्कृत एवं अस्वस्थ परिवेश वाले परिवार के बच्चों का भावात्मक विकास भी अव्यवस्थित हो जाता है तथा उनकी भाषा भी भी अपरिष्कृत एवं असमृद्ध होती है।

भावात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से परिवार के सामाजिक स्तर का प्रभाव बहुत पड़ता है। साधारणत: समाज में तीन वर्ग होते हैं -- श्रमिक वर्ग, व्यवसायी वर्ग एवं आफिसर या पूंजीपति वर्ग। इन परिवार के बच्चों की भावाभिव्यक्ति में स्पष्ट अन्तर मिलता है। साधारणत: उच्च वर्ग के बालकों की अभिव्यक्ति अधिक समृद्ध होती है तथापि कृत्रिमता भी अधिक रहती है। हैरिक एवं जैकाब ने अपनी पुस्तक 'Children and the language art' में पृष्ठ ८५ पर परिवार एवं भाषा के संबंध में प्रकाश डालते हुए लिखा है कि बुद्धिजीवी एवं उच्च पेशे वालों के बच्चों की

१- Of interest too in this connection are the limited findings concerning the differential effectiveness of different sexed speaker in communicating specific emotions to subjects of different sexes. The only study dealing with the question of sex differences in vocal ~~experiem~~ expressiveness. Lavy's (chapter 4 Judgement of Emotion from facial expression by college students mental retardates, and mental hospital patients....1960) research on the relationship between the ability to express and perceive vocal communications of feeling showed no significant differences between male and female speakers in ability to communicate emotion to adults. However this investigation compared to sexes only in their general effectiveness of communication and not in their ability to express specific emotions or to communicate specific emotions to subject of differrent sexes.

--Page 86,'The Communication of Emotional Meaning.'

की भाषा निम्न पेशे वाले श्रमिक वर्ग की अपेक्षा कहीं सम्पन्न होती है। एक बुद्धि-जीवी परिवार में भाषा को विकसित करने के सारे तत्व मिलते हैं तथा उनके जीवन में भाषा का महत्व भी अधिक होता है। इसके विपरीत श्रमिक वर्ग के बच्चों के लिये भाषा की अपेक्षा शारीरिक श्रम का महत्व कहीं अधिक रहता है, अतः उनका विकास भी देर से होता है।

परिवार में बच्चे का स्थान भी भावाभिव्यक्ति पर प्रभाव डालता है। जिस बच्चे को अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक प्यार एवं सुरक्षा अधिक मिलती है उसकी भावात्मक अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध होती है। जिस बच्चे को आरम्भ में अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है उसकी भाषा अधिक उन्नति करती है। साधारणतः परिवार के दो बच्चों में भी भाषा की दृष्टि से कभी समानता नहीं रहती है।[१]

निम्न वर्ग के परिवार के बच्चों की अभिव्यक्ति अपने शुद्ध एवं आदिम रूप में होती है जबकि उच्च वर्ग के बच्चे अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म सांकेतिक एवं ~~प्रभावोत्पादक~~ संवेगात्मक अभिव्यक्ति करते हैं। व्यवसायी वर्ग के बच्चों की अभिव्यक्ति व्यावहारिक एवं जन-जीवन में प्रचालित भाषा के अधिक निकट होती है।

तथापि भाषा की दृष्टि से यह वर्गीकरण अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि भाषा के निर्माण में केवल परिवार ही सहायक नहीं होता है वरन् स्कूल की शिक्षा एवं सामाजिक परिवेश भी प्रभाव डालता है। कुछ लोग संवेगात्मक विकास का कारण प्रधानतः सामाजिक उत्तेजनाओं को समझते हैं। जैसल के अनुसार वातावरण के ज्ञान के बढ़ने, सामाजिकता के विकास तथा शारीरिक विकास के साथ-साथ शिशु अपने संवेगात्मक भावों के प्रकाशन में पहले की अपेक्षा अधिक सफल होता जाता है। स्कूल

१- The position of the child in the family seems to have a similar influence on his language development. Davis in her study of this problem found that in every phase of linguistic skill an only child is definitely superior to children with siblings, singletons with siblings are in turn somewhat superior to twins.

--Page 86, Children and Language Art.

में भाषा का विकास होता है। वहाँ भी स्कूल का वातावरण, अध्यापक का सहयोग एवं हस्तक्षेप आदि तत्व भाषा को प्रभावित करते हैं। जो बालक दूसरे की भावात्मक अभिव्यक्ति को जितनी कुशलता से और गहराई से अनुभव करता है उतनी ही कुशलता एवं मार्मिकता से वह अपने भावों की अभिव्यक्ति भी करता है।

०.७.४ व्यक्तित्व एवं भावाभिव्यक्ति

अभिव्यक्ति की भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक (संवेगात्मक) रीतियों को प्रभावित करनेवाला एक अन्य तत्व व्यक्तित्व भी है। हमारे जीवन में प्रवेश पाने वाली छोटी-छोटी घटनाओं के प्रति हमारा व्यवस्थित होने का प्रयत्न ही हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करता है। हम जितनी मात्रा में व्यवस्थित होने में सफलता पाते हैं उसी अनुपात में व्यक्तित्व की सफलता का निर्धारण होता है। इसी व्यक्तित्व के आधार पर व्यक्ति की आदतें, रुचि, दृष्टिकोण, आस्था, और भावात्मक मनःस्थितियों का निर्माण होता है। भावात्मक विकास एक ओर तो व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होता है दूसरी ओर व्यक्तित्व भी भावों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति को प्रभावित करता है।

"गत्यात्मक प्रवृत्तियों के किस विशिष्ट संगठन को ही व्यक्तित्व कहा जाता है। व्यक्तित्व व्यक्ति का ही नहीं वरन् उसके व्यवहार की विलक्षणता का सूचक है।" मनोविज्ञान में व्यक्तित्व शब्द विशेषण न होकर क्रिया विशेषण होता है। व्यक्ति के गत्यात्मक विकास के साथ-साथ शक्ति का वितरण परिवर्तित होता रहता है। मनुष्य का व्यवहार उसकी गत्यात्मकता से निर्धारित होता है। अधिकांश शक्ति का नियंत्रण सुपरअहं (super-ego) द्वारा होने पर व्यक्ति का आचरण व नैतिकता प्रधान इड द्वारा होने पर व्यक्ति का मूल प्रवृत्यात्मक और इगो द्वारा होने पर वास्तविकता प्रधान होता है। भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से युंग द्वारा किया गया व्यक्तित्व का वर्गीकरण महत्वपूर्ण है। उसने दो प्रकार के व्यक्तित्व माने हैं -- मनुष्यों का एक ऐसा वर्ग जो किसी उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया करने से पहले कुछ झिझकता है मानो वह मन ही मन प्रतिक्रिया करने से इन्कार कर रहा हो।.... मनुष्यों का एक दूसरा वर्ग ऐसा भी होता है जो किसी भी स्थिति में तत्काल प्रतिक्रिया करने को तैयार हो जाता है और ऐसा लगता है मानो उसे अपने व्यवहार के ठीक होने पर पूरा

विश्वास है.... पहले वर्ग का रुझान अन्तर्मुखी होता है और दूसरे का बहिर्मुखी।

एक तरह से प्रत्येक व्यक्ति का अपना मौलिक व्यक्तित्व रहता है। कुछ सामान्य लक्षणों के आधार पर व्यक्तित्व को कुछ श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। वर्गीकरण को पूर्णता देने के लिये प्रत्येक श्रेणी के साथ उसका विलोम रूप भी रख देना ठीक होगा।

प्रथम वर्ग में लड़ाई पसंद न करने वाले, मिलनसार, मधुर एवं उदार स्वभाव के व्यक्ति आते हैं। इनके विपरीत कलहपसंद, रूखा, झेंपू, शत्रुतापूर्ण एवं लज्जालु लोगों का वर्ग है। बुद्धिमान, स्वतंत्र विचार वाले एवं विश्वसनीय व्यक्तियों के विपरीत मूर्ख, विचारशून्य, छोटी-छोटी बातों पर उलझने वालों का वर्ग है। तीसरे वर्ग में भावात्मक दृष्टि से स्थिर, यथार्थवादी, दृढ़ व्यक्ति तथा इनके विपरीत स्नायविक रोगी, पलायनवादी, भावात्मक दृष्टि से अस्थिर लोग आ जायेंगे। चौथा वर्ग प्रभावशाली, प्रसन्नचित, सामाजिक, बातूनी, तथा इनके विरोधी स्वभाव वाले विनयशील एवं दैन्य भाव वाले व्यक्तियों का है। पांचवें वर्ग में प्रशान्त, प्रसन्नचित, सामाजिक बातूनी तथा उनके विपरीत दुःखित, निराश, उद्विग्न और एकान्तप्रेमी लोग आते हैं। छठा वर्ग संवेदनशील, कोमलहृदय, सहानुभूतिशील तथा इनके विरोधी स्वभाव वाले भावशून्य, संतुलित बुद्धि, ~~सौन्दर्यप्रेमी तथा असभ्य एवं असंस्कृत लोग आते हैं।~~ व स्पष्टवक्ता संवेगहीन का है। सातवें वर्ग में शिक्षित, संस्कृत बुद्धि, सौन्दर्यप्रेमी तथा असभ्य एवं असंस्कृत लोग आते हैं। आठवां वर्ग ईमानदार (आत्मशोधक), उत्तरदायी, परिश्रमी (सहिष्णु) तथा इनके विपरीत भावात्मक दृष्टि से पर-निर्भर, आवेगशील (फक्की), और गैर-जिम्मेदार लोगों का है। नवें वर्ग में साहसी, निश्चिन्त, दयालु तथा इसके विरोधी निरुद्ध, कम मिलनसार, सतर्क, कुण्ठित उत्साह वाले व्यक्ति आते हैं। दसवां वर्ग शक्ति सम्पन्न ज्ञानशील, शीघ्रता से कार्य करने वाला एवं उनके विपरीत निरुत्साह, ढुलमुल (सुस्त) तथा विचारमग्न दृष्टा व्यक्तियों का है। ग्यारहवें वर्ग में भावात्मक दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील (तुनुक मिज़ाज) क्षण में संतुष्ट, क्षण में रुष्ट होने वाला उत्तेजनशील एवं इसके विरोधी आसानी से उत्तेजित न होने वाले ढीले-ढाले सहनशील (सहिष्णु) लोग आते हैं। बारहवें वर्ग में मैत्रीपूर्ण विश्वास करने वाले तथा इसके विपरीत संदेहशील एवं शंकालु लोग आते हैं।

जहां तक भावाभिव्यक्ति का प्रश्न है व्यक्तित्व के केवल दो ही रूप हैं -- मुखर एवं चुप्पे स्वभाव के व्यक्तित्व । मुखर व्यक्ति अपने भाव की अभिव्यक्ति सरलता से एवं ~~प्रभावोत्पादक~~ संवेगात्मक रूप से करते हैं किन्तु चुप्पा स्वभाव के व्यक्ति को अपनी अभिव्यक्ति में कठिनाई होती है ।
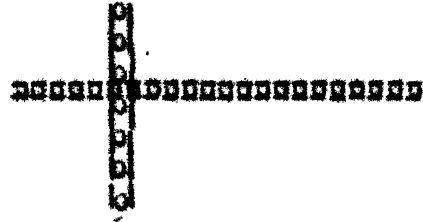
१.१ भाव

सुख एवं दु:ख दो मूल एवं प्राथमिक भाव हैं। वास्तव में भाव के यही दो पक्ष हैं। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने भाव (feeling) के दो ही आयाम -- सुखात्मक एवं दु:खात्मक -- माने हैं तथा इन्हें मूल एवं प्रारम्भिक भाव माना है।[१] अन्य भाव एवं मूल प्रवृत्तियां इन्हीं दो मूल भावों पर आधारित हैं। वे या तो इनका कारण बन कर आते हैं अथवा कार्य बन कर। दोनों भाव भी परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। एक का अभाव दूसरे को उत्पन्न करता है। एक की उपस्थिति दूसरे के अभाव का कारण बनती है। बाल्यावस्था तक या जब तक भावात्मक जटिलता नहीं होती है दोनों का पृथक्-पृथक् एवं स्वतंत्र अस्तित्व होता है किन्तु वयस्क व्यक्ति में प्राय: इन दोनों के मिश्रण से अनेक संकर एवं नये भावों का निर्माण होता है। शिशु केवल दो मनोभावों को व्यक्त करता है -- सुख तथा दु:ख जिन्हें वाणी के अभाव में हम हास एवं रोदन द्वारा व्यक्त करते हैं किन्तु आयु अनुभव एवं ज्ञान के आधिक्य के साथ सुख तथा दु:ख अनेक भेद-विभेद ग्रहण करने लगते हैं। उदाहरण के लिये शिशु को चाहे कोई चारपाई से जमीन पर गिरा दे / चाहे वह स्वयं गिर पड़े प्रतिक्रिया एक ही होगी -- रोदन या दु:ख का प्रकटीकरण। किन्तु यदि किसी युवक को कोई व्यक्ति चारपाई से ढकेल दे तो उसे घृणा, क्रोध इत्यादि अनेक समानजातीय भाव अनुभूत होंगे और यदि वह स्वयं गिर पड़े तो घृणा क्रोधादि से भिन्न अपनी असावधानी पर वह खिसिया उठेगा, कहेगा --`कोई अधिक चोट नहीं लगी। यों ही गिर गया। यदि कोई उसकी असावधानी को मूर्खता सिद्ध करे तो वह लड़ने पर आमादा हो जायेगा और यदि कोई कह दे कि अरे बड़े-बड़े गिर पड़ते हैं कोई बात नहीं तो वह अपने को लापरवाह और मूर्ख घोषित करने लगेगा। इससे भिन्न यदि कोई

१- Joy and sorrow present rather the character of emotion than that of impulse or wants. They have been commonly regarded as primary, and it is improbable that any one will succeed in deriving them from other existing emotions. They are mainfeasted very early in child-life. They include if not instincts, at least innate tendencies.

--Page 58. The Nature of Emotions.

रोगी चारपाई से गिर पड़े तो वह निराशामूलक उद्गार प्रकट करेगा; यदि कोई किसी के द्वारा गिराया जाय तो दर्शनशास्त्र के उद्धरण प्रस्तुत करने को विवश हो उठेगा । इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रतिक्रिया परिस्थिति-निरपेक्ष नहीं होती ।[१] किसी एक भाव की अति भी दूसरे भाव में परिवर्तित हो जाती है । जैसे प्रसन्नता या हर्ष का भाव दूसरे भाव एवं मूल प्रवृत्तियों के साथ सहयोगी बन कर आता है । उस मूल प्रवृत्ति की सुखात्मक अनुभूति जब तक रहती है हम प्रसन्न रहते हैं किन्तु बार-बार उस अनुभूति की पुनरावृत्ति उस सुख को समाप्त कर देती है और एकरसता, घृणा तथा अरुचि उत्पन्न करती है । अरुचिकर अनुभूति, अरुचिकर परिस्थिति एवं अरुचिकर व्यक्ति से व्यक्ति दूर हटना चाहता है । इस दूर हटने की प्रक्रिया में यदि सफलता नहीं मिलती तो अरुचि 'दुःख' ~~की प्रक्रिया में~~ या 'क्रोध' में परिवर्तित हो जाती है । अरुचि की तीव्रता के पर ही यह निर्भर करता है कि दुःख जागृत होगा अथवा क्रोध । प्राय: पहले क्रोध ~~अनुभव~~ जागृत होता है और फिर क्रोध द्वारा प्रतिकार न होने पर 'दुःख' जागृत होता है । अत: यह स्पष्ट है कि सुख तथा दुःख प्रत्येक भाव एवं अभाव के साथ मिश्रित है ।

दार्शनिकों ने सुख की अपेक्षा दुःख को स्थायी, विस्तृत और चिरनित्य माना है । भावों के अध्ययन एवं विश्लेषण से यह कथन सत्य प्रतीत होता है । दुःखात्मक भावों की संख्या सुखात्मक भावों की अपेक्षा कहीं अधिक है ।

१.२ सुखात्मक भाव

१.२.१ प्रसन्नता एवं हर्ष

सुखद भावों में प्रमुख 'प्रसन्नता' या 'हर्ष' है । हर्ष अथवा प्रसन्नता को किसी परिभाषा में बांध कर व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है यह प्राणि मात्र का स्वाभाविक सुख गुण है अत: इसकी अभिव्यक्ति को स्थापित करना सरल नहीं है । जब किन्हीं विशेष कारणों से प्रसन्नता आवेग के रूप में प्रकट होती है तभी इसकी अभिव्यक्ति को स्पष्ट देखा जा और सुना जा सकता है । इस आवेश की शारीरिक

१- 'खड़ी बोली कविता में विरह-वर्णन -- ले० डा०रामप्रसाद मिश्र, पृ० २ ।

अभिव्यक्ति भी होती है जैसे मुख खिलना, नेत्र खिलना, शरीर पुलकित होना, रोमांच एवं आनन्दाश्रु आदि प्रकट होना -- "और सचमुच इस अप्रत्याशित सौभाग्य से गोविन्द का हृदय इस तरह पसीज उठा कि उसकी आंखों में आंसू आ गये"।[1]

हर्ष के कई रूप होते हैं। आकस्मिक रूप से किसी प्रसन्नता या लाभ का समाचार मिलने पर क्षण भर को जड़ता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह जड़ता शोक में भी होती है। जड़ता से मुक्ति पाने के पश्चात् कंठस्वर की तीव्रता हर्ष को व्यक्त करती है। यहां से भाषा का क्षेत्र आरम्भ होता है। जहां आकस्मिकता रहती है वहां सबसे पहले अविश्वास का भाव व्यक्त होता है --"सच ! क्या तुमने अपनी आंखों से मेरे पुत्र को आते देखा है, तुम्हें पूरा विश्वास है कहीं भ्रम तो नहीं हो गया है"।" मनुष्य मनुष्य एक बार सुखद समाचार पाकर फिर उसे असत्य नहीं मानना चाहता है। इससे दुगुना दुःख होता है। इसलिए किसी सुखद समाचार को सुनने पर वह कहता है -- "तुम ठीक कह रहे हो न , कहीं मज़ाक तो नहीं कर रहे हो, नहीं तुम मज़ाक ही कर रहे हो।" स्वयं भी कोई सुखद दृश्य आकस्मिक रूप से देखने पर पहली अभिव्यक्ति यही होती है --"क्या मैं सचमुच यह देख रहा हूं, मेरी आंखें धोखा तो नहीं खा रही हैं, यह सब कहीं भ्रमजाल तो नहीं है"। किसी वृद्धा का पुत्र जिसे परदेश गये बहुत दिन हो गये हों और लौटने की कोई आशा न हो यदि कहीं अचानक आ जाये तो वृद्धा की उपर्युक्त शाब्दिक अभिव्यक्ति ही होगी। उसमें आशीर्वाद आदि का समावेश भी हो जायगा।

आकस्मिक रूप से प्रसन्नता का आवेग जागृत होने पर यदि शुभ समाचार किसी अन्य के माध्यम से मिला हो तो उसके कथन के किसी शब्द विशेष या वाक्य को दुहराने की प्रवृत्ति भी मिलती है। किसी मृत्युदण्ड मिले हुए अपराधी को यदि अचानक जीवनदान का सन्देश दिया जाय तो वह यह कह उठेगा --"जीवन ! मुझे जीवन मिल गया, सच मुझे जीवन मिल गया।" किसी को पांच लाख की लाटरी मिलने का शुभ समाचार दिया जाय तो वह हर्ष विभोर होकर चिल्ला उठेगा--"पांच लाख ! मैं पांच लाख रुपए का स्वामी बन गया हूं।" इसी प्रकार पूरे वाक्य को दोहराने की प्रवृत्ति भी मिलती है, जैसे किसी से कहा जाय कि तुम्हारा लड़का कमिश्नर बन गया है

1- पृ० २७६ "जहां लक्ष्मी कैद है" -- राजेन्द्र यादव।

तो वह एक दो बार अवश्य इस वाक्य की पुनरावृत्ति करेगा --"मेरा लड़का कमिश्नर बन गया है। मेरा लड़का ...... कमिश्नर बन गया है।" अपने वाक्यों को दुहराने की प्रवृत्ति भी मिलती है।

प्रसन्नता में कुछ विस्मयबोधक शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे आह, आहाहा, ओह, सच, आदि इनका उच्चारण प्राय: विलम्बित होता है। जैसे स ऽऽ च, ओ ऽऽ ह, वा ऽऽ आदि।

दूसरे हर्ष को व्यक्त करने के लिए मुहावरों के रूप में कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है जैसे बाछें खिलना, बाग़बाग़ होना, गज भर की छाती होना, दिल बल्लियों उछलना, खिल पड़ना, भाव विभोर होना, रोमांचित होना आदि। किसी भयंकर संकट से मुक्ति मिलने पर अथवा किसी बड़ी समस्या का समाधान हो जाने पर होने वाले हर्ष का रूप कुछ भिन्न होता है। इसमें एक प्रकार की निश्चिन्तता का भाव होता है --"चलो छुट्टी हुई" या "एक बला टली"। इस प्रकार उच्छ्वासपूर्ण कथन इस श्रेणी के हर्ष को प्रथम अभिव्यक्ति है। ईश्वर का स्मरण करते हुए "हे ईश्वर तू बड़ा दयालु है", भगवान तुमने मेरी लाज रख ली", "तूने मुझे संकट से उबार लिया, भगवान तुम सबकी सुनते हो, तुम दुखियों के रक्षक हो आदि वाक्य ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रदर्शन करते हैं। ईश्वर के स्थान पर किसी भी शक्ति अथवा इष्ट देवता का स्मरण हो सकता है।

जब किसी सुखद घटना का पूर्व ज्ञान होता है या मनोवांछित कामना के पूर्ण होने का पूर्व ज्ञान होता है तो प्रसन्नता का आवेग अपेक्षाकृत धीमा रहता है। "हर्ष" की मात्रा यहां कम नहीं होती किन्तु धीरे-धीरे क्रियाकलाप तथा अन्य माध्यमों से व्यक्त हो जाती है। उसकी भाषिक अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण नहीं होती है। बार-बार उस वस्तु विशेष का उल्लेख, उसमें पड़ने वाली बाधाओं का उल्लेख एवं उसकी महत्ता का उल्लेख ही उसकी भाषिक अभिव्यक्ति है। उस वस्तु विशेष को लेकर सुन्दर कल्पनायें करना भी इसकी भाषागत अभिव्यक्ति है। वृद्धावस्था में स्त्रियां पुत्र/पुत्री विवाह के प्रसंग को लेकर बहुत प्रसन्न होती हैं, उसका बार-बार उल्लेख करती हैं तथा उस सन्दर्भ में अनेक कल्पनायें भी करती हैं -- मैं यह करूंगी, ऐसे करूंगी, वह कार्य ऐसे होगा, वैसे होगा आदि। इस प्रकार के कथन ही उनकी प्रसन्नता की भाषिक अभिव्यक्ति है।

किसी छोटे बच्चे को मेला दिखाने का आश्वासन भी इसी श्रेणी की प्रसन्नता प्रदान करता है । बार-बार चलने के लिये शीघ्रता करना "जल्दी चलो"। जल्दी चलो की रट लगाना, वहाँ के बारे में उत्सुकता दिखाते हुए प्रश्न पूछना ही उसकी पूर्ण प्रसन्नता की भाषागत अभिव्यक्ति है । मेले में जाकर किलकना, प्रत्येक वस्तु के बारे में प्रश्न पूछना, अहा, अहाहा आदि विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग सामयिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति है ।

१.२.२ उल्लास

प्रसन्नता का आवेश उल्लास के रूप में व्यक्त होता है । जहाँ एक ओर आवेश उल्लास के रूप में व्यक्त होता है वहीं दूसरी ओर परिस्थिति एवं सुखद घटना को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने में अतिरिक्त सुख भी मिलता है । जितनी आयु कम होगी उल्लास की मात्रा उतनी ही अधिक होगी एवं तीव्रता से प्रकट होगी । जैसे अहह.. अहह. मैं पास हो गया, मैं पास हो गया, सुनो मैं पास हो गया" अपने इन ही शब्दों एवं वाक्यों की आवृत्ति उल्लास व्यक्त करती है - "आज तो हमें मिठाई मिलेगी, हम मिठाई खायेंगे, हम मिठाई खायेंगे ।"

कथन की परस्पर असम्बद्धता भी उल्लास व्यक्त करती है जैसे --"वह ऐसा," होगा क्या, इण्डोपाकिस्तान सम्बन्ध और खराब हो जायेंगे ० ० ० ० ० ० अखबारों में धड़ाधड़ खबर छपेगी । देखती जाओ। अभी तो इब्तिदाये इश्क है भाई "-- मंगतु चुपचाप सुन रहा था । सर्दुल कहे जा रहा था" "और शायद बैसाख में मेरा भी मुहूर्त निकल आये खूब बन जायेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो । बोल कैसी रही" ।[१]

अत्यन्त उल्लासपूर्ण मन:स्थिति में कहीं कही गयीं बातें यद्यपि ऊटपटांग नहीं होतीं तथापि कुछ असंगति उनमें भी होती है । वास्तव में यही असंगति मन के उल्लास को व्यक्त करती है । ---"अरे भाई वसन्त की बहारें और फिर जवान जवान ओठों से निकले गीत एवं गालियां.... मई वाह, मई वाह दिल जवानी की यादों के स्वीमिंग-पूल में कूद कर तैरने लगता है"।[२]

१- पृ० ७५, "गीला-बारूद", नानक सिंह ।

२- मुंशी इतवारीलाल, ग्रामहल कार्यक्रम, विविध भारती, आकाशवाणी ।

१.२.३ पुलक या आह्लाद

यह एक ऐसी भावदशा है जब प्रसन्नता के साथ-साथ एक अव्यक्त आभार का भाव भी रहता है। यह आभार साधारण कृतज्ञता से भिन्न होता है और अव्यक्त रहता है जैसे युवा पुत्र का माता-पिता के प्रति अथवा माता-पिता का पुत्र के प्रति। पुलक या आह्लाद की अभिव्यक्ति कंठस्वर के माध्यम से अधिक स्पष्ट होती है। कांपती हुई गद्गद् वाणी ही आह्लाद व्यक्त करती है। किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर आशीर्वाद या शुभकामना के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है। अच्छा पद पा जाने पर मन में जो अव्यक्त-सा कृतज्ञता का भाव जागृत होता है वह हर मिलने-जुलने एवं बधाई देने वाले के प्रति अतिरिक्त विनम्रता के रूप में प्रदर्शित होता है --'सब आपकी कृपा है', 'आप लोगों की दया है', 'यह आप लोगों का ही आशीर्वाद है वरना मैं किस योग्य हूं।' सब आपका ही दिया हुआ है', आदि वाक्य आन्तरिक आह्लाद ही व्यक्त करते हैं।

अपनी प्रशंसा या स्तुति सुन कर जो प्रसन्नता होती है उसे भी आह्लाद या पुलक के अन्तर्गत रख सकते हैं। भाषागत अभिव्यक्ति तो केवल संकोच अथवा अस्वीकृति के रूप में होती है --"मैं इस योग्य नहीं हूं", "यह प्रशंसा मेरे लिये उचित नहीं है", "मैं तो एक साधारण-सा व्यक्ति हूं। किन्तु वास्तव में यह कहना ही 'पुलक' की अभिव्यक्ति है। -- कान्ता : (खुश होकर)" आज फिर कविता करने पर उतर आये हो ? मेरी बात छोड़ो। यह बताओ कि पिता जी ने किया है न हमारे लिये सुन्दर बंगले का इन्तज़ाम"।[१]

१.२.४ तृप्ति या सन्तोष

अपनी किसी वस्तु को सर्वोत्तम रूप में पाकर, अपने ऐश्वर्य तथा योग्य पुत्र को देख कर हृदय में एक प्रकार का हर्ष उत्पन्न होता है। यह तृप्ति अथवा सन्तोष है। इसकी भाषागत अभिव्यक्ति अधिक नहीं होती। नेत्रों की चमक एवं मुखाकृति से यह स्पष्ट हो जाता है। तृप्ति एक प्रकार का गर्व भाव भी जागृत करती है --' मैं इतना समर्थ हूं, मैं

१- पृ० ७८, 'उतार-चढ़ाव', रेवतीसरन शर्मा।

इतना भाग्यवान हूं, मैं सब में श्रेष्ठ हूं आदि इस भाव की अभिव्यक्ति दो रूपों में होती है -- आत्म-प्रशंसा एवं ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शन । दोनों ही साधारण कथन के रूप में व्यक्त होते हैं । कुछ भावों के साथ 'हर्ष' संचारी के रूप में जुड़ा रहता है जैसे प्रेम, वात्सल्य, उत्साह एवं विस्मय में किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर इनकी अभिव्यक्ति होती है किन्तु ~~विशिष्ट अवसरों पर इनकी~~ इसमें स्थायी भाव प्रधान रहता है और हर्ष गौण संचारी के रूप में आता है । जैसे निम्न उद्धरण में--

मां : (खुशी से पागल लहजे में) मेरे चांद तू यहां आ । मेरे कलेजे से लग जा । मेरे चांद तू गहन से निकल आया ० ० ० ० वह हो गया जिसकी आस में मैंने रात रात भर जाग जाग कर भगवान पर आंसुओं का जल चढ़ाया था । वह हो गया जिसकी मिन्नत मांगने के लिए मैंने किसी देवता पीर पुजारी को नहीं छोड़ा । मेरे बेटे तू फिर से नौकर हो गया ।[1]

वास्तव में यहां प्रसन्नता अपने लिये न होकर पुत्र के लिये होती है और पुत्र के लिए प्रसन्न होना वात्सल्य है । इसी प्रकार प्रेम में मिली प्रसन्नता प्रेमपात्र से संबंधित रहती है अत: उसमें 'स्व' नहीं 'पर' का भाव प्रधान रहता है । उत्साह स्थायी भाव ~~के~~ के साथ प्रसन्नता अवश्य 'स्व' से सम्बन्धित रहती है किन्तु उसका क्षेत्र बहुत सीमित रहता है । मात्र कामनापूर्ति या किसी इच्छित कार्य को करने की तत्परता में ही यह दिखायी पड़ती है । यह आवेश के साथ उत्साह अथवा उल्लास के रूप में व्यक्त होती है ।

कांता : (उल्लास से) 'सुनिये, सुनिये, पिता जी की चिट्ठी आई है'।
रंजन : 'लखनऊ से ?'
कांता : 'हां'
रंजन : 'क्या लिखा है ?'
कांता : (बड़े जोश से) लिखा है सामान पैक करो और गाड़ी में सवार हो जाओ[2]

१.२.५ आकर्षण एवं मुग्धता

प्रसन्नता एवं हर्ष का एक अन्य एवं उपर्युक्त रूपों से बिलकुल पृथक् रूप है ।

१- पृ० ७७, 'रोशनी', रेवतीशरण शर्मा ।
२- पृ० ८७ वही ।

सुन्दर वस्तु या व्यक्ति के रूप सौन्दर्य अथवा गुण सौन्दर्य पर मुग्ध होकर जो आनन्द मिलता है वह भी एक प्रकार की प्रसन्नता है । यह प्रसन्नता एवं हर्ष अलौकिक होता है । सौन्दर्य चाहे वह रूप का हो, गुण का हो, वाणी का हो अथवा आत्मा का दूसरे को आनन्द प्रदान करता है । सुखात्मक भावों में आकर्षण का भाव भी आता है । प्रेम एवं प्रेम श्रेणी में आने वाले अन्य भाव स्नेह, मैत्री, सौहार्द,आदि में ये आकर्षण प्रथम एवं मूल उपभाव कक के रूप में उपस्थित रहते है । अभिव्यक्ति की दृष्टि से आकर्षण के दो पक्ष हैं -- वस्तु वस्तु एवं व्यक्ति की प्रशंसा तथा उसके रूप आकर्षण के प्रभाव का वर्णन । इसका विस्तार 'प्रेम' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है । आकर्षण की ही अभिव्यक्ति का एक रूप 'मुक' मुग्धता' है । यह अलग से कोई भाव नहीं है । 'मुग्धता' की वाचिक अभिव्यक्ति में कंठ स्वर में एक अतिरिक्त लयात्मकता आ जाती है -- कितनी ऽऽऽ सुन्दर है । कितनाऽऽ सौन्दर्य भरा हुआ है । इसमें विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग अधिक ही होता है जैसे --'आह ! क्या सौन्दर्य है', 'ओह ! कितना मनोमुग्धकारी दृश्य है','उफ़ ! क्या ग़ज़ब की तेज़ी है' । मुग्धता की वाचिक अभिव्यक्ति कभी बहुत व्यावहारिक एवं हल्के रूप में भी व्यक्त होती है जैसे हाय मैं बलिहारी जाऊं, सदके जाऊं, न्यौछावर जाऊं आदि । तथापि ये कथन केवल अभिव्यक्ति तक सीमित रहते हैं,अनुभूति से इनका कोई संबंध नहीं होता है ।

सौन्दर्य कभी-कभी अन्य भावों से स्वतंत्र होकर शुद्ध आनन्द प्रदान करता है । इस आनन्द की प्रमुख भाषागत अभिव्यक्ति प्रशंसा के रूप में होती है । 'वाह','अहाहा', 'ओह','वाह','कमाल है','सुन्दर है','अतिसुन्दर' आदि विस्मयादिबोधक शब्दों के माध्यम से इस प्रशंसा भाव की स्वाभाविक एवं प्रथम भाषागत अभिव्यक्ति होती है वस्तु की एक-एक विशेषताओं का उल्लेख एवं उनकी सराहना भी प्रशंसा की भाषागत अभिव्यक्ति है । एक स्तर आगे जाकर निर्माता या स्वयं रचयिता की प्रशंसा या स्तुति होती है । सुन्दर कलाकृति को देखकर लोग कहते हैं 'कितनी सुन्दर मूर्ति है, बनाने वाले ने मानो पत्थर में प्राण भर दिये हैं -- 'कितनी सुन्दर कलाकृति है'। जी चाहता है बनाने वाले का हाथ ही चूम लूं ।' सौन्दर्य के प्रभावपक्ष का वर्णन भी प्रशंसा की एक रीति है -- कितना आकर्षण है, नेत्रों को बरबस खींच लेता है, नेत्र हटाये नहीं हटते, नेत्रों के सामने वही घूमता रहता है, मन वहीं रम जाना चाहता है,

मन को मोह लेता है, मन में समा गया, हृदय में समा गया, ध्यान पर छा गया है आदि । 'प्रेम' अध्याय के अन्तर्गत इसका विस्तार किया गया है । काव्य में कोई सुन्दर उक्ति या पंक्ति सुन कर लोग वाह-वाह कह उठते हैं । अब तो यह एक मुहावरा बन गया है ।

१.२.६ विनोद एवं क्रीड़ा

यह मन की एक सुखद तरंग है । बाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था तक यह स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के अन्दर विद्यमान रहती है और शारीरिक गतिविधियों तथा हावभाव के माध्यम से व्यक्त होती है । इस आयु के बाद विनोद एवं क्रीड़ा की मन:स्थिति किसी किसी व्यक्ति में स्वभाव बन जाती है, शेष में अवसर विशेष पर उत्पन्न होती है ।

विनोद वस्तुत: अपने मन के आनन्द को व्यक्त करने का साधन मात्र है । अत: इसकी अभिव्यक्ति चेतन स्तर पर एवं सप्रयास ही होती है । विनोद की स्थिति कंठस्वर के माध्यम से व्यक्त होती है । कंठस्वर में जो परिवर्तन होते हैं वे भी अपने आप नहीं होते वरन् सप्रयास लाये जाते हैं, जैसे विभिन्न प्रकार की बोलियां, नाक से बोलना, कंठ को दबा कर बोलना एवं विकृत करके बोलना । ये हास्य एवं चापल्य की भी विशेषतायें हैं । 'विनोदपूर्ण कंठस्वर', 'शरारत भरा स्वर' आदि संकेतों का प्रयोग इसके लिये किया जाता है । विनोद हास्य के उपभावों में एक है। अत: इसका विस्तार 'हास्य' अध्याय के अन्तर्गत किया गया है ।

विनोद के साथ-साथ 'क्रीड़ा' का भी स्थान है । यह भाव नहीं किन्तु एक मन: स्थिति अवश्य है । मैकडुगल ने भी मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों में एक प्रवृत्ति 'खेल' मानी है । जहां तक क्रीड़ा की अभिव्यक्ति का प्रश्न है यह शुद्ध शारीरिक चापल्य ही है । कभी-कभी बच्चों के खेल में कुछ अर्थहीन वाक्यों एवं तुकबन्दियों का प्रयोग होता है जो इस मन:स्थिति को वाचिक रूप से किसी मात्रा में व्यंजित करते हैं । जैसे --

-- अक्कड़ बक्कड़ बम्बे बो, अस्सी नब्बे पूरे सौ ।

-- चूं चूं करती आयी चिड़िया, दाल सवाना लायी चिड़िया ।

इसी प्रकार कुछ अर्थहीन शब्द जैसे टिक टिक, टिल्ल, टिल्ल,आदि भी इसी मन:स्थिति की वाचिक अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति के इन रूपों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि केवल बालकों द्वारा इनकी अभिव्यक्ति होती है या कभी-कभी बच्चों के मनोरंजन हेतु प्रौढ़ व्यक्ति भी इस प्रकार की वाचिक अभिव्यक्ति का आश्रय लेते हैं।

क्रीड़ा का भाव कुछ न कुछ परिवर्तित रूप में हर आयु के व्यक्तित्व में विद्यमान रहता है। बड़ों का क्रीड़ा भाव विभिन्न प्रकार के मानसिक खेल जैसे शतरंज, पहेलियाँ, ताश,आदि तक सीमित रहता है। इन खेलों के माध्यम से क्रीड़ा की कुछ वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती वरन् उत्साह, हर्ष और उल्लास के रूप में होती है। जैसे `वह मारा`,`क्या बात है`,`जवाब नहीं`,`खूब निशाना लगाया`,`हिप हिप हुर्रे` वाह वाह, शाबाश, जवाब नहीं, वाह बेटे वाह, जिओ मेरे उस्ताद जिओ, कमाल है, हिम्मत न छोड़ना,आदि। ये शब्द एवं वाक्य दो दो भावों की अभिव्यक्ति एक साथ करते हैं। एक ओर तो ये वक्ता अथवा दर्शक के हृदय की प्रसन्नता व्यक्त करते हैं दूसरी ओर खेलने वाले को उत्साहित भी करते हैं। इन शब्दों का उच्चारण कुछ विशिष्ट प्रकार का होता है जैसे `वह मारा` के स्थान पर `वह म्मारा` (`म` पर बलाघात है),`क्या बात है` के स्थान पर `क्या ब्बात है` (`ब`को बल देकर द्वित्व कर देना), ("ब" पर बलाघात एवं द्वित्व प्रयोग) `शाबाश का शाब्बाश` आदि। किन्हीं शब्दों एवं वाक्यों का रूप विकृत करके उच्चारण करना भी क्रीड़ा की अभिव्यक्ति है जैसे --`आओ` का `अउ` या `कम (come के स्थान पर आओ के समानान्तर `कमो` कहना।

१.२.७ चपलता

चपलता दो प्रकार की मानी गयी है -- प्राकृतिक एवं आगंतुक। प्राकृतिक चपलता आयु के साथ ही व्यक्त होती है। शिशु,बालक और किशोरावस्था में इस प्राकृतिक चंचलता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। शारीरिक क्रिया-कलाप, अकारण का हास्य आदि इसे व्यक्त करते हैं। हु.शुक्ल जी के अनुसार इसके अनुभावों में बिना प्रयोजन इधर-उधर देखना, किसी को छेड़ कर या चपत लगा कर भागना, आदि शरारतें,आदि आती हैं। शरारत भरी मुस्कान, शरारत भरा स्वर, शरारत भरी

दृष्टि आदि संकेत इसके लिये दिये जाते हैं। चपलता की वाचिक अभिव्यक्ति हास्य प्रदर्शन के लिये उपहास, परिहास, ताने व्यंग्य के रूप में होती है। कंठस्वर को विकृत करना, नाक से बोलना, स्वर दबा कर बोलना, स्त्री द्वारा पुरुष एवं पुरुष द्वारा स्त्री की ~~बनावटी~~ आवाज़ बनाकर बोलना भी चपलता के कारण ही होता है (विस्तार 'हास्य' अध्याय के अन्तर्गत)।

चपलता ~~के~~ का एक उग्र रूप भी है। क्रोध, घृणा आदि का उत्कट प्रदर्शन आदि चपलता के शारीरिक और कठोर ~~वच~~ वचन; प्रताड़ना, धमकी आदि वाचिक अभिव्यक्ति है। चपलता के उग्र रूप की वाचिक अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप ~~कटु~~ कटु व्यंग्य, तीखी भर्त्सना, ताने, धमकी और तिरस्कार 'क्रोध' शीर्षक अध्याय में वर्णित हैं। प्राकृतिक चपलता तो आयु-वृद्धि के साथ-साथ क्रमशः शान्त होती जाती है। किन्तु कृत्रिम एवं आगंतुक चपलता जीवन पर्यन्त रहती है। किन्हीं व्यक्तियों में यह स्वभाव बन जाती है ऐसे लोगों का परिहास एवं क्रोध दोनों ही अन्य की अपेक्षा अधिक उत्कट एवं कटु होता है। शुक्ल जी के अनुसार ~~वह~~ चपलता किसी मूर्ख पर फब्तियां कसने, शत्रु पर अनायास व्यंग्य करने के रूप में व्यक्त होती है। इन तानों और व्यंग्य में उग्रता तो नहीं होती किन्तु कटुता एवं ~~तीक्ष्ण~~ तीक्ष्णता अवश्य होती है --

-- कृष्णा ठट्ठा मार कर हंस पड़ी --'आप तो इस कला में निपुण जान पड़ते हैं। प्रेम। समर्पण। विरहाग्नि। यह शब्द आपने कहां सीखे ?[1]

-- सुपर्णा (ज़ोर से हंस कर) 'अधिकार ? अधिकार की दुहाई कायर ही दिया करते हैं।[2]

-- साहब की मूर्च्छा टूटी। लहना सिंह हंस कर बोला --' क्यों लपटन साहब ? मिज़ाज कैसा है ?[3]

उपर्युक्त उदाहरणों में तीखे व्यंग्य के साथ-साथ वक्ता के स्वभावगत चापल्य को व्यक्त करता है। यदि यही कथन गम्भीर स्वभाव वाले व्यक्ति का होगा तब उसमें हास्य नहीं

१- पृ० १०५ 'प्रेम सूत्र' (गुप्तधन)-- प्रेमचन्द)

२- पृ० ५६ 'आंचल और आंसू' -- विष्णु प्रभाकर

३- पृ० ५७ 'उसने कहा था' -- गुलेरी जी

नहीं होगा । आन्तरिक चापल्य को व्यक्त करने के लिये कुछ वाक्यों का मुहावरों की भाँति प्रयोग होता है जैसे --'मारने के लिए हाथ खुजलाना'; बिना बोले रहा न जाना, कान खुजलाना आदि ।

१.२८ गर्व

अपने अहं का प्रकाशन ही गर्व है । यह अपने आप में सुखद भाव है । गर्व,क्रोध एवं उत्साह,दोनों के साथ उपभाव के रूप में उपस्थित रहता है । क्रोध के अन्तर्गत ये अहंकार एवं उत्साह के अन्तर्गत आत्मविश्वास के रूप में आता है (क्रोध एवं उत्साह शीर्षक में दोनों की वाचिक अभिव्यक्ति का विस्तार है ।) । गर्व की शारीरिक अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है । 'गर्व भरे नेत्रों से', 'गर्वित मुख मुद्रा' आदि संकेत इसके लिए प्रयुक्त होते हैं । इसके अतिरिक्त व्यक्ति के उठने-बैठने, चलने-फिरने का ढंग एवं हाव-भाव भी इसे स्पष्ट करते हैं । कंठस्वर में भी अवश्य अन्तर आता है, किन्तु यह अन्तर बलाघात एवं स्वराघात के रूप में नहीं होता है वरन् कंठस्वर में एक विशिष्ट प्रकार की गहनता एवं गम्भीरता आ जाती है । कभी-कभी यह गम्भीरता इतनी कृत्रिम हो जाती है कि यदि गर्व प्रदर्शन करने वाला पात्र उसके उपयुक्त नहीं हुआ तो हास्य का कारण बन जाता है ।

शुक्ल जी ने गर्व को एक स्वतंत्र भाव माना है । बाल्यावस्था के बाद ही उसका विकास आरम्भ हो जाता है और जीवन पर्यन्त रहता है । स्त्री एवं अशिक्षित व्यक्ति का गर्व अधिक शीघ्रता एवं सरलता से व्यक्त होता है । गर्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति में गर्व के विषय का वर्णन स्पष्ट कथन के रूप में रहता है --'मेरे पास बहुत धन है, मेरी गाड़ी बहुत कीमती है, मेरा मकान बहुत शानदार है'। साधारणत: इस प्रकार की अभिव्यक्ति बहुत कम बुद्धि वाले करते हैं तथा इसे अव्यावहारिक माना जाता है । सभ्य समाज में अपने ऐश्वर्य प्रदर्शन द्वारा गर्व की अभिव्यक्ति कुछ अप्रत्यक्ष रूप में होती है । जैसे --'मैं एक नयी गाड़ी खरीदने का विचार कर रहा हूँ', 'मुझे अपने मकान का इतना अधिक टैक्स देना पड़ता है,' "मैंने अपने इस सूट का कपड़ा फ्रान्स से मँगाया है," "मैंने आज अमुक संस्था को इतने रुपये दिये", 'आज अमुक मंत्री मेरे यहाँ आये थे' आदि । स्त्रियाँ भी इसी शैली में गर्व की अभिव्यक्ति करती हैं किन्तु उनके विषय दूसरे प्रकार के होते हैं । वे वस्त्र, आभूषण एवं सौन्दर्य प्रसाधनों के माध्यम से अपने भाव व्यक्त करती हैं ।

गर्व प्रदर्शन की एक शैली उदासीनता दिखाना भी है। किसी के प्रति उदासीनता दिखाना उस व्यक्ति विशेष के प्रति गर्व प्रदर्शन ही है --'अरे ऐसे ऐसे तो मेरे यहाँ नौकर हैं। जाने तुम्हारे तरह के कितनों को मैं नौकर रख सकता हूँ, उस जैसे कितने मेरे आगे-पीछे घूमते रहते हैं, ऐसे ऐसे तो मेरा जूता साफ करते हैं, तुम्हारे जैसे जाने कितने ही रोज़ दरवाज़े पर नाक रगड़ते हैं, मुझे तुम्हारी रत्ती भर भी परवाह नहीं है, मेरे ठेंगे से, आदि कथन गर्व व्यक्त करते हैं।

इसी प्रकार किसी बहुमूल्य वस्तु के प्रति अवहेलना भाव प्रकट करना --'अरे ऐसी तो मेरे पास ढेरों हैं', 'इसमें क्या विशेषता है', 'इसमें क्या रक्खा है' -- गर्व प्रदर्शन ही है। अवहेलना एवं उपेक्षा के माध्यम से अपनी सम्पन्नता व्यक्त की जाती है।

अपनी कला, अपने गुण, अपने कार्यों पर भी व्यक्ति को गर्व हो सकता है। इसकी अभिव्यक्ति कभी तो प्रत्यक्ष कथन के रूप में होती है - जैसे - मैं बहुत बड़ा कलाकार हूँ, अत्यन्त सुन्दर मूर्तियाँ गढ़ता हूँ, मैं अध्ययन में सर्वप्रथम रहता हूँ, मुझे अनेक पुरस्कार मिले हैं, आदि। यह शैली अप्रचलित एवं अव्यावहारिक है। अत: इसका प्रयोग अधिक नहीं होता है। अभिव्यक्ति का रूप अप्रत्यक्ष रूप से कुछ इस प्रकार का होता है -- 'मुझसे अधिक सुघड़ मूर्तिकार आपको नहीं मिलेगा', 'मुझ-सा गुणी दूसरा नहीं होगा' या 'भला और कौन इतनी सुन्दर मूर्तियाँ गढ़ सकता है', 'इतना गुणी और कौन होगा', आदि।

अपने सन्दर्भ में दूसरों के कथनों के उदाहरण देकर अपनी प्रशंसा करना भी गर्व प्रदर्शन की एक शैली है -- 'उन्होंने मेरी बनायी मूर्ति की इतनी प्रशंसा की', 'अमुक व्यक्ति मेरी कला के पीछे दीवाना है', 'अमुक मेरे गुणों का प्रशंसक है', वह मेरे रूप की प्रशंसा करते नहीं अघाता आदि। कलाकार वर्ग के अपने गुणों पर गर्व की अभिव्यक्ति एक अन्य रूप में होती है -- अरे मेरे यहाँ तो यह कला सात पीढ़ियों से चली आ रही है। मेरे बाप इतने बड़े कलाकार थे, मेरे पिता इतने कुशल कलाकार थे, यह गुण तो मेरी घुट्टी में मिला है, जब से होश संभाला है यही करता आया हूँ, आदि। इस द्वितीय रूप में मात्र गर्व रहता है अहंकार नहीं जब कि प्रथम रूप में पर्याप्त अहंकार भी रहता है।

अपने गुणों एवं अपनी उपलब्धियों की दूसरे के दुर्गुणों, अभावों के साथ तुलना करने के पीछे भी यही गर्व प्रदर्शन हो रहता है। इस प्रकार व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध कर अपने अहं की तृप्ति करता है -- "मेरे पास ये है तुम्हारे पास नहीं है।" बच्चे प्राय: अपनी उपलब्धियों के इसी गुणात्मक प्रकाशन के माध्यम से अपने गर्व की अभिव्यक्ति करते हैं --"मेरे पास तो चाभी से चलने वाला खिलौना है तुम्हारे पास कहाँ है ? ""मेरे पास तो नायलान के बालों वाली गुड़िया है जो बोलती भी है। तुम्हारे पास कहाँ है ?" "मेरे पापा के पास तो मोटर है, तुम्हारे पापा के पास तो सायकिल है" आदि। बड़ों में भी यह भाव रहता है किन्तु उसका रूप कुछ परिष्कृत रहता है। जैसे किसी निम्न मध्यवर्गीय पड़ोसी को पैदल जाते देख अपनी कार रोक कर पूछ लिया, "कहिये, आपकी सवारी कहाँ गयी और अपने आप को छिपाने के लिये शायद उसमें इतना और जोड़ दें --"आइये मैं आपको पहुँचा दूँ" जो मात्र औपचारिकता एवं श्रोता के लिये जले पर नमक छिड़कने के समान है।

अपने अहं का प्रकाशन दूसरे के ऊपर दया एवं करुणा प्रदर्शित करके भी होता है। उसके साधारणत: दो रूप हैं -- एक तो कृत्रिम करुणा का प्रदर्शन, यह निष्क्रिय होती है। यह प्राय: ऐसे अभावों एवं दोषों को लेकर प्रदर्शित की जाती है जो ईश्वर प्रदत्त होते हैं और जिनका प्रतिकार संभव नहीं है जैसे किसी कुरूप व्यक्ति से किसी रूपवान व्यक्ति द्वारा यह कहना कि "ओह ...च्च... च्च... भगवान ने तुम्हारे साथ बड़ा क्रूर परिहास किया है। क्या रूप दिया है। किसी अपाहिज व्यक्ति से यह कहना कि "ओह कितने अभागे हो, अब जीवन भर एक ही टाँग से चलना होगा" यह करुणा दु:खी मन को सांत्वना देने के स्थान पर और क्लेश पहुँचाती है।

कभी-कभी इस प्रकार का करुणा प्रदर्शन वास्तविक भी होता है किन्तु अनजाने में व्यक्ति का अहं भी प्रदर्शित हो जाता है जैसे किसी गरीब व्यक्ति से कहना, "मेरे यहाँ इतने व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करते हैं तुम भी वहीं अपना पेट भर लिया करो"।" "मेरे पास कई पुराने सूट बेकार पड़े हैं यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो ले लो। मैंने कार खरीद ली है। चाहो तो मेरी पुरानी सायकिल का प्रयोग कर सकते हो। वास्तव में यहाँ करुणा नहीं वरन् अनुग्रह का प्रदर्शन है जो गर्व का ही एक रूप है।

गर्व के साथ ही "अहन्ता" का भी स्थान है। मैं - तुम, तेरा - मेरा पर बल देना स्वयं अपने को सबसे ऊपर समझना। इस भाव की अभिव्यक्ति अनेक अवसरों पर

पर स्वयं को श्रेष्ठ प्रदर्शित करने के प्रयत्न में होती है।

गर्व की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति के गर्व को व्यक्त करने अथवा वर्णित करने के लिये कुछ वाक्यों का प्रयोग होता है। ये वाक्य वक्ता एवं आलम्बन दोनों के मन:स्थिति की व्यंजना करते हैं। कालान्तर में ये मुहावरों की भांति रूढ़ हो गये हैं। जैसे -- दिमाग़ चढ़ गया है, दिमाग बिगड़ गया है, दिमाग सातवें आसमान पर है, तेवर नहीं मिलते, आंखें बदल गयी हैं, आंखों पर चरबी छा गयी है, रंग बदल गये हैं, बहुत गुमान है, सीधे जमीन पर पैर नहीं पड़ते, बड़ी बड़ी बातें करता है, बड़े ऊंचे सपने हैं आदि। व्यवहारिक एवं अपेक्षाकृत ग्रामीण भाषा में इन्हीं के कुछ परिवर्तित रूपों का प्रचलन है। जैसे --'अपने को जाने क्या समझने लगी हैं, अपने को लाट साहब समझने लगे हैं, अकड़ कर चलते हैं, अकड़ दिखाते हैं, सीधे मुंह बात नहीं करते,आदि। डींग ~~ह~~ हांकना, अपनी बखानना, लम्बी-चौड़ी बातें करना, आदि अन्य प्रयोग हैं।

१.२.६ मद

शुक्ल जी ने मद को प्रेम के उल्लास तथा अभिमान के कारण माना है तथा गर्व का संचारी भी स्वीकार किया है। प्रेम के साथ 'मद' की व्याख्या 'प्रेम' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत है। यहां केवल गर्व के सन्दर्भ में इसे देखना है। कभी-कभी हर्ष या प्रसन्नता की अति भी मस्ती या मद में परिवर्तित हो जाती है। मस्ती मद का ही एक रूप है जिसमें गर्व या प्रेम के स्थान पर केवल आनन्द ही आनन्द हो। -- मज़ा आ गया, मौज आ गयी, तबियत खुश हो गयी, मन लहालोट हो गया, तबियत ताज़ी हो गयी आदि वाक्य इस मन:स्थिति के सूचक हैं। हर्षजन्य मद कंठस्वर में भी परिवर्तन करदेता है -- तुतलाना, नाक से बोलना आदि। ये विशेषतायें कंठस्वर में स्वत: आ जाती हैं। इनके लिये प्रयास नहीं करना पड़ता है -- 'दोनों हाथों पर उसे रखे जब वह चारपाई की पाटी पर आकर बैठ गया तब उसके नस नस में एक मादकता-सी भर चुकी थी। तुतलाते हुए उसने रोगी से पूछा --'यह... इसमें क्या है चाचा।'[१]

१- पृ० ८,'गोला बारूद' नानक सिंह।

विनोद, चापल्य, क्रीड़ा आदि हर्षजन्य मद के ही वर्ग में आयेंगे। भरत ने मद को शारीरिक स्थिति माना है एवं इसकी तीन कोटियां स्वीकार की हैं --

उत्तम
--- मुख पर मुस्कान, मधुर राग की भावना, प्रसन्न वदन, किंचित लड़खड़ाना, कोमल शब्द, अस्थिर गति, और लड़खड़ाते वचन (रुक रुककर बोलना, हकलाना आदि) ये सब अभिव्यक्ति प्रेम भाव में होती है।

मध्यम --
---- मादक तथा घूर्णित नेत्र, शिथिल तथा गिरे हुए बाहु, कुटिल एवं लड़-लड़ाती गति, ये सब शारीरिक अवस्थायें हैं अथवा मद्यपान के शारीरिक अनुभाव हैं न कि किसी भाव के।

अधम
--- स्मृति नाश, वमन, कफ आदि के कारण चलने में असमर्थता। जिह्वा की लड़खड़ाहट आदि।

अन्यथा गर्व भी मद का ही एक रूप है। जो कुछ हूं मैं ही मैं हूं, मेरे आगे और कोई नहीं है, सब मुझसे हीन हैं, मुझे किसी की चिन्ता नहीं है आदि भी मद है। इसकी वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती वरन् व्यक्ति के स्वभाव एवं हावभाव से ही यह व्यक्त होता है।

१.२.१० सुखात्मक भावों में प्रेम एवं वात्सल्य प्रधान है, अत: इसका विस्तार स्वतंत्र रूप से यथास्थान किया गया है। प्रेम के अनेक उपभाव एवं भेद-प्रभेद हैं जैसे अनुराग, प्रेम भाव, प्रीति, स्नेह, मैत्री, सौहार्द, श्रद्धा, भक्ति -- इन सबका उल्लेख यथास्थान 'प्रेम' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत है। ये भाव तो एक ही वर्ग के हैं। इनके अतिरिक्त विश्वास, समर्पण, सद्भावना भी 'प्रेम' के साथ ही स्पष्ट होते हैं अत: उनका विस्तार भी 'प्रेम' के अन्तर्गत है। सद्भावना का ही एक रूप 'सहानुभूति' है। इसमें करुणा का समावेश भी रहता है। इसका विस्तार 'शोक' शीर्षक अध्याय में किया गया है।

१.२.११ कृतज्ञता

सुखात्मक भावों में ही एक भाव 'कृतज्ञता' भी है। यद्यपि न तो काव्यशास्त्र में और न ही ~~[illegible]~~ मनोविज्ञान में इसका उल्लेख है तथापि यह मन:स्थिति

अपने आप में एक स्वतन्त्र भाव है। किसी को अनुग्रह, कृपा, सद्भावना, सहानुभूति अथवा सहायता प्राप्त करके व्यक्ति के अन्दर जो एक प्रकार का अलौकिक आनन्द उत्पन्न होता है और वह उस आनन्द को किसी न किसी प्रकार व्यक्त करने को आतुर हो उठता है।

वास्तविक एवं आन्तरिक कृतज्ञता की अभिव्यक्ति तो मात्र नेत्रों के माध्यम से हो सकती है। कंठस्वर भी किसी मात्रा में इसे व्यक्त कर सकता है। लिखित साहित्य में `कृतज्ञ नेत्रों से` , `उसके नेत्रों से कृतज्ञता व्यक्त हो रही है`, `गद्गद् होकर`, `पुलकित होकर` , `हर्ष विह्वल स्वरों में` आदि संकेत भावाभिव्यक्ति के लिए किये जाते हैं।

व्यावहारिक जीवन में `कष्ट` या `हानि` देने से पूर्व एवं पश्चात् दोनों ही ओर कृतज्ञता प्रदर्शन सभ्यता का एक अंग है। यह वास्तविक कृतज्ञता प्रदर्शन नहीं है मात्र सभ्यता प्रदर्शन है। जैसे -- कृपा करके यह पुस्तक उठा दें, कृपया यह पत्र डाल दें, आपका कृतज्ञ होऊंगा यदि यह सन्देश अमुक व्यक्ति तक पहुंचाने का कष्ट करें , आपका बहुत अहसान होगा या अहसान मानूंगा ज़रा इस पद का अर्थ मुझे समझा दें। इसी प्रकार अपना कार्य हो जाने पर `धन्यवाद` देने की रीति है। दैनिक व्यवहार में `धन्यवाद` का प्रयोग कृतज्ञता प्रदर्शन के लिये नहीं रहता मात्र औपचारिकता रहती है। कृतज्ञता प्रदर्शन के कुछ विशिष्ट वाक्य प्रचलित हैं जैसे `मैं आपका कृतज्ञ हूं`, `मैं आपका आभारी हूं`, `आपका अहसानमन्द हूं`, `आपका कर्ज़दार हूं, ऋणी हूं` आदि। कुछ अधिक औपचारिक कथनों में -- `आपका नमक खाया है`, `आपका अन्न खाया है`, आदि वाक्य हैं। भावुक एवं संवेदनात्मक अभिव्यक्ति में -- मरते दम तक आपका अहसान नहीं भूलूंगा, अन्तिम सांस तक आपका ऋणी रहूंगा, जीवन भर आपके गुण गाऊंगा, आपका अहसान कभी नहीं भूलूंगा, आपके लिए प्राण तक दे दूंगा, आपका नमक खाया है, ख़ून की आख़िरी बूंद भी आपके लिए बहा दूंगा, आपने मुझे उबार लिया, आपने नया जन्म दिया, नव जीवन दिया, मेरी लाज रखी, इज्ज़त रख ली, नाक रख ली आदि।

आन्तरिक कृतज्ञता प्रदर्शन में इन वाक्यों का महत्व नहीं होता है। यद्यपि कंठ स्वर के विशिष्ट रूप को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता तथापि उसे स्पष्ट समझा

जा सकता है। नेत्रों के माध्यम से या अस्पष्ट कथन के रूप में भी कृतज्ञता की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाती है। निम्न उद्धरणों में यह भाव स्पष्ट है --

-- कदाचित् ऐसा ही कुछ मिला मंगतराम को जब बाली की छलकती हुई आँखें उसकी ओर उठीं और उसके बाद झुक गयीं। मानों इस क्षणिक दृष्टिपात द्वारा अपने इस अनुनय को उसकी आँखों में उड़ेल दिया हो। मेरे पतितपावन, मेरे मुक्तिदाता तू ही बता अब मुझे कहाँ जाना है।"

(पृष्ठ २१४ 'गीला बारुद' नानक सिंह)

-- 'सैंदुल भाई'। इससे आगे नहीं बोल सका मंगतू। उसका गला रुंध गया। उसकी डबडबाई आँखें सदुंल के चेहरे पर इस तरह टिकी थी जैसे कह रही हों' सदुंल मैं तेरा कौन हूं जो तू मेरे लिये इतना कष्ट उठा रहा है ?"

(वही, पृष्ठ ५७)

बच्चों में कृतज्ञता व प्रदर्शन नहीं होता। या होता भी है तो स्पष्ट प्रशंसा के रूप में जैसे 'आप बहुत अच्छे हैं, आप मुझे मिठाई देते हैं'। यहाँ एक विशेषता देखने को मिलती है, अन्य भावों के ठीक विपरीत इस भाव की वाचिक अभिव्यक्ति में पुरुष अधिक मुखर होते हैं। जब कि अन्य भावों में स्त्रियां। स्त्रियों को कृतज्ञता की वाचिक अभिव्यक्ति में संकोच होता है। वे व्यवहार एवं नेत्रों के माध्यम से ही इसे व्यक्त करती हैं। इसी प्रकार किशोरावस्था में भी कृतज्ञता प्रदर्शन में लज्जा प्रतीत होती है। व्यक्ति जैसे जैसे प्रौढ़ होता जाता है कृतज्ञता की अभिव्यक्ति में उसे अधिक सरलता होती जाती है। सम्भवत: सामाजिकता के विकास के साथ-साथ यह अभिव्यक्ति सामर्थ्य भी बढ़ता जाता है।

कुछ अन्य भाव भी सुखद वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। थोड़े बहुत अन्तर के साथ यह सब मूलत: एक ही हैं। विभिन्न स्थायी भावों के साथ आने के कारण उनमें परस्पर अन्तर आ जाता है। ये निम्नलिखित हैं --

१.२.१२ <u>मति, धैर्य और सन्तोष</u>

'मति' का शाब्दिक अर्थ होगा ज्ञान या सुबुद्धि। भरत के अनुसार अनेक शास्त्रों के मनन, पक्ष-विपक्ष का ऊहापोह करने से इसे उत्पन्न व माना गया है। शुक्ल जी ने इसे अन्त:करण की वृत्ति के रूप में माना है। वस्तुत: यह बोध वृत्ति है।

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने इसे भ्रान्ति का नाश माना है तथा इसके अनुभावों में शिष्य को उपदेश देना, विचार का निश्चय तथा उसके अनुभवों से सन्देह दूर करना आदि की गणना की है। वस्तुत: मति से ही धैर्य सन्तोष और तृष्णानाश का उदय होता है जो निर्वेद या वैराग्य के उपभाव हैं। इनका विस्तार 'निर्वेद' शीर्षक के अन्तर्गत है। किसी प्राप्त वस्तु के प्रति तृप्ति एवं विनष्ट वस्तु के प्रति 'शोक' न करना ही धृति है। 'धृति' किसी मात्रा में 'उत्साह' के साथ भी 'दृढ़ता एवं साहस' के रूप में उपस्थित रहती है (उत्साह - दृढ़ता एवं साहस तथा धैर्य) उत्साह में कृषि धृति, हानि एवं समस्याओं के उठने पर भी स्थिर एवं शान्त बने रहकर प्रकट की जाती है। वहाँ धैर्य सहनशीलता के रूप में आता है। सन्तोष धैर्य का ही एक रूप है। जो कुछ भी है जैसा भी है उसे लेकर प्रसन्न हो रहना ही सन्तोष है। वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से दोनों लगभग समान ही हैं। वैसे आवेश आदि का अभाव होने के कारण भाषा में किसी प्रकार की विशृंखलता नहीं उत्पन्न होती। शान्त एवं स्थिर कंठ से सामान्य में इसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट कथन के रूप में होती है जैसे -- जो कुछ है बहुत है, ईश्वर ने बहुत दिया, देने वाले ने बहुत दिया, इसी पर ही संतोष करो, और क्या होगा, आंचल भर कर दिया है, आवश्यकता भर दिया है। किसी कार्य के होने के प्रति व्याकुलता का अभाव भी धैर्य या सन्तोष है -- सब्र करो। धैर्य धारण करो, रे मन सब कुछ धीरे धीरे होता है, समय आने पर सब कार्य स्वयं हो जाते हैं, हर वस्तु का अपना समय होता है। ईश्वर पर विश्वास रखो, तुम काल चक्र में परिवर्तन नहीं ला सकते। भगवान जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। इसी प्रकार विनष्ट हुई वस्तु के प्रति तथा मृत्यु के प्रति सहनशील दृष्टिकोण भी धैर्य है जैसे जो नष्ट हो गया उसके लिये शोक क्या, हर वस्तु का अन्त तो एक न एक दिन होना ही है, आदि (विस्तार 'निर्वेद' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत) जब ऐसे कथनों के साथ किसी दु:खी मन के क्लेश को दूर करने का यत्न भी होता है तो सम्पूर्ण अभिव्यक्ति करुणा या सहानुभूति में परिवर्तित हो जाती है (देखें 'शोक' अध्याय के अन्तर्गत 'करुणा' शीर्षक)। वस्तुत: ये सब कथन दुहरा कार्य करते हैं। एक ओर तो ये व्यक्ति के आन्तरिक धैर्य और सन्तोष का प्रकाशन करते हैं दूसरी ओर श्रोता के हृदय में भी यही भाव उत्पन्न करते हैं।

१.२.१३ सुखात्मक भावों में अन्य प्रमुख भाव हैं -- निर्वेद, श्रम और परिहास । `निर्वेद ` तथा `श्रम ` का अध्ययन `निर्वेद ` शीर्षकके अन्तर्गत है तथा परिहास या हास्य का `हास्य ` शीर्षक के अन्तर्गत । इनके अतिरिक्त प्रेम के ही समानान्तर किन्तु उससे भिन्न वात्सल्य भाव है । इसका अध्ययन `वात्सल्य ` शीर्षक से एक पृथक् अध्याय में किया गया है ।

१.३ दु:खात्मक भाव

दु:खात्मक भावों की संख्या सुखात्मक भावों की अपेक्षा कहीं अधिक है और यह स्वाभाविक भी है । अध्ययन की दृष्टि से इनका गौणता एवं प्रधानता के आधार पर वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है न कि ही कोई क्रम निर्धारित किया जा सकता है क्योंकि मूलत: सब भाव एक ही हैं । वाचिक या भाषागत अभिव्यक्ति की दृष्टि से तो ये परस्पर अन्योन्याश्रित हैं अत: इस मिश्रण में भी प्रधान मन:स्थितियों को लेकर प्रत्येक की व्याख्या एवं वाचिक अभिव्यक्ति को देने का यत्न किया गया है ।

१.३.१ खेद

खेद को वस्तुत: मानसिक कष्ट या दु:ख का बहुत ही हल्का रूप माना गया है । यदि हमसे कोई साधारण छोटी-मोटी अनुचित बात हो जाय तो हमें प्रकाश्य रूप में अपना खेद प्रकट भी करना पड़ता है । राह चलते किसी को ठोकर लगा देने पर अथवा हानि पहुंचाने पर तुरन्त क्षमा प्रार्थना के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है । स्पष्ट स्वीकारोक्ति ही इसकी वाचिक अभिव्यक्ति है जैसे -- मुझे बहुत दु:ख है, मैं लज्जित हूं, क्षमा कीजियेगा । इस प्रकार के वाक्य अंग्रेज़ी भाषा एवं सभ्यता के अनुकरण पर हिन्दी में आये हैं । अपने द्वारा वास्तव में किसी का नुकसान हो जाये पर खेद की अभिव्यक्ति कुछ भिन्न रूप में होती है -- क्या करूं कहूं.... अब मैं क्या कहूं.... मैं क्या कह सकता हूं .... कह ही क्या सकता हूं । मैं कैसे कहूं..... । मेरा कुछ कहने का मुंह नहीं रह गया है । इन कथनों के साथ ही अपने निरपराध सिद्ध करने का प्रयत्न भी रहता है -- देखिये मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं था, मैं तो आपके साथ ऐसा करने की सोच भी नहीं सकता था, पता नहीं ऐसा कैसे हो गया, मैं आपको मुंह दिखाने योग्य भी नहीं रह गया । यदि हानि या कष्ट

भविष्य में होने वाला हो अथवा होने की संभावना हो तो अभिव्यक्ति का रूप कुछ इस प्रकार होगा --`मुझ पर विश्वास रखिये, मैं अपनी सामर्थ्य भर प्रयत्न करूंगा, आपकी हानि नहीं होने दूंगा ।`

किसी को अशुभ समाचार सुनाने के पूर्व या ऐसा कोई कार्य करने से पूर्व जिसके द्वारा श्रोता को कष्ट पहुंचने की संभावना हो लोग औपचारिकतावश कह देते हैं -- क्षमा करियेगा... मैं आपको एक अशुभ समाचार देने जा रहा हूं या माफ़ कीजियेगा, क्या मैं आपकी यह पुस्तक देख लूं ।

खेद की अभिव्यक्ति दो रूपों में होती है -- वास्तविक एवं कृत्रिम । कृत्रिम अभिव्यक्ति में उपर्युक्त एवं इसी प्रकार के अन्य वाक्य आते हैं किन्तु वास्तविक खेद इनके अतिरिक्त कंठस्वर के माध्यम से भी व्यक्त होता है । कभी तो कंठ स्वर को अत्यन्त नम्र एवं कोमल बना कर सप्रयास खेद व्यक्त किया जाता है तो कभी अनायास हृदय का पश्चाताप वाणी के माध्यम से झलक उठता है ।

१.३.२ ताप अथवा परिताप (sorrow)

लोक व्यवहार में प्राय: यह ऐसे साधारण एवं हल्के दु:ख का वाचक है जो मनुष्य को चिन्तित करता है । इस दृष्टि से यह साधारण खेद का कुछ बढ़ा हुआ रूप है । दैनिक जीवन की साधारण समस्यायें एवं भूलें इसे उत्पन्न करती हैं । अभिव्यक्ति भी साधारण कथन के रूप में होती है -- ओह मैं तो घड़ी लाना भूल गया, आज कहीं बस न छूट जाय, कहीं मेरा पर्स न खो जाये, बिजली का बिल अभी तक नहीं दिया गया कहीं उसका समय न निकल जाय, महीने की पच्चीस तारीख है और मैं सारा रुपया खर्च कर दिया तथा इसी प्रकार की हल्की चिन्ता और आशंका के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है । इस श्रेणी में आये चिन्ता और आशंका का निवारण व्यक्ति की सामर्थ्य के अन्दर रहता है और वह ज़रा-सा प्रयत्न करके इनसे मुक्ति पा सकता है ।

१.३.३ पश्चाताप

इससे एक स्तर आगे पश्चाताप (remorse) की स्थिति आती है । यह किसी गलत कार्य को करने के बाद होने वाला दु:ख या ताप है । किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में इसका अर्थ कुछ और विकसित हो गया है । संस्कृत का

अनुताप इसका पर्याय एवं हिन्दी का पछतावा इसी का विकृत रूप है -- मैंने यह कार्य क्यों किया है, मैं बहुत मूर्ख हूं, मैं क्या मूर्खता कर बैठा, मैं बहुत नालायक हूं, मुझ-सा अनाड़ी और कौन होगा -- आत्म-भर्त्सना के रूप में उसकी अभिव्यक्ति होती है। इसमें दु:ख की मात्रा अधिक नहीं होती है। बस अपनी मूर्खता या अनाड़ीपन पर शोक होता है। मैंने ऐसा न करके ऐसा किया होता, काश मैं ऐसे करता तो यह कार्य इतने अच्छे ढंग से हो सकता था। यह भाव से अधिक एक विचार प्रक्रिया मात्र है। अभिव्यक्ति में आयु एवं लिंग की भिन्नता के कारण कोई अन्तर नहीं आता है।

१.३.४ मनस्ताप

पश्चाताप का कुछ अधिक तीव्र रूप मनस्ताप (repentance) है। जब हम कोई बड़ा अपकृत्य करते हैं अथवा धार्मिक, नैतिक आदि दृष्टियों से अपने को बहुत नीचा गिरा हुआ समझते हैं। इसके फलस्वरूप विचारों में बहुत कुछ शुभ परिवर्तन होता है। शाब्दिक रूप में मनस्ताप एवं पश्चाताप की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार होगी --`कसम खाता हूं, कान पकड़ता हूं, प्रतिज्ञा करता हूं, मैंने तो तौबा की, भूल से भी नाम नहीं लूंगा, मर जाऊंगा पर फिर ऐसा कार्य नहीं करूंगा।`

१.३.५ ग्लानि

ग्लानि (guilt feeling) इसी मनस्ताप का अपेक्षाकृत अधिक भावात्मक एवं संवेदनात्मक रूप है।[१] ग्लानि की अभिव्यक्ति में आत्मभर्त्सना रहती है और बहुत तीव्र मात्रा में होती है। किन्तु आत्मभर्त्सना एवं आत्मग्लानि में मात्रा तथा रूप भेद है। यह भेद तो शोक अथवा दु:ख का संचारी बन कर आता है दूसरी ओर घृणा के साथ आत्मघृणा के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है। दोनों स्थानों पर इसका रूप भिन्न भिन्न होता है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से तो यह अन्तर बहुत ही सूक्ष्म रहता है। ग्लानि के दोनों ही रूपों में स्वयं अपनी प्रताड़ना एवं अपने

१- **Guilt feeling -- According to Psychoanalysis, tension, existing between the ego and supper-ego in the psychology of religion (Starbuck,1899) the sense of sinfullness which leads to conversion - Page 153,**

--Dictionary of Psychology.

कर्मों पर पश्चाताप रहता है। जब इन दुष्कर्मों को करने पर व्यक्ति को बाहरी प्रताड़ना या तिरस्कार भी मिलता है तो आत्मग्लानि के साथ-साथ दु:ख भी होता है और जब दुष्कर्मों के लिए किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक दण्ड नहीं मिलता तो आत्मग्लानि के साथ-साथ अपने से घृणा भी होती है। एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। यदि कोई व्यक्ति किसी की हत्या कर देता है और उसके लिये उसे मृत्युदण्ड मिलता है तो उसे दु:खपूर्ण आत्मग्लानि ही होगी कि मैंने इतना बड़ा कुकृत्य किया, मैं अपराधी हूं। समाज की घृणा का पात्र हूं, समाज मुझे खूनी समझता है, मुझे उचित दण्ड ही मिल रहा है। किन्तु यदि हत्या करने के पश्चात् भी लोगों का उस पर शक न जाये और उसे निरपराध ही समझें और अपनी आंखों के सामने मृत व्यक्ति की पत्नी एवं बच्चों का दारुण दु:ख देखता रहे तो उसे जो आत्मग्लानि होगी उसमें आत्मघृणा की मात्रा बहुत अधिक होगी -- मैं पापी हूं, मैं राक्षस हूं, मेरे कारण कितने प्राणियों का जीवन नष्ट हो गया, मुझे डूब मरना चाहिए। --

-- छि: कायर, उसका हृदय उसे बार-बार धिक्कारने लगा। किसी के डगमगाते चरण.... व्यर्थ ही नारी जाति को बदनाम किया, छि: धिक्कार है तुझे।

(पृष्ठ २४५ `डगमगाते चरण` सौभावीरा)

साधारणत: शोकपूर्ण आत्मग्लानि -- मैं अभागा हूं, मैं भाग्यहीन हूं, मैं अनाथ हूं, मनहूस हूं, मूर्ख हूं आदि के रूप में और घृणापूर्ण आत्मग्लानि -- मैं पापी हूं, मैं अपराधी हूं, मैं समाज का कलंक हूं, दानव हूं आदि के रूप में होती है।

यह अन्तर व्यक्ति की प्रकृति एवं परिस्थिति पर भी निर्भर ~~करता~~ करता है। किसी ~~निर्दोष~~ निर्दोष व्यक्ति को प्रताड़ना मिलने पर आत्मग्लानि होगी किन्तु दोषी को प्रताड़ना मिलने पर घृणायुक्त आत्मग्लानि होगी। निर्दोष की ग्लानि में अतिरिक्त विषाद रहता है -- आह मुझे लोग बुरा समझते हैं।

-- आह माता आज तुम्हारा लाड़ला बेटा आवारा कहा जा रहा है।

(पृ० ६१ `निर्मला` प्रेमचन्द)

-- मैं इस योग्य भी नहीं कि इस घर में रह सकूं।`

-- यह ~~सोचते-सोचते~~ सोचते-सोचते मन्साराम अपार वेदना से फूट-फूट कर रोने लगे।

(पृष्ठ ६१ `निर्मला` प्रेमचन्द)

-- निर्मला मूर्छित खड़ी रही मानो संज्ञाहीन हो गयी हो । चले गये ? घर में आये तक नहीं, मुझसे इतनी घृणा ।

(पृ० ७३ 'निर्मला' प्रेमचंद)

अन्य भावों की भांति ग्लानि का प्रभाव भी शरीर पर पड़ता है । साधारणत: दु:ख या शोक के समस्त शारीरिक अनुभाव ग्लानि के भी होते हैं किन्तु कुछ विशिष्ट और भिन्न भी होते हैं । निम्न उद्धरण ग्लानि के प्रमुख शारीरिक अनुभावों को व्यक्त करते हैं --

-- कन्फेशन के बाद उसे पाप मुक्ति देकर फादर जब अपने क्वार्टर में आये तो उनका सिर दर्द कर रहा था और सारा शरीर कांप रहा था । लग रहा था कि वे कोई अपराध करके आये हों ।

('अपराधी' मोहन राकेश , नवनीत, दिसंबर(६१)

-- उसका मुंह पसीने-पसीने हो गया । वह चाहता था कि इन लहू की बूंदों के साथ मैं भी धरती में समा जाऊं और उसके साथ ही अपनी आंखें भी भूमि में गड़ा रक्खा था ।

('बुद्धू का कांटा' गुलेरी जी)

साधारणत: रुदन के रूप में ग्लानि व्यक्त होती है ।

-- थोकदार की मुट्ठियां ऐसे खुल गयी जैसे बिच्छु ने डंक मार दिया हो । खार की गिट्टियों के साथ चार आंसू भी आंगन के पथरौटे पर गिर पड़े ।....

('पुरखा', पृष्ठ ८१, शैलेश मटियानी, नवनीत, नवंबर(६६)

---हेमन्त ने अपनी आकृति माधवी के हाथों से छुड़ा ली । इस पर माधवी कुछ कह न सकी उसका सिर झुक गया और आंखों से आंसू निकल आये ।

(पृ० २२ 'प्रत्यावर्तन' 'युगल, धर्मयुग, १२ दिसंबर ६५)

ग्लानि की अभिव्यक्ति अधिकतर साधारण कथन के रूप में होती है । मात्रा की वृद्धि के साथ-साथ इसमें आवेश भी सम्मिलित हो जाता है । आवेश सम्मिलित होने पर शोकपूर्ण उन्माद की भांति ही इसकी अभिव्यक्ति होती है । साधारण रूप में -- मैं गरीब हूं । मैं भाग्यहीन हूं, मेरे भाग्य बड़े खराब हैं आदि कह कर ग्लानि व्यक्त होती है । अपने को भाग्यहीन घोषित करके अपनी भर्त्सना घोषित करके, आदि कई रूपों में ग्लानि व्यक्त होती है ।

-- "जब से तुम आये हो तुम्हारी बातों से यही लग रहा है -- लौट जाऊं... चला जाऊं.... यह अन्तिम अवसर है ?.. हां । मई मुझ अभागिन से स्नेह क्यों रखोगे ।"

(पृ० १३ ढलती धार्र ' सोमावीरा')

रंजन : (ऐसे स्वर में जिसमें विषाद की झलक स्पष्ट है) मैं क्या देखूं भाई। मैं तो पत्थर की बट्टी हूं। किसी ने अपना लिया तो सालिगराम नहीं तो पत्थर का पत्थर।

(पृ० ८१, `रोशनी` रेवतीसरन शर्मा)

ग्लानि की मात्रा की वृद्धि के साथ-साथ आवेश की मात्रा भी बढ़ती जाती है। इस आवेश की अभिव्यक्ति किसी सीमा तक शरीर के माध्यम से होती है। किसी हाथ की वस्तु को पटकना या मसलना, अपने बाल उखाड़ना, सर पृथ्वी पर पटकना, सिर पर हाथ मारना, ओंठ चबाना, अपने मुंह पर चांटे मारना आदि ग्लानि की शारीरिक अभिव्यक्ति हो सकती है।

-- डा० रुद्र : लेकिन श्रीमती रत्ना, आप यह क्यों नहीं सोचती कि इस बात से मेरे नाम को कितना धक्का लगेगा। डा० रुद्र बुरी तरह परीक्षण में फेल हुए (फूलदान से एक फूल लेकर हाथ में मसलते हुए) संसार के लोग क्या कहेंगे -- डा० रुद्र पागल है। डा० रुद्र मूर्ख है।

(अचानक तीव्र संगीत उठता है)

-- मैं कलंकी हूं मेरी तरफ मत बढ़ो। चले जाओ, मैंने पाप किया है, हट जाओ, जाओ ....हा.... हा.....हा मैं पापिन हूं। (अचेत हो जाती है)

(`मन के कोने` शिवशंकर वशिष्ठ, ध्वामल्ल कार्य०)

दूसरों के समक्ष क्षमायाचना करके भी अपनी ग्लानि का प्रदर्शन होता है। इस प्रकार क्षमा मांग कर व्यक्ति अपराधी भाव से मुक्त हो जाता है। मैं लज्जित हूं, मैं शर्मिन्दा हूं, मुझे बहुत पश्चाताप है, मुझे बहुत ग्लानि है, मैं पृथ्वी में गड़ जाऊं, डूब मरूं, मुंह में कालिख लगा कर डूब मरूं, जमीन में गड़ जाऊं, जमीन फट जाये और मैं उसमें समा जाऊं, मेरी ज़बान कट जाये, मेरे मुंह में खाक, मेरे हाथ क्यों न टूट गये, आदि।

जीवन : (रुद्ध कंठ से) मुझे क्षमा कर दो। मैंने तुम लोगों के श्रम को ठुकराया है (टहलता हुआ) कितना अभागा हूं मैं.... कितना अभागा। मेरे रहते तुम लोगों को पेट भरने के लिए काम करना पड़ा (सिसक कर) मैं पुरुष होकर भी अपंग हूं और तुम.... तुम....

(पृष्ठ ५५ `ईमान का सौदा` विष्णुप्रभाकर)

ग्लानि की अधिकता मृत्यु कामना के रूप में व्यक्त होती है। -- मैं मर जाऊं तो अच्छा है, मेरा जीवन किस काम का है, मुझे मर जाना चाहिये, मुझे चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए।'

कलाकार : (कांप कर) तो... तो तुम मुझे जानते हो। हां कल शाम मेरे माई बहन का विवाह था। लेकिन... लेकिन हट जाओ... मेरे रास्ते से हट जाओ। मैं मरूंगा, अवश्य मरूंगा। (पृ० ६७)

कलाकार : नहीं मेरा जीवन व्यर्थ है। एक मार है, मैं उसका अन्त कर दूंगा। .... मैं जी कर क्या करूंगा। कौन मेरी देखमाल करेगा ? कौन मुझे अपना कहेगा ?

(पृ० ६५ 'संपेरा', विष्णु प्रभाकर)

उपर्युक्त उद्धरणों में स्पष्ट रूप से अपने दोषों और दुर्बलताओं का उल्लेख करके ग्लानि प्रकट की गयी है। प्राय: किसी कार्य के करने में अपनी असमर्थता प्रकट करके अथवा कार्य की असफलता बता कर भी ग्लानि की अभिव्यक्ति होती है। अर्थात्,उपर्युक्त शैली प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की है जबकि प्रस्तुत अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की -- मैं असमर्थ हूं या अयोग्य हूं न कह कर मुझसे यह कार्य नहीं हो सकता। यह कार्य मेरी कार्यक्षमता से अधिक कठिन है कहना।

--- मैं न कुछ कह सकी, रोक ही सकी न हाय।
उन्हें इस कार्य से अकार्य से विमूढ़-सी --- उदयशंकर भट्ट

भाग्य अथवा नियति को दोषी मानकर या प्रधान मानकर भी ग्लानि प्रकट होती है --

-- शापित-सा मैं जीवन का यह ले कंकाल भटकता हूं।
उसी खोखलेपन में जैसे कुछ खोजता अटकता हूं।। --- प्रसाद

१.३.६ दैन्य

दैन्य भी तैंतीस संचारियों में एक है। इसमें आत्मग्लानि के साथ-साथ आत्महीनता का भाव भी सम्मिलित रहता है। भरत ने इसे दो प्रकार का माना है। आगंतुक एवं स्वभावजन्य। यह कई दु:खात्मक भावों के साथ उप भाव के रूप में आता है। शोक एवं भय दोनों में ही दैन्य रहता है किन्तु दोनों का रूप भिन्न-भिन्न होता है। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार भाव के प्रत्यक्ष संबंध से संचारियों के रूप में इन मानसिक अवस्थाओं की जहां अभिव्यक्ति होती है वहां उनमें

प्रधान भावों के प्रभाव से बहुत कुछ वेग आ जाता है और भय के कारण जो दैन्य होगा वह इतना प्रबल होगा कि मानापमान का भाव बिलकुल दबा रहेगा और दीनता दिखलाने वाला व्यक्ति दस व्यक्तियों के सामने भी हाथ जोड़ेगा, गिड़गिड़ायेगा और अपने को तुच्छातितुच्छ बतायेगा । ऐसे स्थानों पर ध्यान प्रधानत: भय की ओर ही रहेगी । इसी प्रकार भक्ति के उद्रेक से अर्थात् पूज्य के अलौकिक महत्व के ध्यान में लीन होने से अपनी लघुता की अनुभूति भी सुखद हो जाती है। अत: वह व्यक्ति को एक प्रकार की आन्तरिक शक्ति देता है । शोकपूर्ण दैन्य में अपनी दुर्बलता का ज्ञान वह आत्महीनता पैदा करता है और इस आत्महीनता की अभिव्यक्ति दूसरों के समक्ष अनुरोध प्रार्थना, आग्रह के रूप में होती है । व्यक्ति का अहं इसे स्वीकार नहीं कर पाता फलस्वरूप दु:ख होता है । शोकपूर्ण दैन्य की अभिव्यक्ति चेतन स्तर पर होती है, व्यक्ति जानते हुए भी दूसरों के समक्ष हीन बनता है किन्तु भय में दैन्य की अभिव्यक्ति स्वयं यान्त्रिक रूप से हो जाती है । इस समय व्यक्ति संकट से इतना आक्रान्त रहता है कि उसका ध्यान अपने हीनता प्रदर्शन की ओर जाता ही नहीं । (इस का विस्तार `शोक` अध्याय के अन्तर्गत `भय-शोक` शीर्षक में है।)

दैन्य की वाचिक अभिव्यक्ति में भय एवं शोक दोनों की कंठस्वरगत विशेषतायें मिलती हैं । शारीरिक अभिव्यक्ति भी लगभग समान ही होती है । किन्तु कुछ अतिरिक्त प्रतिक्रियायें भी होती हैं जैसे -- रोना, गिड़गिड़ाना, पैर पकड़ना, सिर झुकाना, आँखें झुकाना, कान पकड़ना आदि शारीरिक अनुभाव भी हैं । अनुभवों से मलिन पर आँसुओं से उजली उनकी दृष्टि पल भर को उठीं फिर कांसे के फूल जैसी बरौनी वाली पलकें झुक आयीं । न जाने व्यथा के भार से न जाने लज्जा से ।'

(पृ० ५८ `अतीत के चलचित्र` महादेवी वर्मा)

अपने अभावों, कमजोरियों का स्पष्ट यह कथन या वर्णन भी दैन्य के अन्तर्गत आता है -- मैं भाग्यहीन हूं, मैं निर्धन हूं, इस संसार में अकेला हूं आदि ।

-- वह मुंहबाली पनीली आँखों से देख भर्राये स्वर में बोली, "हम लोग गरीब भी तो हैं ।"

(पृ० ५८ `दायरे`, रांगेय राघव)

शिशु में दैन्य का अभाव रहता है । किन्तु बाल्यावस्था से यह भाव आरम्भ हो जाता है । एक छोटा बच्चा संकटपूर्ण स्थितियों में अनुरोध और प्रार्थना करता है, भले

ही उसमें दैन्य कम आग्रह अधिक होता है। आत्महीनता का भाव पूर्व बाल्यकाल के पश्चात् जागृत होता है। अभिव्यक्ति की शैली लगभग वही रहती है जो वयस्क की रहती है।

दैन्य भाव के समकक्ष ही एक भाव अवहित्था है। अवहित्था का अर्थ आत्म-करुणा है। दैन्य एवं आत्मग्लानि के दोनों भावों का मिश्रण इसमें रहता है। साधारणत: इसकी प्रत्यक्ष वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती है। दूसरी बात की चर्चा करना, अन्य दिशा में देखना, बीच में बात कहना, स्वयं को दूसरे की दृष्टि से बचाने आदि के रूप में व्यवहार के साथ इसकी अभिव्यक्ति होती है।

१.३.७ <u>पीड़ा</u>

किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट, चोट, भूख, दर्द, मार आदि पीड़ा का कारण होती है। शरीर के किसी भाग में लगी चोट व्यक्ति को व्याकुल कर देती है और वह कंठस्वर के माध्यम से अपनी पीड़ा व्यक्त करता है। धीमा विलम्बित कंठस्वर, विकृत अस्पष्ट कंठस्वर पीड़ा को व्यक्त करता है। वस्तुत: पीड़ा मानसिक स्थिति से अधिक शारीरिक स्थिति है अत: कंठस्वर के प्रभाव को निश्चित नहीं किया जा सकता। कभी-कभी कंठस्वर बहुत तेज़ और कभी बहुत मन्द हो जाता है। पीड़ा की शारीरिक अभिव्यक्ति के लिये -- दर्द के मारे ऐंठना, चेहरा पीला पड़ना, दांतों से ओठ दबाना, आंखें फटना आदि संकेत दिये जाते हैं। कुछ शब्दों या वाक्यों का प्रयोग यान्त्रिक रूप से व्यक्ति करता है जैसे ओह, हाय, उफ, आह आदि। स्त्रियां अपेक्षाकृत अधिक कोमल होती हैं अत: इन स्थितियों में उनकी वाचिक अभिव्यक्ति कुछ अधिक ही होती है। जैसे हाय मरी, ओ मा, ओ री मा, हाय भगवान, हे ईश्वर आदि। गंवार स्त्रियां -- हाय दैय्या, हाय मैय्या, ओ मैय्या, ओ मइया, बप्पा हो आदि भी कहती हैं। बच्चे केवल रोकर पीड़ा व्यक्त करते हैं। यदि कुछ बड़े हुए तो माता एवं पिता का पुकार कर रोते हैं। पुरुषों की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत सीमित रहती है। वे असह्यनीय पीड़ा होने पर अधिक से अधिक ओफ, ओह आदि विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग करते हैं।

इसी प्रकार शरीर के किसी अंग में पीड़ा होने पर भी स्त्रियां एवं बच्चों की अभिव्यक्ति अधिक मुखर होती है। स्त्रियां हाय राम, हे भगवान, अब नहीं सहा

जाता, मर जाऊंगी, प्राण निकल रहे हैं, अरे क्या बिगाड़ा था प्रभु, आह बहुत दर्द है आदि उद्गार व्यक्त करती हैं। बच्चे 'दर्द हो रहा है', 'बहुत दु:ख रहा है' आदि कह कर रोते हैं। पुरुषों की अभिव्यक्ति यहां भी बहुत सीमित होती है। आह, ओह, उफ या अधिक तक 'हे ईश्वर' या 'ओ भगवान' तक।

यदि पीड़ा आकस्मिक रूप से मिलती है अर्थात् आघात या दंश के रूप में तो स्त्री एवं पुरुष दोनों की अभिव्यक्ति लगभग एक-सी हो जाती है। बच्चे तो उस स्थिति में केवल चीख कर रोते ही हैं। बड़ों की अभिव्यक्ति में कुछ सीमित कथनों, शब्दों एवं वाक्यों की आवृत्ति ही बार-बार मिलती है जैसे बचाओ, मार डाला, निर्दयी ने जान ही ले ली, आह मुझे कोई बचाओ, आदि।

भूख लगने अथवा प्यास लगने पर जो शारीरिक पीड़ा होती है उसकी स्पष्ट वाचिक अभिव्यक्ति होती है। जैसे बहुत भूख लगी है, अब भूख सही नहीं जाती, भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हैं, भूख से आंतें कुलबुला रही हैं, पेट में चूहे कूद रहे हैं, भूख से पेट पीठ दोनों एक हो रहे हैं, भूख के मारे प्राण गले में आ रहे हैं, प्यास से गला सूख रहा है, गले में कांटे से चुभ रहे हैं आदि।

१.३.८ कष्ट

पीड़ा की भांति एक भाव कष्ट भी है। कष्ट (distress, trouble) मुख्यत: शारीरिक होने पर भी मानसिक है। कष्ट शब्द संस्कृत कष् धातु से बना है जिसका अर्थ होता है कसना, दबाना या रगड़ना। साधारण शारीरिक पीड़ा से इसकी अनुभूति कुछ भिन्न होती है जैसे बुढ़ापे में शारीरिक अशक्तता के कारण हुई पीड़ा, जोड़ों का दर्द, दृष्टि की निर्बलता, श्रवणशक्ति की निर्बलता, आदि इसी के अन्तर्गत आयेगी। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक असुविधा कष्ट को जन्म देती है। इसकी पीड़ा से अलग वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती है (केवल स्पष्ट कथन के रूप में जैसे बड़ा कष्ट है, सहा नहीं जाता आदि। वृद्धावस्था में उठते-बैठते कहे गये वाक्य भी इसी के अन्तर्गत आते हैं जैसे -- हे ईश्वर अब तो उठा ले, हे राम अब तेरा सहारा है, बुढ़ापे में तो प्राण ले लिया, आदि।

कष्ट या परेशानी की अभिव्यक्ति स्पष्ट कथनों के माध्यम से ही अधिक होती

है -- मुझे बहुत कष्ट है, बहुत कष्ट में हूं, किसी तरह समय कट रहा है, बड़ा बोझ है, बड़ी परेशानियां हैं,आदि । भोजन का अभाव, आवास का अभाव, आराम का अभाव तथा अन्य दैनिक शारीरिक आवश्यकताओं इसी प्रकार के कष्ट के अन्तर्गत आता है। स्पष्ट रूप से अभावों का कथन भी कष्ट की अभिव्यक्ति है -- बहुत तंगी में हूं, पैसे पैसे के लिये तरस रहा हूं, दाने दाने का मोहताज हूं,आदि ।

१.३.६ यन्त्रणा

बहुत अधिक शारीरिक तथा मानसिक कष्ट का सूचक है,यन्त्रणा (torture) । इसी का एक शब्द रूप और है -- यातना (torment)। यंत्रणा की तुलना में यातना मुख्यत: मानसिक होती है । पीड़ा एवं कष्ट की अपेक्षा यह भाव कहीं गहरा और आवेशहीन होता है । अत: वाचिक अभिव्यक्ति सीमित रूप में होती है । यंत्रणा एवं यातना मिलने पर व्यक्ति में स्वयं अपने प्रति करुणा का भाव जागृत होता है -- मैं कितना दीन हीन हूं, कितना अशक्त हूं कि लोग मुझे सता रहे हैं, मैं बिना अपराध के सताया जा रहा हूं, बिना अपराध के दण्ड पा रहा हूं, अपराध दूसरे व्यक्ति करते हैं और दण्ड मुझे मिल रहा है । मेरा कोई अपना नहीं है जो मुझे इससे बचा ले । मैं अनाथ हूं, कोई मेरे आंसू पोंछने वाला नहीं है । कोईधैर्य बंधाने वाला नहीं है, कोई मेरा दर्द बंटाने वाला नहीं है, कोई मेरे लिये ईश्वर से प्रार्थना करने वाला नहीं है,आदि । तथापि इस प्रकार के भाव किन्हीं विशेष अवसरों पर ही व्यक्त होते हैं । जब व्यक्ति की भावनाओं को ठेस लगती है तो वह यह सब सोचता है और जब सहा नहीं जाता तो स्वगत-कथन या किसी सहृदय के समक्ष इन्हें व्यक्त कर देता है ।

यंत्रणा या यातना के भाव की परिणति व ईश्वरोपालम्भ, भाग्य पर दोषारोपण के रूप में होती है -- । प्राय: इसमें और शोक या विषाद की वाचिक अभिव्यक्ति में कोई अन्तर नहीं होता है । किसी व्यक्ति को यदि ऐसी परिस्थिति में पड़ना पड़े कि साधारण-सी समस्या भी उसके लिये भयानक हो जाये तो वह यही सोचेगा कि मैं कितनी बड़ी उलझन में हूं, कितने बड़े संकट में फंस गया हूं, मैंने तो कोई अपराध नहीं किया था, ईश्वर मुझे क्यों सता रहा है। ईश्वर अन्धा है,अन्यायी है (ईश्वर के स्थान कोई अन्य व्यक्ति या शक्ति भी हो सकती है) मैंने उसका क्या

बिगाड़ा था आदि । प्राय: स्वगत कथन के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है ।

यंत्रणा या यातना यदि शारीरिक होगी तो लगभग वही अभिव्यक्ति होगी जो पीड़ा की होती है । यह स्थिति पीड़ा की अपेक्षा बहुत तीव्र होती है और किसी के द्वारा चेतन रूप से सप्रयास दी जाती है । चीख़, आर्तनाद एवं रुदन के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है । यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है,यदि यंत्रणा एवं यातना का कारण अपना कोई अपराध हो तो पीड़ा की अभिव्यक्ति के साथ-साथ आत्मग्लानि एवं आत्मभर्त्सना भी व्यक्त होती है ।

१.३.१० दुखात्मक भावों के अन्तर्गत एक वर्ग है --`शोक`,`क्लेश`,`व्यथा`,`सन्ताप`, `वेदना`,`विषाद` का है । इन मन:स्थितियों में दु:ख के विभिन्न रूप हैं जो विभिन्न परिस्थिति एवं सन्दर्भ में होते हैं । इनका विस्तार `शोक` शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत है । इसी श्रेणी में इससे कुछ भिन्न एक भाव है,त्रास । इसमें दु:ख के साथ भय का समावेश भी रहता है । ~~इसका उल्लेख~~ `शोक` एवं `भय` दोनों अध्यायों में प्रधान भाव के साथ इसके भिन्न-भिन्न रूपों का विश्लेषण है ।

१.३.११ `भय`,`डर`,`भीषिका`,`आतंक` कुछ अन्य दु:खात्मक भाव हैं जिनमें शोक की अपेक्षा भय अधिक प्रधान रहता है अत: इनका विस्तार `भय` शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत है ।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य भाव हैं जिनमें दु:ख एवं भय लगभग समान रूप में उपस्थित रहता है । उनमें से जिनका रूप दोनों भावों के सन्दर्भ में भी पूरा स्पष्ट नहीं हो पाया, उनका विस्तार यहाँ दिया जा रहा है ।

१.३.१२ चिन्ता

मानव बुद्धि के विकारग्रस्त, विषादमय, कुण्ठित रूप से उत्पन्न खेद का नाम चिन्ता है । यह मस्तिष्क की वह अवस्था है जब मनुष्य अपने लाभ तथा उन्नति के स्थान पर भय, कुढ़न, शक्तिहीनता, परिस्थिति की विषमता एवं दैन्य का अनुभव करता है । चिन्ता को संचारी भावों के अन्तर्गत माना गया है । तथापि यह क्यों ? और `कैसे ?` दो केन्द्र बिंदुओं तक उलझी हुई मानसिक प्रक्रिया है । शुक्ल जी ने चिन्ता को रागात्मिका वृत्ति न मानकर बोध वृत्ति माना है । भरत के अनुसार चिन्ता काल में आशा, निराशा, शंका, ईर्ष्या, आदि अन्य भाव भी

आते रहते हैं । चिन्ता की भाषागत अभिव्यक्ति तर्क-वितर्क के रूप में होती है । समस्या या बन्धन के प्रति एक प्रकार की विकलता और अकुलाहट का भाव रहता है । चिन्ता का शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है किन्तु बोध वृत्ति होने के कारण कंठस्वर पर अपेक्षाकृत कम -- रघुनन्दन चौबे की चिन्ता में कभी अन्दर कभी बाहर घूम रहा था । उसके माथे की सिकुड़न उमड़ आयी थी । चिन्ता और थकावट के कारण उसके शरीर का रंग पीला पड़ गया था ।

(पृ० २०५,लोक-परलोक,उदयशंकर भट्ट)

-- वह हाय करके बैठ गया । बड़ी देर तक ठण्डी साँसे भरता रहा । उस दिन न उसने दूध पिया और न बादाम ही खाया । बड़ी देर तक चिन्ता में डूबा रहा । कई बार उसने बड़ी सर्द आहें भरीं फिर कई अंगड़ाईयां लीं । माथे पर बहते पसीने को पोंछा । भगवान का नाम लिया... हे राम... हे भगवान... हे प्रभु का उच्चारण किया ।"

(पृ० ६३० ,खाली कुर्सी की आत्मा" ,लक्ष्मीकांत वर्मा)

-- चिन्तामग्न राजा घूमता है उपवन में
होकर विदेह-सा बिसार आत्म चेतना
बन्द हुई आँखें, शिथिल शरीर भी -- वियोगी

शरीर पीला पड़ना, माथे की नसें उभरना, मुंह सूखना, ठण्डी आहें भरना, पसीने में डूबना, शरीर शिथिल होना, आँखें बन्द करना, सिर पर हाथ रखना, आदि चिन्ता के अन्य शारीरिक अनुभाव हैं । कंठ स्वरगत विशेषतायें अधिक नहीं हैं -- चिन्तापूर्ण स्वर, चिन्तित स्वर आदि विशेषणों द्वारा इसे व्यक्त करते हैं । आवेश का सर्वथा अभाव होने के कारण स्वराघात एवं बलाघात संबंधी विशेषतायें नहीं मिलती हैं ।

वाक्यों में भी कोई विशेषता नहीं होती मात्र तर्क-वितर्क के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है जैसे -- चैन नहीं मुक्ति नहीं " । न कल्पना में न जीवन संघर्ष में । न पाप में न पुण्य में । न घृणा में न प्यार में । क्या करूं कहां जाऊं ।

(पृ० ७५"समिधा" , अनिता चट्टोपाध्याय)

-- क्या करूं, कैसे करूं, सब कुछ हुआ विपरीत जीवन
कूप पर आयी कलश ले नीर लेने हेतु जब मैं
घेर ले आये इन्हें अनजान में यमुना नदी तट ।

क्या करूं, कहां जाऊं, कैसे जाऊं, आदि कहां, क्यों, कैसे ` ही चिन्ता की वास्तविक अभिव्यक्ति है। यह अपनी समस्याओं के प्रति भी हो सकती है और उसका आलम्बन, कोई दूसरा व्यक्ति या वस्तु भी हो सकती है। इस प्रकार चिन्ता का आलम्बन मित्र अथवा शत्रु अपना या पराया कोई भी हो सकता है। आवश्यकता नहीं कि इसका रूप स्थित चिन्तन ही हो, अहित की भी चिन्ता हो सकती है।

कोई भी विचार, आशंका या बात यदि व्यक्ति की चेतना पटल पर बार-बार आती है तो चिन्ता का रूप धारण कर लेती है। और यदि यह आवृत्ति बहुत अधिक बार होती है तो सतिभ्रम या विभ्रम की स्थिति पैदा हो जाती है।

-- मां (एक गहरा नि:श्वास) नहीं आया... वह आज भी नहीं आया। गाड़ी आ चुकी है, मोटर आ चुकी है, तांगे आ चुके हैं। पर.... पर.... मैं.... मैं अभागिन आंखें बिछाये रही, कान लगाये सुनती रही.... हर आने वाला कोई दूसरा था .... आह... कैसी ? कैसी है यह उसकी माया ? क्यों इतना दु:ख होता है ? क्यों दर्द उसने दिया है ? क्यों ?... क्यों....

(नये पुराने, विष्णु प्रभाकर)

चिन्ता का स्थान मानस में होने के कारण वाचिक अभिव्यक्ति किन्हीं विशेष पर और सीमित कथोपकथन के रूप में ही होती है। वास्तव में यह मन:स्थिति प्रेषणीय नहीं होती| व्यक्ति इन्हें दूसरों तक पहुंचाना नहीं चाहता है अत: बहुत कम अभिव्यक्ति होती है। फिर इसमें आवेश का सर्वथा अभाव रहता है और यह एक लम्बे काल तक व्यक्ति के अन्दर विद्यमान रहती है। कभी-कभी दूसरे से सहानुभूति या सलाह लेने के लिये अथवा अपने दु:ख को हल्का करने के लिये व्यक्ति चिन्तापूर्ण मन:स्थिति को निम्न प्रकार के वाक्यों में व्यक्त करता है --

-- सारी रात आंखों में कट गयी, सारी रात नींद नहीं आई। नींद आंखों से उड़ गयी, तारे गिन-गिन कर रात काटी, मन बेकल हो रहा है, मन व्याकुल हो रहा है, मन आठों पहर सूली पर टंगा रहता है, मन उखड़ा-उखड़ा रहता है, मन भारी-भारी रहता है, मन नहीं लगता, मन बेचैन रहता है, मन टूटा जा जा रहा है, प्राण घुले जा रहे हैं, ज़िन्दगी दूभर हो गयी है, ज़िन्दगी बोझ बन गयी है, दिन भारी हो रहे हैं। पल को भी चैन नहीं मिलता है, सिर चिंता से फटा जा रहा है, यह बात सदा दिल में चुभती है, न उठते चैन न बैठते चैन,

पल भर भी ध्यान से नहीं उतरती, आदि ।

चिन्ता का कारण यदि भविष्य रहता है तो उसमें भय का मिश्रण भी हो जाता है । वर्तमान की चिन्ता तो मात्र उलझन होती है । चिन्ता यदि दु:ख और भय से बिलकुल असंपृक्त रहेगी तो शुद्ध मानसिक प्रक्रिया 'चिन्तन' का रूप धारण कर लेगी ।

चिन्ता का क्षेत्र बहुत विस्तृत है । सुखात्मक भाव, प्रेम, और वात्सल्य, के साथ भी इसका समावेश रहता है ।

१.३.१३ शंका-आशंका

शंका भय का ही वितर्क प्रधान रूप है जो आलम्बन के दूरस्थ होने पर प्रकट होता है । इसका प्रादुर्भाव या तो स्वतन्त्र रूप में होता है या भाव की स्थायी दशा में ।[१] जिस प्रकार भय लेशयुक्त, ऊहा, शंका कही जाती है उसी प्रकार 'हर्ष' लेशयुक्त ऊहा 'आशा' और 'विषाद' लेशयुक्त ऊहा नैराश्य को भी रख सकते हैं ।[२] शंका भविष्य को लेकर दुष्कल्पनाओं के साथ जो शंका व्यक्त होती है वह आशंका है । दोनों ही भावों में दु:ख के साथ-साथ भय भी रहता है । अत: इनका विस्तार यथास्थान 'भय' एवं 'शोक' अध्यायों के अन्तर्गत किया गया है । इसके अन्य क्रम संशय, संदेह, एवं अविश्वास हैं । ये सुखात्मक तथा दु:खात्मक दोनों हैं अत: इन्हें संकर भावों के अन्तर्गत रखा गया है ।

१.३.१४ मोह

मोह के दो अर्थ हैं, अन्धा प्रेम तथा मूढ़ता का भाव । शुक्ल जी के अनुसार मोह केवल दु:ख वेग की स्थिति में ही होता है । इसका अभिनय निश्चेष्टता गिरना, झुकना, ठीक ठीक देख न पाना, लड़खड़ाना आदि अनुभावों से किया जाता है । वास्तव में मोह में बुद्धि ज्ञानशून्य हो जाती है । इसी से एक स्तर आगे जाकर बुद्धि का संवेदनाशून्य होना जड़ता की स्थिति है । इसकी शारीरिक एवं वाचिक

१- पृष्ठ २१४, रस मीमांसा, रामचन्द्र शुक्ल ।

२- पृष्ठ २१५, वही ।

अभिव्यक्ति दु:ख के आवेग की भांति ही होती है। प्राय: कंठावरोध एवं विशृंखलता आ जाती है।

-- मुंशी जी ने कुछ जवाब नहीं दिया। लड़के की दशा देख कर आंखों से आंसू निकल आये।

(पृ० ८७, `निर्मला` प्रेमचन्द)

अल्लादीन की आंखें सहसा भीग उठी, उसने फ़खरू को गले लगा लिया।

(पृ० ५०, `हमने की रात`, राजेंद्रकुमार पाराशर)

-- शशीकान्त के सिर से पैर तक एक टीस कौंध गई। अचानक एकदम खुद को बड़ा कमज़ोर अनुभव करने लगा।

(पृ० ६५, `आख़िरी शाम`, विमल मित्र)

यह भाव पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक मिलता है। वाचिक अभिव्यक्ति असम्बद्ध प्रलाप के रूप में होती है।

मोह जन्य मूढ़ता, निरुत्साह, निष्क्रियता एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता के रूप में प्रकट होती है (इस रूप की व्याख्या `उत्साह` शीर्षक अध्याय में की गयी है)। प्रेमजन्य मोह `वात्सल्य` तथा `प्रेम` के अन्तर्गत आयेगा।

१-२.१५ जड़ता

भरत के अनुसार जड़ता की स्थिति तब होती है जब व्यक्ति इष्ट एवं अनिष्ट में भेद नहीं कर पाता। शुक्ल जी ने "भाव के उद्रेक से अन्त:करण की क्रिया का कुछ काल के लिए बन्द हो जाना" जड़ता माना है। बुद्धिमान्द्य को संवेग अर्थात् भय, शोक, संकोच, लज्जा और किसी मात्रा तक विस्मय में भी मिलती है। इसके अतिरिक्त किसी भी भाव की आकस्मिकता क्षणिक जड़ता उत्पन्न करती है। `भय`, `विस्मय` एवं `शोक` तीनों अध्यायों में यथास्थान इस पर प्रकाश डाला गया है।

कंठावरोध एवं कंठस्वर का भंग होना ही वाणी के क्षेत्र में जड़ता का प्रभाव है। केवल शरीर पर ही प्रभाव पड़ने के कारण एक प्रकार से यह मन:स्थिति इस क्षेत्र से बाहर है। केवल अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि में शारीरिक दशाओं का उल्लेख हो सकता है। जैसे --

-- मन्साराम स्तम्भित-सा खड़ा रहा, निर्मला मूर्तिवत खड़ी रही, मन्साराम हथेली पर गाल रखे अभी अनिमिष नेत्रों से भूमि की ओर देख रहा था मानो

उसका सर्वस्व जलमग्न हो गया हो । वह हतबुद्धि-सी खड़ी रही मानों संज्ञाहीन हो गयी हो ।

इसी प्रकार कुछ अन्य स्थितियां भी जड़ता व्यक्त करती हैं जैसे -- वह सन्न हो गया, मूर्छा-सी आने लगी, हाथ-पैर की शक्ति क्षीण हो गयी, टकटकी बांध कर देखना, अपलक दृष्टि से घूरना, गला बैठ जाना, सिर झुकाये बुत-सा खड़ा होना, सुन्न पड़ जाना, हाथ की वस्तु छूट कर नीचे गिर जाना, आदि ।

जड़ता उपर्युक्त भावों (भय, शोक, विस्मय) में आकस्मिकता का फल होती है किन्तु कभी-कभी नैराश्य अपने चरमोत्कर्ष पर जड़ता का रूप धारण कर लेता है । अभिव्यक्ति की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं आता ।

१.३.१६ उन्माद

जड़ता से ठीक विपरीत स्थिति उन्माद की होती है । उन्माद अपने आप में कोई भाव नहीं है । मात्र दु:ख के संवेग का तीव्रतम रूप है, अत: वाचिक अभिव्यक्ति वही होगी जो दु:ख के संवेग के तीव्रतम रूप की होगी । इसमें विवेक का पूर्णत: नाश हो जाता है । शोकपूर्ण उन्माद में संवेग के तीव्रतम रूप के साथ-साथ दु:ख देने वाले के प्रति आक्रोश भी व्यक्त होता है । ऐसी स्थिति में अभिव्यक्ति शोक और क्रोध का मिश्रित रूप होती है (विस्तार अध्याय 'शोक' में शोक-क्रोध शीर्षक के अन्तर्गत) ।

इसके अतिरिक्त किसी भी दु:खपूर्ण भाव व्यथा, क्लेश, पीड़ा, ग्लानि का आवेग अपने तीव्रतम रूप में 'उन्माद' की स्थिति भांति ही व्यक्त होगा ।'उन्माद' की स्थिति शारीरिक भी हो सकती है और वाचिक भी । यह पागलपन की सीमा तक पहुंची हुई मन:स्थिति है अत: शारीरिक एवं वाचिक दोनों ही अभिव्यक्तियाँ असाधारण होंगी जैसे -- अकारण रोना, चिल्लाना, हंसना, अल्ल-बल्ल बकना, कभी लेटना, कभी उठ बैठना, नाचना गाना, धूल में लोटने लगना, स्वयं अपने को मारना, सिर पटकना आदि । मानसिक रूप से विवेक का नाश होने के कारण उन्माद में कहे गये कथन प्रलाप के अन्तर्गत आते हैं और असंबद्ध तथा अर्थहीन होते हैं ।

-- वह देखो वह अन्धेरा बढ़ा आ रहा है । सांझ हो गयी है, मेरे जीवन की अन्तिम सांझ (पृष्ठभूमि में सारंगी का करुण आलाप जो बढ़ता जाता है) और

ऊपर मेघ घिर रहे हैं,। द्रौपदी के बिखरे केशों की भांति। वे मुझे निगल लेंगे युधिष्ठिर। जाओ मुझे मरने दो।

(पृ० ३१ महाभारत की सांझ रेडियो नाटक, श्री भारतभूषण अग्रवाल)

इस प्रकार के कथनों में हास्य एवं रुदन दोनों का समावेश रहता है। कंठस्वर की लय अनियमित रहती है। कभी अत्यन्त धीमी और कभी अत्यन्त तीव्र हो जाती है। एक उदाहरण --

-- प्रकाश : गुड नाइट। (व्यंग्य, विश्वास, बड़बड़ाता है) कोई चारा नहीं। सब्र करना चाहिए। आपकी पत्नी कितनी सुन्दर थी। एक पैर कट गया। एक आंख जाती रही, मुंह कुछ टेढ़ा हो जायेगा। खूबसूरत, सुन्दर, घाव, टेढ़ा मुख, एक पैर, एक आंख, घाव। (हंसता है)। सुन्दर पांव, सुन्दर घाव, टेढ़ा मुख, (धीरे-धीरे हंसी तेज होती जाती है) सुन्दर घाव, टेढ़ा मुख (सहसा रोने लगता है) विमला कितनी सुन्दर, एक पैर कट गया, एक आंख जाती रही, मुंह टेढ़ा हो गया (धीरे-धीरे स्वर फुसफुसाहट में परिवर्तित होता जाता है) + + + + + + प्रकाश का शरीर एक उदास आवेग से कांपने लगता है और वह बहुत कठिनता से अपने आप को सम्भाल पाया है।

(पृ० १२४ अब का फैसला विष्णु प्रभाकर)

अन्यायपूर्ण स्थिति में कभी-कभी शब्दावृत्ति भी मिलती है जैसे -- हट जाओ... हट जाओ... मेरे सामने से हट जाओ इस प्रकार के कथन का उद्देश्य बल देना नहीं रहता वरन् मात्र आवेग का सूचक है।

१.३.१७ आवेग

यह कोई भाव नहीं है। किसी भाव का तीव्रतम रूप आवेग है। प्रत्येक भाव के साथ यथास्थान इसका उल्लेख है। इसी वर्ग के अन्तर्गत उग्रता संचारी का भी स्थान है। उग्रता वास्तव में क्रोध के संवेग का तीव्रतम रूप है। गाली, भर्त्सना, चुनौती, ललकार ~~का~~ ~~~~ तथा शारीरिक बल प्रयोग के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है। तब व्यक्ति स्वयं दूसरों से दुर्गति का प्रसारण करता है

विशेषकर जब कोई दु:खद भाव अपने स्वभाविक रूप में व्यक्त नहीं हो पाता है तो दु:ख का आवेग शारीरिक गतिविधियों के माध्यम से व्यक्त हो जाता है। हम

गतिविधियों का कोई पूर्व निर्धारित रूप नहीं रहता और न इन्हें किसी वर्ग में ही बांटा जा सकता है कि क्रोध के ये और क्रोध और शोक की ये । इस प्रकार की अभिव्यक्ति को देखकर सरलता से भाव का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता । प्राय: इनमें एक से अधिक भावों का मिश्रण भी रहता है । आवेग के समानान्तर ही विकलता एवं अकुलाहट की स्थिति भी है । यह मोह और उन्माद का मिश्रित रूप है और मानसिक विभ्रम एवं अस्थिरता ही है । इस स्थिति में व्यक्ति स्वयं अपने भाव नहीं समझ पाता है अत: अभिव्यक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

-- नीलिमा ने सूनी दृष्टि से देखकर सिर झुका लिया । उसे आज क्या हो रहा था । क्यों आज उसकी इच्छा अपने को खोल कर रख देने की हो रही थी । + + + + +- उसने दांत से अपने ओठ काट लिये ।

(पृ० ११५,बन्द दरवाज़े के पीछे 'विमल वैट, मई १९६७)

-- अन्धेरे और सन्नाटे में खरखर करती चमकदार तस्वीरों वाली रील चलती रही और रश्मि आंखें फाड़े रोती रही । गोद में रखी पर्स की घुण्डियों को वह जोर से मरोड़ कर कभी पर्स खोल देती है और कभी बन्द कर देती ।

(पृ० ४३,सायकिल,'जहां लक्ष्मी कैद है'-- राजेन्द्र यादव)

-- खलदार (उठ कर कमरे में टहलने लगा) । वह बार-बार दोनों हाथ मल रहा था । बांह की नसें तोड़ रहा था । उंगलियां चटखा रहा था । जूते में रखा मोज़ा तैल में तरबतर हो गया था.... आंखों के सामने अन्धेरा छा गया था ।

(पृ० ४०,खाली कुर्सी की आत्मा,लक्ष्मीकांत वर्मा)

इस भाव की अभिव्यक्ति दो स्तरों पर होती है । एक तो शारीरिक प्रक्रियाओं के माध्यम से दूसरे स्पष्ट कथन के रूप में । कंठस्वर पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ता है । कभी-कभी कथन लम्बे और असम्बद्ध हो जाते हैं । स्पष्ट कथन मन के संमोह की स्थिति व्यक्त करता है -- मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है, मेरा तो दिमाग़ ही ख़राब हो रहा है, मुझे घबड़ाहट हो रही है, मेरी मतिभ्रष्ट हुई जा रही है, मेरा दिमाग़ कुछ काम नहीं करता, तथा इसी प्रकार के अन्य वाक्य आयेंगे । इस स्थिति में स्त्रियां वाणी का प्रयोग अधिक करती हैं और पुरुष का यह भाव शारीरिक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से अधिक व्यक्त होता है ।

१.३.१८ अपस्मार

क्रोध अथवा दु:ख का चरमोत्कर्ष ही इस भाव का द्योतक है। इसमें वाणी का प्रयोग नहीं होता है। यह स्थिति उन्माद से भी एक स्तर आगे है। इसमें ज़मीन पर लोटना, कांपना, मुख से फेन निकलना आदि शारीरिक प्रतिक्रियायें आती हैं। इसे भाव की श्रेणी में रखना ठीक नहीं है।

१.३.१६ अमर्ष

अमर्ष क्रोध के संचारी के रूप में आता है। अपमान या आक्षेप के प्रतिकार की इच्छा अमर्ष भाव का क्रियात्मक रूप है। इसकी शारीरिक अभिव्यक्ति में शिर: कम्पन, प्रस्वेद, अधोमुख होना, आदि आते हैं। वाचिक अभिव्यक्ति कंठस्वर की तीव्रता, कर्कशता, चुनौती, ललकार, धमकी, प्रतिज्ञा के माध्यम से व्यक्त होती है। ('क्रोध' अध्याय के अन्तर्गत इसका विस्तार हुआ है)।

१.३.२० असूया-ईर्ष्या

असूया, ईर्ष्या का ही एक रूप है। इसका क्षेत्र ईर्ष्या की अपेक्षा सीमित है यह असहनशीलता मात्र है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है: निन्दा, द्वेष, गुणों में दोषारोपण करना, परिवाद, क्रोध, आदि। ईर्ष्या की परिभाषा देते हुए पं० रामचन्द्र शुक्ल ने माना कि जैसे दूसरे के दु:ख को देख कर दु:ख होता है वैसे ही दूसरे के सुख या भलाई को देखकर भी एक प्रकार का दु:ख होता है जिसे ईर्ष्या कहते हैं (पृ० १०७: पं० रामचन्द्र शुक्ल)। ईर्ष्या किसी मात्रा में क्रोध के साथ भी रहती है। वहां इसकी अभिव्यक्ति व्यंग्य एवं तानों के माध्यम से होती है (विस्तार 'क्रोध' अध्याय के अन्तर्गत)। इसी समानता के कारण जैसे 'क्रोध' में जलना कहा जाता है वैसे ही ईर्ष्या में जलना भी कहा जाता है। पं० शुक्ल के शब्दों में क्रोध, ईर्ष्या को संचारी के रूप में समय-समय पर व्यक्त होते देखा जाता है। यह क्रोध बिलकुल जड़ क्रोध है। जिसके प्रति यह क्रोध दिखाया जाता है उसके मानसिक उद्देश्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता (पृ० ११६ 'चिन्तामणि', रामचन्द्र शुक्ल)।

जहां तक ईर्ष्या की अभिव्यक्ति का प्रश्न है यह अत्यन्त सीमित रूप में होती है। वह अपने धारणकर्ता स्वामी के सामने भी खुलकर सामने नहीं आती। शुक्ल जी ने ईर्ष्या को अत्यन्त लज्जावती वृत्ति माना है। उसके रूप आदि का पूरा परिचय न पाकर भी उसका धारणकर्ता उससे हरम की बेगमों से अधिक पर्दा कराता है।

कभी यह प्रत्यक्ष रूप से समाज के सामने नहीं आती । उसका कोई स्पष्ट बाहरी लक्षण धारणकर्ता पर नहीं दिखाई पड़ता । क्रोध में आँखें लाल हों, भय में आकुलता हो, घृणा में नाक भौं सिकुड़े, करुणा में आँसू आये, पर ईर्ष्या में शायद ही कभी असावधानी से ठण्डी साँस निकल जाये (पृ० १२३, चिन्तामणि) ।

क्रोध की भाँति ईर्ष्या घृणा के संचारी के रूप में भी आती है । वरन् यह कहना अधिक ठीक होगा कि घृणायुक्त ईर्ष्या या ईर्ष्यायुक्त घृणा की अभिव्यक्ति ही व्यंग्य एवं निन्दा के माध्यम से होती है । दोनों भाव मिल कर ही वाणी के माध्यम से मुखर होते हैं, अन्यथा स्वतन्त्र रूप में दोनों की ही वाचिक अभिव्यक्ति लगभग नहीं के बराबर होती है ।

ईर्ष्या की शारीरिक अभिव्यक्ति बहुत कम होती है । मुख पर आने वाले असहिष्णुता के हल्के-हल्के भाव ही इसे व्यक्त करते हैं । कभी-कभी हल्का-सा निःश्वास ब ईर्ष्या की व्यंजना करता है । कंठ स्वर बिल्कुल साधारण रहता है बल्कि जहाँ कठोर होना चाहिए वहाँ भी अपेक्षाकृत अधिक कोमल हो जाता है । अर्थात् छद्म भाव होने के कारण कंठ स्वर में कृत्रिमता रहती है । फिर भी कहीं कहीं जलन भरे शब्दों में, ईर्ष्यायुक्त वाणी से आदि संकेत संदर्भ को दृष्टि में रख कर दिये जाते हैं ।

वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से ईर्ष्या की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति कभी नहीं होती और न कभी कोई यही कहेगा कि मुझसे उस व्यक्ति की उन्नति नहीं देखी जाती । इसके विपरीत अप्रत्यक्ष रूप से व्यंग्य एवं निम्न निन्दा के माध्यम से ईर्ष्या की व्यंजना होती है जैसे अन्धे के हाथ बटेर लग गयी, वो मूर्ख भला उस पद के योग्य ही कहाँ । साथ ही अपनी हीनता एवं अभाव का बोध होने के कारण व्यक्ति यह भी कह देता है -- मैं कोई उसकी तरह लोभी हूँ, और मैं चाहता तो वह पद सरलता से ले सकता था । व्यावहारिक जीवन में अभिव्यक्ति का यह दूसरा रूप इतना प्रचलित हो गया है कि मात्र इसी को सुन कर लोग वक्ता के हृदय में उमड़ने वाली ईर्ष्या का सरलता से पता लगा लेते हैं । मुझे उस वस्तु की चाह नहीं है अन्यथा मेरे लिए क्या दुर्लभ था -- इस भाव की अभिव्यक्ति का एक अन्य रूप भी होता है । उस वस्तु विशेष अथवा पद विशेष की निन्दा करके उसके प्रति अपनी विरक्ति का प्रदर्शन --

और उस पद में है ही क्या, न आय है और न कोई अधिकार, बिलकुल व्यर्थ है, मुझसे तो कोई प्रार्थना भी करे तो उसे न लूं । किन्तु इस प्रकार के कथन भी हृदय में उमड़ती ईर्ष्या को नहीं छिपा सकते । `लोमड़ी को अंगूर खट्टे हैं` व्यंग्य इस प्रकार की अभिव्यक्ति करने वालों के प्रति ही किया जाता है ।

ईर्ष्या का भाव तुलनात्मक होता है । तुलना में स्वयं को हीन पाने पर जो दु:ख होता है उसकी अभिव्यक्ति कुछ भिन्न प्रकार से होती है -- सब उसकी प्रशंसा करते हैं मेरी नहीं । क्या मैं उससे कम हूं, किस बात में उससे कम हूं, यदि वह इस क्षेत्र में आगे है तो मैं उस क्षेत्र में, लोग उसका आदर क्यों करते हैं । इस प्रकार की अनुभूति यद्यपि हर आयु एवं लिंग वाले व्यक्तियों में हो सकती है किन्तु स्पष्ट वाचिक अभिव्यक्ति प्राय: बच्चे ही करते हैं क्योंकि वे ईर्ष्या को छिपाना नहीं जानते हैं । इसी भावना से वशीभूत होकर व्यक्ति की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष निन्दा भी की जाती है ।

-- कृष्णा ने प्रभा की साड़ी पर एक तीव्र दृष्टि डाल कर कहा --`बहन क्या यह साड़ी अभी ली है, इसका गुलाबी रंग तो तुम पर नहीं खिलता ।` (पृ० १७२ `गुप्तधन` प्रेमचन्द)। ईर्ष्याजनित आलोचना के लिए एक शब्द `मीनमेख निकालना` अधिक उपयुक्त होगा ।

दूसरे के समक्ष अनायास अपने अहं का प्रदर्शन भी ईर्ष्या की अभिव्यक्ति का ही एक रूप है । दो बच्चों में यदि एक कुरूप हो और एक सुन्दर तो कुरूप बच्चा आत्महीनता से पीड़ित होकर सुन्दर बच्चे के समक्ष अपने वैभव एवं योग्यता का प्रदर्शन अधिक ही करेगी ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ईर्ष्या की तीन कोटियां मानी हैं :-

--`क्या कहें हमारे पास भी वह वस्तु होती` इसमें `मैं भी` का भाव रहता है । वस्तुत: यह केवल तीव्र लालसा है । अतृप्त रहने के कारण यह दु:खद हो जाती है ।

--`हाय ! वह वस्तु उसके पास न होकर हमारे पास होती` वस्तुत: यहां से ईर्ष्या का वास्तविक रूप आरम्भ हो जाता है । असूया का यही क्षेत्र है । इसमें `मैं ही` का भाव स्वच्छ-द प्रधान रहता है । इस स्थिति में की वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती । व्यक्ति क्रियात्मक रूप से उस वस्तु विशेष को पाने का यत्न करता है ।

७-- "वह वस्तु किसी प्रकार से उसके हाथ से निकल जाये चाहे जहाँ जाये" - यह ईर्ष्या का अत्यन्त तीव्र रूप है।जबकि व्यक्ति ईर्ष्या में अन्धा हो जाता है उसे विवेक अविवेक का ज्ञान नहीं रहता है। अभिशापन, दुर्वचन, अशुभ कामनाओं के रूप में इसकी वाचिक अभिव्यक्ति होती है।

ईर्ष्या का एक सुखद रूप भी है जिसे स्पृहा कहना अधिक उचित होगा। स्पृहा में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा रहती है। ईर्ष्या में दूसरे की उन्नति को देखकर देख कर दु:ख होता है और ईर्ष्या में अपनी अवनति को देखकर फलस्वरूप आत्मधिक्कार, भविष्य के लिए प्रतिज्ञा आदि के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है। कंठस्वरगत विशेषताओं का इसमें अभाव रहता है। आत्म-तिरस्कार जैसे मैं आलसी हूं, सुस्त हूं, निकम्मा हूं, काम नहीं करता, वह अपनी मेहनत के बल पर कहाँ का कहाँ पहुंच गया। पं० शुक्ल के शब्दों में "स्पर्धा किसी सुख ऐश्वर्य, गुण या मन से किसी व्यक्ति विशेष को सम्पन्न देखकर अपनी त्रुटि पर जो दु:ख होता है फिर प्राप्ति की एक प्रकार की उद्वेगपूर्ण इच्छा उत्पन्न होती है या यदि इच्छा पहले से है तो उस इच्छा को उत्तेजना मिलती है। इस प्रकार की वेगपूर्ण इच्छा, या इच्छा की उत्तेजना अन्तःकरण की उन प्रेरणाओं में से है जो मनुष्य को अपनी उन्नति साधन में तत्पर करती है।"

(पृ० १७८ "चिन्तामणि")

१.३.२१ असन्तोष

ईर्ष्या असन्तोष को जन्म देती है। सन्तोष का विरोधी भाव असन्तोष है। कंठस्वर पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यह चिन्तन का विषय है। फलत: आवेश का अभाव रहता है। कंठस्वर में कोई विशेषता नहीं होती और बल प्रयोग या लयात्मकता का भी प्रश्न नहीं उठता।

असन्तोष का भाव सप्रयास व्यक्त नहीं करना पड़ता वरन् व्यवहार एवं बातचीत के माध्यम से स्वयं व्यक्त हो जाता है। अभाव के साधारण कथन के रूप में इसकी वाचिक अभिव्यक्ति होती है। परिस्थिति एवं सन्दर्भ में ही इसका रूप स्पष्ट होता है। -- मेरे पास यह नहीं है, वह नहीं है, मुझे यह सुख नहीं मिला, इस वस्तु का अभाव है, आदि। मुझे जीवन साथी नहीं मिला, मेरे सन्तान नहीं है, अपना घर नहीं है, बैंक बैलेंस नहीं है, समाज में स्थान नहीं है, ईश्वर ने रूप नहीं दिया।

किन्तु जब व्यक्ति को उपर्युक्त सब वस्तुयें मिल जाती हैं तो भी उसका स्वभावगत असन्तोष दूसरे रूप में व्यक्त होता है। उसे प्रत्येक वस्तु में कुछ न कुछ अभाव एवं कमी दृष्टिगोचर होती है।

-- मेरी पत्नी सुन्दर एवं सभ्य नहीं है, सन्तान योग्य नहीं है, आज्ञाकारी नहीं है, बच्चे उद्दण्ड हैं, घर सुन्दर नहीं है, बैंक बैलेंस पर्याप्त नहीं है, समाज में और ऊंचा स्थान होना चाहिए आदि।

असन्तोष का तीसरा रूप उपर्युक्त दोनों रूपों से कुछ भिन्न होता है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। वह अपने सुख-दु:ख को समाज के परिप्रेक्ष्य में देखता है। अपनी उपलब्धियाँ एवं अभावों को भी वह समाज की पृष्ठभूमि में रख कर देखता है। किन्तु कुछ लोगों में यह प्रवृत्ति अधिक ही क्रियाशील होती है। वे अपनी प्रत्येक वस्तु को दूसरे के सन्दर्भ में रख कर हीनता की भावना-ग्रन्थि बना लेते हैं और असन्तुष्ट रहते हैं जैसे उसकी गृहस्थी मुझसे ज़्यादा सम्पन्न है। अमुक की पत्नी मेरी पत्नी से अधिक सुन्दर है, पड़ोसी के बच्चे मेरे बच्चों से अधिक कुशाग्र और आज्ञाकारी हैं। उसका घर मेरे घर से बड़ा और शानदार है, उसके पास मुझसे कहीं अधिक ऐश्वर्य है,आदि। असन्तोष की अभिव्यक्ति कामना इच्छा एवं लोभ के रूप में भी होती है। ये अपनी प्रवृत्ति के अनुसार संकर भावों के अन्तर्गत आयेंगे।

१·३·२२ नैराश्य

दु:खात्मक भावों की परिणति ही नैराश्य है। संकट काल में भय को दूर करने का कोई साधन न हो अथवा विषाद का परिहार न हो तो नैराश्य जागृत होता है। भय में कहे गये निराशापूर्ण वाक्यों में आशंका अधिक रहती है क्योंकि वे भविष्य को लेकर रहते हैं। (विस्तार 'भय' अध्याय के अन्तर्गत) शोकगत नैराश्य तो कटुता का रूप धारण कर लेता है। जहां व्यक्ति अपनी समस्त आशाओं को त्याग कर विषाद के आगे समर्पण कर देता है। इसकी वाचिक अभिव्यक्ति तटस्थता, भाग्यवाद, विरक्ति एवं मृत्युकामना के रूप में होती है।

निराशा का स्थान निरुत्साह के साथ भी है। किन्तु वहां उसका रूप उपर्युक्त स्थितियों से कुछ भिन्न रहता है। वहां निराशा निष्क्रियता के रूप में व्यक्त होती है कंठस्वर एवं कथन दोनों से ही निराशा की व्यंजना होती है। किंकर्तव्यविमूढ़ता भी इसी स्थिति को कहते हैं।

मनोविज्ञान में एक स्थिति नैराश्य-प्रतिक्रिया (reaction to frustation) की मानी है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार नैराश्य आक्रामक (aggressive) व्यवहारों को जन्म देता है। व्यक्ति आक्रामक बन जाता है। वह विभिन्न प्रकार के आक्रामक व्यवहार (मारना, पीटना, तोड़ना, जलाना) करता है। किन्तु बाद में इस विचारधारा में परिवर्तन हुआ और यह निश्चय हुआ कि जिस निराशा में व्यक्ति को यह ज्ञान रहता है कि उसकी निराशा का कारण कोई व्यक्ति विशेष है तभी क्रोध उत्पन्न होता है। अन्यथा निराशा में लज्जा चिन्ता या भय का अनुभव मात्र हो रहता है। 'सार्जेन्ट' नामक मनोवैज्ञानिक ने अपने अध्ययन के आधार पर नैराश्य आक्रामकता की परिकल्पना का खण्डन किया है। उसके अनुसार निराशा आक्रामक प्रतिक्रियाओं को नहीं वरन् संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है। व्यक्ति जिस रूप में परिस्थिति को समझता है उसके अनुसार उसकी प्रतिक्रिया सामान्य या विशिष्ट रूप से व्यक्त होती है।

१.३.२३ दु:खात्मक भावों में एक वर्ग घृणा, अरुचि, विरक्ति एवं उदासीनता का है। घृणा अरुचि और विरक्ति घृणा एवं निर्वेद दोनों में ही है। इनका दोनों अध्यायों में यथास्थान उल्लेख है। उदासीनता सुःख दु:ख से परे है और निर्वेद के उप-भावों में ह एक है। एक घृणाजन्य उदासीनता भी होती है। (इसका 'घृणा' शीर्षक अध्याय में यथास्थान उल्लेख है।)

क्रोध, भय एवं शोक प्रधान दु:खात्मक भाव हैं जिनमें अभी तक दिये हुए कई उप भावों का परिहार हो जाता है। इनका इन भावों की विस्तार से आगे व्याख्या की गयी है तथा स्वतन्त्र रूप से और उप भावों के साथ भी इनकी वाचिक अभिव्यक्ति की विभिन्न रीतियों पर प्रकाश डालने का यत्न किया गया है।

१.४ संकर भाव

भावों का सम्बन्ध मानव मन से होने के कारण इनकी व्याख्या एवं वर्गीकरण कठिन है। केवल प्रधान लक्षणों के आधार पर ही इन्हें सुखात्मक और दु:खात्मक भावों में बांटा जा सकता है। कुछ भावों में सुख दु:ख दोनों का ही समावेश रहता है। इन्हें संकर भाव कहते हैं।

१.४.१ सन्देह, संशय, अविश्वास

सं० सशि शब्द से संशय की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ है दुर्बल या बलहीन होना और इसका दूसरा अर्थ है इधर-उधर हटना या विचलित होना। संशय हमारे मन की वह स्थिति है जब हम ठीक तरह से समझ नहीं पाते कि अमुक वस्तु या बात क्या है और क्या नहीं है, हमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। इसे अनिश्चय एवं दुविधा का सम्मिलित रूप कह सकते हैं। यह भाव न पूर्णत: सुखात्मक है और न दु:खात्मक अर्थात् संकर भाव है।[1] इसी प्रकार शुक्ल जी ने 'शंका' को भी संकर भाव माना है। उनके अनुसार --'शंका तो भय का ही वितर्क प्रधान रूप है जो आलम्बन के दूरस्थ होने पर प्रकट होता है। इसका प्रादुर्भाव या तो स्वतंत्र रूप में होता है या भावों की स्थायी दशा में -- जिस प्रकार भय लेशयुक्त ऊहा, शंका कही गयी है उसी प्रकार 'हर्ष' लेशयुक्त ऊहा/आशा और विषाद लेशयुक्त ऊहा नैराश्य को भी रख सकते हैं (पृ० २१५ रस-मीमांसा) संशय एवं संदेह में कोई विशेष भेद नहीं है। संदेह (Suspicion) का भी अर्थ होता है ठीक तरह से कुछ निश्चय न कर पाना शंका में हम सामने आयी हुई बात के विषय में यह मान लेते हैं कि यह ठीक नहीं है या नहीं हो सकती है। किंतु संदेह मुख्यत: वहां उत्पन्न होता है जहां सामने आयी हुई बात हमें कुछ ठीक नहीं जान पड़ती और हम सोचते हैं कि कहीं इससे भिन्न कोई और बात तो नहीं है। यह हर्ष एवं शोक दोनों के साथ आता है। ('हर्ष' या 'प्रसन्नता' शीर्षक से तथा 'शोक' में इसका संदर्भ के साथ उल्लेख है) दोनों ही भावों में जहां आकस्मिकता रहती है वहां संदेह एवं संशय अविश्वास के रूप में जागृत होता है --

-- क्या यह सच है। जो मैं देख रहा हूं वह सच है या झूठ, कहीं मेरी आंखें धोखा तो नहीं खा रही हैं, कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं आदि संशय संदेह की प्रथम वाचिक अभिव्यक्ति है। 'क्या ?', 'सचमुच', 'हैं', 'सच कह रहे हो' आदि प्रथम वाचिक अभिव्यक्ति के संक्षिप्त रूप हैं। यदि इसके बाद अनुभूति दु:खात्मक हुई तो रुदन अथवा शोक की अन्य अभिव्यक्ति होगी और सुखात्मक हुई तो परिस्थिति के अनुसार अन्य अभिव्यक्तियां होंगी। यदि स्थिति मात्र विस्मय की है तो प्रश्न और अविश्वास प्रदर्शन ही रहेगा।

---

1. Doubt -- uncertainty preceding belief or disbelief (McDougall 1923)
In American Psychology of Religion it is a period of disquietude in adolesence which is normally followed by a religious conversion (Hall, 1821)
--Dictionary of Psychology.

संशय, सन्देह, अविश्वास का विस्तार यथास्थान `विस्मय` अध्याय के अन्तर्गत है।

१.४.२ लज्जा

पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में अपने विषय में दूसरों की भावना पर दृष्टि रखने से विशुद्ध लज्जा की अनुभूति होती है। शुक्ल जी ने इसे आलम्बन का स्वतंत्र भाव माना है। मैक्डूगल ने प्रधान संवेगों में स्थान न देकर इसे निषेधात्मक आत्मानुभूति माना है। निषेधात्मक होने के कारण यह अप्रेक्षणीय है अत: अभिव्यक्ति सीमित रहती है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा यह भाव अधिक रहता है और स्पष्ट व्यक्त होता है। बालक एवं किशोरों में इस भाव की अनुभूति और अभिव्यक्ति व्यक्तिगत विशेषताओं पर निर्भर करती है। बालकों की अपेक्षा किशोर अधिक लज्जाशील होते हैं।

लज्जा की स्पष्ट शारीरिक अभिव्यक्ति होती है। मुख का गुलाबी होना, आरक्त होना, कनपटी लाल होना, आँखें झुकना, मुख छिपाना, सर झुकाना, भूमि में रेखा बनाना, नाखून कुतरना, गति शैथिल्य, तिरछे देखना आदि इसकी कुछ शारीरिक प्रतिक्रियायें हैं।

-- शुभा ने अपना आरक्त मुँह माँ के वक्ष में छिपा लिया।
(पृ० २५, `दृष्टिदान`, सोमावीरा)

-- लज्जा से रेणु की पलकें झुक गयीं, दृष्टि नीचे हो गयी, सर झुका लिया, आदि।

श्री जयशंकर प्रसाद ने कामायनी के लज्जा सर्ग में `लज्जा` की व्याख्या करते हुए उसकी शारीरिक अभिव्यक्ति का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है --

छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं
कलरव परिहास भरी गूँजें अधरों तक सहसा रुकती हैं।

वास्तव में लज्जा की वाचिक अभिव्यक्ति होती ही नहीं है। जहां इसकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति होगी वहां लज्जा नहीं मात्र लज्जा का आभास होगा। शारीरिक अनुभावों के बाद कंठस्वर, लज्जा को स्पष्ट करने में सहायक होता है। साधारणत: `कंठ स्वर भर्रा जाना`, `अवरुद्ध हो जाना`, `जड़ मूक हो जाना` आदि संकेतों द्वारा लज्जा की अभिव्यक्ति होती है।

-- मामा ठहाका मार कर हंस हंसने लगे और मामी शर्मा गयीं । वह अधफुटे स्वर में बोली ..... आह सब बात खोल देते हैं... बच्चों के सामने तो वह फिर तीनों की ओर देखकर हंस पड़ी ।'

(पृ० ११२ 'मामी', प्रो० धीरेन्द्र वर्मा, नवनीत, सितंबर '६१)

स्वराघात एवं बलाघात आदि विशेषतायें लज्जा की वाचिक अभिव्यक्ति में नहीं मिलती है । कंठस्वर की अतिरिक्त कोमलता एवं मधुरता कह ही लज्जा को व्यक्त करती है । लज्जा की वाचिक अभिव्यक्ति में 'हकलाहट' , 'तुतलाहट' आदि भी मिलते हैं । लज्जा के कारण वाणी जड़ हो जाती है और व्यक्ति को अपने भाव व्यक्त करने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है -- म... मैं... न... न... नहीं... जा...ऊंगा । जी... जी... आप मुझसे कुछ कह रहे हैं ।

१.४.३ झिझक

लज्जा का एक हल्का रूप 'झिझक' अथवा संकोच है । किसी भी कार्य को करने से पूर्व अथवा किसी कार्य को करने के बाद मन में यह आशंका के रूप जागृत होता है कि पता नहीं मेरी बात ठीक है अथवा नहीं । शुक्ल जी के शब्दों में "यह आशंका इतनी अव्यक्त होती है, लज्जा एवं उसके बीच का अन्तर अत्यन्त क्षणिक होता है कि साधारणत: इसका लज्जा से अलग अनुभव नहीं होता" (पृ० ६७, 'चिन्तामणि')। इसकी वाचिक अभिव्यक्ति नाममात्र को ही होती है । 'मैं यह कार्य करूं या न करूं' पता नहीं यह बात कहना ठीक हो या न हो, मालूम नहीं मेरी बात उन्हें कैसी लगे, कहीं मेरी बातों से वह बुरा न मान जाय, आदि ।

झेंप

झिझक का ही एक रूप 'झेंप' है । यह झेंप किसी कार्य के करने से पूर्व भी हो सकती है और बाद में भी । किसी कार्य को करने से पूर्व की झेंप को झिझक कहना अधिक उचित होगा किन्तु कोई गलत बात कह देने पर दूसरे के द्वारा परिहास किये जाने पर अथवा अपनी प्रशंसा सुन कर जिस लज्जा एवं संकोच का अनुभव होता है वही 'झेंप' है । अभिव्यक्ति की दृष्टि से इसमें एवं लज्जा में कोई अन्तर नहीं है । 'हकलाहट', 'स्वरावरोध' तथा हल्के प्रतिवाद के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है । वाणी के माध्यम से पुरुष ही इसे स्पष्ट व्यक्त करते हैं -- मैं किस योग्य हूं, जी मुझे व्यर्थ शर्मिन्दा न करें, मैं इस प्रशंसा के योग्य नहीं हूं, आदि ।

लोभ और लालसा

१.४.४ / किसी प्रकार की सुख या आनन्द देने वाली वस्तु के प्रति मन की ऐसी स्थिति को जिसमें उस वस्तु के अभाव होते ही प्राप्ति, सन्निधि या रक्षा की प्रबल इच्छा जग पड़े,लोभ कहते हैं। प्राप्य या प्राप्त सुख के अभाव की कल्पना के बिना लोभ की अभिव्यक्ति नहीं होती। अत: इसके सुखात्मक एवं दु:खात्मक दोनों ही पक्ष हैं।

(पृ० ६९,चिन्तामणि, रामचन्द्र शुक्ल)

इसका सुखात्मक पक्ष केवल अनुभूति तक सीमित रहता है। किन्तु दु:खात्मक पक्ष की इच्छा और कामना के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है। पं० शुक्ल ने तो सुखात्मक पक्ष की वाचिक अभिव्यक्ति की ओर भी संकेत किया है कि प्राप्त वस्तु के अभाव के नि निश्चय या आशंका के माध्यम से यह व्यक्त होता है कि अभाव का निश्चय और आशंका तो आशंका की ही अभिव्यक्ति हो गयी जो कि अपने आप में स्वतंत्र पूर्णत: दु:खात्मक भाव है। किसी प्राप्य वस्तु के प्रति यह भाव कि कभी इसे रहने दो मैं इसका उपयोग और अधिक कर सकूं लोभ है। 'और' शब्द लोभ का व्यंजक है। किसी पेटू एवं भोजन के लोभी व्यक्ति की भोजन के प्रति अतृप्ति इस एक शब्द 'और' से ही व्यंजित होती है।

'लोभ' का भाव आवेशहीन होता है। इसका स्तर सदैव एक-सा रहता है अर्थात् क्रोध, भय, प्रेम, वात्सल्य की भांति ये विशेष विशेष अवस्थाओं में विशिष्ट रूप से नहीं व्यक्त होता है। निर्बल भाव होने के कारण शरीर पर भी इसका कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं पड़ता है। केवल नेत्रों के द्वारा लोभ की अभिव्यक्ति हो सकती।'लालच भरी दृष्टि', लालची नेत्र, लोभित दृष्टि, क्षुधित दृष्टि आदि प्रयोग इसके लिए किये जाते हैं। कभी कभी शारीरिक क्रिया-कलाप भी लोभ को व्यक्त करते हैं जैसे दोनों हाथों से किसी वस्तु को जल्दी-जल्दी खाना। भोजन को देखकर ग्रंथियों के स्त्राव के कारण मुख में पानी आ जाता है। कालान्तर में किसी भी खाद्य अखाद्य वस्तु के प्रति लोभ प्रदर्शन के लिये 'मुंह में पानी आना' मुहावरे का प्रयोग होता है।

लोभ को व्यक्त करने वाले विशेष शब्दों अथवा वाक्यों की सूची नहीं बनाई जा सकती। इसकी अभिव्यक्ति चेतन स्तर पर होती है अत: व्यक्तित्व, संस्कार, शिक्षा, आयु के आधार पर भिन्न-भिन्न होती है। साधारणत: 'और', 'थोड़ा और' और 'बहुत अधिक' का आग्रह लोभ व्यंजित करता है।

लोभ की अभिव्यक्ति में आयु के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। शिशु एवं बालक की अभिव्यक्ति स्पष्ट मांग के रूप में होती है -- हमें यह खिलौना चाहिये। और इच्छा पूर्ति न होने पर बाल-सुलभ धमकी भी रहती है -- हमें अमुक वस्तु नहीं मिली तो हम रोने लगेंगे, ज़मीन पर लेट जायेंगे, आदि। कुछ और बड़े होने पर इच्छित वस्तु मांगने का रूप कुछ भिन्न हो जाता है। अपने माता-पिता घर-परिवार या मित्र वर्ग में किसी के पास कोई सुन्दर वस्तु देखकर स्पष्ट मांग के साथ खुशामद प्रार्थना और अनुरोध भी रहता है। मुझे यह दे दो, यह तो बहुत सुन्दर है मुझे और दे दो न। धमकी के स्थान पर इस काल तक आते-आते आदान-प्रदान की लालच देने का यत्न रहता है। तुम मुझे अपनी कलम देदो तो मैं अपनी फोटो वाली किताब दे दूंगा। यह अभिव्यक्ति बच्चों द्वारा बच्चों के प्रति होती है। अपने से बड़ों के प्रति यह मांग अधिकार प्रदर्शन के साथ रूठ के रूप में रहती है -- मैं तो यह खिलौना लूंगा ही चाहे जैसे हो।

प्रौढ़ वर्ग में लोभ, स्वभाव की एक दुर्बलता मानी जाती है। किसी ऐसे वस्तु के प्रति लोभ जिसका व्यक्ति के पास अभाव है वास्तविक लोभ नहीं होता। वह तो व्यक्ति की आवश्यकता बन जाती है।

लोभ की प्रथम अनुभूति है किसी वस्तु का अच्छा लगना। यह सुखात्मक अनुभूति है और अभिव्यक्ति की दृष्टि से साधारण प्रशंसा है -- आह! यह कपड़ा कितना सुन्दर है। कितना शानदार मकान है। जब इस सुखात्मक अनुभूति के साथ ही आकांक्षा अथवा कामना का समावेश भी हो जाता है तो वास्तविक लोभ की अभिव्यक्ति होती है।

किसी वस्तु के लिये दीर्घकाल से तीव्र कामना करना या उसका लोभ करना 'लालसा' है। वस्तुत: यह आकर्षण एवं प्रेम के मध्य की एक स्थिति है मात्र इच्छा प्रदर्शन के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है।

१·४·५ कामना और इच्छा

इच्छा या कामना भी एक प्रकार का मनोवेग ही है इसका अपना कोई लक्ष्य नहीं होता है। दूसरे भावों के लक्ष्य को लेकर वह चलता है। इसमें निश्चयात्मिका बुद्धि का योग रहता है तथा दूरस्थ लक्ष्य या परिणाम की धारणा अधिक स्फुट होती है। इसमें वेग की मात्रा कम होती है। पर इस इच्छा

की स्थिति भेद के अनुसार कुछ संचारी भावों की उत्पत्ति होती है । जैसे इच्छा की पूर्ति के अच्छे लक्षण दिखाई देने पर आशा, पूर्ति में विलम्ब होने से व्याकुलता, पूर्ति न होने से नैराश्य, पूर्ति की ओर यथेष्ट अवसर न हो सकने पर विषाद आदि । (पृ० ११६ रस मीमांसा, रामचंद्र शुक्ल) ।

१.४.६ [विस्मय, उपहास:] उपर्युक्त उपभावों के अतिरिक्त 'विस्मय' स्थायी भाव की प्रकृति भी सुखात्मक दु:खात्मक संकर है । विस्मय का ही एक रूप औत्सुक्य है । इसकी भी प्रवृत्ति विस्मय के समान संकर है । 'विस्मय' अध्याय में इनका विस्तार है । इनके अतिरिक्त कुछ भाव ऐसे होते हैं जो आश्रय के लिए सुखात्मक ~~और~~ किन्तु आलम्बन के लिए दु:खात्मक होते हैं जैसे 'उपहास' (हास्य अध्याय के अन्तर्गत) । कुछ इसी प्रकार का भाव करुणा या सहानुभूति है । इसकी प्रकृति मूलत: दु:खात्मक होते हुए भी सुखात्मक ही है ।

भरत ने अपने तैंतीस संचारी भावों में कई शारीरिक अवस्थाओं को भी भाव मान लिया है (।जैसे -- श्रम, आलस्य, विबोध, निद्रा, मृत्यु आदि मात्र शारीरिक स्थितियाँ हैं । वास्तव में इन स्थितियों का उल्लेख नाट्यकला के संदर्भ में अभिनय की दृष्टि से किया गया है । जब रंगमंच पर कोई भाव अभिनीत किया जायगा तो उस समय उसको प्रस्तुत करना ही महत्वपूर्ण माना जायेगा । इसके अतिरिक्त संचारियों की चर्चा भरत ने सात्विक भावों या अनुभावों के रूप में की है । किसी स्थायी भाव में भी यदि आलस्य का अभिनय अंग रूप हुआ तो भरत उसे संचारी मान लेते हैं । कुछ बोध वृत्ति जैसे स्मृति चिन्ता आदि को भी संचारियों में गिन लिया है । स्मृति तो स्पष्टत: बोध वृत्ति है । मराठी लेखकों ने भी शुक्ल जी के समान प्रो० वाटवे के साक्ष्य पर स्मृति को स्वत: भावना न मान कर बुद्धि का व्यापार माना है ।

इस प्रकार अनेकों वाद-विवाद, अनुभव एवं प्रयोग तथा विद्वानों की सम्मति दृष्टि में रखकर उपर्युक्त भावों और उप भावों की ~~रूपरेखा कर~~ सूची का निर्माण हुआ है ।

----0----

क्रोध

काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि :-

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध माना गया है । रौद्र का आलम्बन वह वस्तु या पुरुष माना गया है जिससे किसी प्रकार के अनिष्ट ,अपमान या इच्छा का विरोध हुआ हो । ऐसे पुरुष को शत्रु कहते हैं । शत्रु द्वारा किये गये अनिष्ट काम, अपकार, अपमान, कठोर वचन, आदि उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आयेंगे । अनुभावों में मुखमण्डल पर लाली दौड़ना, भौंहें चढ़ाना, आँखें तरेरना, दांत पीसना, ओंठ-चबाना, हथियार उठाना, विपक्षियों को ललकारना, गर्जन तर्जन, हीनता-वाचक शब्द प्रयोग प्रमुख हैं । संचारियों में उग्रता, अमर्ष, चंचलता, उद्वेग, मद, असूया,श्रम, स्मृति,आवेग आदि हैं ।

मैग्डुगल ने मनुष्य के कार्यव्यापारों का स्त्रोत चौदह मूल प्रवृत्तियां माना है जो जन्मजात एवं जातिगत होती है, इन्हीं में से एक युद्ध प्रवृत्ति भी है जिसका आधार क्रोध है । साधारणत: जब व्यक्ति के कार्यव्यापार या जीवन-प्रवाह में कोई बाधा उपस्थित होती है या उसे कोई कष्ट मिलता है तो क्रोध का जन्म होता है । पीड़ा या अवरोध किसी निर्जीव वस्तु द्वारा भी हो सकता है किन्तु क्रोध का जन्म तभी होगा जब कष्ट देने वाला कोई व्यक्ति हो और पीड़ा या कष्ट सप्रयास दिया जाय । यह भी हो सकता है कि पीड़ा असमान का अवरोध के कारण क्रोध नहीं वरन् भय या दु:ख उत्पन्न हो । यह पीड़ा के रूपों की अपेक्षा व्यक्ति के स्वभाव पर अधिक निर्भर करती है । कायर एवं निर्बल व्यक्ति को जिस बात से भय का शोक होगा स्वस्थ मानस का व्यक्ति उसी बात पर क्रोध व्यक्त करेगा । पीड़ा या कष्ट का स्रोत बहुत दृढ़ होने पर भय उत्पन्न होता है ऐसे स्थानों पर व्यक्ति क्रोध प्रदर्शन की अपेक्षा पलायन की राह खोजता है । परन्तु उसके अचेतन मन में छिपा क्रोध घृणा या ईर्ष्या का रूप धारण करके अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त होता है ।

किसी संवेग की प्रतिक्रिया के अनेक रूप एवं अनेक स्तर होते हैं । क्रोध की प्रक्रिया के तीन स्तर होते हैं :-

(१) मिली हुई पीड़ा या कष्ट(शारीरिक या मानसिक का प्रदर्शन)

(२) उससे बचने का प्रयत्न या पीड़ा या कष्ट के कारण को समूल नष्ट करने का प्रयत्न ।

(३) बदला लेने की भावना । भावना ।

यहाँ पीड़ा एवं कष्ट का अभिप्राय शारीरिक पीड़ा या कष्ट नहीं वरन् मानसिक वेदना एवं क्लेश भी है । प्रतिक्रिया के उपर्युक्त तीन स्तरों को देखते हुए भाषागत अभिव्यक्ति को भी तीन स्तरों पर वर्गीकृत किया जा सकता है । प्रथम स्तर तो मात्र पीड़ा का प्रदर्शन है । यहाँ क्रोध नहीं है । द्वितीय स्तर पर वर्जना या ताड़ना द्वारा क्रोध के कारण को दूर करने का प्रयास किया जाता है । परन्तु क्लेश एवं पीड़ा के नि:शेष हो जाने पर भी व्यक्ति का आहत अहं उसे शान्त नहीं होने देता । फल स्वरूप भर्त्सना, चुनौती, आदि के रूप में क्रोध की अभिव्यक्ति होती है । इसके आगे एक स्तर और है जिसमें आवेश अपने चरम स्तर (wrath, हिंसात्मक क्रोध) तक पहुंच जाता है । इस स्तर की भाषागत अभिव्यक्ति ललकार चुनौती आदि के रूप में मिलती है ।

यह जानना आवश्यक है कि दुःख कष्ट देने या बदला लेने के पीछे कौन सी प्रवृत्ति क्रियाशील रहती है । सर्वप्रथम तो व्यक्ति के आहत अहं को चोट लगती है और फल स्वरूप क्रोध में व्यक्ति न केवल गर्व प्रदर्शन एवं आत्मप्रशंसा करता है वरन् विरोधी की निन्दा एवं अपशब्दों से उसका अपमान कर उसके अहं को भी चोट पहुंचाने का यत्न करता है ।

किसी मिली हुई शारीरिक पीड़ा या मानसिक क्लेश से दो रूपों में मुक्ति पाई जा सकती है । एक तो स्वयं को अपराधी मान कर आत्मग्लानी के रूप में , दूसरे विरोधी को भी उतनी ही पीड़ा देकर । प्रथम प्रक्रिया निश्चय ही कष्ट प्रद है अत: साधारणत: दूसरी प्रक्रिया ही अपनायी जाती है ।

क्रोध की पृष्ठभूमि में एक अन्य कारण भी है जिसे मनोवैज्ञानिकों ने ' Pleasure of anger ' कहा है । दूसरे को शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट पहुंचा कर मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि होती है । इस आनन्द का आस्वादन व्यक्ति तभी कर सकता है जब कि उसे ज्ञात हो कि उसकी कौन सी बात दूसरे को कितनी पीड़ा पहुंचा सकती है । बालकों में यह ज्ञान नहीं होता है । इसीलिये क्रोध के पूर्वनिर्धारित तीन स्तरों में से तीसरा एवं अन्तिम स्तर शैशवावस्था और पूर्व बाल्यावस्था में नहीं

मिलता है[1]।

कभी-कभी अधिकार की भावना भी क्रोध को जन्म देती है । क्रोध ऐसा भाव है जिसकी वाचिक अभिव्यक्ति को अनेक तत्व प्रभावित करते हैं । व्यक्ति पक्ष से व्यक्तित्व, संस्कार, शिक्षा, स्वभाव, आयु और लिंग एवं बाह्य तत्वों में सामाजिक परिवेश, परिस्थिति आदि प्रमुख हैं ।

मनोविज्ञान के अनुसार क्रोध की अभिव्यक्ति दो रूपों में होती है । पहली है क्रोध की आकस्मिक अभिव्यक्ति (sudden burst)। अप्रत्याशीत पीड़ा या कलेश इसका कारण होती है । कुछ लोगों का स्वभाव भी ऐसा होता है कि क्रोध का संवेग जागृत होने ही पूरे वेग से प्रकट हो जाता है । ऐसी अभिव्यक्ति में आवेश की मात्रा अधिक होने के कारण भर्त्सना, ललकार, धमकी, चुनौती आदि अधिक होगी। मनोवैज्ञानिक शब्दावली में ऐसे लोगों को चिड़चिड़ा कहा जाता है । इस अभिव्यक्ति में व्यक्ति की आदिम पाशविक प्रवृत्तियां प्राय: शुद्ध रूप में व्यक्त हो जाती हैं । ऐसी अभिव्यक्ति भाषा की अपेक्षा शारीरिक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से अधिक स्पष्ट होगी ।

क्रोध की अभिव्यक्ति का दूसरा रूप वह है जब वह चेतन स्तर पर विचार करके किया जाय । ऐसा क्रोध व्यक्ति के अन्दर एक लम्बी अवधि से वर्तमान रहता है । तथा पीड़ा के कारण और लक्ष्य दोनों पर ही दृष्टि रहती है ,ऐसी अभिव्यक्ति में भाषा संयमित रहती है ।   , ताने ,व्यंग और कटूक्तियों के माध्यम से क्रोध व्यक्त होता है ।

---

1. In children we see the two first farms an early period; the last does not appear until the motion ~~mi~~ of persoñality and the sense of the effects of action on others, have been ~~xxxxx~~ developed. The distinctive feeling of anger implies the impulse knowingly to inflict suffering upon another senti-ment being and to derive a positive gratification from the fact of suffering inflicted. —— by A. Vain .

—— Page 129 Psychology, applied to Human affairs.

२. क्रोध एवं शारीरिक प्रतिक्रियायें :-

क्रोध की अभिव्यक्ति में शारीरिक प्रतिक्रियायें बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। आवेश जितना तीव्र होगा, उतनी ही अधिक एवं तीव्रता से शारीरिक प्रतिक्रियायें होंगी। विकासवादियों ने रौद्र रस के अनुभावों की व्याख्या ऐतिहासिक दृष्टि से की है। जब मानव समाज में सभ्यता नहीं आई थी एवं विभिन्न अस्त्र शस्त्रादि नहीं बने थे तब मनुष्य अपने शत्रुओं को दांत से काट कर या मार कर क्रोध की अभिव्यक्ति करते थे। कालान्तर में मनुष्य सभ्य होता गया उसने अपने व्यवहार को नियन्त्रित करना सीख लिया। परन्तु आदिम प्रवृत्तियां उसके संस्कारों में रच बस गयी हैं। अब क्रोध में मनुष्य दौड़ता नहीं किन्तु पसीना आ जाना, एवं मुंह लाल हो जाना अब भी शेष है। लोग अब काटते तो नहीं परन्तु दांत अब भी पीसते हैं।

मुखाकृति एवं मुखमुद्रा में होने वाले परिवर्तनों में -- चेहरा स्याह होना, मुख आरक्त हो उठना, मुख अंगारे की भांति लाल होना, मुख भयंकर होना, आंखें लाल होना, आंखें निकालना, आंखें कपाल पर चढ़ाना, आंखों से ज्वाला निकलना, आंखें टेढ़ी होना, भवें तनना, भवें सिकुड़ना, भृकुटी चढ़ना, नथुने फड़कना, नाक से फुफकार छोड़ना, नाक लाल होना, नाक फुलाना, दांत पीसना, होंठ चबाना, मुंह बिचकाना, मुंह से झाग आना, अधर फड़कना, ओठ काटना, ओठ सिकोड़ना, आदि तो मात्र मुखाकृति से सम्बन्धित परिवर्तन हैं। मुखमुद्रा से सम्बन्धित परिवर्तन क्रोध की अभिव्यक्ति में इतने स्वाभाविक एवं प्राथमिक हैं कि इनका कथन या हल्का सा प्रदर्शन मात्र क्रोध को व्यक्त करता है। उपर्युक्त लगभग सभी परिवर्तनों का प्रयोग क्रोध की व्यंजना करने वाले मुहावरों के रूप में होता है।

इनके अतिरिक्त शरीर के अन्य अंगों द्वारा भी क्रोध का प्रदर्शन होता है। जैसे थर-थर कांपना, शरीर तनना, मुट्ठियां कसना, हाथ झटकाना, भुजायें फड़कना, पैर पटकना, हाथ मलना, सर पीटना, आदि ये शारीरिक प्रतिक्रियायें क्रोध के आवेश के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ी रहती हैं और लगभग प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक ही रूप में रहती हैं। इनके अतिरिक्त क्रोध की कुछ सामयिक एवं परिस्थितिगत प्रतिक्रियायें भी होती हैं। जैसे - हाथ की वस्तु को पटक देना अथवा मसल देना, उंगलियां मसलना, बाहें चढ़ाना, घूंसा दिखाना, मेज अथवा अन्य किसी वस्तु पर आवेश में मुट्ठी प्रहार करना, किसी को धकेल देना, सामने पड़ी वस्तु को उठाकर फेंक देना, तेज़ी

से आवाज के साथ दरवाजे या खिड़कियां बन्द करना, तीव्र गति से चलना या हाथ के कार्य को तीव्रता से करना आदि ।

२.३ क्रोध एवं कण्ठ स्वर

क्रोध में कंठस्वर पर बहुत प्रभाव पड़ता है । स्वर में अस्वाभाविकता आ जाती है । साधारणत: क्रोधपूर्ण कंठस्वर असंतुलित, अस्पष्ट, तीव्र, आरोह अवरोहात्मक एवं बलाघातपूर्ण होता है । उपर्युक्त सभी विशेषतायें अलग-अलग स्थितियों में अलग-अलग रुप से स्पष्ट होती हैं । वास्तव में क्रोध की वाचिक अभिव्यक्ति की जितनी भी शैलियां-- व्यंग्य, कटूक्ति, भर्त्सना, प्रताड़ना, तिरस्कार, आदि हैं उन के साथ कंठ स्वर का स्वरुप परिवर्तित होता जाता है । अत: क्रोध में कंठस्वर की विशेषताओं के समझने के लिये इनमें से प्रत्येक को अलग-अलग लेना पड़ेगा ।

क्रोध की अस्पष्ट सांकेतिक एवं संयत अभिव्यक्ति व्यंग्य का रूप ले लेती है । कभी-कभी क्रोध को प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट रूप से व्यक्त न कर सकपाने की विवशता क्रोध को जन्म देती है । व्यंग्य का रूप सब से अधिक वाक्य के उच्चारण एवं लय से स्पष्ट होता है और निखरता है जैसे-

--" खूब !" रंजीत ने व्यंग्यात्मक रूप से कहा--" अभी दस मिनिट पहले आपका यह जूता कहां था ?"

(पृष्ठ ३१, सूनी मांग", सौभाग्य वोरा)

"खूब" शब्द पर बलाघात देकर उच्चारण(खूऽऽब) व्यंग्य को स्पष्ट करता है । इसी प्रकार" वाह" शब्द प्रशंसा एवं आश्चर्य के लिये प्रयुक्त होता है किन्तु "व" पर बल देकर एवं विलम्बित उच्चारण से शब्द व्यंग्य की व्यंजना करता है ।

-- ऊपर से पत्नी का खरखराता स्वर आया" आ गये कमाई करके । अम्मा से कहो द्वार खोलकर थैली सम्भालें ।"

("उबी मैरिज" चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, धर्मयुग, २६ दिसम्बर ६५)

पूरे वाक्य को यदि साधारण टोन में कहा जाय तो व्यंग्य स्पष्ट नहीं होगा, " आ गये" पर बलाघात एवं उसको सब से आगे रख कर शब्द क्रम का परिवर्तन तथा पूरे वाक्य का आरोहात्मक उच्चारण वाक्य को व्यंग्यात्मक बना देता है ।

उपर्युक्त दोनों उदाहरण शुद्ध व्यंग्य के हैं। कभी-कभी आवेश में साधारण वाक्य भी व्यंग्यात्मक प्रतीत होते हैं।

-- ममी : ओह अब क्या होगा ? (चौंकती हुई) और डिस्पैन्सरी खोलिये ।।।

(प्रश्न और पत्थर' नरेश मेहता)

उपर्युक्त वाक्य साधारण है। किन्तु और शब्द पर बलाघात वाक्य को व्यंग्यात्मक बना देता है।

शुद्ध व्यंग्य के उदाहरण कम ही मिलते हैं। प्राय: इसके साथ तिरस्कार की भावना भी जुड़ी रहती है। वास्तव में अस्पष्ट तिरस्कार ही व्यंग्य पुष्ट करता है। यह तिरस्कार भी कंठस्वर के माध्यम से स्पष्ट होता है।

-- एक ने तुनक कर कहा--' अरी जा, बड़ा समझदार है तेरा मर्द' ।

('आवेश के क्षणों में' सत्यनारायण मिश्र, नवनीत १९६२)

उपर्युक्त कथन का तिरस्कार साधारण ढंग से ' तेरा मर्द समझदार है' कहने से नहीं स्पष्ट होगा।'अरी जा' में'री' का विलम्बित उच्चारण एवं'जा' का बलाघातयुक्त किन्तु त्वरित उच्चारण व्यंग्य तथा तिरस्कार स्पष्ट करेगा।

-- खाक अपने लोग है। अपने लोग है.....हुंह.....अपने लोग हैं।

(पृष्ट २८ प्रतिशोध,दूधनाथसिंह,धर्मयुग,२४ अक्टूबर,१९६५)

इस कथन में'अपने' और उसमें भी विशेष कर'ने' पर अन्य अक्षरों की अपेक्षा अधिक बल तिरस्कार को सूचित करता है।

इसके अतिरिक्त आवेश की अधिकता के कारण कभी-कभी व्यंग्य के साथ-साथ तिरस्कार स्पष्ट कथन के रूप में आ जाता है। किन्तु वहां तिरस्कार प्रधान होने के कारण व्यंग्य का प्रभाव नहीं रहता। जब आवेश के रहते हुए भी तिरस्कार शब्दों के नहीं वरन कंठस्वर के माध्यम से ही व्यंजित हो तब तक व्यंग्य का क्षेत्र रहता है। जैसे निम्न उदाहरण में :-

-- उन्होंने तीखे व्यंग्य भरे स्वर में कहा' कहां जायेगी ?' मायके ?'

(पृष्ठ १६ हल्दी क्वांरी, सीमावोरा)

'मायके' विशेषकर 'के' का बलाघातयुक्त उच्चारण तिरस्कार की व्यंजना करता है।

अलंकार की दृष्टि से कंठस्वर द्वारा व्यंग्य की व्यंजना काकु वक्रोक्ति के अन्तर्गत

आती है । :-

राम साधु तुम साधु सुजाना, रामु मातु भली मैं पहिचाना ।

साधारण वाक्यों को प्रश्नात्मक एवं विस्मयात्मक ढंग से कहने से व्यंग्य स्पष्ट होता है ।-

-- अरे लल्ला यूँ पूछ कि किया नहीं हुआ है । कहर कौन सो छोड़ दी तेरी बहू ने । (बुजुर्ग म०ना० नरहरि 'कहानियां', सितम्बर १९६८)

इस उदाहरण का द्वितीय वाक्य अपने प्रश्नात्मक रूप के कारण ही व्यंग्यात्मक हो जाता है ।

२.३.१ व्यंग्य एवं शब्दावृत्ति :-

साधारणत: वाक्य में किसी शब्द विशेष पर बलाघात व्यंग्य की व्यंजना करता है । किन्तु कभी-कभी शब्द विशेष पर अधिक बल देने के लिये उसे दुहरा दिया जाता है । जैसे निम्न उदाहरणों में :-

-- अपराध उसने नहीं मैंने किया है-- भैया-- मैंने । तू भी अपनी बहू की ही कहेगा । (बुजुर्ग म०ना०नरहरि, कहानियां, सितम्बर १९६८)

-- ठीक है लल्ला.....ठीक है तू भी अपनी सगी सौतेरी की ही कहेगा । मैं तेरो लगूं ही किया हूँ ।

उपर्युक्त दोनों कथनों में व्यंग्य के साथ-साथ आवेश होने के कारण शब्द विशेष की आवृत्ति मिलती है । इसी प्रकार निम्न उदाहरण में नौकरानी शब्द की आवृत्ति एवं बलाघातपूर्ण उच्चारण शब्द वाक्य को व्यंग्यात्मक बना देते हैं ।

--पत्नी ? मैं तो नौकरानी हूं नौकरानी ।(पृष्ठ ७८ साहित्य के स्तम्भ)

वास्तव में शब्दावृत्ति द्वारा एक ओर शब्द विशेष पर बल देने के लिये होती है वहीं दूसरी ओर शब्दों द्वारा कृत्रिम आश्चर्य व्यक्त करके व्यंग्य किया जाता है । यहां काकु वक्रोक्ति का प्रयोग रहता है ।

-- लज्जा । उस पापी को लज्जा । भीमसेन ऐसी अनहोनी बात की तुमने कल्पना भी कैसे की ? जो अपने सगे सम्बन्धियों को गाजरमूली की तरह काटे, उसका लज्जा से क्या परिचय(सव्यंग्य हंसी) (पृष्ठ २०,महाभारत की सांझ, भारत भूषण)

२. ३. २ व्यंग्य एवं विशिष्ट शब्द :-

कभी-कभी साधारण कथन में भी अनायास व्यंग्य भलक उठता है। यद्यपि वहां वक्ता का उद्देश्य व्यंग्य करना रहता नहीं है तथापि आंतरिक झुंभलाहट, आक्रोश एवं ईर्ष्या अनजाने में ही व्यंजित हो जाती है। पूरे कथन में एक या एक से अधिक ऐसे शब्द आ जाते हैं जो व्यंग्यात्मक होते हैं। एक उदाहरण :-

--..... उसे अपने इष्ट मित्रों के व्यंग्य, क्रोध और भर्त्सना भरी बातें याद आने लगी .....कुछ आत्मग्लानि एवं हीन भावना भी उसके मन में अंकुरित होने लगी। वह अपनी भाव हीनता में इतना उलझ गया कि कांपते हुए आतंकित स्वर में बोला--' तो ठीक है देवी जी.....आप अपना आदर्श लिये बैठी रहें।

(पृष्ठ १६४, खाली कुर्सी की आत्मा, लक्ष्मीकान्त वर्मा)

सम्पूर्ण कथन में 'बैठी' 'रहें' शब्द के द्वारा व्यंग्य की व्यंजना होती है, यद्यपि वक्ता ने चेतन स्तर पर उसका प्रयोग नहीं किया है।

एक अन्य उदाहरण:-

-- सुधा की आंखें मन से जल उठीं। बोली--' अपना अपराध भगवान के मत्थे थोप देना हम भारतीयों की विशेषता है'(पृष्ठ २१, 'दृष्टिदान' सोमावीरा)

उपर्युक्त कथन में 'थोप देना' शब्द द्वारा व्यंग की व्यंजना होती है।

-- वाह रे साहित्य और समाज। मैं तो बाज आयी साहित्य के इन ठेकेदारों से।

(पृष्ठ ८४, साहित्य के ठेकेदार)

'वाह रे' से झुंभलाहट व्यक्त होती है। किसी मात्रा में झुंभलाहट उसमें भी होती है परन्तु 'साहित्य के ठेकेदार' प्रयोग तीखा व्यंग्य है।

-- और मोड़ की ओर कर मास्टर दादा की दशा देखने पर व्यंग्य भरे लहजे में बोले--' कहिये अशरफुल्म लूकात ? आ गये अपनी अवकात पर.......
(पृष्ठ ३८६, खाली कुर्सी की आत्मा)

उपर्युक्त कथन में 'अशरफुल्म लूकात' सम्बोधन व्यंग्य व्यक्त करता है।

व्यंग्य व्यक्त करने वाले इस शब्द का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। कोई भी हास्यपूर्ण एवं विचित्र उपमा, सम्बोधन, उपनाम इसे व्यक्त कर सकते हैं। इसका विस्तार 'हास्य एवं विशिष्ट शब्द प्रयोग' शीर्षक से 'हास्य' अध्याय में किया गया है।

२.३.३. व्यंग्यात्मक शब्द समूह :-

उसके विपरीत अधिकांश व्यंग्य चेतन स्तर पर किये जाते हैं। साहित्य एवं जनभाषा में कुछ ऐसे विशिष्ट शब्द समूह हैं जो परिस्थिति एवं संदर्भ से अलग रहकर भी व्यंग्य की व्यंजना करते हैं। व्यंग्य, तिरस्कार एवं ईर्ष्या को लेकर किया जाता है। कुछ (विशिष्ट शब्द समूह) ऐसी मन:स्थिति को स्पष्ट करते हैं - जैसे किसी के द्वारा आत्म प्रशंसा किये जाने पर चिढ़ कर अथवा किसी के क्रोध के प्रति अवहेलना भाव प्रदर्शित करने के लिये प्राय: कहते हैं --' बड़े आये' या 'बहुत देखे ऐसे'।

-- पत्नी : बच्चों के पास ढाने कपड़े न हों, डाक्टर साहब बिना पाव भर पिये रह नहीं सकते। आये बड़े डाक्टर ।। (प्रश्न और पत्थर, नरेश मेहता)

-- आये-हाये बड़ी आयी नुकसान और फायदे को जानने वाली। यूं के कि सास कलमुंई के कण्ठ से नीचे उतरते देख तुझे सबर नहीं होता।

-- चलचल बड़ी आयी मिझे उपदेश देने कू और जाकर किसी मन्दिर में बैठ जा। (कुत्ता, म० ना० मल्होत्र, कहानियाँ, सितम्बर १९६८)

कुछ लोग आदतन तकियाकलाम के रूप में इसका प्रयोग करते हैं। किन्तु तब ये साधारण कथन मात्र रह जाता है ,व्यंग्यात्मक नहीं रह जाता। आवेश की अधिकता में बड़े आये का प्रयोग - भर्त्सना एवं धमकी के रूप में भी होता है --

--' जबान बन्द करो।' बाजी की आवाज में सिंहनी जैसी दहाड़ थी। बड़े आये शरीफजादे बन कर। जैसे दुनिया भर की औरतें वेश्या ही तो होती हैं इनकी नजरों में। (पृष्ठ १४६, 'गीला बारुद' नानक सिंह)

-- अरे लोगे के संभारि के बोल, हमारो कसूर है, तोहका ससुरे नाहि दिखे। बड़े आये लाट साहब। (पृष्ठ ८ , लोक परलोक, उदयशंकर भट्ट)

२.३.४. व्यंग्य एवं मुहावरे :-

हिन्दी में कुछ मुहावरे भी ऐसे हैं जिनका प्रयोग क्रोध की अभिव्यक्ति में व्यंग्य के रूप में होता है। यद्यपि इनकी संख्या असंख्य है तथापि यहां केवल वही दिये जा रहे हैं जिनका प्रयोग साहित्य एवं जनभाषा में बहुतायत से मिलता है।

-- मैढकों को जुकाम हुआ है -- से तिरस्कार की व्यंजना होती है । तिरस्कार के रूप में ही " घर में नहीं दाने अम्मा चली भुनाने" का प्रयोग होता है । जनभाषा में इसके अनेक रूप प्रचलित हैं -- घर में भूंजी भांग नहीं अम्मा चली भुनाने", घर में भूंजी भांग नहीं न्योते सात दे आयी । --"कहां राजा भोज कहां गंगवा तेली" का प्रयोग तुलनात्मक व्यंग्य के रूप में होता है ।

-- छाज तो छाज चलनो भी बोले जिसमें बहत्तर छेद -- सूप तो सूप चलनी भी बोलने लगी -- तिरस्कार पूर्ण व्यंग्य हैं ।

-- अधजल्य गगरी छलकत जाये, छूछू नदी जल भरो उतरायो -- ~~हीन~~ गौन मनोवृत्ति के लोगों के लिये तिरस्कार पूर्ण व्यंग्य ।

-- रस्सो जल गयी पर ऐंठन नहीं गयी-- गर्व पर तिरस्कार पूर्ण व्यंग्य ।

-- सौ चूहे खाय के बिलार बनी भगतिनेश(अपने मूल रूप में यह ग्रामीण लोकोक्ति है किन्तु हिन्दी में भी प्रचलित है)। स्त्रियों द्वारा इसका प्रयोग अधिक होता है । इसके अन्य रूप -- नौ सौ चूहे खाय के बिल्ली हज को चली," नौ सौ" के स्थान पर"सात-चूहे" या"सत्तर चूहे" प्रयोग भी मिलता है । यह किसी पाखण्डी के प्रति कटु व्यंग्य है ।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां व्यंग्य में मुहावरों का प्रयोग अधिक करती हैं । कुछ मुहावरे तो केवल स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त होते हैं । जैसे -- ये मुंह और मसूर की दाल, नाच न आवे आंगन टेढ़ा, आदि ।

व्यंग्य का एक विशिष्ट रूप विशेष कर स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त होता है । इसमें अपने माध्यम से दूसरे पर व्यंग्य किया जाता है । प्रत्यक्ष रूप में तो अपनी प्रताड़ना या भर्त्सना रहती है किन्तु उसका लक्ष्य दूसरे पर व्यंग्य रहता है । जैसे--

-- हूं..... हूं..... मेरा तो दिमाग ही बिगरि गया है न जो तुम्हें डांटती और ये काये की नई कहती कि सास कलमुंई के कण्ठ से नीचे उतरते देख तुम्हें सबर नहीं होता ।

-- मेरी कोई ~~अच्छी~~ बात अच्छी क्यों लगेगी ? मैं तो सिर से पैर तक दोषों से भरी हूं ।

२.३.५ क्रोध और हास्य व्यंग्य :-

क्रोध में हास्य का मिश्रण अस्वाभाविक है किन्तु क्रोध जब जब घृणा का रूप

है ऐसा है तो उपहास के रूप में हास के माध्यम से व्यक्त होता है। इस हास्य की रूप एवं प्रवृत्ति साधारण हास्य से बिल्कुल भिन्न रहती है। यह स्वाभाविक एवं आंतरिक नहीं वरन सप्रयास और कृत्रिम रहता है। हास्य के साथ किया गया व्यंग्य अधिक मार्मिक एवं तीखा हो जाता है। इसमें विरोधी के अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के प्रति पूर्णतः अवहेलना रहती है।

--(व्यंग्य पूर्ण हंसी) मेरे सामने अभिनय। मेरे पांव मत छुओ, मैं कहता हूं पांव छोड़ दो हट जाओ कैलाश। (मन के कोने, शिव शंकर वशिष्ठ, हवा महल)

उपर्युक्त कथन साधारण निषेध मात्र होता किन्तु 'व्यंग्यपूर्ण हंसी' के कारण पूरा वाक्य तीखा व्यंग्य बन गया है।

साहित्य में जहां भी इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं प्रारम्भ में हास्य के स्वरूप का स्पष्टीकरण भी रहता है अन्यथा भाव स्पष्ट नहीं होते।

-- मंगतराम के होठों पर कड़वी हंसी थी -- और शायद इसीलिये कि तुम एक देवता के सामने बैठो हो। (पृष्ठ २२१, 'गोला-बारूद' नानक सिंह)

हास्य एक ओर जहां साधारण वाक्यों को व्यंग्यात्मक वाक्यों में परिवर्तित कर देता है वहां दूसरी ओर शुद्ध भर्त्सनात्मक वाक्यों को मीठी फिड़की में बदल देता है। जैसे --

तारा (हंस कर) बस इसी कूते पर मुझे अपने साथ ले चलने को कह रहे थे।

(पृष्ठ ८२, 'उपचेतना का छल' विष्णु प्रभाकर)

क्रोध के साथ इस कृत्रिम हास्य का मिश्रण शिक्षित एवं सभ्य समाज की विशेषता है।

वस्तुतः व्यंग्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उत्साह, प्रेम, एवं हास्य की वाचिक अभिव्यक्ति में भी इसका स्थान है।

२.१.६ व्यंग्य - भर्त्सना :-

क्रोध के साथ व्यंग्य अपने शुद्ध रूप में कम ही मिलता है। आवेश के कारण व्यंग्यात्मक वाक्यों में भर्त्सना के तत्व भी सम्मिलित हो जाते हैं। कंठस्वर की कर्कशता अथवा पूरे वाक्य में कहीं भी अपशब्दों का प्रयोग वाक्य को भर्त्सनात्मक बना देता है। इन दोनों में जो तत्व प्रधान रहता है वाक्य उसी की व्यंजना करता है। जैसे निम्न उदाहरणों में :-

-- युधिष्ठिर (पुकार कर) -- ओ पापी । अरे ओ कपटी दुरात्मा, दुर्योधन, क्या स्त्रियों की भांति जल में छिपा बैठा है ?

(पृष्ठ१६, महाभारत की सांझ 'भारतभूषण')

पुरुष की स्त्री से तुलना व्यंग्य है परन्तु पापी, कपटी, दुरात्मा, आदि अपशब्दों के कारण वाक्य भर्त्सना की अभिव्यक्ति करता है ।

-- औरत की जात हरामजादी रोने के भरोसे खेल करने चली है ।

(दूसरा सुख, केशवप्रसाद मिश्र, नईकहानियां, सितम्बर १९६८)

'औरत की जात' व्यंग्य है । क्रोध में व्यंग्य के रूप में प्राय: लोग जातिवाचक नामों का उल्लेख करते हैं । जैसे 'चमार की जात', 'बनिया की जात', आदि परन्तु अपशब्दों के कारण उपर्युक्त रूप में भर्त्सना अधिक प्रतीत होता है ।

-- मैंने अंगूठी उतार कर सिरहाने छिपाने की चेष्टा की तो उसने कसकर मेरी कलाई पकड़ ली "औरत है ना ससुरी, सर के ऊपर तनी छुरी के नीचे भी गहनों का मोह नहीं टूटता ।"

(पृष्ठ ३४, 'उपहार' शिवानी, धर्मयुग, २४ अक्टूबर, १९६५)

२.३.७. व्यंग्य- भर्त्सना-तिरस्कार :-

प्राय: व्यंग्य एवं भर्त्सना के साथ तिरस्कार भी जुड़ जाता है । यद्यपि व्यंग्य मात्र के पीछे तिरस्कार की भावना भी रहती है किन्तु शुद्ध तिरस्कार जिसे 'धिक्कार' कहना अधिक उचित होगा व्यंग्य और भर्त्सना के साथ आवेश के तीव्रतम स्तर पर ही प्रकट होता है ।

-- बस इतनी सी बात सुन कर गाड़ी वाला बिगड़ गया । आवेश में कुछ तीव्र एवं व्यंग्य भरे शब्दों में बोला--......" बस -बस मैम साहब ।

कौन मुंह लेके आए आप मेमसाहब ...

(पृष्ठ १८६, ताजी बुआ की आत्मा)

उपर्युक्त उदाहरणों में तिरियाचरित व्यंग्य की व्यंजना करता है, "कौन मुंह लेके" तिरस्कारयुक्त भर्त्सना है ।

कभी-कभी झुंझलाहट एवं खीझ का भाव भी व्यंग्य को जन्म देता है । यहां क्रोध नहीं वरन आक्रोश अधिक रहता है । अभिव्यक्ति की दृष्टि से व्यंग्य तिरस्कार

और भर्त्सना सब की मिली जुली अभिव्यक्ति होती है। फ्रुंफलाप्ट की अभिव्यक्ति परिस्थिति पर निर्भर करती है। किन्तु कुछ वाक्य ऐसे हैं जो अनायास ही फ्रुंफलाप्ट को स्पष्ट करते हैं। उनका एक अलग वर्ग बनाया जा सकता है। जैसे -- कानों में तेल डाल रखा है क्या ? कानों में रुई डाल रखी है क्या ? हाथ पैर में मेंहदी लगा रखी है क्या ? चादर तानें सो रहे थे क्या ? अंधे हो क्या ? आदि वास्तव में इन कथनों के साथ का 'क्या ?' आक्रोश स्पष्ट करता है। इस 'क्या ?' के अभाव में कथन आक्रोश नहीं वरन रोष को अभिव्यक्ति करेगा और भर्त्सना प्रतीत होगा।

२.४ क्रोध में भर्त्सना का स्वरुप :-

क्रोध के आवेश के क्रमिक विकास में जब व्यंग्य द्वारा अपमान या हानि का पूर्ण प्रतिकार संभव नहीं होता तो व्यक्ति प्रताड़ना/या भर्त्सना का अवलम्ब ग्रहण करता है। यह क्रम निश्चित नहीं होता। कभी-कभी भर्त्सना के बाद भी प्रतिकार सम्भव न होने पर खिजलाप्ट के रुप में कटु व्यंग्य की अभिव्यक्ति होती है।

क्रोध की अभिव्यक्ति के कुछ रुप इतने निर्धारित हैं कि संदर्भ एवं परिस्थिति से अलग भी क्रोध की स्पष्ट व्यंजना करते हैं। संवेगों में सब से अधिक तीव्र प्रक्रिया वाला क्रोध का संवेग रहता है। इसमें भी भर्त्सना आवेश का चरम बिन्दु है अत: ऐसी स्थिति में वाक्य छोटे, क्रमहीन एवं कभी-कभी अर्थहीन भी होते हैं।

२.४.१ कंठस्वर :-

क्रोध में कंठस्वर में एक अतिरिक्त रुक्षता एवं कर्कशता आ जाती है। इस कर्कशता एवं रुक्षता के कारण साधारण कथन भी भर्त्सना प्रतीत होता है। मांस पेशियों में तनाव आने के कारण वाक्य का उच्चारण परिवर्तित हो जाता है। साधारण व्यवहार में श्रवण द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है किन्तु लिखित साहित्य में इस ओर लेखक को संकेत देना पड़ता है।

-- निर्मला ने कर्कश स्वर में कहा --' क्या कर रही हूं, अपने भाग्य को रो रही हूं'। (पृष्ठ ६२, 'निर्मला ' प्रेमचन्द)

--' तुम पूरन को फिर जानते ही नहीं' पूरन दांत पीस कर कहता है।

(पृष्ठ १४६, ' करामत ' , नवनीत)

-- बिजली की तेजी से स्वर्णा का हाथ छोड़ कर मैयया ने तीखे स्वर में कहा-- कैसा अनर्थ ?"

क्रोध में बलाघात का अतिरिक्त प्रयोग होता है। किन्हीं विशेष शब्दों या (अपशब्दों) पर बलाघात क्रोध की तीव्रता को व्यक्त करता है। जैसे --

-- तोताराम ने दांत पीस कर कहा--" अच्छी बात है , जब भूख लगे तब खाना।

(पृष्ठ ७०-७१ "निर्मला" प्रेमचन्द)

उपर्युक्त कथन में" अच्छी बात है" पर बल देकर उच्चारण मर्दाना व्यंग्य करता है।

--"मत आना" उर्मिला ने क्रुद्ध स्वर में कहा और धमाके से द्वार बन्द कर लिया।

(पृष्ठ ४०, "अधूरी गांठ", सोमावीरा)

" मत आना" में"मत" पर बलाघात क्रोध को व्यक्त करता है। प्राय: छोटे-छोटे प्रश्नात्मक एवं निषेधात्मक वाक्यों का बलाघात पूर्ण उच्चारण क्रोध की सशक्त और स्वाभाविक अभिव्यक्ति करता है। जैसे निम्न उद्धरणों में :--

-- शुभा के नेत्रों से ज्वाला फूट पड़ी, तीखे स्वर में बोली" क्या मतलब ?"

(पृष्ठ १८३, "मंजिल के दीप" सोमावीरा)

-- तुलिया ने टोकरी पटक दी, अपने पांव छुटाकर एक पग पीछे हट गयी। रोष भरी आंखों से ताकती हुई बोली --" क्या मतलब ?"

(पृष्ठ २४०, " देवी" गुप्तधन, प्रेमचन्द)

--"क्यों ?" वह चीखा। उसके नेत्र अंगारे बरसाने लगे थे।

(पृष्ठ १०८"धुएं की परतें" ओम कुकरेती, नवनीत जुलाई६७)

क्रोध में वाक्य के आरोह - अवरोह को नहीं स्पष्ट किया जा सकता। यह तो निश्चित है कि वाक्यों बहुत अधिक उतार-चढ़ाव रहता है किन्तु उसका रूप व्यक्ति के साथ बदलता रहता है। जैसे निम्न दोनों उद्धरण लगभग एक ही मन:स्थिति के हैं किन्तु दोनों के लय में भिन्नता है :-

-- राजा साहब ओंठ से दांत काट कर बोले--" बेहतर है आओ आज की रात को मेरे राज्य से निकल जाओ !"

(पृष्ठ २२४, "कवच" गुप्तधन, प्रेमचन्द)

-- शारदा (कहता है) तो शीला भी फिर आ गयी। लगता है बात आगे बढ़ गयी है। ("और वह न जा सकी" विष्णु प्रभाकर)

दोनों वाक्यों में क्रोध है किन्तु लयात्मक और समानता बिल्कुल नहीं है ।वास्तव में मात्र कंठस्वर के आधार पर ही क्रोध की स्पष्ट व्यंजना होती है । यदि कंठस्वर में गहनता कर्कशता आदि हो तो साधारण सा अक्षर , शब्द या वाक्य भी क्रोध व्यक्त करता है ।

-- मांग मैंने लिया कुकेतु , राजसिंहासन तुम्हारे हेतु '

लाड़ तो स्मि हुए भरत हत बोध, 'हूं' कहा शत्रुघ्न सक्रोध ।

उपर्युक्त उद्धरण में 'हूं' का गम्भीर उच्चारण मात्र क्रोध व्यक्त करने में समर्थ है । स्वर की विशेषता को सूचित करने वाले कुछ संकेत हैं । जैसे कर्कश स्वर में , क्रुद्ध स्वर में, तीखे स्वर में, कटु स्वर में, आदि । इनके अतिरिक्त क्रोध की विभिन्न मन:स्थितियों को कंठस्वर के माध्यम से व्यक्त करने वाले कुछ अन्य विशिष्ट शब्द भी हैं । जैसे -- चिड़चिढ़ा कर(कहा), फल्लाकर (कहा), गरम होकर, तिलमिला कर, तड़पकर, पागल होकर, अधीर होकर, चिढ़ कर, बिगड़ कर, उबल कर, तड़क कर, कड़क कर, तमक कर, तिनक कर, क्रुद्ध कर, खीफ कर, खिसिया कर, बिफर कर, भुंफलाकर, मुंह बिचला कर, किटकिटाकर, ऐंठ कर, जल कर, दहाड़कर, गुर्राकर, गरज कर, चिंघाड़ कर,आदि प्रत्येक मन:स्थिति के साथ कंठस्वर में परिवर्तन होता जाता है ।

कभी-कभी उपर्युक्त विशेषताओं में से कोई भी स्पष्ट नहीं रहती है फिर भी कथन क्रोध को स्पष्ट करता है ।

--' इतने साल उसी के लिये बच्चे जनती रही जिसने मेरे भाई को कत्ल किया है ।' वह बार-बार अपने से कहती और दीवानों की तरह कभी हाथ मलती, कभी ओंठ काटती, कभी दुपट्टे के पल्लू को उंगलियों पर लपेटना शुरु कर देती ।

(पृष्ठ १५०, 'करामत' करतारसिंह दुग्गल, नवनीत, मार्च '६७)

२.४.२. भर्त्सना एवं विस्मयादि बोधक शब्द :-

क्रोध में कुछ विशिष्ट विस्मयादि बोधक शब्द मिलते हैं -- आ हा- हर वर्ग की स्त्रियों के द्वारा ।

बो हो तुम चुपकी रहो । कहा सुरगवासियों का दर्द उठ रहा है तो आकर बोवो न ये नरक ।

ए है है -- प्रौढ़ एवं अशिक्षित स्त्रियों द्वारा व्यंग्य के रुप में --

ए हैहे । मैं क्यों नाराज होने लगी, नाराज हो मेरी बला.... हुं.....। इन

मुए मर्दों से कहीं भी निजात नहीं (इश्क पर जो नहीं ३-५-६८)

हुंह - उपेक्षा एवं झल्लाहट की अभिव्यक्ति --

" अपने लोग हैं। खाक अपने लोग हैं। सब अपने लोग हैं.... हुंह..... सब अपने लोग हैं।"

उहुं -- उपेक्षा एवं तिरस्कार के रूप में --विशेष कर स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त

उहुं मेरो बला से, मेरे ठेंगे से।

ओह -- आश्चर्यमिश्रित व्यंग्य के रूप में --

थू : तिरस्कार एवं घृणा के रूप में, तुम्हारे ये रिक्शे वाले, ठेले वाले धरती को स्वर्ग बनायेंगे ? थू....

छि: घृणा भर्त्सना के अर्थ में--

छि: कृष्ण उन्हें इतना नीचे नहीं घसीटो।

आये हाये - आश्चर्यमिश्रित व्यंग्य के रूप में बूढ़ी एवं अशिक्षित वर्ग की स्त्रियों द्वारा -

आये हाये बड़ी आयी मेरा भला चाहने वाली। यूं के कि सास कलमुई के कंठ से नीचे उतरते देख तुझे सबर नहीं होता।

२.४.३ <u>शब्दावलि</u> :-

आवेश की स्थिति जहां कंठस्वर में परिवर्तन कर देती है वहीं वाक्य रचना पर भी प्रभाव डालती है। प्राय: अपनी बात पर बल देने के लिये उस विशेष शब्द की आवृत्ति होती है किन्तु क्रोध में पुनरावृत्ति का एक नया रूप मिलता है। ये पुनरावृत्ति प्राय: विरोधी के शब्दों की होती है अर्थात् जिसके प्रति रोष हो उसके कथन की । जैसे --

-- क्या कर रही हो ?

-- क्या कर रही हूं अपने भाग्य को रो रही हूं ?

कभी-कभी क्रोध का आलम्बन सामने न होने पर किसी अन्य के द्वारा भी कुछ कहे जाने पर यह प्रतिक्रिया हो सकती है।

-- कलाकार (एकदम चिढ़कर) कहरा। हां कहरा। तुम्हें इससे क्या ? तुम कौन होते हो ? तुमने मुझे क्यों रोका ? मैं आत्महत्या करूंगा, करूंगा।

(पृष्ठ ६६ , 'सवेरा' विष्णु प्रभाकर)

-- सरोज : (बीच ही में, चिढ़े स्वर में) प्ला..... प्लान..... प्लान । मैं तो ऊब गई आपकी प्लैनिंग से ।

(पृष्ठ ३७,मास्टर प्लैनिंग :-काले काँचे गोरे कथा संग्रह से

-- नौकर टिन:.. टिन...टिन... सभी के मां-बाप मरने लगे । आये दैर नहीं टिन... टिन.... टिन(काम करते हुए) जाओ जहन्नुम में ।

शब्दावृत्ति की भाँति पूरे का पूरा वाक्य भी दोहराया जाता है । प्राय: उन्हीं शब्दों एवं वाक्यों की पुनरावृत्ति होती है जिनसे व्यक्ति को एतराज रहता है ।

-- छोटी बहू पिरिमा वर्षों से बड़बड़ा उठी " ससुर जी यह तो देखेंगे नहीं की अभी घास-पात से छोटी हूं + + + + फिर भी जरा सबर नहीं + + + "नहीं लाई" बहू तम्बाकू भर के" हुक्म दे दिया ।

(पृष्ठ १७७, पुरखा" शैलेश मटियानी, नवनीत १९६६)

-- शारदा : (तड़प कर) क्या कहा--" हर तीसर दिन आ जाते हैं; कौन मरा जाता है तीसरे दिन ।

(और वह न आ सकी" विष्णु प्रभाकर)

कभी-कभी शब्द या वाक्य को न दुहरा कर उस पर लगातार प्रश्न किया जाता है । इस प्रकार भी उस शब्द विशेष की कई आवृत्ति की जाती है ।

--" कहाँ कि लड़की, कैसी लड़की, कौन लड़की ?" वर्मा जी सताये हुए सर्प की भाँति क्रोधित होकर बोले और कुर्सी छोड़ कर उठने लगे ।

(दा बोटी दी रिबन" राजेन्द्र अवस्थी तृषित)

-- शुरुआत ? तुम शुरुआत की बात करते हो ? मैं बताऊं इन सब की शुरु-आत कैसे हुई थी ? तुमने मुझे क्या वचन दिया था ? और क्या क्या कसमें खायी थी? हृदय का स्वर दबा होने पर भी आन्तरिक आवेश के कारण बहुत ऊंचा उठने लगा ।

("अपराधी" मोहन राकेश, नवनीत, जून १९६१)

२.४.४ अर्थ की पुनरावृत्ति :-

कभी-कभी विरोधी शब्दों को न दुहरा कर शब्द में निहित अर्थ को दुहराने की प्रवृति भी मिलती है । जैसे कोई कहे" अन्धे हो क्या", सुनने वाला कहे " मेरी तो दो आँखें हैं, तुम्हें ही नहीं दिखायी देता होगा", "मुझे नहीं दिखायी देता, तुम्हीं देख लो न" ।

-- जीवन (कहकहे फाड़ता हुआ) यह लोग भी लड़की को निलाम करने वाले सौदागर निकले। जिधर देखो उधर पैसा.... पैसा..... पैसा.... ।

-- + + आप की समझ से बाहर की वस्तु है।

हीरालाल (चीख कर) मैं सनकी हूँ। पागल हूँ।। सठिया गया हूँ।।। (सिर थाम कर बैठते हुए) अब समझ में आया तुम लोग मेरे इलाज के लिए पैसे क्यों नहीं देते हो ?

विरोधी के शब्दों में निहित अर्थ की पुनरावृत्ति एवं उसके कार्यों का उल्लेख भी व्यक्ति क्रोध में व्यक्त करता है। प्राय: इस प्रकार के शब्दों में या उसके बाद "चुनौती" भी रहती है।

-- खोल ले ब्राह्मण की शिखा। शूद्र के अन्न से पले कुत्ते खोल ले। परन्तु याद रख यह शिखा नन्द कुल की कालसर्पिणी है.... ।

(पृष्ठ ६८ चन्द्रगुप्त, प्रसाद)

किसी के द्वारा मारे जाने पर अथवा कोई नुकसान किये जाने पर व्यक्ति क्रोध में अवश्य कहता है "मार ले और मार ले" फिर कहूँगा, या तोड़ डालो खूब तोड़ो, मैं भी समझूँगा।

उत्तरा : नीलाम्बर ये सब अतिथि के लिये थे यही न कहना चाहते हो। कह दो ..... और भी कुछ कह दो... मुझे विष क्यों नहीं दे देते + + + (हल्की सिसकियां)

(किराये का कमल)

इस प्रकार की अभिव्यक्ति वहीं होगी जहाँ क्रोध के कारण तत्कालीन उत्तर न सूझ पड़े। आपत्ति प्राय: उन्हीं वाक्यों एवं वाक्यांशों की होती है जिन पर वक्ता की आपत्ति रहती है।

तत्कालीन उत्तर न समझने की स्थिति की एक प्रक्रिया जहाँ विरोधी के शब्दों को दुहराने की होगी वहीं कभी-कभी प्रश्न के रूप में भी होती है। वास्तव में कहने वाले का अभिप्राय तो पहली ही बार में समझ में आ जाता है क्योंकि यदि अभिप्राय समझ में न आयेगा तो गुस्सा भी क्यों आयेगा किन्तु उसका उत्तर तुरन्त न देकर व्यक्ति पूछता है ज़रा फिर कहना, फिर तो कहो, क्या कहा है ज़रा फिर से तो कहना।

इन कथनों में जहां चेतावनी रहती है वहां वक्ता को अपनी मन:स्थिति को व्यवस्थित करने का समय भी मिल जाता है। और वह प्रत्युत्तर निश्चित कर लेता है। कुछ उदाहरण --

-- राजा पर वज्र गिरा। वे मेघ गर्जन की भांति गर्ज कर उसे पीछे ढकेलते हुए बोले --" क्या कहा ? फिर कहो ?"

(पृष्ठ १२ "हम्मीरहठ" चतुरसेन शास्त्री)

-- शुभा के नेत्रों से ज्वाला फूट पड़ी, तीखे स्वर में बोली-" क्या मतलब ?"

(पृष्ठ १८३, "मंजिल के दीप" सोमावीरा)

इसी प्रकार कभी-कभी विरोधी के कथन को सुन कर उस पर पुन: विचार करने की दृष्टि से उससे बार-बार पूछने की प्रवृत्ति भी दिखायी पड़ती है --

-- मैं तुम से पूछ हूं आखिर भिके जगाते हुए क्या आफत आयी थी ?

२.४.५ अपने शब्दों की आवृत्ति :-

अपनी बात पर बल देने के लिए अपने ही वाक्यों एवं शब्दों की आवृत्ति की जाती है। कभी-कभी यह दुहराना व्यंग्यात्मक भी होता है किन्तु अधिकतर किसी क्रिया पर बल देने के लिये, निषेध के लिये या ज़िद का भाव प्रदर्शित करने के लिए अपने वाक्यों शब्दों एवं वाक्यांशों को दोहराया जाता है। साधारण अस्वीकृति के लिये भी आवेश में व्यक्ति कहता है, नहीं..... नहीं.... नहीं.. या नहीं कभी नहीं, हजार बार नहीं सौ बार नहीं। हठ का भाव भी शब्दावृत्ति के माध्यम से बहुत स्पष्ट हो जाता है। जैसे -- कहूंगा.... सौ बार कहूंगा... तुम चोर हो... तुमने चोरी की है।

-- बालशास्त्री : (गुस्से में) नहीं तो छोकरी तू क्या कर लेगी ? हमें यानी महामहोपाध्याय को तू धमकियां देती है। जा नहीं देंगे... नहीं देंगे.... तारुण्य भी नहीं देंगे और पैसे भी नहीं देंगे।

(पृष्ठ १४७ "व्यास जी का कायाकल्प" नवनीत अप्रैल १९६७)

-- मनीषी : नहीं नहीं यह नहीं हो सकता है। मैं उससे नहीं मिल सकती। मैं उससे नफरत करती हूं, मैं उसे देख नहीं सकती।(पृष्ठ २७, "मां" विष्णु प्रभाकर)

कभी केवल मात्र अपने कथन का औचित्य प्रमाणित करने के लिए अथवा आवेश में यान्त्रिक रूप से शब्दों की आवृत्ति मिलती है । जैसे --

-- मैं तुम्हें कांटे चुभाता हूं ?

हां... हां... हां नीलिमा चीख उठी, ये सारहीन जीवन जिसमें केवल आपकी दया के अनचाहे बोझ हैं मुझे नहीं चाहिये ।

(पृष्ठ ११८, 'बन्द दरवाजे के पीछे' विमल वैद, नवनीत मई, ६७)

-- श्वाना (चिढ़ते हुए) तुमसे कितनी बार कहा जाय हां । हां ।। और हां।। भागो यहां से ।

नरेश मेहता
('प्रश्न और पत्थर' / रेडियो एकांकी)

-- होरालाल : (चीखकर) नहीं । नहीं ।। नहीं ।।। मैंने जो कुछ किया है तुम्हारे लिये । मैं तानाशाह नहीं हूं । लो सम्भालो अपना घर ।

(पृष्ठ ४१, मास्टर प्लैनिंग, काले कावे गोरे हंस)

अपने शब्दों एवं वाक्यों की आवृत्ति के कुछ अन्य भी कारण हैं । इनमें एक झुंझलाहट की मन:स्थिति भी है । इस मन:स्थिति में व्यक्ति अनायास ही शब्दों एवं वाक्यों की आवृत्ति करता है , जैसे -- अरे छोड़ो... छोड़ो, बस बहुत हो गया। जाओ... जाओ बहुत देखे तुमसे, रहने दो... रहने दो यह पाठ किसी और को पढ़ाना ।

-- शारदा (चमचम करती हुई आती है । बड़बड़ाती रहती है)

बातें । बातें । अब देखो बातें । अब सुनो बातें ।

(गिलास फेंकती है ।)

कभी ब कभी मात्र चेतावनी के लिये भी अपने शब्दों की आवृत्ति मिलती है । जैसे निम्न उदाहरणों में --

-- क्या इसीलिये राष्ट्र की शीतल छाया का संगठन मनुष्य ने किया था । मगध । मगध सावधान । तुझे उलट दूंगा ।

(पृष्ठ ५६, चन्द्रगुप्त, प्रसाद)

-- शारदा : (तड़प कर) बस बस, उन तक न जा शशि, रहने दे ।

('और वह न जा सकी', विष्णु प्रभाकर)

शब्द, वाक्य अथवा वाक्यांश आवृत्ति वास्तव में आवेश के क्रमिक विकास को सूचित करती है । एक साथ की गयी प्रथम, द्वितीय और तृतीय आवृत्ति में भी

परस्पर उच्चारण एवं लय की दृष्टि से अन्तर रहता है। जैसे -- 'नहीं'। नहीं ।। नहीं ।।। में प्रथम दो 'नहीं' का उच्चारण लगभग समान होगा। 'नहीं' का बलाघातयुक्त विलम्बित उच्चारण होगा। तीसरे 'नहीं' का बलाघातयुक्त किन्तु शीघ्रता से उच्चारण होगा।

२.४.६ स्वरभंग :-

क्रोध के आवेश में एक ऐसी स्थिति भी आती है जब वाणी भावों को व्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है। इस मन:स्थिति में वाणी और विचार का परस्पर सम्बन्ध टूट जाता है। अत: स्वरभंग, हकलाहट, तुतलाहट आदि स्थितियां देखने को मिलती हैं। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की भाषा में यह प्रवृत्तियां अधिक मिलती हैं। प्राय: इस और लेखक की ओर से संकेत भी रहता है।

-- पुजारी जी के मुंह से फाग आने लगा। सेठ जी चिंघाड़ रहे थे--" जेब काट ले'...... (पृष्ठ ५१ 'किराये का काम' राजेन्द्र यादव)

-- लेकिन अगर मुझे यह मालूम होता तो ..... उन्होंने नाक से फुंफकार छोड़ी।

(पृष्ठ १४७, 'अल्हारा' (जहां लक्ष्मी कैद है) राजेन्द्र यादव)

-- तारा (चिल्लाकर) ले जाओ इसे मेरे सामने से। दूर हट जाओ तुम सब लोग। स्वार्थी, नीच, कमीने (स्वर टूट जाता है)

(पृष्ठ ~~१५७~~,७६, उपचेतना का छल, विष्णु प्रभाकर)

२.४.७ वाक्यों का क्रम परिवर्तन :-

आवेश की स्थिति में वाक्यों का व्याकरणानुशासित रूप विश्रृंखलित हो जाता है। उसमें क्रम भंग, क्रम परिवर्तन, आदि प्रवृत्तियां मिलती हैं। यह दो रूपों में होता है। (१) चेतन स्तर पर-- किसी शब्द क्रिया अथवा निषेध पर अधिक बल देने के लिये उसे वाक्य के आरम्भ में या सबसे अन्त में प्रयोग करना। जैसे -- निम्न वाक्यों में --

-- खींच ले ब्राह्मण की शिखा 'क्रूर के अन्न से पले कुत्ते'।

उपर्युक्त वाक्य में 'खींचने' पर बल देने के लिये उसे वाक्य में सब से पूर्व रखा गया है।

-- रख दूं गले पर छुरी--`रखने` की प्रक्रिया पर बल देने के लिए उसका वाक्य में सब से पूर्व प्रयोग है ।

-- भिखारी की औलाद और दिमाग इतना -- प्रस्तुत वाक्य में विशेषण `इतना` पर बल देने के लिये ही वाक्य में सब से अन्त में रखा गया है ।

-- शराब में पैसे फूंको तुम, और दोष मेरे सिर --`तुम` एवं` मेरे सिर`पर बल देने के लिये वाक्य को दो भागों में विभक्त करके दोनों भागों के अन्त में इन शब्दों को लाया गया है ।

इसी प्रकार` तेरी ये हिम्मत`, कभी देखा है इतना ऐश्वर्य, बहुत देखे तुम्हारी तरह, आदि वाक्यों में क्रम परिवर्तन या अस्वाभाविक क्रम आवेश सूचित करता है । कभी-कभी आवेश के कारण वाक्य बिल्कुल ही विश्रृंखलित हो जाते हैं । जैसे --`आये-बड़े अक्लमन्द बन के`, जरा देखो मुंह अपना शीशे में आदि ।

२.४.८ अनवरत एवं अधिक बोलना :-

आवेश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अनवरत एवं अधिक बोलती हैं । आवेश में ये लम्बे कथन छोटे-छोटे वाक्यों वाले तथा अलंकार आदि से सर्वथा हीन रहते हैं । पूरा कथन क्रमश: आरोहात्मक होता जाता है । मध्य सप्तक अथवा मन्द सप्तक से आरम्भ होकर सुर तार सप्तक अथवा अतितारसप्तक (केवल स्त्रियों में) तक चला जाता है ।

-- उत्तरा :(आवेश सहित) फिर सत्य तो मैं नहीं समझती लेकिन ये सब चीजें क्या बुरी हैं ? तुम चाहते हो कि उत्तरा तुम्हारे साथ ठोकरें खायें ? तुम जीवन निर्वाह के लिये साइन बोर्ड रंगने का काम करने को तैयार हो । मैं तुम्हारे आवारा फटीचर, चापलूस दोस्तों के कामरेडों के लिए चूल्हे में सिर देकर, फटी साड़ी पहन कर चाय बनाने बैठूं । यही न ?

(किराये का कमरा, नरेश मेहता)

प्राय: इस प्रकार के कथनों में विरोधी की प्रताड़ना रहती है और उस पर आक्षेप पर आक्षेप लगाते चले जाते हैं । कभी-कभी प्रश्न पर प्रश्न रहता है और यदा कदा उनके उत्तर वक्ता स्वयं अपनी ओर से देता जाता है । ये उत्तर विरोधी के अपराध की पुष्टि करने वाले होते हैं ।

--` हुड़दंगबाज ? तुम हुड़दंगबाज की बात करते हो ? मैं तुम्हें बताऊं इन सब की

शुरुआत कैसे हुई थी ? मुझे तुमने क्या वचन दिया था और क्या क्या कसमें खायी थीं ?" रुथ का स्वर दबा होने पर भी बहुत ऊंचा लगने लगा ।

(अपराधी, मोहन राकेश, नवनीत, जून १९६१)

आवेश की मात्रा यदि कम हो अथवा परिस्थितियों वश उसका प्रदर्शन न भी हो ब तो भी कथन लम्बा हो ही जाता है । इस स्थिति को 'बड़बड़ाना' की संज्ञा दी जाती है ।

२.४.६ अनर्गल बोलना :-

क्रोध बुद्धि को भ्रमित अथवा जड़ कर देता है । इसीलिये क्रोध में कहे गये ब वाक्य एवं उत्तर प्रत्युत्तर प्राय: परस्पर असम्बद्ध एवं अर्थहीन होते हैं । कभी-कभी दूसरों को अपशब्द कहने के प्रयत्न में व्यक्ति स्वयं को ही कुछ कह जाता है । एक विनोदपूर्ण चुटकुला इस मन:स्थिति की बड़ी सटीक अभिव्यक्ति करता है -- एक व्यक्ति अपनी बहन को साइकिल पर बैठा कर जा रहा था, रास्ते में वह साइकिल से गिर पड़ी । किसी अन्य अनजान व्यक्ति ने उस साइकिल सवार को सम्बोधित करते हुए कहा --" देखो तुम्हारी पत्नी गिर गयी ।" बहन के लिये पत्नी शब्द का प्रयोग सुन कर उस व्यक्ति को क्रोध आ गया उसने पलट कर उत्तर दिया'मेरी तो बहन है तुम्हारी पत्नी होगी ।' इस क्रोध में वह भूल गया कि उसका यह कथन उसकी बहन के लिये अपमानजनक होगा ।

कुछ अन्य उदाहरण--

-- नरेश : मैं पूछता हूँ तुम करते क्या रहते हो । अब तक मेरा हलुवा नहीं बना

उपर्युक्त वाक्य को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यही प्रतीत होगा कि वक्ता स्वयं अपना हलुवा बनाने को कह रहा है । कुछ और आवेश बढ़ने पर वाक्य व वाक्य का रूप निम्नलिखित हो गया ।

-- नरेश : (एकदम) घोंई गया भैंसे में छछून्दर, पहले मेरा हलुवा बना ।

(रसोई घर में प्रजातन्त्र, विष्णु प्रभाकर)

प्रथम वाक्य में वक्ता केवल पूछ कर रह जाता है जब कि द्वितीय में वह अपना हलुवा बनाने की आज्ञा देता प्रतीत होता है ।

असम्बद्ध बातों की भाँति ही अर्थहीन बातों का प्रयोग भी आवेश में मिलता है। जैसे -- हैं..... हैं.... अरे कोई मर थोड़े ही जायेगा । यह तो अनुभूति जगाने के लिये है । अनुभूति तीव्र नहीं तो अभिनय क्या खाक? शोकाकुल परिवार को धीरज क्या धूल बंधाओगी ।

उपर्युक्त वाक्यों में ` अभिनय क्या खाक`, `धीरज क्या धूल` अर्थहीन प्रयोग है।

कुछ प्रयोग ऐसे भी मिलते हैं जिनका प्रयोग वक्ता भिन्न अर्थ में करता है किन्तु आवेश के कारण उसका अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाताऔर पूरा वाक्य या तो अर्थहीन हो जाता है अथवा अभिप्रेत से भिन्न अर्थ देता है ।

-- + + + दुनालियों की तरह अपनी दोनों उंगलियां उनकी आंखों की सीध में करके क्रोध में थर-थर कांपते दहाड़े --

` डेढ़ रुपया । एक पाई कम नहीं । साले तेरी आंखें फाड़ कर ले लूंगा ।`

(पृष्ठ ५०, `किराये का काम` राजेन्द्र यादव)

` आंखें फाड़ कर ले लूंगा` अपने आप में कोई अर्थ नहीं देता है । आंखों के अन्दर रुपये नहीं होते कि उसे फोड़ने पर मिल जायें । यहां वक्ता का अभिप्राय सम्भवत: यह है कि यदि रुपये न मिले तो आंखें फाड़ दूंगा । इसी प्रकार` पेट से निकाल लूंगा`, ` तेरे मुर्दे से भी वसूल करूंगा` आदि प्रयोग भी मिलते हैं ।

२.४.१० अतिशयोक्तिपूर्ण कथन :-

क्रोध में कहे गये कथनों में प्राय: अतिशयोक्ति होती है । विशेषण क्रिया अथवा क्रिया -विशेषण में अत्युक्ति एवं अतिशयोक्ति ला कर अपनी बात के औचित्य को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया जाता है ।कभी-कभी श्रोता या विरोधी को आतंकित करने के लिए भी अतिशयोक्तिपूर्ण बात की जाती है । जैसे निम्न उदाहरणों में --

-- सुमन ने तड़क कर कहा-- ` देखो मैं तुमसे हजार बार कह चुका हूं कि ये औरतों के काम मैं नहीं कर सकता ।

निश्चय ही `हजार बार` बात नहीं कही गई होगी । मात्र अपनी बात पर बल देने के लिये यह प्रयोग किया गया है ।

-- महाराज : (बड़े क्रोध से एक देहाती का हाथ पकड़ कर खींचते हुए) " हजार दफा इन बदमाशन से कही चुके कि झैन के किनारे गोरू न चरावा करौ मुला के सुनथै । अबकीं सब ओझियाया न दिहा त बनकटा नाहलों चमार ।

(पृष्ठ ३, सौभाग-बिन्दी)

इस अतिशयोक्ति के कई रूप भर्त्सना और धमकी में भी मिलते हैं । जैसे-- डेढ़ हाथ की जबान है , सवा गज की जबान है । हड्डी पीस दूंगा । कोसी पेट में कर ब दूंगा, बापदादाओं को भी खबर दूंगा, आदि ।

२.४.११ विस्फोटात्मक वाक्य :-

आवेश की मात्रा जितनी अधिक होगी , वाक्य उतने ही छोटे होंगे । वाणी क्रमश: उतनी असमर्थ होती जायेगी । क्रोध में अन्य भावों की अपेक्षा आवेश अपेक्षाकृत कहीं अधिक होता है । और एक स्तर पर आकर इतना तीव्र हो जाता है कि छोटे-छोटे वाक्यों में अभिव्यक्ति आन्तरिक विस्फोट के रूप में होती हैं । इस प्रकार के वाक्यों को विस्फोटात्मक वाक्य कहना ठीक होगा । इनका एक अलग वर्ग निर्धारित किया जा सकता है । इनमें रूप गत भिन्नता अधिक नहीं होती है । विस्फोटात्मक वाक्य प्राय: अर्थहीन होते हैं । कुछ उदाहरण--

-- "बेबी " उसने दुहराया । उसने सोचा शायद वह इस तरह पत्नी को बचा सके। वह नहीं जानती क्या होगा ? वह सह नहीं सकती ।

" भाड़ में जाये " जैसे ज्वालामुखी फूट पड़ा हो । सत्येन्द्र स्तम्भित रह गया ।

) (पृष्ठ २८, " प्रतिशोध "--दूधनाथ सिंह ,धर्मयुग, २४अक्टूबर६५)

-- कई आदमियों के रोके जाने पर भी बाबू कृष्णनारायण अपनी काली अचकन की परवाह न करके किवाड़ खोलते हुए बाहर झपटे -- भाड़ में ले जाइये अपना दहेज ..... उनके मुंह से झाग आ गया और लाल आँखें कपाल पर चढ़ गयी थीं ।

(पृष्ठ १४६-५० तुम्हारी जमीं कैद है "राजेन्द्र या०

-- सरस्वती के नैनों में अश्रु छलक आये । बोले "चूल्हे में जाय ऐसी रीत"।

(पृष्ठ २३, "दृष्टिदान" सोमावीरा)

स्त्रियों का आवेश अपने उग्रतम रूप में रुदन में व्यक्त होता है ।

-- शारदा : (तीव्र तल्खी) अन्नपूर्णा गयी भट्टी में । मुझे आटा चाहिये ।

शारदा : आग लगे संगीत में । मैं पूछती हूँ आप अपनी काहिली और निकम्मेपन को बातों के पीछे क्यों छिपाते हैं ।

(पृ० १२६, और वह न जा सकी, विष्णु प्रभाकर)

-- 'हत तेरा सत्यानाश' झल्लाकर सवार चिल्लाया 'मुर्दे से पाला पड़ गया है + भगवान कैसे बला में फंस गया मैं ।

इसी प्रकार ' जहन्नुम में जाओ', 'चूल्हे में जाओ', चूल्हे में फांको, दफा हो जाओ ।

कभी-कभी क्रोधपूर्ण मनःस्थिति में किसी के द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर भी इसी प्रकार के विस्फोटात्मक वाक्य उत्तर में कहे जाते हैं ।

-- दुकानदार(झल्लाते हुए) तेरा सिर।अरे ! वो जो साड़ियाँ ले जाती हैं ।

-- बालशास्त्री : अब हद से बाहर जा रही हो ।

सरस्वती : हद तुम्हारी खोपड़ी की , अब तो बस पागल होना ही बाकी है । (पृष्ठ १५३, व्यास जी का कायाकल्प, नवनीत अप्रैल,६७)

-- मिसरानी : हुआ तेरा सिर । मरा बैठा -बैठा टुकुर-टुकुर देख रहा है । यह नहीं कि बाकी उठा कर रख दे । (पृष्ठ ८५, 'हाथी के दांत ')

उपर्युक्त प्रकार के वाक्यों का प्रयोग स्त्रियों द्वारा अधिक होता है । ये प्रायः अर्थहीन होते हैं । परिस्थिति एवं संदर्भ से इनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है ।

२.४.१२ दूसरे पर हावी होने का प्रयत्न :-

क्रोध में उत्तर प्रत्युत्तर चलता है । दोनों पक्षों की यही इच्छा रहती है कि अपने प्रतिद्वन्दी के ऊपर हावी होकर उसे नीचा दिखा सके । इसके लिये जहां एक ओर कंठस्वर में कर्कशता एवं तीव्रता आ जाती है वहीं दूसरी ओर अभिव्यक्ति का रूप भी विशिष्ट हो जाता है । जैसे --

-- चुप रहो या खामोश रहो ।

-- खबरदार जो ऐसी बात फिर मुंह से निकाली ।

-- चुप रहो, बड़ों के सामने मुंह खोलते शर्म नहीं आती ।

-- खामोश रहो....., सीधा जवाब दो ।

उपर्युक्त कथन सीधे-सीधे वाक्य हैं जिनका प्रयोग विरोधी के मुख को बन्द करने के लिये किया जाता है । इन्हीं वाक्यों का आवेश में अपेक्षाकृत अधिक अलंकारिक रूप भी मिलता है ।

-- ज्यादा कानून मत छांटो, सात फेरों की ब्याहता हूं, कोई लर्व मैरीज करके थोड़े ही आयी हूं जो बिना चाकरी कराये रोटी न दोगे ।

(लर्व मैरीज् चन्द्रकिरण सौनरेक्सा)

'कानून मत छांटो', 'कानून मत बघारो', आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं । इसी प्रकार किसी के द्वारा अधिक बोले जाने पर लोग झुंझलाकर कह उठते हैं ' बन्द करो यह बक-बक', क्या टैं-टैं लगा रखी है', 'क्यों सिर चाट रहे हो', आदि कह देते हैं। इन शब्दों का प्रयोग अपमान एवं तिरस्कार की दृष्टि से होता है ।

-- सर्कस वालों ने उसका विरोध करते हुए कहा--' क्या बकते हो डाक्टर ? मेरा खानदानी पेशा ही शेरों को पकड़ कर खेल दिखाना है ।"

(पृष्ठ ३७७, खाली कुर्सी की आत्मा)

किसी के कथन को 'बकना' रूप देना तो सभ्य व्यक्ति के लिये पर्याप्त अपमान है ।

इस वर्ग के कुछ अन्य प्रचलित रूप निम्नलिखित हैं :-

--' चुप बे बुड्ढे ।' शारदा बिगड़ी' पकर-पकर मत कर' अपनी नहीं देखता, जबान पर लगाम नहीं है । चमड़े की जीभ सटर-सटर करता है ।

(दूसरा सुख, केशवप्रसाद मिश्र, नई कहानियां, सितम्बर६८)

फिर भी जब विरोधी शान्त नहीं होता तो लोग अवहेलना करने के लिये उपेक्षा एवं उदासीनता का प्रदर्शन करते हैं --'बकता है तो बके' ।

२.४. ११ आत्मभर्त्सना:-

क्रोध के आवेश में व्यक्ति अचेतन स्तर पर ऐसे वाक्य या बातें कह जाता है जो विरोधी को न लगकर स्वयं अपने पर आती हैं । किन्तु कभी-कभी चेतन स्तर पर भी आत्मभर्त्सना के द्वारा वह दूसरे पर आक्षेप करता है । यह 'आत्मभर्त्सना', आत्म-ग्लानि के साथ वाली आत्मभर्त्सना से बिल्कुल भिन्न वस्तु है । यह आत्मभर्त्सना दूसरे के ऊपर अपना क्रोध व्यक्त न कर पाने की विवशता के फलस्वरूप होती है । क्रोध की अभिव्यक्ति के इस प्रकार के उदाहरण स्त्रियों की भाषा में अधिक मिलते हैं।

संम्भवत: उसके पीछे स्वयं को 'अबला' समझने की भावना क्रियाशील रहती है। पति अथवा पुत्र पर क्रोध आने पर स्त्रियां प्राय: कहती हैं -- मेरी तो किस्मत फूटी है, मैं तो अभागिन हूं, भाग्यजली हूं, मुझे मौत भी नहीं आती,आदि। इन कथनों के पीछे केवल मात्र शुद्धक्रोध होता है। कोई ऐसी मन:स्थिति में उनसे उनका कुशल पूछे तो यही उत्तर मिलेगा-- मर रही हूं, अपने भाग्य को रो रही हूं,आदि।

-- निर्मला ने कर्कश स्वर में कहा--' क्या कर रही हूं, अपने भाग्य को रो रही हूं। (पृष्ठ ६८, निर्मला)

-- भगवान मुझे मौत भी नहीं देता कि इस मुए से पीछा छूट जाये।

(उर्फ मैरिज,चन्द्रकिरण सोनरेक्सा,धर्मयुग,२६ दिसम्बर १९६५)

-- न तू आयेगा न तेरी बहू,। मैं अपना मुंह काला करूंगी, मुझे क्या पता था कि जिसे इस कोख से जन्मा वोही मुझे दु:ख देगा।

इस प्रकार की आत्म भर्त्सना के पीछे कभी-कभी कुछ विशेष कारण भी रहते हैं। मां बच्चे के प्रति और पत्नी पति के प्रति अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहती तथा किसी प्रकार की अशुभ बात भी नहीं कहना चाहती। आवेश के चरम स्तर में भी उनका मातृत्व एवं पत्नीत्व चेतन रहता है अत: इन स्थितियों में क्रोध आत्मभर्त्सना के रूप में व्यक्त होता है। जैसे -- हे भगवान अब तू मुझे उठा ले, अब मैं इस घर में अधिक नहीं जीना चाहती। नालायक पुत्र के लिये क्रोध में -- यह सब देखने से पहले मेरी आंखें फूट जातीं, मेरे पूर्व जन्मों का फल ही पुत्र के रूप में मुझे मिला है,आदि कहा जाता है।

इसी प्रकार अपने पूज्य और बड़े लोगों के प्रति क्रोध भी आत्मभर्त्सना के रूप में व्यक्त होता है। जैसे भरत का कैकेयी के प्रति रोष निम्न प्रकार से व्यंजित हुआ है--

-- नील से मुंह पोत मेरासर्व, कर रही वात्सल्य का तू गर्व।
हर मंगा, वाहन बनो अनुरूप, देख लें सब है यही वह भूप।।

कभी-कभी व्यंग्य के रूप में आत्मभर्त्सना रहती है। अपने को अपशब्द कह कर दूसरे को चोट पहुंचाना लक्ष्य रहता है। जैसे --

-- हां हां मैं तो सिर से पैर तक दोषों से भरी हूं।

-- पत्नी ? मैं तो नौकरानी हूं, नौकरानी

आत्मभर्त्सना का शुद्धरूप कम ही मिलता है। क्रोध में कहे गये लम्बे - लम्बे कथनों में एक या दो वाक्य आत्मभर्त्सना के होते हैं, शेष भर्त्सना के।

-- थोड़ी देर बाद शायद उन्होंने पानी मांगा होगा कि चाची एकदम बम की भांति फूट पड़ी" पानी , अरे कळ मुंहे तुझे तो आग देनी चाहिये आग। अब लेकर सारा बिस्तरा गन्दा कर दिया । कैसी बदबू फैला दी मुंए ने । हाय राम । मेरे तो -मइया- बाप ही बैरी थे जो ऐसे शराबी के साथ मेरी गांठें जोड़ी ।

(लौ मैरिज", चन्द्रकिरण सोनरेक्सा)

उपर्युक्त कथन में जहां आत्मभर्त्सना है वहीं दूसरी ओर "-मइया-बाप" पर दोषारोपण एवं शराबी शब्द द्वारा प्रत्यक्ष-भर्त्सना भी है ।

२.४.१४ भर्त्सना अभिशापन :-

शुद्ध भर्त्सना के अन्तर्गत केवल अपशब्द आते हैं । गालियों का अपरिमित कोष, स्पष्ट एवं अस्पष्ट दोषारोपण शुद्धभर्त्सना की वाचिक अभिव्यक्ति है । साधारणतः क्रोध पूर्ण प्रताड़णा में केवल भर्त्सना ही नहीं रहती, उसके साथ ही अभि-शापन भी रहता है । कभी एक ही वाक्य में और कभी अन्य वाक्य में अभिशापन सम्मिलित रहता है । भर्त्सना जहां भूत एवं वर्तमान को लेकर चलती है अभिशापन में भविष्य के लिये अनिष्ट एवं श्राप की भावना रहती है ।

अभिशापन को लोकभाषा में "कोसना" कहते हैं उसके कुछ बहुप्रचलित रूप हैं । कुछ शाब्दिक परिवर्तनों के साथ प्रायः इन्हीं का प्रयोग होता है --

-- आग लगे तुम्हारे संसार में (विरोधी के लिये)

-- तुझे कोढ़ चले, तुझे मांगी भीख न मिले ।

-- तुझ पर काळिख गिरे, तुझ पर भगवान की गाज गिरे ।

-- तेरी देह में कीड़े पड़ेंगे, नर्क में पड़ेगा ।

-- विल विल कर मरेगा, कुत्ते की मौत मरेगा ।

-- भगवान करे तुझे ढाई घड़ी की आये ।

-- भगवान करे तेरी जान पर फुटकी पड़े ।

-- तुम्हें भवानी ले जाये ।

-- तुझ पर ऊपर वाले का कोप हो ।

-- तेरी अकल पर पत्थर पड़े ।

-- बिजली पड़े, तुझ पर और तेरे अगले ढगले पर ।

-- तू मरता, तेरी मिट्टी निकले ।

-- तू कुत्ते की मौत मरे-- आदि

२.४.१५ भर्त्सना तिरस्कार :-

यद्यपि क्रोध की अभिव्यक्ति में पूरे उत्तर प्रत्युत्तर में विरोधी को तिरस्कृत करने का भाव ही प्रधान रहता है किन्तु कभी-कभी विरोधी को लज्जित करने के लिये शुद्ध तिरस्कार अथवा धिक्कार की व्यंजना भी होती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शुद्ध तिरस्कार वहाँ मिलता है जहाँ विरोधी का व्यक्तित्व बिल्कुल ही उपेक्षणीय हो और उससे किसी प्रकार की हानि और अनिष्ट की आशंका न हो। भर्त्सना एवं धमकी का प्रयोग समान स्थिति वालों के प्रति होता है। धमकी एवं चुनौती का प्रयोग उन्हीं के प्रति होता है जिनके लिये क्रोध के साथ-साथ भय का भाव भी हो। शुद्ध तिरस्कार एक प्रकार से घृणायुक्त भर्त्सना है।

-- बहूनियाँ क्रोध में बारूद की तरह भभक उठी --" शरम नहीं आती ? जिस पत्ते पर खाते हो उसी में छेद करते हो।

(पृष्ठ१२ "बौर" शिवसागर मिश्र,धर्मयुग, ३ मार्च १९६८)

-- युधिष्ठिर : अरे पामर। तेरा धर्म तब कहाँ चला गया था जब एक निहत्थे बालक को सात-सात महारथियों ने मिल कर मारा था + + + अब तू धर्म की दुहाई देता है। धिक्कार है तेरे ज्ञान को। धिक्कार है तेरी वीरता को ।।

(पृष्ठ ३१, "महाभारत की साँझ", भारत भूषण अग्रवाल)

-- युवती : (तिलमिलाकर) तुम शैतान ही नहीं गुस्ताख भी हो। तुम्हें एक अबला से ऐसी बात करते शर्म नहीं आती ?

(पृष्ठ ६४ "सवेरा" विष्णु प्रभाकर)

तिरस्कार के कुछ बहुप्रचलित रूप मुहावरों में परिवर्तित हो गये हैं। इनका प्रयोग विशेष कर स्त्रियाँ ही करती हैं। जैसे --

-- न आये का लिहाज न गये का, आँखों पर ठीकरी रख ली है इस लड़की ने

(निर्लज्जता के लिये प्रयुक्त मुहावरा)

-- जाओ अपना मुँह काला करो।

-- दफा हो जाओ काला मुँह नीले पाँव।

-- नकटा बन कर जीने से अच्छा है कि डूब मरो।

-- जरा भी शर्म हो तो चुल्लू भर पानी में डूब मरो ।

-- सारी लाज शर्म तो धो कर पी ली है , आँखों का पानी उतर गया है ।

-- जीवन : (आवेश में) भीख मांगने से पहले तुम्हारे हाथ कट कर गिर क्यों नहीं गये ? (खाली थाली ज़ोर से फर्श पर मारते हुए) डूब मरना चाहिये तुम्हें ।

(ईमान का सौदा, पृष्ठ ५४, काले कौए- गोरे हंस)

२. ५ चेतावनी

आवेश के क्रमिक विकास में व्यंग्य भर्त्सना के बाद चेतावनी का स्थान भर्त्सना के प्रत्युत्तर में है । प्राय: चेतावनी का भाव कंठस्वर से ही व्यक्त हो जाता है -- कि बात अब सहन शक्ति से बाहर की है अब तुम समझो । कभी वाक्य को आरंभ करने का ढंग ही चेतावनी व्यक्त करता है । जैसे, निम्न उदाहरणों में --

शारदा : कान खोल कर सुन लो , मैं अब इस तरह आपका घर नहीं चला सकती।

(पृष्ठ १२६, " और वह न जा सकी " विष्णु प्रभाकर)

उपर्युक्त वाक्य में " कान खोल कर सुन लो " का बलाघातपूर्ण उच्चारण चेतावनी को व्यक्त करता है ।

इसी प्रकार " मैं पूछती हूँ ", "मैं कहती हूं ", "मैं कहे देता हूँ ", आदि वाक्यांश भी चेतावनी व्यक्त करते हैं ।

-- मैं पूछती हूं नामुराद तू बैल गवां कर किस मुंह से घर आया"

प्राय: चेतावनी के साथ-साथ धमकी भी मिश्रित होती है । चेतावनी प्रथम स्तर है एवं धमकी उसके बाद का द्वितीय स्तर । जैसे --

-- मैं कहती हूं चले जाइये वरना....

वर्ना क्या ?

वर्ना हाड तोड़ना हो जायगी ।

(इम्तहान, अनन्त चौरासिया, नवनीत, जनवरी, १९६६)

-- मैं कहे देता हूं मैं तुम्हें नष्ट कर दूंगा ।

कभी-कभी वाक्य में किसी शब्द विशेष पर बलाघात चेतावनी की व्यंजना करता है । जैसे -" मैं तुम्हें मारूंगा " धमकी है किन्तु " मारूंगा " पर बलाघात विशेष कर "मारूं" पर अधिक बल देना वाक्य को चेतावनी में परिवर्तित कर देता है ।

-- वीर वामन पण्डित को इतनी सी बात सुन कर ज्वाला पर क्रोध आ गया।

आवेश में बोले.....देखो ठाकुर मैं कुलीन और विद्वान हूं..... मुझसे अनर्गल प्रलाप मत करना नहीं तो धोखा उठाओगे.... समझे.... ।'

(खाली कुर्सी की आत्मा)

प्रस्तुत वाक्य आत्मप्रशंसा है । किन्तु 'समझे' में भी तीनों अक्षरों में से प्रथम दो पर अधिक बल चेतावनी के भाव को स्पष्ट करता है । चेतावनी के साथ-साथ आत्मप्रशंसा का मिश्रण भी रहता है । विरोधी को अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व का भय दिखा कर उसे 'ठीक करने' का भाव रहता है ।

-- होते होंगे ठाकुर साहब.... आपको मुझ जैसा ब्राम्हण भी नहीं मिलेगा । ..... मैं किसी से नहीं डरता..... समझे.... ।'

(पृष्ठ १८३, खाली कुर्सी की आत्मा)

'समझे' की भांति ही 'हां' का विशिष्ट उच्चारण भी चेतावनी व्यक्त करता है । इस 'हां' का रूप खींच कर 'हांऽऽऽ' हो जाता है ।

-- तो तुम भी जान लो ठाकुर मैं कोई ऐसा वैसा ठाकुर नहीं हूं..... बैसवाड़े का नाम सुना है न.... नहीं जानते तो अब जान लो.... बैसवाड़े के ठाकुर बड़े खतरनाक होते हैं.... हां.... ।

(पृष्ठ १८३, खाली कुर्सी की आत्मा)

-- देखिये गुप्ता जी आप संगीत नहीं समझते तो उसका मजाक भी नहीं उड़ा सकते..... हां.... ।

(युववाणी कार्यक्रम, लखनऊ-इलाहाबाद ४ - ५ -६८)

-- ऐ नौब । तुम्हे न मिलती होगी.... हां.... । मेरे तो दर्जनों हो गयी होती.... हां..... ।

(ईंट पर ईंट नहीं, हवा महल कार्यक्रम ३ - ४ -६८)

इस 'हां' का प्रयोग स्त्रियां ही अधिक करती हैं । कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो मात्र चेतावनी को व्यक्त करते हैं । जैसे -- खबरदार, सावधान, । इन शब्दों का अकेले प्रयोग ही चेतावनी व्यक्त करने में समर्थ है । आवेश में इनका प्रयोग धमकी के साथ होता है । जैसे --

-- अनीत झटके से उठी और शान्त को धकेल कर पीछे हटा दिया
'खबरदार जो मुझे हाथ लगाया'

(पृष्ठ १४४ अपराजिता, नवनीत, मार्च,१९६६)

-- मगध । मगध । सावधान । तुझे उलट दूंगा । नया बनाऊंगा नहीं, तो नाश ही करूंगा ।

-- पहला प्रहार तो मंगलू ने सह लिया पर जैसे ही उस पर दुबारा जूता उठा, उसने फुर्ती से जूते वाला हाथ यह कहते हुए पकड़ लिया " खबरदार चाचा जो आज के बाद फिर कभी मुझ पर हाथ उठाया, नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा, कहे देता हूं ।"

(पृष्ठ २०" गीला बारुद" नानक सिंह)

२. ६ धमकी :-

क्रोध अपने उग्रतम रूप में धमकी एवं चुनौती या ललकार के रूप में व्यक्त होता है । मनुष्य का अहं केवल पीड़ा या हानि के कारण को दूर करके ही सन्तुष्ट नहीं होता । वह उसका पूर्ण प्रतिकार चाहता है । धमकी का स्वरूप व्यक्ति के स्वभाव पर निर्भर करता है । प्रायः शान्त स्वभाव के लोगों का क्रोध इस सीमा तक पहुंचता ही नहीं । यदि पहुंच भी जाये तो उसकी अभिव्यक्ति नहीं होती । अन्तर्मुखी व्यक्तियों में द्वेष एवं ईर्ष्या के रूप में यह अन्दर ही रह जाता है । पुरुष द्वारा एवं स्त्रियों द्वारा दी गयी धमकी में अन्तर रहता है । उत्तर प्रत्युत्तर की दृष्टि से धमकी, धमकी के बदले में अथवा भर्त्सना के बदले भी दी जाती है । धमकी के प्रत्युत्तर में ललकार या चुनौती की अभिव्यक्ति होती है ।

कायर व्यक्तियों, स्त्रियों एवं किशोरों की धमकियों में एक अधूरापन मिलता है जैसे --"ठीक न होगा", "यदि ऐसी बात हुई तो ठीक बात न होगी" ।

-- कूर्मी : मैं तुझे खाक अप में डाल दूंगा..... मेरे जिस्म को हाथ लगाया तो ठीक न होगा ।

(पृ० १७६, व्यास जी का कायाकल्प, नवनीत अप्रैल १६६७)

-- रहने दो..... रहने दो पण्डित । यह पाठ किसी और को पढ़ाना..... मैं कहे देता हूं अगर यह कलमुंहा फिर यहां आया तो यह ठीक न होगा ।

(पृष्ठ ६५, खाली कुर्सी की आत्मा)

-- शम्भू यह कहता था ? ..... मिलने दो ससुरे को बताऊंगा ?

-- सरस्वतीबाई (उबलकर) मुझे माता जी कहा तो खबरदार ।

(पृ०१६६,व्यास जी का कायाकल्प,नवनीत अप्रैल,६७)

वस्तुत: इस प्रकार की अधूरी धमकी चेतावनी का ही उग्र रूप है ।

-- " खबरदार जो ऐसी बात फिर मुंह से निकाली " बदनियां क्रोध में कांपती उठ खड़ी हुई । (पृष्ठ १३ "चौर" शिवसागर मिश्र)

ऊपर के उदाहरण चेतावनी के ही हैं किन्तु कंठस्वर की उग्रता एवं आवेश की अधिकता के कारण कथन धमकी प्रतीत होता है । धमकी के साथ-साथ भर्त्सना का समावेश भी रहता है । --

-- मैंने अंगूठी उतार कर सिरहाने छिपाने की चेष्टा की तो उसने मेरी कलाई मसक दी " औरत है ना ससुरी, सर के ऊपर तनी छुरी के नीचे भी गहने का मोह नहीं छूटता है । खबरदार जो नखरे दिखाये । वह गरजा ।

(पृष्ठ ३४, शिवानी, धर्मयुग, २४ अक्टूबर १९६५)

उपर्युक्त कथन में धमकी के साथ अपशब्दों का समावेश हो जाने के कारण कथन भर्त्सना भी व्यक्त करता है ।

कभी-कभी कंठस्वर के द्वारा भी धमकी व्यक्त होती है । उसी वाक्य को साधारण कंठस्वर से धमकी का भाव नहीं व्यक्त होता है । जैसे --

" तुम पूरन को फिर जानते ही नहीं " पूरन दांत पीस कर कहता है ।

(पृष्ठ १४६,"करामात" दुग्गल, नवनीत, मार्च, १९६७)

उपर्युक्त कथन में " दांत पीस कर " उच्चारण ही साधारण कथन को धमकी में परिवर्तित कर देता है ।

--" तुम चुप होती हो या नहीं ।" सेठ जी ने तीव्र गर्जना करते हुए कहा ।

(पृष्ठ २७१ " राख की पुड़िया ", सोमावीरा)

इस उदाहरण में साधारण प्रश्न है किन्तु एक तो स्वर की तीव्रता दूसरे " हो या नहीं " पर बलाघात कथन को धमकी में परिवर्तित कर देता है ।

-- अंबर : बस तारा ; मैं यह सब सुनने का आदी नहीं हूं । मेरा पुत्र मुझे वापस ला दो । (पृष्ठ ८२, "उपचेतना का छल", विष्णु प्रभाकर)

उपर्युक्त उद्धरण में " बस तारा " का बलाघात पूर्ण उच्चारण चेतावनी एवं धमकी दोनों व्यक्त करता है । इसी प्रकार क्रोध में लोग कहते हैं --" ठहर तो सही अभी बताता हूँ " किन्तु इस वाक्य के साधारण उच्चारण में क्रोध नहीं है । " ठहर " एवं "अभी " पर बलाघात धमकी की व्यंजना करता है ।

धमकी के समग्र रूप अधिकतर सांकेतिक होते हैं अर्थात् एक संकेत मात्र रहता है। शेष श्रोता अपनी बुद्धि एवं परिस्थितियों के आधार पर समझ लेता है। जैसे -- "धोखा खाओगे", "मजा चखा दूंगा", "गत बनाऊंगा," "पीस दूंगा", आदि। वास्तव में वक्ता का अभिप्रयम अभिप्राय इन कथनों में स्पष्ट नहीं होता है। "मजा चखाने", "ठीक करने के पीछे कोई क्रिया भाव एवं योजना रहती है। क्रुद्ध की सम्पूर्ण वाचिक अमर्ष अभिव्यक्ति में ऐसे सांकेतिक प्रयोग बहुत मिलते हैं। ऐसे प्रयोग अपने शाब्दिक रूप में संदर्भ से कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं।

-- संतो : तेरी जूती तेरे सिर। मजनसाहब से मेरा बैल मुझे दे दे नहीं तो वह मिट्टी खराब करूंगी की याद करेगी।

(करामात दुग्गल, नवनीत, मार्च १९५७)

"मिट्टी खराब करना" एक प्रयोग मात्र है। इसका वास्तविक अर्थ विरोधी को विभिन्न प्रकार से पीड़ा या हानि पहुंचाना होगा।

-- इसकी यह मजाल। अच्छी बात है देख लूंगा। -- "देख लूंगा" भी उपर्युक्त प्रयोग की तरह भिन्न अर्थ ही देता है।

-- कुचल डालूंगा। दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंकूंगा। वह अपने हिमायतियों को बेकस्र लेकर आये एक-एक से सुलझ लूंगा।

-- "कुचल डालूंगा", सुलझ लूंगा, आदि प्रयोग सांकेतिक हैं एवं भिन्न अर्थ देते हैं।

-- मुझसे बनगेल प्रलाप मत करो नहीं तो धोखा खाओगे... समझे।

"धोखा खाओगे" प्रयोग भी सांकेतिक है। इसी प्रकार "आटे दाल का भाव बता दूंगा", "ठीक करके दम लूंगा", आदि प्रयोग भी हैं।

धमकी को अधिक गम्भीरता देने के लिये उसके साथ आत्मप्रशंसा भी जुड़ी रहती है। धमकी वास्तव में अहं का प्रदर्शन ही होती है परन्तु कहीं-कहीं आत्मप्रशंसा स्पष्ट रूप में भी मिल जाती है।

-- मैंने बड़ों-बड़ों को ठीक किया है, तुम किस खेत की मूली हो या तुम्हारी क्या बिसात आदि।

यहां एक ओर अपने अहं के प्रदर्शन का प्रयत्न रहता है वहीं दूसरी ओर विरोधी के अहं को चोट पहुंचाने का यत्न भी रहता है। यह भाव भी सांकेतिक प्रयोगों के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है। जैसे -- "सारी अकड़ धरी रह जायेगी" या "सारी अकड़ निकाल दूंगा"। "अकड़ निकालना" विरोधी के गर्व को दूर करने के लिये

इस प्रयत्न के पीछे कोई बड़ी योजना सन्निहित होगी। किन्तु, ये सब न कहकर मात्र "अकड़ निकालना" कह देते हैं।

है । कुछ अन्य प्रचलित प्रयोग हैं --

-- ऐसी गत बनाऊंगा कि याद रखोगे, मेरी घात पर चढ़ोगे तो याद करोगे, मेरे पल्ले पड़ोगे तो ...., मेरे हत्थे चढ़ोगे तो...., आदि विभिन्न प्रयोग हैं, जिनका अर्थ एक ही है कि यदि मेरे वश में हो गये तो....., । इन अधूरे वाक्यों के आगे का अंश कहने वाले के स्वभाव एवं आवेश की मात्रा के अनुसार रूप लेता है । कभी तो धमकी केवल 'याद करोगे' तक ही सीमित रहती है और कभी शारीरिक बल प्रयोग के लिये... , 'तो टांगे चीर दूंगा'... जान ले लूंगा, '.. तो मिट्टी में मिला दूंगा', आदि रूप भी मिलते हैं । इस प्रकार की धमकी पुरुष वर्ग द्वारा अधिक दी जाती हैं । स्वभाव की दृष्टि से ऐसी धमकियां वे ही व्यक्ति अधिक देते हैं जिन्हें अपनी शक्ति पर पूर्ण विश्वास न हो अथवा जिनकी प्रकृति उग्र हो ।

धमकियों के कुछ अन्य बहुप्रचलित रूप हैं । जैसे -- चचा बनाके छोड़ूंगा = चचा बनाना अपेक्षाकृत अप्रचलित प्रयोग है । शहर में रहने वाला निम्नवर्ग इसका प्रयोग अधिक करता है ।

~~धमकियों के कुछ~~ -- नानी याद करा दूंगा, छठी का दूध याद करा दूंगा -- अति पीड़ा या क्लेश देने के अर्थ में इनका प्रयोग किया जाता है ।

-- दिमाग दुरुस्त कर दूंगा, दिमाग ठीक कर दूंगा, दिमाग की गर्मी उतार दूंगा -- गर्व भाव को दूर करने की ओर संकेत हैं ।

-- तुमसे नाकों चने चबवाऊंगा -- नाकों चने चबवाना तंग करने के अर्थ में है ।

-- साले तेरा पटरा कर दूंगा -- प्राय: स्कूली लड़कों एवं निम्न वर्ग द्वारा इसका प्रयोग होता है ।

-- फिर ऐसी बात की तो मक्खी की तरह फाड़ दूंगा -- आदि ।

क्रोध में शारीरिक बल प्रयोग की धमकियां अधिक मिलती हैं । ऐसी धमकियां सांकेतिक एवं अतिशयोक्तिपूर्ण होती हैं । इनका प्रयोग मौखिक रूप में ही होता है । व्यावहारिक रूप में नहीं । जैसे -- जीभ खैंच लूंगा, बत्तीसी अन्दर कर दूंगा , आदि केवल मौखिक रूप में सुनाई पड़ती हैं। कोई इनको क्रियान्वित नहीं करता है । शारीरिक बल प्रयोग की धमकियों के कुछ विशिष्ट रूप निम्नलिखित हैं । जैसे --

-- बादशाह : कहां....., कहां... आने दो उस हरामखोर को मेरे सामने

(मेज पर मुष्टि प्रहार करते हुए) कहूंगी पसली एक.... कर दूंगा ।

(नवनीत, अप्रैल ६७)

-- सरस्वती बाई : देखती हूं जब तक मैं जिन्दा हूं कौन छिनाल इस घर में पैर रखती है ? आने दो टांग तोड़ कर देहरी से बाहर फैंक दूंगी ।

(पृष्ठ १५६,६० नवनीत अप्रैल १६६७)

यहां एक विचित्र बात है कि स्त्रियां यद्यपि शारीरिक दृष्टि से दुर्बल होती हैं तथापि उनके द्वारा शारीरिक बल प्रयोग की धमकी प्रचुर मात्रा में दी जाती हैं ।

-- ...... मैं कहती हूं मेरा बेल लाकर मुझे दो नहीं तो अभी बेलन से तुम्हारी मरम्मत करती हूं (सामने रसोई पर से बेलन उठा लेती है)

गुजरी : तू कौन सी कम है एक बोल और मुंह से निकला कि तू और तेरे घड़े कुएं में होंगे ।

--... उसकी दृष्टि त्रिलोकी के पैर में चिपटे राजू पर पड़ी तो झपट कर उसने दो तमाचे उसके कोमल गालों पर जड़ दिये" यहां क्या कर रहा है हरामखोर, मैंने जरा सा डांट दिया तो बाप से शिकायत करने चला आया जैसे खा ही जायेगा, तेरा निकम्मा बाप मुझे । चल निकल यहां से वरना मुंह नोंच लूंगी, हां ।

(धुएं की परतें , वीम कुलरेती, नवनीत जुलाई १६६७)

-- वह आपमी बाहर पड़ा गाली दे रहा था --" देख लूंगा, डायन है डायन । चमेली फूली हुई सांसों से कह रही थी" भीतर पैर रखा तो मरे को खोद कर गाड़ दूंगी । (पृष्ठ ४२, लोक परलोक)

स्त्रियों की धमकियों में एक और विशेषता भी होती है । वे परघात के स्थान पर आत्मघात की धमकियां भी देती हैं । इसके द्वारा सम्भवत: अपने प्रति दूसरों की क-करुणा जगाने का प्रयत्न हो , जैसे --

-- मैं जहर खा लूंगी, तुम मुझे जहर दे दो, मैं पेट मार कर मर जाऊंगी, भूखी प्यासी जान दे दूंगी, सर पटक कर प्राण दे दूंगी, यदि ऐसा हुआ तो मेरा मरा मुंह देखना आदि ।

कुछ विशिष्ट प्रकार की धमकियां हैं जिनका प्रयोग केवल स्त्रियों तक ही सीमित है । पुरुष इनका प्रयोग बहुत कम करते हैं । जैसे मुंह नोच लूंगी, जीभ पर अंगारे रख दूंगी , तेरे मुंह में लुआठ, मुंह कुल्हा के रख दूंगी, आदि । इनका प्रयोग साहित्यिक हिन्दी में कम मिलता है किन्तु दैनिक व्यवहार में प्रचुरता से मिलता है ।

धमकी के कुछ रूप इतने प्रचलित हैं कि इनका प्रयोग मुहावरों के रूप में होने लगा है ।
जैसे--

-- मेरा वश चले तो अढ़ाई चुल्लू लहू पी लूं ।
-- मार मार के कचूमड़ निकाल दूंगा ।
-- पसलियां तोड़ दूंगा ।
-- चटनी बना दूंगा ।
-- दाँव सम्भालो नहीं तो पिट जाओगे ।
-- एक झापड़ लगाऊंगा कि मुंह फिर जायेगा ।
-- टांगें चीर कर फेंक दूंगा ।
-- खोपड़ी फाड़ कर रख दूंगा । खोपड़ी अन्दर कर दूंगा ।
-- जूतियों से नशा उतार दूंगा ।
-- मेरे दाँव पर चढ़े तो पीस दूंगा ।
-- रह तो सही तेरी बोटियां चील कौवों को न खिला दूं तो मेरा नाम नहीं।
-- खोपड़ी तोड़ दूंगा , सर तोड़ दूंगा, तलवार का ऐसा हाथ मारूंगा कि
भण्डारा खुल जायेगा(अपेक्षाकृत अप्रचलित प्रयोग)
-- मार मार के भुर्ता बना दूंगा ।
-- वल में तेरी खूब भुगत बनाऊंगा ।
-- मार मार के मुंह सीधा कर दूंगा ।
-- फिर ऐसा किया तो मूंछें उखड़वा दूंगा ।
-- बाज आ जाओ नहीं तो हल्दी चूना लगाकर बैठोगे ।
-- जिन्दा गड़वा दूंगा, साबुत ही गड़वा दूंगा ।
-- हाथ तोड़ दूंगा , पैर तोड़ दूंगा, आँखें फोड़ दूंगा, आदि प्रयोग भी
मुहावरों की भांति रूढ़ हो गये हैं ।

२.६.१ धमकी और चुनौती :-

प्राय: धमकी के साथ -साथ चुनौती का मिश्रण भी रहता है । कभी-कभी चुनौती अथवा ललकार कंठस्वर के द्वारा ही व्यक्त की जाती है और कभी अलग से उसके लिये शब्दों या वाक्यों का प्रयोग होता है । जैसे निम्न कथन में --

-- उठने की देर है आज ही प्रलय करूंगा ।
रावण हूं मैं युद्ध क्षेत्र में नहीं मरूंगा ।

वास्तव में क्रोध के आवेशपूर्ण कथनों में चुनौती ,धमकी, ललकार, चेतावनी,तिरस्कार, आदि अभिव्यक्तियां परस्पर इतनी मिली-जुली रहती हैं कि उन्हें अलग-अलग वर्गीकृत नहीं किया जा सकता ।

-- खोंच ले ब्राह्मण की शिखा । शूद्र के अन्न से पले कुत्ते खींच ले परन्तु याद रख यह शिखा नन्दकुल की कालसर्पिणी है ।

(पृष्ठ ६८, चन्द्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद)

उपर्युक्त कथन में एक साथ चुनौती,धमकी , तिरस्कार एवं भर्त्सना व्यंजित होती है ।

-- कृष्णे: (गुस्से में पैर पटकते हुए) नहीं संभव नहीं ? क्या समझते हो अपने आपको मैं तुम्हें गिरफ्तार करूंगा ।

" क्या समझते हो अपने आपको" वाक्य में भर्त्सना एवं व्यंग के साथ चुनौती का भाव भी है । अन्तिम वाक्य स्पष्ट धमकी है ।

२.७ चुनौती :-

स्पष्ट रूप से ललकार या चुनौती की अभिव्यक्ति आवेश के उग्रतम रूप में होती है । प्राय: चुनौती धमकी के प्रत्युत्तर में या चुनौती के प्रत्युत्तर में दी जाती है ।चुनौती के व्यक्त करने में कंठस्वर एवं शब्द विशेष का प्रयोग अधिक सहायक नहीं होता है ।इसका रूप व्यक्ति विशेष के साथ भिन्न भिन्न एवं मौलिक होता है । इसका रूप स्पष्ट करने के लिये कुछ उदाहरण देने आवश्यक होंगे । --

-- कहूंगा । सौ बार कहूंगा । तुम चोर हो, देखें क्या कर लेते हो मेरा ।

"कहूंगा" की आवृत्ति एवं"देख... मेरा" द्वारा स्पष्ट चुनौती है । इसी प्रकार किसी भी ऐसे शब्द या वाक्य की जानबूझ कर आवृत्ति जिससे विरोधी को आपत्ति है - प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष चुनौती की ही एक रीति है -- जैसे यदि किसी से मना किया जाय कि तुम्हें वहां नहीं जाना है और वह क्रोध में कहे-- मैं जाऊंगा । जाऊंगा ।। जाऊंगा तो एक और जहां उसके आन्तरिक हठ की व्यंजना होगी वहीं दूसरी ओर मना करने वाले के प्रति चुनौती का भाव भी रहता है ।

कभी-कभी कुछ शब्द स्पष्ट चुनौती व्यक्त करते हैं । जैसे --

-- हिम्मत हो तो आ जाओ सामने, साहस हो तो कर लो ऐसा, देखें कितना

दम है , आ जाओ मैदान में , आओ दो दो हाथ हो जायँ आदि ।

कुछ रूप अस्पष्ट चुनौती के हैं । यद्यपि इनमें भी विशेष शब्दों का प्रयोग रहता है किन्तु अपेक्षाकृत अधिक सांकेतिक रूप में । जैसे निम्न उद्धरणों में --

--देखती हूं कौन तिजोरी में हाथ लगाता है ?

-- देखती हूं जब तक मैं मरी जिन्दा हूं कौन छिनाल इस घर में पैर रखती है ।

-- उसे ले आओ देखता हूं कौन महामहोपाध्याय के सामने आता है ।

उपर्युक्त उद्धरणों में "देखती हूं", देखता हूं का बलाघातपूर्ण उच्चारण चुनौती व्यक्त करता है । कभी-कभी किसी एक शब्द विशेष का बलाघातपूर्ण उच्चारण चुनौती व्यक्त करता है । जैसे--

--"हां मुझसे यह गिलास टूट गया,. तो,.. "

" आने तो दो टांग तोड़ कर फेंक दूंगी ।

इन वाक्यों में " तो " का बलाघातपूर्ण उच्चारण चुनौती व्यक्त करता है ।

--" कहा न ।" बाबी ने हाथ मटकाया, मैं भी सारा मोहल्ला जमा करूंगी ।

उपर्युक्त वाक्य में "न " पर का बलाघात चुनौती व्यक्त करता है ।

२.८ गर्वोक्ति :-

जिस प्रकार धमकी के साथ-साथ आत्मप्रशंसा रहती है , उसी प्रकार चुनौती के साथ-साथ गर्वोक्तियां भी रहती हैं । कभी-कभी इसका रूप --" मुझे समझा क्या है ।" तक सीमित रहता है और कभी अपने पूर्व कर्मों (सत्कर्मों अथवा दुष्कर्मों) की विस्तृत सूची भी रहती है । वास्तव में आत्मप्रशंसा के पीछे दूसरे पर हावी होने और भयभीत करने का भाव रहता है ।

-- क्रोध में भरे हुए भीष्म ने रणभूमि में आकर ललकारते हुए कहा -- आज क्षत्रियों की कीर्ति चारों ओर फैल जायेगी । ये पृथ्वी रुधिर में डूब जायेगी । यदि आज मैं पाण्डवों का नाश नहीं करूं तो मेरा नाम भीष्म नहीं ।   - रत्नाकर

-- अरे कौशिक जिसका कराल कुठार गर्भ तक के बच्चों को काटने में कुशल है , वही मैं तुमसे पूछता हूं कि यह छोटा सा " छोटा " किसका है जो मेरे आगे भी ऐसी गर्व गुमान भरी बात कहता है ।

-- केशव

२. ६. शपथ :-

क्रोध में विरोधी के नाश के लिए, उसे हानि पहुंचाने के लिये, कहे गये वाक्यों की सत्यता प्रमाणित करने के लिये शपथ ग्रहण करते हैं। शपथ ग्रहण करने की प्रक्रिया के पीछे भी यही एक मनोवैज्ञानिक कारण है अर्थात विरोधी को अधिक से अधिक भयभीत करना। शपथ के कारण आवेश में कहे गये प्रलाप जैसे कथनों में भी एक दृढ़ता आ जाती है। वास्तव में वे ही व्यक्ति अधिक शपथ ग्रहण करते हैं जिनमें आत्मबुद्धि और दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी रहती है। स्त्रियां क्रोध में अपेक्षाकृत अधिक शपथ ग्रहण करती हैं।

-- इस क्षण के बाद इस घर का एक बूंद पानी भी पियूं तो मुझे शारदा न कहना।

-- आने दो मुंह कालिख को, बड़ी लाठी सरपर न पटक दो तो असल बाप की बेटी नहीं।

असल बाप की बेटी नहीं' या असल बाप का बेटा नहीं' आदि शपथ के रूप में अशिक्षित एवं गंवार लोगों की अभिव्यक्ति में अधिक मिलते हैं।

-- महाराज : हजार दफा इन बदमासन से कहि चुके कि लैन के किनारे गोरू न चरावा करो मुला के सुनथै। अब कि सब का औन्धियाट्न न दिहा तो बनकटा नहीं चमार।

(पृष्ठ ४ 'घोलाग बिन्दो' गणेशप्रसाद द्विवेदी)

-- तुम से नाकों चने न चबवाये तो नाम बदल दूंगा।

-- यदि ऐसा न किया तो मूंछें मुड़वा दूंगा, मूंछें नीची कर दूंगा।

-- यदि आज पाण्डवों का नाश कर लूं तो मेरा नाम भीष्म नहीं।

-- यदि उसे हरा न दिया तो टांगों के नीचे से निकल जाऊंगा, फिर मुंह नहीं दिखाऊंगा आदि।

इसके अतिरिक्त शपथ के रूप व्यक्तियों के अपने मौलिक होते हैं।

२. १० क्रोध के विभिन्न रूप :-

'क्रोध' शब्द के अन्य पर्यायवाची शब्द रोष, अमर्ष, कोप आदि हैं। अंग्रेजी में इसके लिए "fury, rage, wrath, exhasperation", आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। वास्तव में ये पर्यायवाची नहीं हैं। प्रत्येक शब्द भिन्न-भिन्न मन:स्थितियों को

सूचित करते हैं । उपर्युक्त शब्दों के अलावा चिढ़, खीभ, झुंझलाहट, रूठ, मान, खिसियाहट,आदि विभिन्न मन:स्थितियां भी हैं जो क्रोध के भाव के साथ आने वाले विभिन्न संचारी भाव हो हैं । इनमें से प्रत्येक स्थिति की अभिव्यक्ति भिन्न होगी परन्तु साधारण रूप से सब को क्रोध की ही अभिव्यक्ति कहा जाता है ।

'क्रोध' के लिये एक शब्द "रोष" प्रयुक्त होता है । क्रोध एवं रोष की मन:स्थिति में अन्तर है । 'रोष' की उत्पत्ति "रुष" धातु से हुई है । इसका शाब्दिक अर्थ दूर हटाना, या तिरस्कार करना होगा । किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अप्रसन्नता का भाव जो कि मन में बहुत देर तक बना रहे रोष कहलाता है । इसमें आलम्बन के प्रति घृणा का भाव भी रहता है । रोष की भाषागत अभिव्यक्ति वाणी की रूक्षता, भाषा की कटुता (कठोर शब्दों का प्रयोग) द्वारा व्यक्त होती है । रोष की स्थिति में व्यक्ति का ध्यान अपने आहत अहं पर अधिक रहता है ,आलम्बन पर अपेक्षाकृत कम । यद्यपि किसी कथन को शुद्ध 'रोष' की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं प्रस्तुत किया जा सकता । तथापि उदाहरणों में रोष का रूप स्पष्ट है । जैसे --

-- क्षुब्ध शिशुपाल ने अग्नि पड़े पत्ते की नाईं झुलसा कर उत्तर दिया अवसर मिले तो दिखा दूं न्याय किसे कहते हैं ?

(पृष्ठ २५, कामायनी, सुदर्शन)

वास्तव में 'रोष' क्रोध का वह रूप है जो अन्दर अधिक घुमड़ता रहता है और अभिव्यक्ति कम होती है । अभिव्यक्ति की यह संक्षिप्तता कई कारणों से हो सकती है । जैसे निम्न उद्धरण में --

---राजा साहब होंठ दांत से काट कर बोले --" बेहतर है जाओ, आज ही रात को मेरे राज्य से निकल जाओ ।

(पृष्ठ २८४, 'कवच' प्रेमचन्द)

कभी-कभी अभिव्यक्ति का संयम विवशता वश रहता है , कभी-कभी स्वाभाविक - " बुढ़िया ने टोकरी पटक दी, अपने पांव पटक कर एक पग पीछे हट गयी और रोष भरी आंखों से ताकते हुए बोली--" अच्छा ठाकुर अब यहां से चले जाव ।...... ।

(पृष्ठ २८० 'देवी' प्रेमचन्द)

इस संयम के कारण ही रोष की अभिव्यक्ति व्यंग्य के रूप में अधिक होती है ।

-- और मोढ़ू को चीर कर समीप आने पर मास्टर दादा की दशा देख कर व्यंग्य भरे लहजे में बोले-- कहिये बरखुरदार तसलीमात ? आ गये अपनी अवकात पर हूं......"

फिर मीड़ की तरफ देख कर बोले" क्या देखते हो कम्बख्त को मिट्टी खिलाओ और गोबर पिलाओ । देखो अभी आ जाता है होश में....."

(पृष्ठ ३८६, 'खाली कुर्सी की आत्मा')

-- और यह याद आने से ज्वाला की बातें फड़कने लगी । आंखें क्रोध से लाल हो गयी ..... उसे अपने इष्ट मित्रों की व्यंग्य एवं भर्त्सना भरी -- बातें याद आने लगी । कुछ आत्मग्लानि एवं हीन भाव भी उसके मन में अंकुरित होने लगे और वह अपनी भावहीनता में इतना उलझ गया कि कांपते हुए आतंकित स्वर में बोला --" तो ठीक है देवी जी..... आप अपना आदर्श लिये बैठी रहें ।"

" रोष " की अभिव्यक्ति में अधिकतर घृणा का भी मिश्रण रहता है ।

-- (व्यंग्य पूर्ण हंसी) मेरे सामने अभिनय । मेरे पांव मत छुओ, मैं कहता हूं मेरे पांव छोड़ दो । हट जाओ कैलाश मुझे तुमसे घृणा है ।

-- छि: कृष्णा उन्हें इतना नीचे मत घसीटो ।

तो तुम्हारी श्रद्धा से वह ऊपर नहीं उठ जायेगा ।

'रोष' का आवेशयुक्त रूप भी मिलता है । परन्तु वह 'क्रोध' के आवेश से भिन्न रहता है । 'क्रोध' के आवेश की अपेक्षा रोष का आवेश अधिक स्थायी रहता है । यह आवेश बड़बड़ाहट, या प्रलाप के रूप में रहता है -- रोष की ही विभिन्न स्थितियां चिढ़, झुंझलाहट, और खीझ के माध्यम से होती है ।

-- वह कह रहा था " एक एक को पैसे खा जाती है । देवी का चढ़ावा छिपा कर रख लेती है ....., फिर जोश में आकर बोला-- आंखों में धूल झोंकते हो सारे । बाभियों का माल बड़े ही तो ऊपर है ।

(पृष्ठ १२, लोक परलोक)

-- ..... वैसे ही प्रलाप करते चला गया -- मेरा घर तो कलमुंही ने बरबाद किया ही साथ ही कुल को भी ले डूबी । कैसे कितनी साध थी जीते जी पुत्र के सिर पर विवाह का मुकुट बंधा देख पाऊं ।

-- बड़बड़िया बैठी ही बड़बड़ाई आने दो मुंहजली को । बड़ी लाड़ी सर पर न चढ़ाया हो तो अबकी बाप की बेटी नहीं ।"

रोष की अभिव्यक्ति " पर" से अधिक 'अहं' पर केन्द्रित होती है । व्यक्ति

को अपनी पीड़ा अपना अपमान अधिक याद रहता है , आलम्बन की प्रक्रियायें कम । इस प्रकार इसमें आत्मप्रशंसा का भाव अधिक रहता है -- हम चमट्टायें और तुम देवो हो माँ संभारिकै बातें करी खाव । तुमार कह त्यां काउ सरै के हवेल नायें । होउंगी होयै ती अपने घर कू । देवो तो चमट्टा कल हुए तुम नाओ होयर ।"

(पृष्ठ ७२, 'लोक परलोक')

प्राय: रोष में कहे गये वाक्य लम्बे एवं व्यवस्थित होते हैं । आवेश में न होने से वाक्यक्रम भी ठीक रहता है । रोषयुक्त कथन भी अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं । प्रलाप या बड़बड़ाहट में रोष की अनवरत अभिव्यक्ति होती है ।

क्रोध का दूसरा पर्यायवाची शब्द 'अमर्ष' है ।'मृष' शब्द का अर्थ है क्षमा करना । इससे विलोम 'अमर्ष' शाब्दिक अर्थ होगा अक्षमाशीलता, अननुताप, निष्ठुरता, द्वेष । इस प्रकार यह एक मन:स्थिति है । परन्तु अपमानित या पीड़ित होने पर हुई व्यग्रता या व्याकुलता इस मन:स्थिति को आवेश प्रदान करती है और तब इसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति होती है । कंठस्वर की कठोरता, कठोर शब्दों का प्रयोग कथन में ज़िद का भाव और झुंझलाहट के द्वारा इसकी अभिव्यक्ति होती है । इसमें रोष की अपेक्षा कहीं अधिक क्रूरता, एवं असहनशीलता व्यंजित होती है । विरोधी को हानि पहुंचाने एवं प्रतिकार लेने पर ही दृष्टि केन्द्रित रहती है ।

अमर्ष की वाचिक अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार होगी -- मैं सह नहीं सकता, मैं नहीं सह सकता , अब तो बात बर्दाश्त के बाहर आ रही है , कब तक ऐसे ही देखता रहूं , कब तक ऐसे ही सुनता रहूं , मैं उसे बताऊंगा, चाहे जितना भी रोये गिड़गिड़ाये उसे छोड़ने वाला नहीं, अब उसके ऊपर और दया नहीं कर सकता , बहुत हुआ अब तो उसे भी तरसाऊंगा, तड़पा-तड़पा कर रुला कर आनन्द लूंगा । उसे खून के आंसू रुला कर ही मेरा कलेजा ठंडा होगा । चुन-चुन कर बदला लूंगा , अपने दरवाजे पर नाक रगड़वाऊंगा । पगड़ी पैरों पर रखवा दूंगा, सारी इज्जत मिट्टी में मिला दूंगा, आदि ।

इसकी ही विभिन्न धमकी , चुनौती, प्रतिज्ञा के माध्यम से होती है ।

२, ११ <u>क्रोध,उत्तर-प्रत्युत्तर की दृष्टि से(कुछ उदाहरण)</u> :-

(क) (१) ,, कुंवर - इंजीनियर, नहीं मिलती कहाँ मिलती । उस मुंशी का लड़का कब इंजीनियर बनेगा । तुम्हारे बाबू जी ने बकालात का पूरा फायदा उठाया और

न जाने कैसे वक्त की कि पिता जी कुछ जवाब न दे सके । तुम्हें तो सचमुच भिस्तरी ही मिलना चाहिये था - भिस्तरी ।

(२) सरोज - और यहां तो मैं जैसे राजगद्दी पर बैठी हूं ।

(३) शंकर - जी नहीं । यहां तो तुम कैद खाने में हो । रात दिन चक्की पीसती हो । मैं तुम्हें मारता पीटता हूं । सचमुच बहुत दु:खी हो ।

(४) सरोज - मारपीट का जी चाहता हो तो वह भी कर लो । बस इसी की कसर रह गयी है ।

(५) शंकर - कैसी मूर्ख से पाला पड़ा है । न बात, न चीत, लड़ने पर तुली हो।

(६) सरोज - हां जी मैं तो मूर्ख हूं । अक्ल वाले तो तुम और तुम्हारे घर वाले हैं ।

(७) शंकर - सचमुच इससे तो मैं कुंवारा ही अच्छा था ।

(८) सरोज - लो अब गला घोंट डालो और ले आवो परी (रोने लगती है) अब की एकादशी को नहाने गयी तो जमुना में न कूद पडूं तो कहना -

(९) शंकर - एकादशी में अभी बहुत देर है , नेक काम में देर नहीं करते ।

(१०) सरोज - (जोर-जोर से रोकर) आज ही जहर दे दो ।(पृष्ठ १३,अटैची केस)

(ख) (१) कौशल्या - क्यों रे तूने इसे मारा है ?

(२) शेरू - हां जी मैंने तो...

(३) कौशल्या - अरे तेरी यह मजाल । बहन जी अगर इसने कोई गलती की थी तो ।

(४) आप मुझ से कहतीं । पर नौकर के मारने का क्या मतलब ।

(५) सन्तोष- मारा कहां है । यह तो यों ही रो पड़ा ।

(६) कौशल्या - ठीक है । यह झूठा और आपका नौकर सच्चा । मेरे घर में सारे दिन मोहल्ले के लड़के खेला करते हैं । मैंने तो आज तक कभी किसी को डांटा भी नहीं ।

(७) सन्तोष - तो इसने कांच की चूड़ी तोड़ दी ।

(८) कौशल्या - तोड़ के तो देखो ।

(९) सन्तोष - अच्छा बाबा लड़ो न ।

(१०) कौशल्या- यह मोहल्ला ही मनहूस है । उस कूचा लट्ठशाह में पांच साल रहे । कभी कोई बात नहीं हुई । यहां तो सात महीने में ही नाक में दम आ गया ।

(११) सन्तोष- यह मोहल्ला तो जैसे तुम्हारे आने से पवित्र हो गया है। लड़के से इतना ही पूछा कि शीशा तो नहीं तोड़ा और बस।

(१२) कौशल्या- क्या शीशा शीशा लगाया है। शीशा था कि हीरा। कितने का था शीशा? यह लो पैसे।

(१३) सन्तोष - बड़ी आयी पैसे वाली।

(पृष्ठ २७-२८, शीशा, बटैवी कैसे, राजेन्द्रकुमार शर्मा)

(ग) (वह रजनी को देखते ही आग बबूला हो उठी और गुस्से में आंखें लाल करते हुए रजनीकी ओर देख कर कहा-)

(१) "रजनी! तुम्हें इतनी भी तमीज नहीं है कि यह समझ सको कि सालगिरह में किसी को पहनी हुई वस्तु नहीं दी जाती है।"
रजनी एक नेक किन्तु बहुत बहादुर स्त्री थी। वह कभी अंग्रेजी शासन से नहीं डरी तो भला मुन्नी के इस रौब में आने वाली कहां थी। उसने तुरन्त ही मुन्नी को मुंह तोड़ उत्तर देते हुए कहा--

(२) "मुन्नी मैं तो यही समझती थी कि कौंसिल की मेम्बरी से तुम्हें अक्ल आ गयी होगी, किन्तु तुम्हें तो बात करने की भी तमीज नहीं है।

(३) "रजनी! अपनी औकात से बात करो। जानती हो तुम किससे बात कर रही हो" मुन्नी ने तेवर चढ़ा कर कहा-

(४) "हां जानती हूं। एक ऐसी स्त्री से जो यह भी नहीं जानती कि मनुष्यों से किस प्रकार बात की जाती है।"

(५) रजनी ने भी जोश में आकर जवाब दिया--
"अच्छा तो आप यहां मेरे मेहमानों के सामने मेरी बेइज्जती करने आई हो।

(६) "मुन्नी! मैं तुम्हें आगाह करती हूं कि यह झूठी शान किसी दिन तुम्हें और तुम्हारे बाप को ले डूबेगी।"

(७) "रजनी! मुंह सम्भाल कर बात करो। अगर आगे कुछ कहा तो धक्के दिलवा कर घर से निकाल दूंगी।"

(८) "मुन्नी! तेरी क्या मजाल जो मुझसे आंखें मिला सके। मैं तो जाती हूं, लेकिन इतना बताये जाती हूं कि तुम झूठी शान के अंगारों पर खड़ी हो और यह अंगारे तुम्हें बहुत जल्दी भस्म कर देंगे।

(पृ०४५, विरासत, आंसुओं के फूल-पी०डी० आजाद)

(घ) ++ किन्तु जब पूरन ने श्यामलाल को चोर और बेईमान कहना आरम्भ किया तो उसका खून क्रोध से खोलने लगा और उसने पूरन की ओर देख कर कहा--

(१) " श्रीमान जी। मेरे पिता जितनी शराफत से बात करते हैं उतनी ही असभ्यता पर आप उतर रहे हैं। अगर आपने अब कोई शब्द उनकी शान में कहा तो अच्छा नहीं होगा।

(२) " ओह ?" एक मेढ़क को भी जुकाम हुआ। कल का छोकड़ा मेरे मुंह लग रहा है। मेरे मुंह लगने का नतीजा तुझे जब मालूम होगा जब तेरा बाप हथकड़ी पहन कर जेल जायगा। और यह दुकान नीलाम होगी।"

(३) " मुंह सम्हाल कर बोलिये। आपको शर्म नहीं आती जो मेरे पिता से ऐसी बातें कह रहे हैं। क्या तुम्हारा यही पेशा है कि ईमानदार आदमियों को जेल भेजो और बेईमानों से रिश्वत लेकर मजा उड़ाओ।"

(४) " तुम्हारी यह हिम्मत। मैं अभी इस गुस्ताखी का मजा चखाता हूं।

(पृष्ठ १०२, 'पाप का घड़ा' आंसुओं के फूल, पी०श्री० आजाद)

(ङ) + + + + (१) पद्मा - मैं आपके माई बहनों के साथ नहीं रहना चाहती।

(२) प्रेमचन्द - "क्यों ?"

(३) " इसलिये कि मुझे उन सब की ताबेदारी स्वीकार नहीं।"

(४) " किन्तु उन्होंने तो भूलकर तुम्हें आज तक आधी बात नहीं कही।"

(५) " मुझे उनकी सूरत से नफरत है।"

(६) पद्मा मुंह सम्हालकर बोली। अगर तुम्हें उनसे नफरत है तो मुझे तुमसे नफरत है।" प्रेम ने क्रोध में भरकर कहा।

(७) " अच्छा मैं समझ गयी कि आप अपने मां-बाप के गुलाम हैं।"

(८) " हां मैं गुलाम हूं। तुम्हें जो कुछ करना है कर लो।"

(९) " आप नहीं समझते कि मैं क्या कर सकती हूं। मैं इस घर को नर्क बना सकती हूं। और देखना अब इस घर में वह कुहराम मचेगा कि आपकी अकल ठिकाने आ जायेगी और आपको पता लगेगा कि पद्मा किस मां की लड़की है।

(पृ०११५-११७, घर की रानी)

(च) (१) .... तुम हमारा अपमान कर रहे हो। तुम्हें नहीं मालूम कि इस अपमान का नतीजा क्या होगा ?"

(२) "लालाजी क्या किसी वस्तु की कीमत मांगना भी अपमान है" ? इसीलिये कभी दुनिया नहीं देखी क्योंकि तो कहावत, मशहूर है जब तब ऊंट पहाड़ के नीचे नहीं आता बलबलाता रहता है ।"

(३) " देखिये श्रीमान जी । आप मजिस्ट्रेट होंगे अपने घर के । मुझे बुरा भला कहने का आपको कोई अधिकार नहीं है ।"

(४) " अच्छा तुम्हारी यह हिम्मत । याद रखो तुम्हारी यह गुस्ताखी माफ नहीं की जा सकती ।"

(५) " जाओ बहुत देखे मैंने ऐंठने वाले, आपको जो करना हो कर लीजिये"

(६) " याद रखो तुम इस साड़ी को लेकर आओगे और मेरे दरवाजे पर नाक रगड़ोगे ।

(स्पेशल मजिस्ट्रेट,पृष्ठ १७५)

(छ) (१) सुरेन्द्र - शान्ति बच्चे को हाथ लगाने की कोशिश न करो । कमरे से निकल जाओ ।

(२) शान्ति- वाह वाह तुम समझते हो कि इतनी आसानी से मैं टल जाऊंगी । या तो मेरा बेटा मुझे दे दो वरना यहीं छाती पर बैठी मूंग दलूंगी ।

(३) सुरेन्द्र - तुम यहां से नहीं जाओगी ?

(४) शान्ति- देखूं तो किस मां का जन्मा है । जो मुझे घर से निकालेगा , मेरी जूती भी इस घर में नहीं रहना चाहती, पर मैं अपने बेटे को यहां छोड़ कर नहीं जाऊंगी ।

(५) सुरेन्द्र - तो तुम बातों से नहीं मानोगी ?

(६) शान्ति- तुम मुझे लातों की धमकी देते हो । पर सुनो, मैं नहीं डरती इनसे । इस भरम में मत रहना । मैं उस मां की बेटी हूं जिसने सारी उमर मेरे बाप के लात घूंसे खाय, पर बात सदा अपनी ही रखी ।

(७) सुरेन्द्र - (कहता है) बहुत अच्छा किया तुम्हारी मां ने और तुमने भी बहुत अच्छा सबक लिया उनसे । तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया है ?

(पृष्ठ ६२,अन्धेरा-उजाला,रेवतीसरन शर्मा)

(ज) (८) शान्ति - और यह कौन सी नयी बात बता रहे हो । दूसरा ब्याह रचाने का चाव तो मर्दों की मुट्ठी में पड़ा रहता है । तुम छः साल तक कैसे यह बात दबाये रहे ?

(९) सुरेन्द्र - (चिल्लाकर) शान्ति ।

(१०) शान्ति- सही बात सुन कर पतंगे लग गये ?

(११) सुरेन्द्र- शान्ति चुप हो जाओ वरना....

(१२) शान्ति- वर्ना क्या मुझ पर हाथ उठाओगे ? हाथ उठाओ और निकाल लो, अपने मन का यह भी अरमान । मेरी मिट्टी की काया नहीं है । मेरी माँ ने भी घी और बदाम खिला खिला कर लोहा किया हुआ है इसे ।

(१३) सुरेन्द्र -(घृणा से) और इसीलिये कि हड्डे टूट जायँ पर तुझमें लचक न आये ? तुम सचमुच औरत नहीं हो औरत के रूप में जानवर हो ।

(१४) शान्ति- पर ऐसा, जानवर नहीं जिसे तुम सीधा कर लो। यह दूध तुम्हारी माँ ने नहीं पिलाया ।

(१५) सुरेन्द्र - (चिल्लाकर) शान्ति मेरी आँखों से दूर हो जाओ । मेरे कमरे से निकल जाओ ।

(१६) शान्ति - मैं तो यहीं बैठूंगी बदला चुका कर ।

(पृष्ठ ६५, अन्धेरा-उजाला)

(झ) सुरेन्द्र - (घृणा से) वह कंवर जिसकी औरत से लड़कर तुमने मेरी और अपनी इज्जत पर खाक डलवाई ।

शान्ति -वह मेरी इज्जत पर क्या खाक डालेगी ? कमजात अपने को बड़ी जबान-दार और हाथ पैर वाला समझती है । मैंने भी वो सुनाई और चुटिया पकड़ कर वो घसीटा कि..... । (पृष्ठ ६८, अन्धेरा-उजाला)

(ञ) (१) शान्ति - तुम होगे होगे इन बातों से अतीत । मैं नहीं होती । मैं तो ऐसे ही करूंगी ।

(२) सुरेन्द्र - (क्रोध से) क्या कहा ?

(३) शान्ति- (एक उपेक्षापूर्ण स्मित के साथ) मैं तो ऐसे ही करूंगी । मुझे कोई नहीं रोक सकता ।

(४) सुरेन्द्र – तुम वाज नहीं आओगी ?

(५) शान्ति– नहीं ।

(६) सुरेन्द्र –(चिल्लाकर) शान्ति मुझे गुस्सा न दिलाओ ।

(७) शान्ति– क्यों क्या यह धरती उलट कर रख दोगे ।

(८) सुरेन्द्र – (क्रोध में पागल होकर) माधो । माधो । इस औरत को मेरे कमरे से हटा दो । इसे मेरे सामने से हटा दो ।. मैं इसका खून कर डालूंगा।

(पृष्ठ १६,अन्धेरा–उजाला)

उदाहरणों की व्याख्या :-

क्रोध का भाव एक ऐसा भाव है जिसकी अभिव्यक्ति में ही उसका अस्तित्व सुरक्षित रहता है । बिना अभिव्यक्ति के क्रोध का कोई मूल्य नहीं । ये भाव केवल आश्रय से सम्बन्धित न होकर आलम्बन से भी सम्बन्धित रहते हैं । दूसरे शब्दों में आश्रय एवं आलम्ब न के परस्पर आदान–प्रदान से ही इनका विकास होता है । क्रोध के संवेग का क क्रमिक विकास उत्तर प्रत्युत्तर के माध्यम से ही होता है । क्रोध की अभिव्यक्ति में एक स्तर ऐसा भी आता है जब आश्रय एवं आलम्बन का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित हो जाता है । आश्रय एवं आलम्बन परस्पर एक दूसरे के आश्रय एवं आलम्बन बन जाते हैं । यह स्थिति प्रारम्भ से नहीं रहती । उदाहरण (ख) में बात का प्रारम्भ साधारण मन:स्थिति में होता है । वहां अप्रसन्नता है । वह भी एक पक्ष की ओर से , परन्तु क्रोध नहीं । यह अप्रसन्नता का भाव कथन(३) में स्पष्ट हो जाता है । यही अप्रसन्नता कथन(७) में व्यंग्य में बदल जाती है । इस व्यंग्य की प्रतिक्रिया में दूसरे पक्ष की ओर से झुंझलाहट व्यक्त होती है (कथन ७) । इससे पहले पक्ष का क्रोध और तीव्र हो जाता है । और झुंझलाहट की अभिव्यक्ति को चुनौती के रूप में ग्रहण कर उसकी प्रतिक्रिया भी चेतावनी में व्यक्त होती है (कथन २) । यद्यपि यहां (कथन ७) का अभिप्राय चुनौती या धमकी नहीं है । यहां व्यवधान पड़ जाने से आवेश के विकास में अवरोध आ जाता है । परन्तु पुरुष पक्ष का आवेश शान्त नहीं होता , वह झुंझलाहट के रूप में व्यक्त होता है (कथन८) । दूसरा पक्ष भी अब आलम्बन मात्र न रह कर क्रोध का आश्रय हो जाता है और उसकी अभिव्यक्ति तिरस्कार पूर्ण व्यंग्य के रूप में होती है (कथन११) । इसकी प्रतिक्रिया में पुरुष पक्ष का क्षुब्ध तिरस्कार व्यक्त होता है । इस प्रकार इस सम्पूर्ण उत्तर प्रत्युत्तर रूप होता --

साधारण कथन(अप्रसन्नता) - साधारण कथन (offence) - व्यंग्य -झुंफलाहट - चुनौती + झुंफलाहट - तिरस्कारपूर्ण व्यंग्य - आवेशपूर्ण तिरस्कार-शुद्धतिरस्कार ।

उदाहरण(ङ) में भी साधारण कथनोपकथन के स्तर से क्रोध का क्रमिक विकास दिखायी देता है । प्रथम पक्ष(पद्मा) में क्रोध नहीं वरन आक्रोश अधिक है । द्वितीय-पक्ष(प्रेमचन्द) में बिल्कुल साधारण मन:स्थिति में है । प्रथम चार वाक्य साधारण प्रश्नोत्तर हैं । परन्तु पाँचवें वाक्य में आश्रय का आक्रोश घृणा के रूप में व्यक्त होता है । यहाँ क्रोध के भाव में आक्रोश का आलम्बन भिन्न है परन्तु अभिव्यक्ति के क्रम के मध्य आलम्बन सामने वाला व्यक्ति बन गया है । यद्यपि यहाँ घृणा एवं आक्रोश का आलम्बन दूसरा है परन्तु इसमें दूसरे पक्ष का अपना अपमान लगता है । इस अपमान की अभिव्यक्ति प्रथम पक्ष के प्रति ताड़ना के रूप में होती है (कथन७) । नारी स्वभाव के अनुसार ताड़ना का उत्तर व्यंग्य के रूप में मिलता है (कथन७) । व्यंग्य की प्रतिक्रिया चिढ़ के रूप में होती है(कथन८)। चिढ़ के साथ चुनौती भी है । चुनौती का उत्तर आत्मप्रशंसा एवं धमकी के रूप में मिलता है । इस प्रकार उत्तर प्रत्युत्तर की सम्पूर्ण प्रक्रिया का रूप होगा --

साधारण कथनोपकथन-(आक्रोश- प्रश्न - घृणा की अभिव्यक्ति- ताड़ना - व्यंग्य - (चिढ़) चुनौती - धमकी एवं आत्मप्रशंसा ।

उपर्युक्त दोनों उदरणों में क्रोध का प्रारम्भ एक पक्ष से हुआ परन्तु बाद में दोनों पक्षों में इसका प्रसार हो गया । क्रोध का प्रारम्भ यहाँ साधारण मन:स्थिति से हुआ था अत: विकास की प्रक्रिया में भी क्रोध का संवेग अपने चरम-उत्कर्ष हिंसात्मक क्रोध (wrath) तक नहीं पहुँच सका । परन्तु यदि प्रारम्भ से ही आश्रय क्रोधित हो तो प्रक्रिया का रूप दूसरा होगा । उदाहरण(ग) में मुन्नी का रजनी के प्रति क्रोध पहले से ही है । उसका यह क्रोध अपमानजनित है अथवा ईर्ष्याजनित या अन्य किसी कारण से यह तो अलग प्रश्न हो गया । परन्तु इतना निश्चित है कि क्रोध का अस्तित्व पहले से ही है जो रजनी को देखते ही विस्फोटात्मक रूप में प्रगट होता है । चूँकि रजनी एवं मुन्नी दोनों के मध्य शिक्षित हैं अत: भाषा में अपशब्द न रहकर व्यंग्य अधिक है ।

प्रथम कथन में ही मुन्नी रजनी की भर्त्सना करती है । अपने इस अनायास हुए अपमान की प्रतिक्रिया में रजनी भी मुन्नी की भर्त्सना करती है (कथन२) । मुन्नी भर्त्सना

का उत्तर ताड़ना एवं आत्मप्रशंसा से देती है (कथन३) । इसकी प्रतिक्रिया तिरस्कार के रूप में होती है (कथन४) । रजनी मुन्नी को चेतावनी देती है (कथन६) । चेतावनी से तिलमिलाकर मुन्नी उसे धमकी देती है (कथन७) । रजनी उस धमकी का तिरस्कार करती है और फिर चेतावनी देकर चली जाती है (कथन८) ।

उपर्युक्त उदाहरण में एक बात ध्यान देने योग्य है । मुन्नी के क्रोध में द्वेष की प्रधानता है जब कि रजनी का क्रुद्ध अपमानजनित क्रोध है । अतः दोनों की अभिव्यक्ति का प्रारम्भिक रूप अलग-अलग है ।

मुन्नी के क्रोध की अभिव्यक्ति - भर्त्सना- ताड़ना आत्मप्रशंसा - भर्त्सना एवं धमकी के रूप में होती है । रजनी का क्रोध क्रुद्धभर्त्सना- तिरस्कार- चेतावनी-तिरस्कार एवं चेतावनी के रूप में व्यक्त होता है ।

इस उदरण में क्रोध की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति भी तीव्र थी परन्तु कभी-कभी व्यंग्य के रूप में भी इसका प्रारम्भ होता है । जैसे - उदरण(क) में शंकर पत्नी पर क्रोधित है और उसके क्रोध की अभिव्यक्ति व्यंग्य के रूप में होती है । उदरण (ग) में जहां एक ही पक्ष में क्रोध था वहां दोनों ही पक्ष एक दूसरे पर क्रुद्ध हैं ।

प्रथम पक्ष व्यंग्य करता है (कथन१) । व्यंग्य का उत्तर व्यंग्य से मिलता है (कथन२) व्यंग्य की प्रतिक्रिया फिर व्यंग्य में होती है(कथन३) । इस बार व्यंग्य का उत्तर चुनौती में मिलता है (कथन४)। यद्यपि (कथन३) का ऐसा कोई अभिप्राय अभिप्राय नहीं था । पति चुनौती का तिरस्कार करके पत्नी की भर्त्सना करता है (कथन५) । भर्त्सना का उत्तर पत्नी व्यंग्य से देती है(कथन६) । पति झुंझलाकर कहता है - " इससे तो मैं कुंवारा ही अच्छा था ।" कथन में अपरोक्ष रूप में पत्नी की भर्त्सना ही है । इस भर्त्सना का उत्तर पत्नी आत्मतिरस्कार एवं धमकी के रूप में देती है । धमकी का भी विशिष्ट रूप है । जैसा कि प्राय: स्त्रियों की धमकियों में होता है स्वयं को नष्ट करने की धमकी है पति उसका एवं उसकी धमकी का तिरस्कार कर - उसे नदी में कूदने की चुनौती देता है । इस प्रकार यहां दोनों पक्ष क्रोध में हैं और उत्तर प्रत्युत्तर का रूप निम्नांकित हुआ --

व्यंग्य- व्यंग्य - व्यंग्य- व्यंग्य- भर्त्सना - व्यंग्य - भर्त्सना- आत्म तिरस्कार एवं धमकी - तिरस्कार एवं चुनौती ।

यहां दोनों पक्षों में क्रोध तो है परन्तु दोनों के क्रोध का स्वरूप भिन्न-भिन्न

वहाँ उत्तर प्रत्युत्तर का क्रम विशिष्ट होगा । जैसे उद्धरण(ज) में पति पत्नी दोनों ही क्रोधित हैं । परन्तु पति के क्रोध में घृणा का मिश्रण है अत: शुद्ध क्रोध नहीं व्यक्त होता ।

प्रथम कथन में पत्नी व्यंग्य करती है । पति तिलमिलाकर चिल्लाता है "शान्ति" (पत्नी का नाम) । पत्नी के नाम के उच्चारण के इस विशिष्ट ढंग द्वारा वह निषेध चेतावनी, एवं धमकी के मिले-जुले भावों को व्यक्त करता है । पत्नी फिर भर्त्सना करती है । अपमानित होने पर पति का क्रोध चेतावनी के रूप में व्यक्त होता है । पत्नी चेतावनी का उत्तर ललकार से देती है (कथन१२) परन्तु पति उसकी चेतावनी का तिरस्कार करता है (कथन१३) । पत्नी तिरस्कार का उत्तर तिरस्कार से देती है (कथन-१४) । पति उसे वहाँ से जाने को कहता है । परन्तु वह उसकी उपेक्षा करती है ।

उपर्युक्त उद्धरण में घृणायुक्त क्रोध की व्यंजना हुई है । पति का क्रोध तिरस्कार के रूप में व्यक्त होता है । दोनों ओर शुद्ध क्रोध का उदाहरण उद्धरण(झ) में मिलता है । किसी बात पर पति चेतावनी देता है । पत्नी प्रत्युत्तर में चेतावनी का तिरस्कार करती है (कथन२) । पति फिर चेतावनी देता है (कथन३) । पत्नी चेतावनी का उत्तर तिरस्कार एवं ललकार से देती है(कथन५) । इस प्रकार तंग आकर पति पूछता है " तो तुम बातों से नहीं मानोगी ?" पत्नी कुछ उसका विशिष्ट अर्थ लेकर कहती है-" तो तुम मुझे लातों की धमकी देते हो ?" और वह पति का तिरस्कार करती है एवं गर्व-पूर्ण बातें कहती है । पत्नी की आत्मप्रशंसा पर पति व्यंग्य करता है ।

क्रोध में कभी-कभी ऐसे उद्धरण भी मिलते हैं जिनमें एक पक्ष तो वास्तव में क्रोध में रहता है और दूसरा पक्ष अपनी रक्षा के लिये क्रोध व्यक्त करता है । उदाहरण के लिये(ण) उद्धरण में पूरन के क्रोध के प्रति श्यामलाल का प्रतिरक्षात्मक क्रोध प्रकट होता है । पूरन द्वारा अपशब्द कहे जाने पर ,वह सभ्यतापूर्वक चेतावनी देता है (कथन२) । परन्तु उसका उत्तर पूरन तिरस्कारपूर्ण व्यंग्य एवं चेतावनी से देता है । श्यामलाल को भी क्रोध आ जाता है वह उसे धिक्कारता है (कथन३) । धिक्कार की प्रतिक्रिया में पूरन उसे धमकी देता है (कथन४) ।

श्यामलाल का प्रतिरक्षात्मक क्रोध इस क्रम से बढ़ा - साधारण प्रतिवाद - धिक्कार । पूरन का शुद्ध क्रोध- अपशब्द व्यंग्य - धमकी ।

यही स्थिति उद्धरण(त) में भी है । ग्राहक किसी वस्तु को अनाधिकार लेने की चेष्टा करता है ,न मिलने पर अनिष्ट की चेतावनी देता है । उत्तर में दुकानदार

साधारण प्रतिवाद करता है । लालाजी प्रतिवाद का सीधा उत्तर न देकर आत्मप्रशंसा एवं व्यंग्य करते हैं(कथन२) । व्यंग्य से चिढ़कर दुकानदार उनका तिरस्कार करता है(कथन ३) । अपमानित होने पर लालाजी उसे फिर चेतावनी देते हैं(कथन४) । दुकानदार उनकी चेतावनी के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करता है(कथन५)। इस पर लालाजी उसे धमकी देते हैं ।

दुकानदार के प्रतिरक्षात्मक क्रोध का रूप - साधारण प्रश्न - तिरस्कार - तिरस्कार - तिरस्कार । लालाजी के क्रुद्ध क्रोध का रूप- चेतावनी-धमकी- व्यंग्य आत्मप्रशंसा- चेतावनी-धमकी ।

इस प्रकार क्रोध की वाचिक अभिव्यक्ति का स्वरूप, उत्तर प्रत्युत्तर की प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है । इसमें व्यक्तित्व, आयु, संस्कार, लिंग, आदि तत्व स्वरूप निर्धारण में उतना योग नहीं देते जितनी परिस्थितियां एवं विरोधी का उत्तर ।

३.१२ क्रोध एवं अन्य भाव :-

'क्रोध' के भाव का विलोम साधारणत: प्रेम अथवा शान्ति माना जाता है। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से क्रोध के स्थान पर ग्लानि, शोक, पश्चाताप, स्नेह, आदि भी आयेंगे । क्रोध का विलोम अक्रोध की स्थिति भी है । किन्तु यह भाव नहीं है वरन् भाव का पूर्णत: अभाव है । अत: इसका स्थान भावात्मक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नहीं है ।

कोई व्यक्ति यदि अत्यधिक क्रोध में है और किसी व्यक्ति को प्रताड़ित और तिरस्कृत कर रहा है अथवा शारीरिक बल प्रयोग करता हो ऐसे में एक अन्य व्यक्ति आकर उसका हाथ पकड़ कर उसे ही प्रताड़ना देने लगे कि -- 'इस बच्चे को मारते तुम्हें शर्म नहीं आती । फूल से शरीर पर इतनी निर्दयता से वार कर रहे हो । अभी बिचारे को ज्ञान ही क्या है ? उसका दोष ही क्या है ? इस आयु में तो सभी शरारत करते हैं , तुम अपने दिन भूल गये ।' तो क्रोध पूर्णत: विलीन हो जाता है । और उसके स्थान पर ग्लानि तथा वात्सल्य का उद्गम होता है ।ग्लानि का रूप कुछ इस प्रकार का होगा ।' मैं कैसा कसाई हूं ? इन्हीं हाथों से उसे मारा है , ये हाथ क्यों न टूट गये? और वात्सल्य का प्रदर्शन इस रूप में होगा -- बेटे तुम्हें कहीं चोट तो नहीं लगी, रो नहीं चलो तुम्हें मिठाई दें ।' यदि व्यक्ति की प्रकृति भावुक हुई तो 'मुझे माफ कर दो, अब कभी नहीं मारुंगा' आदि भी कह देगा । इसके विपरीत यदि उग्र स्वभाव का

व्यक्ति हुआ तो मारना डांटना बन्द कर मात्र इतना ही कहेगा-- लो तुम्हारे कहने से छोड़ दियानहीं तो.....' ।

क्रोध की अभिव्यक्ति में व्यक्तिगत भिन्नता बहुत महत्वपूर्ण है । किसी को खूब ताने देने के बाद तथा तिरस्कार करने के बाद यदि यह ज्ञात हो कि यह तो बहुत बड़ा शुभचिन्तक है तो क्रोध ग्लानि में परिवर्तित हो जाता है । आह मैंने व्यर्थ उसका दिल दु:खाया । क्या सोचता होगा बेचारा ? कितना अच्छा है ।.उसके ज़रा से अपराध से मुझे क्रोधित नहीं होना चाहिए था । मैं भी तो आपे से बाहर हो गया ।

इसी प्रकार यदि आलम्बन क्षमा मांगने लगे, दैन्य का प्रदर्शन करे अथवा रोने लगे तो क्रोध किसी सीमा तक करुणाभाव में परिवर्तित हो जाता है ।' किसी सीमा तक' इसलिये क्योंकि यह करुणा पात्र के अपराध की मात्रा पर निर्भर करती है । यदि अपराध छोटा सा है तो करुणा तीव्र रूप में व्यक्त होगी । प्राय: देखा गया है कि जो जितने ही अधिक तीव्रता से क्रोधित होते हैं उतनी ही शीघ्रता से और अधिक मात्रा में करुणा विचलित भी होते हैं , अच्छा मुझे माफ करो । मुझे नहीं मालूम था कि तुम्हें दु:ख होगा ।' यदिक्रोध के प्रत्युत्तर में दैन्य का प्रदर्शन होगा तो करुणा की अभिव्यक्ति का रूप कुछ इस प्रकार होगा -- अच्छा जाओ माफ किया , अब कभी ऐसा मत करना । किन्तु यदि अपराध गुरुतर और अक्षम्य हो तो भी करुणा तो उत्पन्न हो ही जाती है और तब उसका रूप कुछ इस प्रकार होगा -- रो नहीं, अपने को सुधारो, मुझे कोई अच्छा थोड़े ही लगता है, तुमसे इस प्रकार का व्यवहार करना, किन्तु तुम्हारे भले के लिये ही ऐसा करता हूं अन्यथा तुम्हारा दुश्मन तो हूं नहीं ।
-अभिव्यक्ति का यह रूप सन्तान के प्रति पिता का अथवा व्यक्ति के किसी शुभचिंतक का होता है ।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी क्रोध करते-करते कोई ऐसी बात हो जाती है कि व्यक्ति को अनायास हंसी आ जाती है । किसी को कोई कटु वचन कहा जाय और वह उसका कोई विचित्र और मनोरंजक उत्तर दे दे जिसे सुन कर उपस्थित अन्य लोगों के साथ-साथ क्रोध करने वाला व्यक्ति भी हंस पड़ेगा । जैसे निम्न उदाहरणों में --

-- लाला - न जाने सुबह किसका मुंह देखा था । सुबह-सुबह चोट लग गयी ।

-- मैंकी - शीशा देखा होगा लाला जी । पृष्ठ ७९

-- राजा : आपने यह छिलका सड़क पर क्यों फेंका ?

-- लाला : सड़क पर नहीं फेंकूं तो क्या खा जाऊं । पृष्ठ ८०

-- राजा : मैं पूछता हूं सड़क के बीच क्यों थूका ।

मौलवी : अरे वाह क्या बात कही है । अरे भाई सड़क पर नहीं थूकूं तो क्या जेब में थूकूं ।

(अटैची केस, जयानाथ 'नलिन') .

उपर्युक्त उद्धरणों के वक्ता में क्रोध है किन्तु आलम्बन ने उस क्रोध पर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया एवं हास्यपूर्ण उत्तर देकर उसके भावों में भी परिवर्तन ला दिया । इस प्रकार के उत्तरों में वक्ता प्रायः स्वयं को स्वतः ही मूर्ख सिद्ध करता है । प्रथम उद्धरण में लाला जी के क्रोध का मार्गान्तीकरण कर दिया गया है । यद्यपि इसके द्वारा संभव था कि लाला जी का क्रोध और भड़क जाय । द्वितीय एवं तृतीय उद्धरणों में यदि इन उत्तरों के स्थान पर मात्र यही कहा जाता कि " आपसे क्या मतलब ?" तो भी क्रोध के विकास की संभावना हो जाती ।

अन्य भावों की अपेक्षा क्रोध के भाव में रूप परिवर्तन की संभावनाएं सीमित हैं ।

---:o:---

- भय -

३.१ काव्य शास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि

१- मैक्डुगल ने मानव व्यवहार का आधार चौदह मूलप्रवृत्तियां मानी हैं। इनमें से एक पलायन की प्रवृत्ति भी है जिसके साथ सम्बन्धित संवेग को भय का संवेग नाम दिया गया है। सुरक्षा की भावना से मनुष्य रक्षा की प्रक्रिया अपनाता है। काव्य शास्त्र में भय को भयानक रस का स्थायीभाव माना गया है। भीषण दृश्य, वन, शत्रु, जीव आदि इसके आलम्बन है। निस्सहाय होना, शत्रु आदि की भयंकर चेष्टा, आलम्बन की भयंकरता, इसके उद्दीपन है। स्वेद, वैवर्ण्य, कम्प, रोमान्च, आदि इसके अनुभाव है। जुगुप्सा, त्रास, मोह, ग्लानि, दैन्य, शंका, अपस्मार, चिन्ता, आवेग, मूर्छा, उन्माद, स्तम्भ, स्वेद, चपलता, वैवर्ण्य, प्रलय, आदि इसके संचारी माने गये हैं।

भय के तीन प्रकार माने गये हैं :- वास्तविक, भ्रमजन्य और काल्पनिक। भरत मुनि ने व्याजजन्य (भ्रमजनित), अपराधजन्य (काल्पनिक) तथा वित्रासितक (वास्तविक) नाम से इन्हीं तीनों रूपों को प्रस्तुत किया है।

भय के संवेग का शरीर पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह एक प्रकार की जड़ता उत्पन्न करता है इसीलिये इस संवेग को निषेधात्मक संवेग (Negative Emotion) कहते हैं। अन्य संवेगों की भांति भय के संवेग की भी अनेक श्रेणियां होती हैं। भय एक ऐसा भाव है जो प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक परिस्थिति एवं प्रत्येक क्षण के साथ साथ रूप-परिवर्तन करता रहता है। अनुभूति का स्वरूप इतना परिवर्तनशील होने के कारण अभिव्यक्ति का रूप बदलता रहता है। अत: चाहे भय की शारीरिक अभिव्यक्ति हो अथवा भाषागत, इसे किन्हीं निश्चित रूपों में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। इतना निश्चित है कि भय का सम्बन्ध सदैव भविष्य से रहता है। जो सामने है जो क्षण भोगा जा चुका है या भोगा जा रहा है वह भय का आधार कभी नहीं होता चाहे अन्य किसी भी भाव का हो।

शुक्ल जी के शब्दों में "किसी आती हुई आपदा की भावना या दु:ख के कारण साक्षात्कार से जो एक प्रकार का आवेगपूर्ण अथवा स्तम्भकारक मनोविकार

होता है, उसी को भय कहते हैं ।[1] भय का भाव क्रोध के बिल्कुल विपरीत है । क्रोध दु:ख के कारण पर प्रभाव डालने को आकुल रहता है, भय उसकी पहुंच से बाहर होने के लिए । क्रोध में आलम्बन पर हावी होने, उससे लड़ने, उस पर वार करने की भावना रहती है । उसमें सक्रियता रहती है, भय में निष्क्रियता अपनी इसी निषेधात्मक प्रवृत्ति के कारण भय के भाव में भाषा का प्रयोग बहुत कम होता है । क्रोध में उद्दीपन के लिये आलम्बन का जागृत, चेतन और सक्रिय होना आवश्यक है किन्तु भय में इसके विपरीत मात्र दु:ख या कष्ट का ज्ञान ही भाव को जागृत कर देता है किसी व्यक्ति को यदि यह ज्ञात हो जाये कि कल उसकी मृत्यु होगी तो उसमें भय जागृत होगा किन्तु यदि उसे यह मालूम हो कि कल उसका अमुक शत्रु उसे मारने का यत्न करेगा तो वह क्रोधित हो उठेगा और कहेगा - "उसकी हिम्मत भी है, बड़ा आया मारने वाला " अत: जहाँ भय का अनुभव कर वाणी जड़ हो जाती है वहीं क्रोध में और अधिक क्रियाशील हो उठती है । क्रोध की अभिव्यक्ति में वाणी माध्यम होती है, शोक में सहायक होती है परन्तु भय में वाणी और भाव का सम्बन्ध टूट जाता है । इसका यह अर्थ नहीं कि भय की भाषागत अभिव्यक्ति नहीं होती किन्तु में भय में साधारणत: भाषा का प्रयोग चेतन स्तर पर न होकर अचेतन स्तर पर होता है । मनुष्य हर स्थिति में बोलने का अभ्यासी होता है अत: भय में भी वह बोलता है किन्तु वह बोलना यान्त्रिक रूप से होता है । भय में भाषा न तो सहायक होती है और न माध्यम । भाषा के माध्यम से भय के भाव को व्यक्त भी नहीं किया जा सकता संभवत: इसका कारण यह हो कि भय केवल आश्रय तक सीमित रहता है । अन्य संवेगों में व्यक्ति भाषा के द्वारा स्वयं की अभिव्यक्ति करके तनाव से मुक्ति पाता है । प्रेम और क्रोध में आश्रय अपने भाव आलम्बन तक पहुँचाने के लिये भाषा की सहायता लेता है, शोक में भाषा आन्तरिक तनाव से मुक्ति पाने में सहायक होती है किन्तु भय में भाषा का प्रयोग पशुस्तर पर यान्त्रिक रूप से होता है जैसे चीख या गले से निकली अस्पष्ट ध्वनि । सभ्यता ने मनुष्य को भय की स्थिति में सुरक्षा के लिये

१- पृष्ठ १२५ "चिन्तामणि " रामचन्द्र शुक्ल ।

पुकारना सिखा दिया है अतः भाषा का प्रयोग भय में भी मिलता है ।

३.२ भय और शारीरिक अभिव्यक्ति :

भाषागत अभिव्यक्ति के पूर्व शारीरिक अभिव्यक्तियों को देखना आवश्यक है । भय के संवेग की शारीरिक अभिव्यक्ति बड़े स्पष्ट रूप में होती है । इस संवेग का प्रभाव शरीर पर आन्तरिक एवं बाह्य, दोनों रूपों में पड़ता है । आन्तरिक प्रभाव से अभिव्यक्ति से स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है, बाह्य परिवर्तनों में मांसपेशियों में तनाव, ओंठ एवं अन्य अंगों का कम्पन, पसीना, रोमान्च, वैवर्ण्य, आखों और नथुनों का फैलना, आदि है । लगभग यही शारीरिक अनुभाव काव्य शास्त्र में भी दिये गये हैं । ये अनुभाव वाणी से अधिक स्पष्ट रूप से भय की अभिव्यक्ति करते हैं जैसे सिकुड़ना, हाथ की वस्तु छूट कर नीचे गिर जाना -

- माथे पर पसीने की बूंदें छलक आईं । x x x x x न जाने कैसे गिलास उसके हाथों से छूट गया । सीमेन्ट के फर्श पर गिर पड़ा जिसका धमाका सुन कर वह चौंक गया और चारपाई छोड़ कर उठ खड़ा हुआ । (पृष्ठ २६ 'दो घटनायें' रामकुमार, धर्मयुग १६ अप्रैल १९६७)। सिहरना, थर्राना, शरीर में झुरझुरी फैलना, शरीर सिहर उठना, कदम ठिठकना एवं पीछे छूटना --

- अधेड़ की एक बार जैसे सांस ही रुक गयी, उसके कदम ठिठक गये । (पृष्ठ २३ 'यह एक जिन्दगी ' राधाकृष्ण सहाय, धर्मयुग २१ अप्रैल, १९६८)

- तभी पुरवारी के अन्तिम टीले के छोर पर कुत्ते भूंकने लगे । बकुनिया का कलेजा धकधक करने लगा । उसके पांव रुक गये । दुश्चिन्ताओं और आशंकाओं की भयावनी तस्वीर उसकी आंखों के आगे तैरने लगी । (पृष्ठ १३ 'चोर ' शिवसागर मिश्र धर्मयुग ३ मार्च १९६८) ।

- देख कर छवि सहमी सी दो पग पीछे हट गयी और विक्रम रोता हुआ दादी की गोद में उतरने से बाहर भाग खड़ा हुआ ।

(पृष्ठ १०२ 'धुर्ये की परतें ' ओम कुकरेती, नवनीत जुलाई १९६७)

- भय से रूपला दो पग पीछे हट गयी और कम्पित स्वर में बोली "क्या बात है भैया ?"

(पृष्ठ ६१, 'अंगूठी' सौमावीरा)

हाथ पैर में ऐंठन होना, हाथ पांव जड़ होना, हाथ पांव ढीले पड़ जाना, हाथ पैर ठण्डे हो जाना, कम्प (ओंठ हाथ एवं पैरों का) कलेजा धकधक करना, धक सा होना, सकते में डूबना, ~~सन्न सन्नसन्न~~, जड़ होना, पत्थर होना, नब्ज डूबना, माथा घूमना, सफेद पड़ना, पीले पड़ना, शरीर ठण्डा होना, रोंगटे खड़े होना, कलेजा मुंह को आना, सन्न होना, सुन्न होना, प्राण हवा होना, प्राण निकलना, दम खुश्क होना, दम हवा होना, जान हवा होना, सांस रुकना, दम घुटना, सांस डूबना, अन्दर की सांस अन्दर बाहर की बाहर रह जाना, ऊपर की सांस ऊपर एवं नीचे की नीचे रह जाना, आँखें मुंदना, आंखें फाड़ कर देखना, नीचे देखना, नेत्रों के आगे अन्धकार छाना, शंकित नेत्र, भयभीत नेत्र, सहमी दृष्टि, आदि भय की शारीरिक प्रतिक्रियायें हैं। लगभग इन सभी का प्रयोग मुहावरों के रूप में भय की अनुभूति और अभिव्यक्ति के लिये किया जाता है। ये इतने स्थिर हैं कि इनमें से कोई एक अकेला ही पूरी परिस्थिति को व्यक्त कर सकता है। कभी कभी इनमें से कई एक साथ भी प्रकट होते हैं। इन्हीं शारीरिक प्रतिक्रियाओं पर बने मुहावरों की भांति ही कुछ अन्य मुहावरे भी हैं जैसे हाथ के तोते उड़ जाना', दिन में तारे नज़र आना, नानी याद आना, छठी का दूध याद आना। इनका प्रयोग दैनिक व्यवहार में और साहित्य में प्रचुरता से मिलता है। कभी तो आश्रय स्वयं इन्हें कहता है और कभी लेखक या अन्य व्यक्ति द्वारा इनका प्रयोग संकेत के रूप में होता है।

३.३ कंठस्वर

कंठावरोध :- भय की वाचिक अभिव्यक्ति में कुछ विशेषताएं हैं प्रथम एवं सबसे स्वाभाविक स्थिति कंठावरोध की है। भय में प्रयत्न करने पर भी शब्द नहीं निकलते। कभी कभी भाषा के स्थान पर घीं घीं या अस्पष्ट सी ध्वनि निकलती है। इस अस्पष्ट ध्वनि के लिये एक शब्द 'घिघियाना' प्रयुक्त होता है। कुछ स्थितियों में यह अस्पष्ट ध्वनि भी नहीं मिलती जैसे -

- गोपीनाथ का चेहरा पसीने से तर था, आँखें फटी थी और छाती ऊपर नीचे हो रही थी । उसकी जुबान से एक शब्द भी न निकल सका । कंठस्वर सूख गया ।

(पृष्ठ १४ `चूड़ियां` निर्गुण)

ऐसी जड़ता की स्थिति जिसमें भाव और भाषा का तनिक भी सम्बन्ध न हो हमारे अध्ययनक्षेत्र से बाहर है । किन्तु ऐसे कुछ उद्धरणों से भय का संवेग एवं उसकी भाषागत अभिव्यक्ति का रूप स्पष्ट हो जायेगा । कभी व्यक्ति बोलने का प्रयत्न करता है और असमर्थ रहता है और कभी तो बोलने का प्रयत्न ही नहीं करता, जड़मूक बना देखता रहता है ।

- नन्दसिंह की जुबान तालू से चिपक गयी । उधर में कुछ बोलते न बना । इसी प्रकार प्रयत्न करने पर भी ध्वनि नहीं निकलती है -

- भय से कांप कर उसने आँखें मूंद ली । चिल्लायी पर चिल्ला न सकी । उसे लगा जैसे उसकी आवाज़ बन्द हो रही है । सांस घुट रही है ।

(पृष्ठ ६५ लोक-परलोक उदयशंकर भट्ट)

भय से विचलित कांपते हुए मैंने बाबू के दोनों हाथ पकड़ लिये । मैंने कुछ कहने का यत्न किया किन्तु जीभ तालू से सट गयी और मुंह से एक शब्द भी न निकला ।

(पृष्ठ ३६ `इन्द्रनाथ` शरच्चन्द्र नवनीत १९६१ सितम्बर)

३.३.१ <u>अधूरे वाक्य एवं हकलाहट :</u>

इसके बाद जब बोलने की स्थिति आती है, तो `स्वरभंग की प्रवृत्ति मिलती है । इसमें प्रयत्न के बाद बोलने पर भी कभी आधे वाक्य और कभी आधे शब्द कह कर व्यक्ति मौन हो जाता है । जैसे...

- युवती : (कांप कर) तुम ---- तुम ---- (रो पड़ती है) तुम इतना जानते हो ।

(पृष्ठ ६४, `सवेरा` विष्णुप्रभाकर)

- युवती : (सहसा कांप कर) क्या --- क्या पाप ! पाप !

(युवती सहसा चीख कर बेहोश हो जाती है, संगीत गहरा हो कर टूट जाता है) ।

अधूरे वाक्य कह कर मौन होने के भी प्रचुर उदाहरण मिल सकते हैं -

- बादल : (भयातुर) मस्तिष्क में गड़बड़ी यानी ------

(पृष्ठ १२ 'माँ ' विष्णुप्रभाकर)

- राधाकृष्ण : (भयातुर) गुल ! गौरी को ज़हर देना होगा । गौरी को ज़हर ---- ('रक्त-चन्दन', विष्णुप्रभाकर)

- नन्दसिंह उठ खड़ा हुआ और अपने कंपकंपाते हाथ जोड़ कर बोला - 'हुजूर मैं तो ---- ।'

(पृष्ठ ३३ 'गीला बारूद ' नायक सिंह)

एवर भय से एक स्तर आगे भाषा में 'हकलाहट ' आ जाती है । व्यक्ति प्रयत्न करके कुछ बोलता है, इसे पूरा भी करता है किन्तु घबड़ाहट एवं मुख की मांसपेशियों की अव्यवस्था के कारण वाक्य अव्यवस्थित, क्रमहीन और टूटा फूटा रहता है बीच बीच में अनावश्यक विराम रहता है जैसे -

- बालशास्त्री (डर कर माथा ठोकते हुए) क ------ क ----- क्या ?

अरे भगवान --- पेटिंगंण ------- ~~(पृष्ठ २७६~~

(पृष्ठ २७६ 'व्यास जी का कायाकल्प ' नवनीत, जुलाई १९५७)

यह अनावश्यक और अव्यवस्थित विराम कभी दो शब्दों के बीच रहता है तो कभी दो अक्षरों के मध्य । 'हकलाहट ' की स्थिति घबड़ाहट से सम्बन्धित है । घबड़ाहट बहुत देर तक भी रह सकती है, अत: भयभीत व्यक्ति द्वारा देर तक किये गये उत्तर प्रत्युत्तर में (जब तक भय का अस्तित्व है) इसी प्रकार रुक रुक कर बोलता है ।

- यह सुनते ही जनार्दन के हाथ से प्रसाद वाली मिठाई का पत्तल गिर गया । उसके होश उड़ गये । घबड़ा कर वह बोला -----

नहीं तो ----- मैं क्या जानूं रिश्वत क्या होता है,

x x x अन्त में परेशान होकर उसने डपट कर पूछा -

"क्या लिखा है, इस बही में -----"

"जी ----- हिसाब ही तो है, हुजूर ---- "

"कैसा हिसाब ----- राम नाम का हिसाब भी होता है क्या ?

"जी हाँ.... ब.... ब... बैंक का... राम नाम बैंक का हुजूर ।

(पृष्ठ ३५७, खाली कुर्सी की आत्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा)

३.३.२ भय एवं उच्चारणगत विशेषताएं :

कभी कभी वाक्य साधारण, व्यवस्थित, एवं कृमबद्ध तो रहते हैं फिर भी कंठस्वर की विशिष्टता के कारण विकृत हो जाते हैं और भय को व्यक्त करते हैं । इस विशेषता की ओर साहित्य में प्राय: लेखक की ओर से संकेत रहता है -

- हतबुद्धि के समान पल भर उस फूले मुख को देखकर वह आतंक मिश्रित स्वर में बोल उठा "यह झूठ है झुमा । "

(पृष्ठ १३५ "अटूट अमंगल " सोमावीरा)

प्राय: आतंक की अवस्था में शब्द अस्पष्ट, फुसफुसाहट से युक्त एवं बलाघात हीन होते हैं । उच्चार के साथ इनकी अभिव्यक्ति होती है । कुछ अन्य संकेत - "भयभीत स्वर में ", "डरे हुए स्वर में ", "सहमे हुए कंठ से " आदि भी मिलते हैं । कभी कभी वाणी का कम्पन भी भय व्यक्त करता है, "कम्पित स्वरों में, "भराये हुए कण्ठ " से आदि संकेत इसके लिये दिये जाते हैं । -(कम्पन-मुख्य-

भय में कंठस्वर अवरुद्ध हो जाता है किन्तु कभी कभी इसके विपरीत कंठस्वर में असाधारण तीव्रता आ जाती है । भय की आर्थिक अभिव्यक्ति में "चीख उठा " भी एक विशेषता है ।

- पल भर में बिजली चमकी और जब साफ देखकर कृष्णा ने चीख मारी "हाय अम्मा !" और वह दौड़ कर मां के टांगों से चिपट गयी ।

(पृष्ठ ९६ "शान्ति " निर्गुण)

- देखते ही रौद्र मूर्ति वीर पृथ्वीराज की
चीख उठा राजा ज्यों सहसा पथिक के
सामने भयक्रान्त मृगेन्द्र कूदे काल सा - वियोगी

- हनुमन्तराव : (चीखते हुए) आ पहुंचे --- आ पहुंचे --- राव साहब शैतान आ गये ।

बापूराव : (थरथर कांपते हुए) अरे इ इ आ गये वे इ इ ।

(पृष्ठ १७६ 'ब्यासी जी का कायाकल्प' नवनीत)

भय की वाचिक अभिव्यक्ति में बलाघात-सुराघात या वाक्यों के आरोहात्मक-अवरोहात्मक रूप के आधार पर भाषा की व्याख्या नहीं की जा सकती । कब कहां बलाघात पड़ेगा, वाक्य का रूप आरोहात्मक होगा अथवा अवरोहात्मक यह बिल्कुल निश्चित नहीं है किन्तु यह अवश्य निश्चित है कि अपने उच्चारणगत विशिष्टता के कारण भयपूर्ण कथन या वाक्य पूरी वार्तालाप से सरलता से अलग किया जा सकता है । एक वाक्य का विशिष्ट उच्चारण जिस प्रकार क्रोध विस्मय या अन्य किसी भाव को व्यक्त करता है उसी प्रकार भय भी व्यक्त करता है ।

- गौरी (भयातुर) --- काका

(गौरी एकदम राधाकृष्ण से चिपट जाती है)

उपर्युक्त उदाहरण में 'काका' का उच्चारण उच्छ्वास के साथ दोनों 'का' पर समान बल देकर होगा । तभी काका शब्द भय को व्यक्त करेगा । यदि यही 'काका' विस्मय में कहा जाय तो प्रथम 'का' का क्रमशः बलाघातहीन साधारण उच्चारण होगा और द्वितीय 'का' का अपेक्षाकृत उच्चस्वर में और आरोहात्मक उच्चारण होगा । हर्ष में इन्हीं दोनों 'का' का अलग अलग और जल्दी जल्दी उच्चारण होगा का,,का,,

भय में कण्ठावरोध के कारण भी शब्दों के उच्चारण में विशिष्टता आ जाती है -

- "कुआ !" मैंने कहा । पीड़ा और भय से मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो गया ।

मेरे कण्ठस्वर की विचित्रता से चौंक कर बुवा ने देखा ।

('उपहार ' शिवानी धर्मयुग २४ अक्तूबर १९६५)

३.४ भय के विस्मयादिबोधक शब्द :

कुछ विशिष्ट विस्मयादिबोधक शब्द भी होते हैं जो भय की अभिव्यक्ति करते हैं जैसे ओह, आह, हाय, औफ्फ, आदि भय विस्मय और शोक में लगभग एक ही से विस्मयादिबोधक शब्द प्रयुक्त होते हैं, उनमें उच्चारणगत भिन्नता अवश्य मिलती है । आकस्मिक रूप से भय जागृत होने पर ही विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग होता है । प्राय: स्त्रियों एवं बच्चों की अभिव्यक्ति में ये अधिक मिलते हैं वाचाल एवं मुखर तथा कायर स्वभाव के पुरुषों की वाचिक अभिव्यक्ति में भी विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग अधिक होता है ।

- देवता के माथे से खून की धारा बह निकलीऔर वह भय के मारे चिल्लाया 'हाय मेरा सिर फट गया '

(पृष्ठ ५६, 'देवता और किसान ' कृष्णचन्दर)

भय के कुछ अपने विस्मयादिबोधक शब्द होते हैं जैसे हे ईश्वर, हाय अम्मा, ओह बप्पा, बप्पा रे, बाप रे, अम्मा रे, और मोरी मय्या - ये ग्रामीण और अशिक्षित समाज में अधिक प्रयुक्त होते हैं ।

भय में प्रयुक्त वाक्य विशेष

३.५, ३.६ विस्मयात्मक एवं प्रश्नात्मक वाक्य :-

भय की वाचिक अभिव्यक्ति में प्रयुक्त वाक्य साधारण वाक्यों से कुछ भिन्न होते हैं । स्वरूप की दृष्टि से ये विस्मयात्मक वाक्य तथा विस्मय की

वाचिक अभिव्यक्ति में प्रयुक्त वाक्यों से बहुत समानता रखते हैं ।[१] किन्तु वास्तव में भय में प्रयुक्त इस प्रकार के वाक्यों से विस्मय नहीं अविश्वास सन्देह और मतिभ्रम का भाव व्यक्त होता है । जैसे निम्नलिखित उदाहरणों में -

'अपना स्वार्थ ।' कुछ काम करते करते अचानक रुक गयी थी सीमा । डर के मारे हाथ पांव जड़ हो गये ।

(पृष्ठ १०३ नवनीत, सितम्बर १६६६)

'अपना स्वार्थ' का उच्चारण विस्मयादिबोधक वाक्यों की भाँति है किन्तु यह यहाँ पर भय से उत्पन्न मतिभ्रम की अभिव्यक्ति करता है ।

- चित्रा पीछे हटी । उसके हाथ से दवा की शीशी छूट पड़ी । भय विजड़ित कण्ठ से वह बोल उठी "माँ तुम !"

(पृष्ठ २००, 'धरती की बेटी' सौभावीरा)

'माँ तुम' का उच्चारण अपने आप में केवल विस्मयपूर्ण है किन्तु परिस्थितिवश भय की व्यंजना कर रहा है ।

कुछ विस्मयादिबोधक शब्द जो विस्मय की व्यंजना करते हैं कभी कभी भय की अभिव्यक्ति भी करते हैं जैसे 'अरे', 'ओह' आदि उच्चारण दोनों में समान ही रहेगा । यदि विस्मय के साथ हर्ष का भाव जुड़ा हो तो उच्चारण में कुछ अन्तर आ जाता है ।

इसी मतिभ्रम के कारण वाक्य प्रश्नात्मक भी हो जाते हैं यद्यपि वक्ता का उद्देश्य प्रश्न करना होता नहीं है किन्तु मतिभ्रम की स्थिति में वह प्रश्न करता जाता है -

---

१- The stimuli of curiosity and fear often differ only in degree - a slighter degree of strangeness arousing the former, and a greater, the latter - A.F. Shand

- The Nature of Emotional Systems.

- . . . . . (फिर एकदम चीख कर) "बस..... बस अब कुछ मत कहो। कितनी भयानक कितनी डरावनी बातें इन तस्वीरों ने मुझे याद दिलादीं, कितनी डरावनी.... क्या यह सब सच था.... क्या सचमुच.... यह सब सच था। नहीं नहीं यह सब गलत है, सब भ्रम है।"

(पृष्ठ १०२ 'नये-पुराने' विष्णु प्रभाकर).

- यह आदमी भी कितना बोभल था। अब क्या होगा ? अब क्या होगा ? ..... वह उठ खड़ी हुई।

(पृष्ठ १५७ 'रीता' नवम्बर १९६१)

इस प्रकार के प्रश्न प्राय: व्यक्ति अपने से ही करता है और कभी कभी उनका उत्तर भी दे देता है। यह मानसिक विभ्रम की ही एक स्थिति है। यह प्रश्न दूसरों से भी किये जाते हैं। मतिभ्रम के कारण एकबार में कथन का अर्थ स्पष्ट नहीं होता, व्यक्ति यों भी अशुभ पर शीघ्र विश्वास नहीं करना चाहता। -

- मधु का मुख राख के समान सफेद पड़ गया। बोली 'इसका अर्थ ?' (पृष्ठ १० 'ढलती कगारें', सोमावीरा)

- राधाकृष्ण (भयातुर) गुरु। गौरी को ज़हर देना होगा ?..... ...... गौरी को ज़हर ? ..... (रक्त-चन्दन - विष्णु प्रभाकर)

यह अभिव्यक्ति क्रोध, विस्मय, हर्ष और शोक में भी मिलती है, बस अनुभूति की आकस्मिकता आवश्यक है।

ज़रूरी नहीं कि मतिभ्रम की स्थिति में ही प्रश्नात्मक वाक्य कहे जायें। भविष्य की आशंका की अभिव्यक्ति में भी प्रश्नात्मक वाक्य मिलते हैं। ज्ञात परिणाम को लेकर भय होता है और परिणाम की अज्ञानता आशंका को जन्म देती है। आशंकाजनित प्रश्न भी स्वयं तथा दूसरे व्यक्ति से किये जाते हैं। उच्चारण की विशिष्टता के कारण ही ये साधारण प्रश्नोत्तर से भिन्न होते हैं। साधारणत: इनका उच्चारण शीघ्रता से होता है -

- भय से रूपला दो पग पीछे हट गयी और कम्पित स्वर में बोली
  "क्या बात है, भैया ?" (पृष्ठ ६१ 'अंगूठी' सोमावीरा)

- सरिता : (एकदम कांप कर) अरे यह क्या ? यह तो तुम्हारा पत्र नहीं लगता । (पृष्ठ २४ ६५ 'फासिल और अंकुर', विष्णु प्रभाकर)

- बालशास्त्री : (घबड़ाकर) भला अब क्या होगा ।
  (पृष्ठ १७६ व्यास जी का कायाकल्प)

प्रश्नों के इस प्रथम और द्वितीय रूपों (भ्रमजनित एवं आशंकाजनित) में मुख्य अंतर यही होता है कि प्रथम वर्तमान एवं भूतकाल से सम्बन्धित रहते हैं जब कि द्वितीय का सम्बन्ध भविष्य से रहता है ।

- मुन्नी ने घबड़ा कर हाथ और कस लिया । बोली
  "क्या होगा अब, अभी तो मेरा कलेजा कांप रहा है ।
  (पृष्ठ ५३ 'शान्ति' निर्गुण)

- विभावती (जल्दी जल्दी) तुमने मेरे.... मेरे.... साथ विश्वासघात किया । मैं तुम्हारे पिता जी को क्या लिखूंगी । उनसे क्या कहूंगी । उन्हें कैसे मुंह दिखाऊंगी । ओह.... ओह
  (पृष्ठ ६६, गरीबी अमीरी, गोविन्ददास)

आशंकाजनित प्रश्न भी व्यक्ति स्वयं अपने से करता है । इस सम्पूर्ण प्रश्नोत्तर को चिन्ता की वाचिक अभिव्यक्ति कहना अधिक उचित होगा । -

- दामोदर : अब क्या होगा ? कुर्की होगी और क्या होगा । मकान चला जायेगा । दुकान बोली पर चढ़ जायेगी । × × × × × × और यदि कल रामनारायण भी आ जाये ? (मुंह पर पसीने की बूंदें चमकने लगती हैं) फिर क्या करूंगा ? फिर कहां से रुपया लाऊं ?
  (पृष्ठ ५४ 'मन का रहस्य' भट्ट)

३.७ शब्द एवं वाक्य की पुनरावृत्ति :

भय की भाषागत अभिव्यक्ति में त्रास एवं आतंक के कारण जहां हकलाना, स्वरभंग आदि मिलते हैं वहां शब्दों एवं वाक्यों को दुहराने की प्रवृत्ति भी मिलती है। क्रोधावस्था में भी शब्दों एवं वाक्यों को दुहराया जाता है परन्तु उस दुहराने एवं इस दुहराने में अन्तर रहता है। क्रोध में अपनी बात पर बल देने के लिये आवेश प्रदर्शन के लिये और फुंफलाहट में शब्दावृत्ति मिलती है किन्तु भय में यह आवृत्ति अचेतन रूप में होती है। वक्ता स्वयं इस आवृत्ति से अनभिज्ञ रहता है। किसी अन्धेरे में भूत से भयभीत व्यक्ति "भूत" एक बार ही कह कर चुप नहीं हो जाता। लगातार "भूत ...भूत...भूत चिल्लाता जाता है। भ्रम दूर हो जाने पर अथवा किसी के द्वारा का उसकी रक्षा के लिये आ जाने पर भी वह "भूत-भूत" की आवृत्ति बन्द नहीं करता।

- "समझ गया.... समझ गया..... समझ गया.... ये तुम्हारी बीबी है तो ले जाओ इसे। जल्दू जलाल तू जल तू जलाल तू...."

(मुन्शी जी" नन्दलाल शर्मा, हवा महल १३-५-६८)

भयभीत व्यक्ति जिस शब्द को कहने लगता है उसे कई बार कह जाता है। विशेषकर यदि ईश्वर का नाम कुछ हो, जैसे राम-राम-राम..राम...राम...राम।

कभी कभी आतंक के कारण किसी विशेष शब्द पर (जिसके द्वारा भय का कारण दूर हो) अधिक बल देने के लिये उसे दुहराने की प्रवृत्ति भी देखी जाती है

- ठाकुर मंजु का मुंह काला पड़ गया। सिर फुका कर स्वरों पर जोर देती हुई बोली, "नहीं नहीं कदापि नहीं"

(पृष्ठ १७ "डरती क्वारी" सौभाग्यीरा)

- गुरुदेव आता है, समय रक्षा करो। रक्षा करो।

- बे डर गये भयभीत दृष्टि से उन्होंने अपने हाथों की ओर देखा और बुरी तरह कांप उठे "खून..... खून .... बचाओ

(पृष्ठ १५७ "दो फूल" विमल वेद, नवनीत जुलाई १९६७)

कभी कभी मतिभ्रम के कारण भी शब्दों वाक्यों या वाक्यांशों की आवृत्ति मिलती है । अन्धेरे में हिलते किसी वृक्ष को देखकर भयभीत व्यक्ति कह सकता है - पेड़...पेड़... यह पेड़ है....यह पेड़ है या कोई और भयानक वस्तु है ।

- बादल ----- बादल नहीं है\वे गिद्ध हैं । लाखों करोड़ों पंख खोले हुए आओ छुप जाओ, डालों के नीचे (आवेश में कांपती विकृत वाणी)

("अन्धायुग" धर्मवीर भारती , २६-५-६८)

३.८ <u>शीघ्र बोलना</u> :

भय की स्थिति में प्रयुक्त भाषा में एक और विशेषता देखने को मिलती है । व्यक्ति आवेश में और जल्दी जल्दी बोलता है । शब्द एक के बाद एक आते चले जाते हैं और प्राय: बलाघात से हीन होते हैं । अन्य भावों की भाषागत अभिव्यक्ति में अपनी एक विशिष्ट लय एवं आरोह-अवरोहात्मक स्थिति मिलती है परन्तु भय की भाषागत अभिव्यक्ति में ऐसी कोई विशिष्टता नहीं मिलती । इस प्रवृत्ति के उदाहरण प्राय: व्यवहारिक जीवन में मिलते हैं । लिखित साहित्य में कहीं कहीं इसकी ओर संकेत रहता है जैसे -

- "वह सफेद पड़ गयी । फिर उसने जल्दी जल्दी कहना शुरू किया "आप उनसे राहुल के बारे में बातें कीजिये ।"

- विमावती (जल्दी-जल्दी) तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया मैं तुम्हारे पिताजी को क्या लिखूंगी । उनसे क्या कहूंगी उन्हें कैसे अपना मुंह दिखाऊंगी । ओह.... ओह.....

(पृष्ठ ६६,गरीबी-अमीरी,सेठ गोविन्ददास)

इसी शीघ्रता से बोलने के कारण कभी कभी दो शब्दों के मध्य सन्धि भी हो जाती है जैसे -

" अरर संभालकर चलो ....." सेठजी ने घबरा कर कहा

यहां "अरे" एवं "अरे" कि सन्धि से "अरर" रूप बन गया है ?

मनोवैज्ञानिकों ने भय के दो प्रकार माने हैं। आकस्मिक भय (Acute fear) और स्थायी भय (Chronic Fear) # आकस्मिक रूप से किसी भयानक वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति को देखकर उत्पन्न हुआ भय दो रूपों में व्यक्त होता है। या तो व्यक्ति आवेश में आ जाता है या जड़ हो जाता है। चौंक-आतंक आदि उसी के रूप हैं। आकस्मिक भय की भाषागत अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से होती है। अधूरे वाक्य एवं हकलाना, चीखना, कंठस्वर का भर्रा जाना, कम्पित वाणी, विस्मयात्मक वाक्य, प्रश्नात्मक वाक्य,शब्दों एवं वाक्यों का दुहराना, शीघ्रता से बोलना आदि इसके भिन्न भिन्न रूप है।

३.६ आकस्मिक भय की वाचिक अभिव्यक्ति :

आकस्मिक रूप से उत्पन्न भय की वाचिक अभिव्यक्ति पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक स्पष्ट होती है। उपर्युक्त भाषिक अभिव्यक्तियों के अतिरिक्त स्त्रियों द्वारा दुहाई, रक्षा के लिये पुकारना, शपथ आदि का प्रयोग अधिक होता है। शिशु और बालक में केवल आकस्मिक भय ही मिलता है। स्थायी भय उनमें नहीं होता एवं क्योंकि वह किसी बात को दूर तक नहीं सोच सकते।अत: आशंका, चिन्ता, उलझन,परेशानी, आदि से वे मुक्त रहते हैं हां कल्पनाजन्य भय अवश्य रहता है किन्तु वह भी किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही जागृत होता है जैसे अकेलापन, अन्धकार, अपरिचित स्थान। इस भय की वाचिक अभिव्यक्ति रुदन, माता, अथवा संरक्षक को पुकारने के माध्यम से होती है।

- पल भर को बिजली चमकी और अब साफ देख कर कृष्णा ने चीख मारी "हाय अम्मा" और दौड़ कर मां के टांगों से लिपट गयी।

(पृष्ठ ४६ "शान्ति" निर्गुण)

साधारणत: बच्चे भय का प्रकाशन स्पष्ट शब्दों में करते हैं जैसे - हमें डर लगता है। जैसे,जैसे आयु बढ़ती जाती है वे अपनी अभिव्यक्ति पर नियन्त्रण रखना सीखते जाते हैं। पूर्व बाल्यकाल से लेकर किशोरावस्था तक भय की अभिव्यक्ति में लज्जा की अनुभूति होती है अत: बालक अथवा किशोर उसे छिपाना चाहता है। अन्दर ही

अन्दर भयभीत होने पर भी वे ऊपर से यही कहेंगे - नहीं मुझे भय नहीं लगता है अथवा उस परिस्थिति विशेष से बचने के लिये कोई अन्य बहाना बनायेंगे ।[१]

३.६.१ 'दुहाई' या 'पुकार'

साधारणत: आकस्मिक भय की अभिव्यक्ति अचेतन स्तर पर होती है इसलिये उसमें वायु, परिस्थिति, व्यक्तित्व अधिक प्रभाव नहीं डाल पाती, अभिव्यक्ति में एकरूपता रहती है। आकस्मिक भय की वाचिक अभिव्यक्ति का एक रूप 'दुहाई' 'गुहार' या 'पुकार' है। भय में व्यक्ति रक्षा के लिये पुकारता है, यही दुहाई है। इस बात का निश्चय न होने पर भी कि कोई रक्षा के लिये आयेगा भय का आलम्बन सामने पर व्यक्ति यान्त्रिक रूप से चीख उठता है 'बचाओ... बचाओ'। यदि आस पास में सचमुच कहीं कोई ऐसा है जो रक्षा कर सकता है, तो 'बचाओ... बचाओ' के स्थान पर उसके नाम की आवृत्ति होगी - 'माँ... माँ' या 'रमेश... रमेश'। प्राय: इन दोनों रूपों का सम्मिलित रूप ही प्रयुक्त होता है जैसे गुरुदेव आता है समय रक्षा करो रक्षा करो।

- नन्दा माँ : (दरवाजा खोलते हुए) अरे कौन है ? (चीखते हुए) ओ मेरी मैया री ! (दौड़ने का प्रभाव और चीख) हाय हाय शेफाली ओ शेफाली !!!

(पन्थहारा, (रेडियो नाटक), नरेश मेहता)

१- In accordance with general developmental trends in emotional expression, the expression of fear becomes more subtle, abstract and devious, and less transparent and overt with increasing age. Not only are the gross motor components of fear (crying, trembling, shrinking, clinging, flight) repressed but also the subjective, content as well. The reason for these trends are rather self-evident. First since the excitants of fear tend to become more imaginary, symbolic, unidentifiable and intrapersonal in origin, overt response becomes less possible. Second since in many cultures the expression of fear is regarded as approbrious and as a confession of weakers cowardice, it is treated with contempt or ridicule. Hence, as the child learns to fear ridicule he also learns to fear and thus inhibit, the expression of his own fear.

Page 451, Encyclopaedia of Educational Research.

उपर्युक्त उदाहरण में `ओ मेरी मैया री` द्वारा और `शेफाली ` के विशिष्ट उच्चारण द्वारा भय की अभिव्यक्ति होती है। नाम के उच्चारण में ही रक्षा की प्रार्थना एवं अनुरोध सन्निहित रहता है।

`दुहाई ` का जनसाधारण में प्रचलित रूप कुछ भिन्न है प्राय: अशिक्षित एवं ग्रामीण वर्ग के लोग `सरकार की दुहाई ` है या `मालिक की दुहाई है` कहते हैं। इस कथन में शरण पाने की इच्छा, रक्षा की इच्छा दोनों ही सन्निहित है।

भय की आकस्मिक अवस्थिति पर या संकट के सामने आ जाने पर यदि कोई ऐसा व्यक्ति आसपास न हुआ जो रक्षा का उत्तरदायित्व ले सके तो व्यक्ति के मुह से अनजाने में ही ईश्वर का नाम निकल पड़ता है। प्रत्येक वर्ग जाति आयु (शैशवावस्था एवं पूर्वबाल्यावस्था को छोड़ कर) के व्यक्तियों की यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। सैद्धान्तिक एवं वैचारिक रूप से नास्तिक व्यक्ति भी इस स्थिति में ईश्वर का स्मरण करता है। हिन्दुओं में तो यह विश्वास प्रचलित है कि संकट एवं भय की अवस्था में हनुमान को याद करना चाहिये। अनपढ़ या अर्धशिक्षित व्यक्ति या संस्कारों से धर्मभीरु व्यक्ति के मुख से संकट के समय `हनुमान चालीसा` की पंक्तियां सुनाई पड़ती हैं। भय से ये उनका कम्पित स्वर में `हनुमान चालीसा ` का पाठ बिल्कुल सहज और स्वाभाविक प्रतिक्रिया के रूप में बिना प्रयास के होता है। यह प्रक्रिया उनके लिये इतनी ही स्वाभाविक और निश्चित होती है जैसे किसी भयानक वस्तु को देख कर व्यक्ति का चीख पड़ना। स्त्रियों द्वारा ईश्वर के नाम के स्मरण के साथ साथ कुछ इस प्रकार के वाक्य भी जुड़े रहते हैं - तुम्हारी मनौती मानती हूं, देवी तुम्हारे दर्शन करूंगी, देवी तुम्हारे दरबार में आऊंगी, सवा पांच रुपये का बताशा चढ़ाऊंगी, प्रसाद चढ़ाऊंगी, तुम्हारे गुण गाऊंगी आदि।

- "अरे जियां आओ जल्दी से। गजब हो गया।" कह कर श्रीमती लाले अपने चार मन के शरीर में जाने क्यों का प्रयत्न करती हुई बीच बीच में शब्दों को गले में घोट कर जल्दी जल्दी प्रार्थना करने लगीं - "हे सतनारायन स्वामी तेरी तुम्हारी कथा बोलती हूं - हे बजरंग बली मैं तुम्हें सवा पांच रुपये का परसा - मातेसरी हमरी

रक्षा करो। हुं...हुं...हुं

(पृष्ठ २२, 'बूंद और समुद्र' अमृतलाल नागर)

३.६.२ स्तुति-प्रशंसा :-

कभी कभी भय की स्थिति में स्तुति ईश्वर की या रक्षा करने वाले की न होकर आलम्बन या भय के कारण की होती है। परन्तु यहां यह आवश्यक है कि आलम्बन कोई परिस्थिति एवं निर्जीव वस्तु न होकर व्यक्ति हो और कष्ट पहुंचाने के लिये तत्पर हो। स्तुति के अन्तर्गत आलम्बन की प्रशंसा, उसकी पूर्वप्रीति या स्नेह का स्मरण कराना, उसकी पूर्व कृपाओं का स्मरण कराना और इन सब के माध्यम से उसकी करुणा को जागृत करने का प्रयत्न रहता है। जैसे आप तो बहुत शरीफ हैं, आप मुझे कितना चाहते थे, सब स्नेह प्रीति भूल गये, हम आप कितने अच्छे मित्र थे, क्या साथ बिताये वे मधुर क्षण भूल गये, इतने निष्ठुर न हो, अपने स्नेह का स्मरण करो, तुम तो बहुत कोमल हृदय वाले हो, मुझ पर दया करो। यहां स्तुति दैन्य:संचारी बन कर आता है।

- आगन्तुक : (कराहते हुए) ओह माफ कीजियेगा। मैं कोट उतारता हूं, आप बहुत सज्जन हैं, मुझे पुलिस के हवाले न करें।(पृष्ठ २६४, 'शहनाई की शर्तें')

स्तुति को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिये इसमें आशीर्वचन भी रहते हैं - ईश्वर आपको लम्बी आयु दे मुझे बचा लीजिये, मुझे बचा लीजिये मैं आपके लिये भगवान से प्रार्थना करूंगा आदि। कुछ वाक्यों में अपनी असफलता निर्बलता का चित्रण तथा आलम्बन की महत्ता का चित्रण कर के आलम्बन के अंह को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न भी रहता है जैसे - आप मालिक हैं, आप सामर्थ्यवान हैं, आप शक्तिशाली हैं, आप माई बाप हैं, मेरे ऊपर दया करिये। मैं बहुत गरीब हूं, बहुत दुखिया हूं, मेरी रक्षा कीजिये,आदि। इस प्रकार की स्तुति में दैन्य का रूप अत्यन्त सही रहता है जो तुलसी के प्रसिद्ध पद 'तू दयालु दीन हौं, तू दानी हौं भिखारी मैं हूं'। यद्यपि तुलसी का यह पद भय की अभिव्यक्ति नहीं है वरन् समर्पण से उत्पन्न दैन्यभाव व्यक्त करता है।

३.६.३ <u>निन्दा</u> :-

कभी कभी भय में स्तुति के स्थान पर निन्दा भी रहती है। अपनी होने वाली हानि की आशंका से व्यक्ति भय के आलम्बन की निन्दा भी करता है। भय में निन्दा दो ही स्थितियों में होती है, प्रथम तो यह निश्चय होने पर कि निन्दा के कारण भय की भीषणता में वृद्धि न होगी और द्वितीय कि सम्भवत: निन्दा के कारण भय के आलम्बन में कुछ संकोच उत्पन्न हो जायेगा और वह अपेक्षाकृत कम हानि पहुँचायेगा। 'निन्दा' की वाचिक अभिव्यक्ति में अन्य कोई विशेषता नहीं रहती। साधारण निन्दा से इसमें कोई अन्तर नहीं है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ईर्ष्या भी भय का ही एक रूप है। हमें जब किसी व्यक्ति की प्रगति एवं सम्पन्नता से अपनी प्रतिष्ठा की क्षति का भय रहता है, तभी उसके प्रति ईर्ष्या उत्पन्न होती है। जब कोई व्यक्ति कहता है - 'ओह सब उसी की प्रशंसा करते हैं, मेरी नहीं, क्या मैं उससे कम हूँ', तो ईर्ष्या के साथ साथ अपने अपदस्थ होने का भय भी व्यंजित होता है। स्त्रियों में इस प्रकार के भय की मात्रा अधिक होती है संभवत: इसी लिये लोग प्रायश: उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक ईर्ष्यालु समझ लेते हैं। दुहाई, स्तुति, निन्दा आदि भय की वाचिक अभिव्यक्ति के सीखे हुए रूप हैं। बच्चा धीरे धीरे अनुभव से इन्हें सीखता है। मानवजाति ने भी न जाने कितनी लम्बी अवधि में इन मनोवैज्ञानिक साधनों को पहचाना होगा। आरम्भिक और स्वाभाविक अभिव्यक्ति तो केवल चीख या अस्पष्ट ध्वनि तक सीमित रहती है। शैंड का कथन इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है[1]।

१- Thus the instincts of flight and concealment, involving so many coordinated movements for the fulfilment of their ends, are a part and at first the largest and principal part of the emotional system of fear, as imposing the end at which the system aims. And that part of the system which is in mind includes not only the feeling and impulse of fear but all the thoughts that subserve escape from danger. As we advance in life these acquired constituents, which modify the inherited structure of fear become ever more numerous and important in correspondence with the growth of our experience -

A.F. Shand - The Nature of Emotional Systems.

३.६.४ नैराश्यपूर्ण कथन :-

दुहाई, स्तुति, निन्दा आदि के बाद नैराश्यपूर्ण एवं कायरतापूर्ण कथन का स्थान है। बच्चे संकट काल में भयभीत होने पर निराशापूर्ण वाक्य नहीं कहते। भय में कहे गये निराशापूर्ण वाक्यों में आशंका अधिक रहती है शोक कम। क्योंकि ये कथन भविष्य में आने वाले संकट के प्रति रहते हैं जब संकट सामने आ जाता है तो वाक्य शोक या क्रोध में बदल जाता है।

भय में कहे गये नैराश्यसूचक वाक्यों की दो श्रेणियां हो सकती हैं। प्रथम में परिणाम की भयानकता की व्यंजना होती है जैसे मैं तो टूट जाऊंगा, मैं उस परिस्थिति को नहीं सह सकता, मैं उसकी भर्त्सना नहीं सुन सकता, मैं मर जाऊंगा, नष्ट हो जाऊंगा आदि। दूसरे प्रकार के वाक्यों में अपनी शक्ति के प्रति अविश्वास प्रधान रहता है जैसे मैं उस कार्य को कैसे करूंगा, मैं इतना मन्दबुद्धि हूं कि परीक्षा में पास नहीं हो सकता, मैं इतना दुर्बल हूं कि उसका सामना नहीं कर सकता।

आकस्मिक भय की अभिव्यक्ति में 'त्रास' का स्थान है। 'त्रास' भय के साथ पीड़ा को भी जन्म देता है यह पीड़ा शारीरिक भी हो सकती है और मानसिक भी। वाचिक अभिव्यक्ति वही होगी जो पीड़ा की होती है अर्थात् रुदन, कराह, आह ओह आदि विस्मयादिबोधक शब्द, ईश्वर का स्मरण आदि।

३.१०- स्थायी भय :-

आकस्मिक भय के बाद स्थायी भय (Chronic fear) का स्थान है। इसमें सबसे पहले शंका और आशंका दो उपभावों को लेते हैं। दोनों की प्रकृति लगभग एक ही होने के कारण दोनों को एक साथ रखा जा सकता है।

३.१०.१ आशंका (Doubt) :-

यह शब्द शंकु से बना है जिसका अर्थ है चिन्तित या भयभीत होना। इसका एक अन्य अर्थ भी है, कुछ निश्चय या स्थिर न कर पाना। हिन्दी में यह मुख्यतः दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। जब किसी बात के सम्बन्ध में किसी प्रकार के अनिष्ट आघात

या हानि की सम्भावना रहती है अर्थात् जब हम समझते हैं कि अमुक कार्य सम्भवत: अभीष्ट उचित अथवा वांछित रूप से नहीं होगा तब मन की यह स्थिति शंका कहलाती है किन्तु आजकल इस अर्थ के लिये आशंका शब्द का प्रयोग होता है ।

इसका दूसरा अर्थ कुछ भिन्न है, जब कोई बात किसी निर्णीत या मान्य रूप से हमारे सामने आती है और हमें उस रूप में ठीक नहीं जान पड़ती । ऐसी अवस्था में हमारे मन में जो आपत्ति जिज्ञासा अथवा प्रश्न उत्पन्न होता है वही 'शंका' है । अर्थात् कोई बात ठीक न जान पड़ने पर मन में जो तर्क वितर्क उत्पन्न होता है वही शंका का सूचक लक्षण है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कोई मनोवेग नहीं है वरन् कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में होने वाला मानसिक व्यापार मात्र है । इसके दो प्रधान तत्व है एक तो आयी हुई बात का आपत्तिजनक जान पड़ना दूसरे उसके ठीक रूप जानने की उत्सुकता या कौतूहल होना ।

इस प्रकार शंका के तीन रूप हैं (१) किसी कार्य के उचित एवं वांछित न होने की धारणा (२) किसी पूर्व कार्य के औचित्य पर अविश्वास ~~(३)~~ तथा (३) बात को ठीक रूप से जानने की उत्सुकता । प्रथम एवं द्वितीय तो काल भेद के अनुसार एक ही कार्य के पूर्व एवं पश्चात् का भाव है । तीसरी स्थिति साधारण सन्देह की है । चिन्ता की भांति ही शंका मानसिक व्यापार होने के कारण तर्क-वितर्क के रूप में ही व्यक्त होती है । काव्यग्रन्थों में शंका की कुछ शारीरिक अभिव्यक्तियां भी हुई है जैसे एकटक देखना, शंकित चाल, ओंठ चबाना, मुख का रंग बदलना, कम्पन, स्वर भंग आदि ।

तर्क वितर्क का साधारण रूप समस्या को केन्द्र मान कर 'क्या'? 'क्यों कैसे'? की परिधि में घूमता रहता है.- क्या यह कार्य ठीक से हो सकेगा, क्या - मैं वहां जा सकूंगा । क्या मैं उससे मिल सकूंगा । प्राय: शंका तभी उत्पन्न होती है जब कार्यसिद्धि में किसी प्रकार की रुकावट या बाधा पड़ने वाली हो । शंका की अभिव्यक्ति में उस कार्य का उल्लेख भी रहता है - वह इतना मूर्ख है कैसे परीक्षा में उत्तीर्ण होगा । मौसम बहुत खराब है, मैं आफिस पहुंच भी सकूंगा या

नहीं । 'हो सकेगा या नहीं', कर सकेगा या नहीं', 'आ सकेगा या नहीं' की भाँति किसी भी क्रिया के साथ 'सकेगा या नहीं' वाक्यांश का प्रयोग शंका की वाचिक अभिव्यक्ति की प्रमुख शैली है। भावुकता एवं आवेश का अभाव होने के कारण वाणी एवं कंठस्वर में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होता है और न ही आयु एवं लिंग के अनुसार अभिव्यक्ति में कुछ अन्तर आता है। कभी कभी मुखमुद्रा से शंका जन्य अविश्वास का भाव प्रकट होता है जिसके लिए 'शंकापूर्ण दृष्टि' अविश्वास भरी दृष्टि', 'शक की निगाहें', शंकित दृष्टि आदि विशेषण प्रयुक्त होते हैं।

३.१०.२ आशंका (Apprehension): आशंका एवं शंका में मात्र इतना ही भेद है कि यह भविष्य म को लेकर रहती है और दुष्कल्पनायें भी इसमें सम्मिलित रहती हैं। शंका की अपेक्षा इसमें मन:स्थिति अधिक संवेदनाशील होती है। स्पष्ट दुष्कल्पनाओं के रूप में यह शोक तथा अस्पष्ट दुष्कल्पनाओं के रूप में भय का उपभाव बन जाती है। शोक जन्य आशंका या आशंकाजन्य शोक की वाचिक अभिव्यक्ति 'शोक' शीर्षक अध्याय में दी गयी है।

आशंका की शारीरिक अभिव्यक्ति लगभग भय के समान ही होती है - शरीर का कम्पन, स्वेद, वैवर्ण्य, शिथिलता, आदि आशंका की शारीरिक प्रतिक्रियायें हैं।

- सन्दीप कांप उठा 'जो सन्देह था वह वास्तव में सच है।'

(पृष्ठ ११७ 'संकरी राहें' सोमावीरा)

कंठस्वर के माध्यम से आशंका नहीं व्यक्त हो सकती किन्तु भय के साथ आने पर वाणी की वे सब विशेषतायें मिलती हैं जो भय में ~~मिलती~~ पाई जाती हैं, जैसे कंठावरोध, स्वरभंग, हकलाना वाक्य कुम का विश्रृंखलित होना आदि। अभिव्यक्ति साधारण कथन के रूप में ही होती है। अंधविश्वासों के कारण उत्पन्न आशंका में उस अंध-विश्वास का उल्लेख तथा ईश्वर का स्मरण आदि भी रहता है।

- मेरी चूड़ियाँ टूट गयी अब क्या होगा भगवान, मेरा मन टूट रहा है। मुझे कितना प्यार है इनसे। मेरे सुहाग की रक्षा करना। (भावुक स्वर)

(पृष्ठभूमि में करुण संगीत)

वो ऽऽ ह मेरी दायीं आंख फड़क रही है, वोभी पास नहीं हैं, मेरे प्यार की लाज रखना प्रभु (वायलीन पर करुण रागिनी)

(शिवशंकर वशिष्ठ 'मन के कोने' हवा महल कार्यक्रम)

वास्तव में भय को आते देख कर उसका पूर्ण निश्चय न कर पाने और करने के मध्य जिन भावों की उत्पत्ति होती है वही आशंका है। इसमें दुष्कल्पनाओं की प्रधानता रहती है - कहीं मेरी नौकरी छूट गयी तो क्या होगा, घर का खर्चा कैसे चलेगा, मालिक का रुख देखकर तो यही लगता है, वह मुझसे ठीक से बोलता भी नहीं, कहीं मुझे नौकरी से निकाल न दे। इसी प्रकार मां की सन्तान के प्रति यह चिन्ता कि पता नहीं मेरा बच्चा कहां होगा, कितने दिनों से उसका कोई पत्र नहीं आया, बीमार हो गया होगा, अकेले पड़ा होगा, कोई दवा भी देने वाला न होगा, आदि। यह मन:स्थिति व्यक्ति को स्पष्ट भय से अधिक कष्ट देती है।

३.११ भय के अन्य रूप :

तीव्रता के आधार पर भय के कुछ अन्य रूप भी मिलते हैं। इन्हीं में एक है 'भीषिका' (Horror)। भीषिका वह स्थिति है जो भय से बहुत उग्र या तीव्र तो होती ही है, पर साथ ही घृणित या बीभत्स होने के कारण हमें दूर भागने को विवश करती है। इसी भीषिका में 'वि' उपसर्ग लगा कर विभीषिका बना लिया जाता है जो अर्थ के विचार से अधिक तीव्र एवं विकट होता है, एक प्रकार से घृणा और बीभत्स की सम्मिलित अभिव्यक्ति ही भीषिका की अभिव्यक्ति भी होगी। ~~इसका उल्लेख घृणा शीर्षक में (घृणा-भय)~~ किया ~~गया है~~।

भय का ही एक रूप 'आतंक' (Terror) भी है। अचानक आये हुए किसी भारी संकट से हमें शारीरिक और मानसिक दृष्टि से ~~हमें अक्रिय~~ निष्क्रिय और असमर्थ कराने वाली स्थिति ही आतंक कहलाती है। भय का प्रभाव हमारी कल्पनाशक्ति पर और बुद्धि पर, भीषिका या विभीषिका का हमारे स्नायुतन्त्र पर, और आतंक का हमारी मानसिक और शारीरिक सभी प्रकार की शक्तियों पर पड़ता है। आतंक की स्थिति व्यक्ति पर अकेले भी आ सकती है और पूरे समूह पर एक साथ भी

जैसे भारत पर चीनी आक्रमण का आतंक । व्यक्तिगत आतंक स्थायी भय के रूप में व्यक्ति के अन्दर शंका, आशंका, चिन्ता, आदि उत्पन्न कर उसकी शक्ति क्षीण करती जाती है । व्यक्ति मात्र इतना ही सोच सकता है या कह सकता है - क्या होगा - क्या होगा । यह आशंका से भिन्न है क्योंकि आशंका में दुष्कल्पनाओं का रूप कुछ स्पष्ट रहता है । जहां तक कंठस्वर का प्रश्न है आतंक में कंठस्वर शिथिल, आवाज़ बहुत धीमी प्राय: 'फुसफुसाहट' और अस्पष्ट ध्वनि के समीप पहुँची हुई रहती है ।

बच्चों में आतंक नहीं होता है । यद्यपि भूत-प्रेत, क्रूर अध्यापक अथवा संरक्षक इनमें आतंक जागृत करने के पर्याप्त कारण हैं तथापि ये उनमें आतंक जागृत न करके उनके व्यक्तित्व में एक स्थायी जड़ता ला देते हैं जो जीवन भर उनके व्यक्तित्व का अंग बनी रहती है । इसकी अलग वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती है । स्त्रियों के आतंक की अभिव्यक्ति रुदन अथवा ईश्वर स्मरण के रूप में होती है ।

३.१२ भयभीत करना, भय का दूसरा पक्ष :

भयभीत होने की ही भांति एक प्रक्रिया है - 'भयभीत करना' । यह भी मनुष्य के लिये उतनी ही स्वाभाविक है जितनी 'भयभीत होना' । मनुष्य की आदिम पाशविक प्रवृत्तियों में से ही एक है कि वह दूसरे को कष्ट देकर, भयभीत कर के, उनका रोना-गिड़गिड़ाना और दैन्य देख कर व्यक्ति अपने अहं को तुष्ट करता है और इस प्रकार आनन्दित होता है । यह भाव बाल्यावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक पाया जाता है बस इसका रूप परिवर्तित होता जाता है । इसके अतिरिक्त अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिये भी दूसरे को भयभीत करते हैं । भयभीत करने के लिये व्यक्ति उन्हीं शैलियों को आधार बनाता है जिनके माध्यम से भय की अभिव्यक्ति करता है । शारीरिक चेष्टाओं में आंखें फाड़ना, मुख को भयंकर बनाना दांत निकालना, आदि भयभीत करने की आंगिक चेष्टायें हैं । किसी भयानक एवं भीषण वस्तु को देखकर भयभीत हुए व्यक्ति की विकृत मुखाकृति दूसरे को आतंकित करने के लिये पर्याप्त है । भयभीत करने के लिये मुखमुद्रा पर पाशविक भावों की छाया लाने का प्रयास भी करते हैं ।

कंठस्वर के द्वारा भी दूसरे को भयभीत करते हैं। स्वर दबा कर बोलना, नाक से बोलना, गम्भीर एवं कर्कश वाणी बना कर बोलना तथा विभिन्न प्रकार की ध्वनियां निकालना,आदि इनकी विभिन्न शैलियां हैं। वास्तव में आलम्बन की आयु के साथ साथ भयभीत करने की शैली भी परिवर्तित होती जाती है। एक बालक को जिस प्रकार से भयभीत करते हैं एक प्रौढ़ को इस प्रकार से नहीं कर सकते। उपर्युक्त शैलियां बच्चों को ही भयभीत करती हैं किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों(एकान्त, अन्धकार, श्मशान) में ही वह इनसे भयभीत हो सकता है। कुछ काल्पनिक व्यक्ति एवं वस्तुओं के नाम भी भयभीत करने के लिये प्रयुक्त होते हैं जैसे - हौवा आया, घोंघों आया, लकड़बग्घा आया, झोली वाली बुढ़िया आयी, उधर मत जाना वहां दाढ़ीवाले बाबा जी रहते हैं। प्रत्येक बच्चे की अपनी कुछ दुर्बलतायें रहती हैं जैसे किसी को भिखारी से डर लगता है तो कोई डाक्टर से डरता है। बच्चों की शरारतों को रोकने के लिये मातायें इसका प्रयोग करती हैं। इस प्रकार के भय का कारण निराधार रहता है और प्राय: काल्पनिक होता है।

बाल्यावस्था आते आते भय के ये अमूर्त काल्पनिक आधार बालक को भयभीत करने में असमर्थ हो जाते हैं। अब उनके भय का कारण यथार्थ व और ठोस हो जाता है इस काल में भयभीत करने के लिये प्राय: इस प्रकार की धमकियां दी जाती हैं - यदि तुमने यह कार्य न किया तो तुम्हें अमुक दण्ड मिलेगा। इस दण्ड का क्षेत्र बहुत विस्तृत है - यदि तुमने ऐसा किया अथवा ऐसा न किया तो घर पर तुम्हारी शिकायत कर दूंगा। घर पर भी जिस व्यक्ति विशेष से बालक अधिक भयभीत रहता है उससे शिकायत करने तथा दण्ड दिलवाने की धमकी दी जाती है। जिस वस्तु या व्यक्ति से बालक को विशेष मोह होता है उनको हानि पहुंचाने अथवा नष्ट करने की धमकी भी भय जागृत करती है। यह दुर्बलता बालक में ही नहीं हर आयु के व्यक्तियों में मिलती है।

ईश्वर अथवा किसी भी शक्ति की कल्पना एक ओर जहां मनुष्य को दु:ख एवं त्रास से मुक्ति देती है दूसरी ओर उसके भय एवं आतंक का कारण भी होती है। दैनिक जीवन में ही अपनी छोटी छोटी हानि लाभ एवं स्वार्थपूर्ति के लिये लोग दूसरे को भगवान का भय दिखाते हैं। भगवान का भी डर नहीं है तुम्हें, ऊपर वाला देख

रहा होगा, उसे क्या उत्तर दोगे, ईश्वर के दरबार में जब न्याय होगा तब कहां बचकर जाओगे, भगवान के घर देर है अन्धेर नहीं है । तुम्हारी नेकी और बदी का लेखा-जोखा उसके पास है,आदि । क्रोध में फूफुक कुछ कोसने एवं शाप का आधार भी यही मनोवृत्ति रहती है जैसे - तुमको भवानी ले जायें, तुमपर भगवान की गाज गिरेगी, तेरा किया तेरे सामने आयेगा आदि । ईश्वर पर जरा भी आस्था रखने वाला व्यक्ति इस प्रकार की बातें सुनकर कुछ न कुछ विचलित अवश्य हो उठेगा । बच्चों को भी भगवान का भय दिखाया जाता है - झूठ बोलोगे तो भगवान जी अन्धा कर देंगे, चोरी करने वाले को भगवान दण्ड देता है ।

जैसे जैसे बालक का ज्ञान क्षेत्र विस्तृत होता जाता है उसके भय के कारण भी बढ़ते जाते हैं । प्रौढ़ स्त्री पुरुषों को किसी भी प्रकार की हानि का भय, चाहे शारीरिक कष्ट हो (सरतोड़ दूंगा, आंख फोड़ दूंगा, प्राण ले लूंगा,जहर दे दूंगा) अथवा मानसिक कष्ट (रात की नींद हराम कर दूंगा, चैन से बैठना नसीब न होगा, सारा जीवन रोते बीतेगा आदि) भयभीत होने के लिये पर्याप्त है ।

भय का प्रकार और मात्रा दोनों भयभीत करने वाले की स्थिति, सामर्थ्य और परिस्थिति पर निर्भर करते हैं । गम्भीर स्वभाव एवं सामर्थ्यवान का साधारण कथन भी बहुत भयभीत करता है जब कि दुर्बल और अस्थिर स्वभाव वाले की बड़ी बड़ी धमकियां भी प्रभावहीन होती हैं ।

स्त्रियों एवं अशिक्षितों को भयभीत करने के लिये अंधविश्वासों का आधार लेते हैं - ऐसा करने से सुहाग का नाश होता है, यह कहने से पति का अमंगल होता है, अमुक स्थान पर जाने से सन्तान हानि होती है आदि । दैनिक जीवन में अनेक ऐसी बातें होती रहती हैं जिनसे स्त्रियां अकारण ही भयभीत होती रहती हैं ।

३.११ अभयदान ;

भयभीत करने के विरीत अभयदान की प्रक्रिया है।भयभीत व्यक्ति को दूसरा व्यक्ति की आश्वस्त;स्थिति में है सांत्वना देने का प्रयत्न करता है । इस सांत्वना का आधार करुणा भाव रहता है । साधारण कथन के रूप में - डरो मत,

घबड़ाओ मत, हिम्मत से काम लो, तुम क्यों डर रहे हो, देखो मैं भी तो यहां हूं, घबड़ाते क्यों हो, मैं तो तुम्हारे साथ हूं, डरते क्यों हो - आदि अभिव्यक्ति हैं। इसके एक स्तर आगे भय के कारण अथवा आशंका को निर्मूल करने का प्रयास रहता है। अत: उस परिस्थिति विशेष की व्याख्या रहती है। बच्चों को अभयदान देना सरल होता है। उनके भय के कारण या तो अन्धकार, अपरिचित, तथा स्थान आदि स्थूल होते हैं या भूतप्रेत,चुड़ैल,जैसे काल्पनिक। स्थूल भय के कारण का परिहार तो क्रियात्मक रूप में होता है अथवा समय उन्हें स्वयं दूर कर देता है। काल्पनिक भय से भी समझा कर दो चार उदाहरण देकर तथा बच्चे के आत्मविश्वास को जागृत करके तुम तो बहादुर बच्चे हो, तुम्हें इससे नहीं डरना चाहिए - मुक्ति दिलायी जा सकती है।

बड़ों को भय से मुक्ति दिलाने के लिये अधिक प्रयत्न करना पड़ता है, एक प्रकार से उन्हें भय का सामना करने के लिये तैयार करना पड़ता है। - तुम क्यों डरते हो, हिम्मत करो और उस क्षण विशेष को अपने ऊपर बहादुरों की भांति झेल लो अन्यथा लोग तुम्हें कायर कहेंगे, क्या तुम चाहते हो कि संसार तुम्हें बुज़दिल कहे, ऐसा न करो कि लोग तुम पर हंसें, अपनी आयु का तो ध्यान करो।

कभी कभी भविष्य की सुन्दर कल्पना के द्वारा भी व्यक्ति के भय को दूर किया जा सकता है। इनका क्रम वही होता है जो निरुत्साहित मन:स्थिति से व्यक्ति को उबारने के लिये कहे गये वाक्यों का होता है। किन्तु इसका क्षेत्र सीमित है,केवल भय के कारण का ही उल्लेख रहता है। जैसे - बस एक बार आपरेशन करा लो तो तुम जीवन भर स्वस्थ सुन्दर और रोगमुक्त रहोगे, एक बार खतरा उठाने के बाद सारी उम्र बैठ कर खाओगे, यह परीक्षा उत्तीर्ण कर के तुम्हारा जीवन बदल जायेगा, आदि। उत्साह दिलाने के लिये व्यंग्य और भर्त्सना का प्रयोग होता है किन्तु भय दूर करने में इनका प्रयोग नहीं होता वरन् सहानुभूति एवं करुणा का प्रदर्शन होता है।

१.१४ भय तथा अन्य भाव :

भय का विलोम निडरता है। यह कोई भाव नहीं एक मानसिक स्थिति मात्र है - मैं नहीं डरूंगा, डरने का कोई कारण नहीं है, कोई अनायास मुझे हानि नहीं

पहुंचायेगा, मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है जो मुझे हानि पहुंचाये, कोई अनायास मुझे हानि पहुंचायेगा तो मैं देख लूंगा, उतना बल मुझमें है, ईश्वर सबकी रक्षा करता है वही मेरी भी रक्षा करेगा, बिना कष्ट उठाये बिना संकट का सामना किये इस संसार में कोई काम नहीं हो सकता । जो होगा देखा जायेगा, मैं अपना कार्य करता चलूं,आदि । यह आत्मविश्वास और आत्मशक्ति का ही एक रूप है -

- मैं अकेला होते हुए भी शक्तिशाली हूं, मेरे अन्दर वह शक्ति है जो स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य कर सकती है, मैं दूसरों का अनुगामी न बनूंगा, मैं कभी दूसरों का अनुकरण न करूंगा । मैं अपनी महत्ता और प्रतिभा का प्रभाव दूसरों पर डाल सकता हूं, मुझमें विशेषता है, निरंकि/मौलिकता है । सभी शक्ति मेरे भीतर विद्यमान है, मुझे किसी का भय नहीं है ।

यह आत्मविश्वास एवं निडरता एक उचित सीमा से आगे जाकर उदण्डता एवं अहंकार में परिवर्तित हो जाती है - मैं क्यों डरूं, मेरा कोई कर ही क्या लेगा, मुझे किसी की परवाह नहीं है जो सामने आयेगा उससे मैं निपट लूंगा ।

निडरता की भांति क्रोध भी इस मन:स्थिति का विलोम है । व्यक्ति किसी वस्तु से डरता हो वह वस्तु अथवा परिस्थिति उसके लिये तीव्र मानसिक यातना का कारण हो और अचानक यह पता लग जाये कि वह वस्तु या परिस्थिति किसी के द्वारा केवल उसे भयभीत करने के लिये ही निर्मित की गयी है तो वह क्रोध से भर जायेगा । जितनी मानसिक एवं शारीरिक पीड़ा उसने भोगी है उतनी ही वह विरोधी को भी देना चाहेगा । इसकी वाचिक अभिव्यक्ति अमर्ष की वाचिक अभिव्यक्ति की भांति ही होगी (अध्याय 'क्रोध, अमर्ष')। बच्चों का भी भय उपर्युक्त परिस्थितियों में क्रोध में बदल जाता है किन्तु उसमें उग्रता का अभाव रहता है ।

इसी प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में जब भय का कारण शोक का कारण भी हो जाता है तो वाचिक अभिव्यक्ति शोक की भांति ही होती है ।

- घृणा -

४.१ काव्य शास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि -

सृष्टि विस्तार से अभ्यस्त होने पर प्राणियों को अपने नैतिक आदर्शों के अनुकूल विषय रुचिकर और नैतिकता के प्रतिकूल विषय अरुचिकर लगने लगते हैं। इन अरुचिकर अनैतिक विषयों को ज्ञानपथ से दूर रखने की प्रेरणा देने वाला जो भाव उत्पन्न होता है उसे घृणा कहते हैं। जब अरुचिकर विषय हमारे सामने आते हैं तो हम यह चाहने लगते हैं कि हमें इसका ज्ञान न हो और यह सोचने में हमें जो दु:ख होता है उसी घृणा कहते हैं। क्रोध और घृणा में अन्तर है, क्रोध आने पर हम क्रोध के विषय को तुरन्त नष्ट कर देना चाहते हैं परन्तु घृणा उत्पन्न होने पर घृणा के विषयों के प्रति इन्द्रीय या मन में संकोच उत्पन्न होता है। शैंड के अनुसार "अव्यक्त क्रोध ही घृणा का रूप ले लेता है"।[१] घृणा अपने आप में भिन्न भाव है। घृणा में बचने की इच्छा भय, युद्धप्रवृत्ति, प्रमुख भावना, संहार प्रवृत्ति, जुगुप्सा सम्मिलित है।

भरत ने बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा माना और इसके दो रूप क्षोभण एवं उद्वेगी माने। विष्ठाकृमि आदि से उत्पन्न उद्वेगी शुद्ध और रुधिर आदि से उत्पन्न क्षोभण शुद्ध कहलाता है।[२]

बीभत्स रस संसार का संचालन करने वाले राग आदि का विरोधी होने के कारण मोक्ष का साधक होता है और शुद्ध बीभत्स कहलाता है। इसीलिए अभिनव गुप्त ने बीभत्स के तीन भेद शुद्ध, क्षोभण एवं उद्वेगी स्वीकार किये।

१- When anger deliberate develops hate. Page 37, Shand.

२- बीभत्स: क्षोभण: शुद्ध उद्वेगी स्यात द्वितीयक: ।
विष्ठा कृमिभिरुद्वेगी क्षोभणो रुधिरादिज : ।। ६-५३।नाट्यशास्त्र

बीभत्स रस के सम्बन्ध में आचार्यों की रुधिर मांस मज्जा वाली स्थूल लौकिक वस्तुगत धारणा का डा० कृष्णदेव झारी ने खण्डन किया (बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य)। आचार्यों के जुगुप्सा स्थायीभाव को डा० झारी ने इन्द्रीयजन्य ग्लानि माना है और उसे केवल संचारी स्वीकार किया है। मानसिक जुगुप्सा या मानसिक घृणा को ही बीभत्स रस का स्थायी भाव ठहराया है।

घृणा की प्रवृति प्रकट होने के विरुद्ध है। अन्य भावों के जागृत होने पर व्यक्ति उन्हें प्रकट करने को आतुर हो उठता है जैसे प्रेम, क्रोध, उत्साह,आदि। कुछ भावों की प्रकृति ऐसी होती है कि वे अनायास ही प्रकट हो जाते हैं जैसे भय, विस्मय,आदि। कुछ की अभिव्यक्ति व्यक्ति चेतन स्तर पर करता है जैसे शोक, वात्सल्य,आदि। किन्तु घृणा को व्यक्ति समाज से छिपाना चाहता है अत: भाषा के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति दुर्लभ है। यद्यपि कभी कभी भाषा के माध्यम से इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति भी मिलती है किन्तु तब उसके साथ कोई अन्य भाव क्रोध या भय आदि जुड़ा रहता है। शुक्ल जी ने माना कि शुद्ध घृणा की अभिव्यक्ति आवश्यक नहीं, क्षोभमय घृणा एवं क्रोध युक्त घृणा का ही प्रदर्शन होता है। (रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि)

घृणा का भाषा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होने का एक अन्य कारण भी है। अपने शुद्ध रूप में घृणा आवेशहीन भाव है अत: भाषा में किसी प्रकार की विशृंखलता नहीं होती। फलस्वरूप स्पष्ट कथन छोड़कर अभिव्यक्ति की अन्य शैलियां नहीं मिलती।

साहित्यिक दृष्टि से बीभत्स के वाचिक अनुभाव (आश्रय की वाणी से जो कुछ व्यक्त होता है वाचिक अनुभाव कहलाता है) में प्रत्येक के उदाहरण दैनिक प्रयोग में मिल सकते हैं। वाचिक अनुभाव के जो आलाप, विलाप, संलाप, प्रलाप, अनुलाप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, निर्देश, उपदेश और व्यपदेश नाम से ग्यारह भेद आचार्यों ने किये हैं वे प्राय: सब अपने अपने ढंग से बीभत्स रस में स्थान पा सकते हैं। जैसे घृणित वस्तु या व्यक्ति का उल्लेख आलाप-संलाप, उसके घृणित निन्दित कार्यों पर दु:ख के अनुसार निकालना विलाप, घृणाजन्य दु:ख के कारण अटपटी बातें कहना प्रलाप, बार-बार निन्दापूर्वक कथन अनुलाप किसी के घृणित निन्दित कार्यों तथा

बातों की दूसरे को सूचना देना सन्देश, निन्दित कार्यों को वर्जित करने के लिये निन्दापात्र को कुछ कहना उपदेश, छि: छि:, थू: थू: द्वारा घृणा व्यंजित करना निर्देश,आदि ।

४.२ घृणा और शारीरिक अभिव्यक्ति -

अन्य भावों की भांति घृणा की भी कुछ शारीरिक अभिव्यक्तियां होती हैं । वस्तुत: घृणा की अभिव्यक्ति वाणी से अधिक सशक्त भाषेतर साधनों के माध्यम से होती है इनमें भी नेत्रों द्वारा सर्वाधिक सशक्त एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है । `नफरत भरी नजर` , `घृणा भरी नज़र`, आदि संकेत लिखित साहित्य में मिलते हैं ।

- रीता ने नफरत से उस पर नज़र डाली.... तुम जिन्दगियों से इसी लिये खेलते हो कि उसके बारे में कामयाब नावेल लिख सको । तुम इन्टलेक्चुअल लोग दरअसल कितने बड़े फ्राड हो । उसने दिल में कहा ।

(पृष्ठ १४२ `रीता` क्वार्टर हैदर नवनीत, मार्च १६६६)

वास्तव में घृणा प्रेष्य मनोविकार है । व्यक्ति जिससे घृणा करता है उसमें भी प्रत्युत्तर में धीरे धीरे घृणा जागृत हो जाती है ।

- लड़की ने मुट्ठियाँ कस लीं और उसकी आंखें घृणा से काली हो गयी पर वह कुछ बोली नहीं । - (पृष्ठ १११)

x x x अनेत ने घृणा भरी नज़रें उठाकर उसकी ओर देखा ।

(पृष्ठ ११५ `अपराजिता ` समरसेट माम, नवनीत, मार्च १६६६)

घृणा के साथ यदि क्रोध भी रहता है तो शारीरिक अभिव्यक्ति भी मिश्रित होती है।निम्न दो उदाहरणों में आवेश के क्रमिक विकास के साथ घृणा की शारीरिक अभिव्यक्ति के दो रूप स्पष्ट होते हैं -

-- सरकारी डाक्टर मुड़ कर नवाब को घूर घूर कर देख रहा था। बे हाथ पैर के इस आदमी को दांतों के बीच स्प्लिन्ट दबाये हुए देख कर वह कुछ आवेश में आ गया। घृणा भरी दृष्टि से देखते हुए बोला - "यू इडियट.... क्या कहता है, क्या इन लकड़ियों से कहीं कोई हड्डी जुड़ती है?"

(पृष्ठ २२६ 'खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकांत वर्मा)

-- उसकी आंखों में नफरत की लपटें जल उठीं। उसका मुंह रक्तिम हो गया। उसके होंठ कांप रहे थे और उसकी मुट्ठियां भिंच गयी थीं।

(पृष्ठ ४५ 'बाइस सेक्टर' महेन्द्र सिंह सरना, धर्मयुग, ३१दिसम्बर १९६५)

नेत्रों के अतिरिक्त मुखमुद्रा के माध्यम से भी घृणा की अभिव्यक्ति होती है - मुंह बनाना, मुंह चढ़ाना, नाक चढ़ाना, नाक भौं सिकोड़ना, आदि संकेत घृणा की व्यंजना करते हैं - बुढ़िया ने घृणा से मुंह बनाया, घृणा के अतिरेक से मुंह बना कर उसने कहा।

आवेश की मात्रा के क्रमिक विकास के साथ साथ शरीर के अन्य अंग भी घृणा व्यक्त करने में प्रयुक्त होते हैं विशेषकर स्त्रियों के द्वारा। 'मुंह फेरना' दूसरी ओर देखना, हट जाना, पीछे हो जाना, आदि तो स्वाभाविक एवं मूलप्रवृत्यात्मक प्रतिक्रियायें हैं।

- शूर्पणखा का विकराल रूप देखकर एवं उसके नाक कान से रुधिर बहता देख कर सीता जी ने नारी स्वभाववश तत्काल मुंह फेर लिया।

- खून और फफोलों भरा हाथ जब मंगतराय के निकट पहुंचा तो घृणा से उसने मुंह फेर लिया, पर उसके कदम नहीं मुड़े। तब एक आह भर कर मानो गन्दगी में हाथ डालने जा रहा हो उसने उसे बाहों में समेटकर उठाया और कोठरी में ले जाकर एक गुदड़ पर डाल दिया।

(पृष्ठ १८४ 'मीठा बादाम' मानक सिंह)

ये स्वाभाविक और मूलप्रवृत्यात्मक शारीरिक प्रतिक्रियायें वास्तव में उद्वेगी घृणा की अभिव्यक्ति हैं। शुद्ध और सौम्य घृणा मानसिक होती है अत: उसकी अभिव्यक्ति शारीरिक कम और वाचिक अधिक होती है। उपर्युक्त प्रतिक्रिया के उद्वेगज में वस्त्राच्छादन, नेत्रों को बन्द कर लेना, पैर पीटना, लौट जाना शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ जाना, आदि है। उद्वेगी घृणा की आंगिक अभिव्यक्ति में `थूकना` बहुत प्रचलित है। इसी आधार पर मानसिक घृणा की वाचिक अभिव्यक्ति में भी लोग कहते हैं - मैं उस व्यक्ति पर थूकता हूं, अमुक के नाम पर थूकता हूं, सब तुम्हारे नाम पर थू:थू: करते हैं, क्या अपने नाम पर थुकवाओगे? आदि।

-- वह बहुत देर तक देखने के बाद शिवचरण से कहने लगा "अब नइयें यु बात शिवचरन मिनख्वे लगी है अब तो।" इतना कह कर उसने थूक दिया।

(पृष्ठ १६३ `लोक परलोक` उदयशंकर भट्ट)

-- उन चित्रों के प्रति घृणा प्रदर्शित करते हुए उन्होंने नाली में थूक दिया और फिर खामोश होकर अपने कमरे में चारपाई पर जा पड़ी।

(पृष्ठ २४५ `खाली कुर्सी का आत्मा` लक्ष्मीकांत वर्मा)

-- साहब ने पूछा "तुम्हें इसके मरने का अफसोस तो नहीं है। उसने कोई जवाब नहीं दिया और गम्भीर हो गई जैसे कुपुत्र पैदा करके उसके मरने पर राहत की सांस ली हो।

(पृष्ठ १८२ `लोक-परलोक` उदयशंकर भट्ट)

कुछ शारीरिक प्रतिक्रियायें मात्र आवेश का फल होती हैं जैसे निम्न उदाहरणों में अंगुलियाँ छिटकाना और हाथ झमकाना।

-- `छोटा और बड़ा तो एक घर में भी होता है। कपटी मेरा छोटा भाई है`

`पेट खाने के लिये मिठाई खाने के लिये।` बहुरिया ने घृणा से हाथ झमकाते हुए कहा।

(पृष्ठ २४, `चोर` शिवसागर मिश्र, धर्मयुग, ३ मार्च १९६८)।

-- स्त्री ने कंठी मेरी ओर फेंक दी और घृणा तथा झुंझलाहट से उंगलियां छिटका कर बोली "रखलो इसे तुम्हीं रखलो । बोला नहीं तो और क्या दिया ?

(पृष्ठ ६८ 'सच बोलने की भूल ' यशपाल, नवनीत १९६१)

४.३ घृणा और कंठस्वर :-

शुद्ध एवं स्वाभिक घृणा की अभिव्यक्ति कंठस्वर के माध्यम से अधिक स्पष्ट होती है । जहां भी घृणा की शुद्ध एवं अन्य भावों से स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्ति है कंठस्वर ही एकमात्र माध्यम है । घृणा में कंठस्वर में कोई ऐसी विशेषता नहीं होती कि उसे अलग से व्याख्यायित किया जाये।प्राय: लिखित साहित्य में लेखक द्वारा इस ओर संकेत रहता है ।

— कमला (घृणा के एक विचित्र स्वर में) अब.... अब..... फुरसत मिली है बच्चे को देखने की । ये बच्चे का पालन पोषण करेंगे ?..... बच्चों का पालन आदर्श और सिद्धान्तों सुना....... आदर्श सिद्धान्तों से नहीं स्नेह, सच्चे मातृस्नेह से होता है ।

(पृष्ठ १०३ 'गरीबी-अमीरी - गोविन्ददास)

यदि कंठस्वर पर ध्यान न दें तो उपर्युक्त कथन अप्रस्तुत व्यंग्य होगा किन्तु है घृणा की अभिव्यक्ति । पूरे कथन का आवेशहीन उच्चारण कथन को घृणा के निकट लाता है इसके अतिरिक्त प्रत्येक वाक्यांश में आदि और अन्त का बल अर्थ को स्पष्ट करता है । आवेशहीनता उदासीनता का द्योतक है और उदासीनता घृणा का ही एक रूप है ।

घृणा की अभिव्यक्ति में कंठस्वर बलाघात-स्वराघात आदि का कोई क्रम निश्चित नहीं किया जा सकता है । कभी कभी उच्चारण की विशिष्ट शैली घृणा की अभिव्यक्ति में सहायक होती है । जैसे निम्न उद्धरण में -

कुलावतल : (स्वर में आते जाते घृणा से) काफिर और मजहब ।

(पृष्ठ १४४ 'रंग और होली ' सत्यरश्मि)

उपर्युक्त कथन साधारण दृष्टि से तो मात्र विस्मय की अभिव्यक्ति लगती है किन्तु विस्मय की अभिव्यक्ति में पूरा वाक्य आरोहात्मक होगा जब कि घृणा प्रदर्शन में वाक्य सम होगा। वाक्य के आदि और अन्त के शब्द पर बल तथा विलम्बित लय होगी।

-- कान्ता (घृणा से) यहाँ ? इस अन्धेरे घर में ? इस मनहूस- वीरान कस्बे में ?

आपको हुआ क्या है, एक पढ़े लिखे आदमी होकर

(पृष्ठ ६७ 'रोशनी' रेवती सरन शर्मा)

उपर्युक्त कथन का भी साधारण आरोहात्मक उच्चारण जिज्ञासा व्यक्त करेगा। किन्तु प्रत्येक प्रश्नचिन्ह के बाद रुक रुक कर एवं प्रत्येक वाक्य के मध्य में बल देकर उच्चारित करने के कारण वाक्य घृणा की व्यंजना करता है।

-- अचला : (उसी बेपरवाही से) बिलकुल, बम्बई का वह मकान मुझे बिल...... बिल सा मालूम होता था। उस मकान का वह बाथरूम मुझे गटर सा मालूम पड़ता था। वह जीना... जीना मुझे नसेनी सा दिखायी पड़ता था। वह रसोई घर मुझे यम.... यमपुरिस सा घृणित ?-----/

(पृष्ठ १०१ 'अमीरी-गरीबी' 'गोविन्द दास)

घृणायुक्त कथनों में एक प्रकार की अरुचि प्रकट होती है जिसकी अभिव्यक्ति उपर्युक्त उद्धरण के 'उसी बेपरवाही से' द्वारा स्पष्ट होता है। यह स्पष्ट है कि घृणा न तो बलाघात द्वारा, न लय द्वारा, न स्वराघात द्वारा और न ही मात्रा के द्वारा ही मापी जा सकती है।

स्वभाव, व्यक्तित्व आयु आदि के आधार पर इनमें से एक अकेले अथवा कई एक साथ कंठस्वर पर प्रभाव डालते हैं अतः इस विषय में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। उच्चारण भी कभी बिलकुल स्पष्ट, कभी अस्पष्ट और कभी बिलकुल ही अस्पष्ट होता है विशेषकर जब घृणा को व्यक्त करने में कोई बाधा हो।

कंठस्वर की भांति ही वाक्यों का एक विशिष्ट

४.५ / घृणा की अभिव्यक्ति में वाक्यों का विशिष्ट क्रम: क्रम भी घृणा की अभिव्यक्ति में सहायक होता है। इस क्रम के बारे में भी कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। कभी संज्ञा, या सर्वनाम पर और कभी तिरस्कारवाचक शब्दों को बल देने के लिये या तो वाक्य में सबसे आगे कर देते हैं अथवा सबसे पीछे। ऐसा प्राय: वहीं होता है जहां घृणा के साथ साथ आवेश एवं क्षोभ भी सम्मिलित हो। निम्नउद्धरण के लगभग प्रत्येक वाक्य में यह प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

-- एक ने उसके चेहरे पर जोर से थूका "अगला जन्म तेरे लिये, जो अपना समय हत्या में व्यतीत करता है, जो बन्दूक उठाते ही लूटमार शुरू कर देता है। डायन के बच्चे, अगले जन्म की चिन्ता है तुम्हें"।

(पृष्ठ १२५ 'हाय मेरी लैम्पुल' थंगदिनी, अनुवादक - अनुराग शर्मा, नवनीत अगस्त १९६१)

इसी प्रकार के ये वाक्य भी

-- 'अंजली भर पानी में डूब मरो पापी'। 'पापी' शब्द को सबसे अन्त में लाना घृणाजन्य आवेश की व्यंजना है।

-- "देशद्रोही लाल सिंह तुम पंजाब के जीवित पाप हो' बच्चा बच्चा थूकेगा तुम्हारे नाम पर"।

'तुम्हारे नाम पर' का अन्त में प्रयोग घृणा व्यंजित करता है।

प्राय: घृणा को व्यक्त करने वाले वाक्य छोटे छोटे और अपने आप में अपूर्ण तथा पूरे कथन में परस्पर सम्बन्धित रहते हैं। एक,दो उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा।

-- ठिकाना क्या हो..... हिन्दुस्तानी हैं.... कम्बख्त मरना जानते हैं .... हर तरह से मरते हैं... यह भी मरने की एक किस्म है। यह जसवन्त की आवाज़ थी जो उसके कानों में तीर सी चुभ गई।

(पृष्ठ ६० 'खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकांत वर्मा)

- और यह कहती हुई वह आगे बढ़ी और नवाब की लकड़ी की टांगों को कुचलती हुई निकल गई। बोली.... यह भिखारी भी अजीब है। तुम्हारा हिन्दुस्तान कैसा है डियर, कैसा लोग रहता है यहां.... हमारा तो जी घबड़ा गया .... गवांर.... रैस्कैल। (पृष्ठ २३० 'खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकान्त वर्मा)

४.६ घृणा की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त शब्द विशेष :

घृणा के प्रकाशन में कुछ विस्मयादिबोधक शब्दों का भी प्रयोग होता है जैसे छि:, हुं, शी: शी:, फुह्,आदि। इनमें से अन्तिम दो अप्रचलित प्रयोग है। विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग भी स्त्रियां ही अपेक्षाकृत अधिक करती है।

-- बहुनिया को जैसे बिच्छू का डंक मार गया "छि: ऐसी बात नहीं करते। अपने मालिक के घर में कहीं सेंध क डाली जाती है"?

-- बहुनिया ने मुंह बनाया। एक अस्फुट हुंह ध्वनि के साथ बोली "दिन में ऊंची जात के बन के सेती बघारते हो। रात में चमार की रोटी अमीरत समझ कर खा लेते हो।"

(पृष्ठ १४ चोर, शिवसागर मिश्र, धर्मयुग, ३ मार्च १६६८)

-- नहीं: और उसकी सूरत। छि। एकदम कलूटी। रात में चुड़ैल लगती है। (पृष्ठ ४६)

-- नहीं (घृणा से मुंह बिचकाकर) बड़ा आदमी होगा। हो चुका बड़ा आदमी। ऐसी ही सूरत है बड़े आदमियों की। मैं कहती हूं बड़े आदमी यूं ही नहीं हो जाया करते।

(पृष्ठ ४६ 'मन का रहस्य' उदयशंकर भट्ट)

विस्मयादिबोधक शब्दों के अतिरिक्त कुछ अन्य शब्द और होते हैं जो घृणा की व्यंजना में अकेले ही समर्थ होते हैं इनकी दो श्रेणियां की जा सकती हैं। पहली श्रेणी में ऐसे रूढ़ और प्रचलित प्रयोग आते हैं जैसे - बिलबिलाना, चिपचिपाना, गिजगिजा, छिबछिबा, भिनभिना, पिलपिला, थुकना, आदि में शब्द उद्वेगी घृणा

की व्यंजना में अधिक सहायक होते हैं द्वितीय श्रेणी में वो प्रयोग आते हैं जो परिस्थिति एवं सन्दर्भ के कारण घृणा की व्यंजना करने लगते हैं। वाक्य और सन्दर्भ से अलग उन्हें रखने पर बिलकुल दूसरा ही अर्थ देते हैं। जैसे निम्न उद्धरण में:-

-- "पाप धुल जायेंगे चमेली।" स्वामी जी ने चमेली के कन्धे पर हाथ रख दिया। चमेली ने हाथ हटाते हुए व्यंग्य से कहा "कुलहीन स्वामी जी, जाइये। बहुत दूर आ गये और हंसती हुई आगे बढ़ गयी"।

(पृष्ठ ६४ 'लोक-परलोक' उदयशंकर भट्ट)

"कुलहीन स्वामी जी", अपने आप में घृणा व्यंजक नहीं है किन्तु सन्दर्भ के कारण ऐसा अर्थ देने लगा है। कुछ गालियां भी - कलुम्दर, घुघ्घु, कुत्ता, सुवर, आदि अपना स्वतन्त्र अर्थ रखती है किन्तु सन्दर्भ में प्रयुक्त होकर घृणा की व्यंजना करने लगती है। घृणा की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त वाक्यों की भी विस्तृत सूची है। इन वाक्यों में कुछ तो स्पष्ट घृणा के व्यंजक होते हैं किन्तु कुछ तिरस्कार और भर्त्सना के रूप में अप्रत्यक्ष रूप से घृणा की व्यंजना में सहायक होते हैं। अत: इनको सूची के रूप में यहां देने से अच्छा होगा कि घृणा के विभिन्न रूप शुद्ध उद्वेगी एवं बीभत्स की व्याख्या के साथ ही उन्हें रखा जाय। इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि किस प्रकार के वाक्य किस श्रेणी की घृणा की व्यंजना में अधिक सहाय होते हैं।

४.७ शुद्ध घृणा की अभिव्यक्ति

आरम्भ में कहा जा चुका है कि घृणा मिश्र भाव है अपने शुद्ध रूप में घृणा व्यक्त नहीं होती केवल अनुभूति तक सीमित रहती है। किसी दूसरे भाव क्रोध, भय, हास्य या ईर्ष्या के साथ ही इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है।

शुद्ध घृणा में एक प्रकार का दु:ख होता है। यही दु:ख निर्वेद में वैराग्य एवं आत्मग्लानि के माध्यम से परिणित हो जाता है। वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से घृणा के इस रूप का कथन इस प्रकार से होता है - "क्या है इस संसार में, सब निस्सार है, कहीं कोई सार नहीं है, सब छल है, प्रपंच है, माया है।"[१०] प्रौढ़

एवं वृद्धों द्वारा प्राय: ऐसे वाक्य कहे जाते हैं । निर्वेदयुक्त कथनों में संसार, सम्बन्धी, माया, ऐश्वर्य, जीवन, शरीर, रूप, यौवन आदि को आकर्षणहीन बता कर शुद्ध घृणा की ही व्यंजना होती है । धनंजय के अनुसार रमणी के स्तन, जघनादि में भी वैराग्य के कारण घृणा दिखाई जाने पर शुद्ध बीभत्स व्यक्त होता है । शान्त से इसका अन्तर इतना ही है कि वहां घृणा का नाम नहीं होता और बीभत्स का कोई भेद शुद्ध ही क्या, घृणाहीन नहीं हो सकता ।[1]

इस प्रकार की घृणा में आवेश नहीं होता अत: वाचिक अभिव्यक्ति वर्णन प्रधान होती । वर्णन का आधार कोई भी घृणित वस्तु हो सकती है जैसे निम्न उदाहरणों में -

- कहीं जल में बहे शव जा रहे हैं
  उन्हीं पर काक कछुवे गा रहे हैं
  कहीं शव सड़ रहे हैं पास तेरे
  छो पर क्यों हृदय में त्रास तेरे । - रामचरित उपाध्याय

- इस ओर देखो रक्त की यह कीच कैसी मच रही ।
  है पट रही खंडित हुए रुण्ड-मुण्डों से मही । - मैथिलीशरण गुप्त

- जो नेत्र कल घूंघट की ओट में थे, जिन्होंने कभी लज्जा का त्याग नहीं किया उन्हीं दो नैनों को आज कौवा निकाल कर खा रहा है । - शंकर

कहीं धक धक धक चितायें जल रहीं थीं ।
धुंआ मुख से उगल रही थी ।
कहीं शव आधा जला कहीं पड़ा था ।
निठुरता काल की दिखला रहा था । सनेही

साहित्य एवं काव्यशास्त्र में घृणा के उदाहरणों में तथा कभी कभी शान्त रस के लिये भी इसी प्रकार के वर्णन किये जाते हैं ।

१- पृष्ठ ३०३ 'रस-सिद्धान्त: स्वरूप - विश्लेषण ' आनन्द प्रकाश दीक्षित ।

घृणा का स्पष्ट प्रकाशन अप्रचलित है, क्योंकि साधारणतः इसकी अभिव्यक्ति लक्षणा एवं व्यंजना शब्द शक्तियों के माध्यम से ही होती है किन्तु कभी कभी आवेश की अधिकता में विस्फोट के रूप में, अभिधा के रूप में, भी घृणा की व्यंजना हो जाती है।

--" × × × × कितनी बार बताना पड़ेगा मुझे घृणा है तुमसे। तुम कहते हो तुम्हें माफ कर दूं। मैं कभी नहीं माफ करती तुम्हें।" उसने अपना सिर झटक कर पीछे की ओर फेंका।

(पृष्ठ ३१७ 'अपराजिता' समरसेट माम, नवनीत मार्च १९६६)

-- दुर्जन सिंह : मैं ऐसी लड़की से घृणा करता हूं! कुलटा !

(पृष्ठ ८० 'दुर्गा' उदयशंकर भट्ट)

सभ्यसमाज में घृणा का स्पष्ट प्रकाशन अशोभनीय माना जाता है। इसी का कुछ परिष्कृत रूप - मैं उसे पसन्द नहीं करता, दूर ही से हाथ जोड़ता हूं, उससे दूर ही भला हूं, आदि है।

४.८ मानसिक अथवा धार्मिक घृणा :-

मानसिक अथवा धार्मिक घृणा प्राय: लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होती है।

४.८.१ निषेध के रूप में घृणा प्रदर्शित की जाती है। निषेध के दो पक्ष होते हैं। अपने प्रति स्वनिषेध और दूसरे के प्रति पर-निषेध। मैं उसे नहीं देखूंगा, अमुक व्यक्ति से नहीं मिलूंगा। अमुक कार्य नहीं करूंगा, अमुक वस्तु नहीं छू सकता आदि। इसी प्रकार दूसरे व्यक्ति से भी - छि: छि: ऐसा मत करो, उससे दूर रहो, इस दुर्गुण से दूर रहो, अमुक व्यक्ति की छाया से बचो, ऐसा दुष्कर्म करने से अपने को बचाओ, ऐसा कार्य नहीं करते, यह पाप है, आदि उपदेश वस्तु या व्यक्ति विशेष के प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं।

४.८.२ निन्दा :- निषेध से अधिक तीव्र प्रतिक्रिया निन्दा के रूप में होती है । जहाँ प्रतिकार सम्भव रहता है वहाँ तो निषेध से काम चल जाता है । जहाँ प्रतिकार सम्भव नहीं होता निन्दा के रूप में घृणा प्रदर्शित होती है । किसी भी विषय का साधारण ढंग से दोष प्रदर्शन घृणा है जैसे वह पापी है, उसने इतने दुष्कर्म किये, वह घृणित है आदि जितने प्रकार के वाक्य और शब्द आलम्बन के सामने प्रत्यक्ष रूप से घृणा की व्यंजना करते हैं वे लगभग सभी आलम्बन के पीछे निन्दा के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं ।

निन्दा का एक रूप यह भी है, जब स्पष्ट रूप से आलम्बन पर दोषारोपण न करके यह कहना कि उस व्यक्ति ने अमुक के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया, अथवा मेरे साथ ये अपकार किये, उसने अमुक के उपकारों के प्रति ये कृतघ्नता दिखाई, अमुक व्यक्ति के प्रति उसके मन में ऐसे गिरे हुए भाव हैं,आदि ।

कभी मात्र निन्दा होती है, तो कभी उसमें अपना मत भी शामिल रहता है जैसे मुझे वह पसन्द नहीं है, मुझे वह अच्छा नहीं लगता, मुझे उसके विचारों से अथवा हावभाव से घृणा है । जिन व्यक्तियों में अहं की मात्रा अधिक होती है वे ही इस प्रकार की अभिव्यक्ति करते हैं।ऐसे व्यक्ति अरुचि के कारण तक नहीं जाते - बस मुझे वह अच्छा नहीं लगता । पूछने पर कारण बतायेंगे किन्तु निन्दा का उनका अपना विशिष्ट ढंग होता है ।

जिस प्रकार प्रशंसा में दूसरे के विचारों एवं कथनों के उद्धरण दे देकर अपने कथन को पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार निन्दा में भी दूसरों के कथनों का प्रमाण दिया जाता है वह ऐसा ही है उसके बारे में अमुक अमुक व्यक्तियों ने ऐसा-ऐसा कहा उसके पड़ोसी उसके लिये इस प्रकार कहते हैं । इसी प्रकार दुष्कर्म, कुविचार, दुष्प्रवृत्तियों की निन्दा में भी अपनी बात पर बल देने के लिये बड़े आदमियों के कथन और देवताओं का प्रमाण देते हैं - महात्मा गांधी ने कहा है पाप से घृणा करो पर पापी से मत करो - कबीर ने नारी को सब पापों का मूल माना है, यौवन को रोग माना है,आदि ।

वास्तव में निन्दा द्वारा व्यक्ति या वस्तु का अवमूल्यन होता है। कभी कभी स्पष्ट निन्दा न करके अवमूल्यन प्रश्न के रूप में भी किया जाता है जैसे - उसमें है क्या ?...... कुछ नहीं, उसमें क्या था ?...... बेकार।

इस प्रकार की निन्दा में प्राय: प्रश्न के साथ उत्तर जुड़ा रहता है। आवेश अधिक होने पर प्रश्नों का अनवरत क्रम मिलता है "तुम्हीं बताओ ... उसमें है क्या ?..... कोई सार है उसमें?..... कोई तत्व है उसमें ?.... कोई योग्यता है उसमें?.... क्या है?" आदि।

साधारण रूप से व्यक्ति की दुर्बलताओं को उभारना, उसके दोषों को गिनाना निन्दा की अभिव्यक्ति है। निन्दा अपने आप में कोई भाव नहीं है और न ही अंत:करण की कोई प्रवृत्ति अथवा मानसिक स्थिति है। यह तो मात्र अप्रकाशित क्रोध की वाचिक अभिव्यक्ति है।[1]

४.८.३ तिरस्कार - क्षोभ की मात्रा की वृद्धि के साथ निषेध और निन्दा

तिरस्कार में परिवर्तित हो जाती है। जब आश्रय को यह विश्वास हो जाता है कि आश्रय के ऊपर निषेध एवं निन्दा का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा तब तिरस्कार के द्वारा घृणा की व्यंजना होती है। व्यक्ति विशेष के प्रति तिरस्कार उसके दुष्कर्मों एवं घृणा की क्रम तीव्रता के आधार पर विभिन्न प्रकार से व्यक्त होता है, जैसे -

- देशद्रोही लाल सिंह, तुम पंजाब के जीवित पाप हो। बच्चा बच्चा थूकेगा, तुम्हारे नाम पर - तुम समाज के कोढ़ हो - तुम नियति का काला पन्ना हो - कलंक का टीका हो - इतिहास का काला पृष्ठ हो - समाज का कलंक हो - बच्चा बच्चा थूकेगा तुम्हारे नाम पर - सारी दुनिया में थूके जाओगे - दुरदुराये जाओगे -

---

१- We are angry at the open insult and perhaps moved to enduring hatred by the obnoxious and unsgrupulous enemy. - Angiel

तुम्हारे नाम पर कालिख लग जायेगी - तुम्हारे मुख पर कालिख लग रही है - इतिहास में तुम्हारा नाम काले अक्षरों में लिखा जायेगा - नाम डूब जायेगा ।

तिरस्कार का उपर्युक्त रूप केवल आलम्बन से सम्बन्धित है । किन्तु पूर्ण घृणा तभी व्यक्त होगी जब उसमें आश्रय के भावों की भी अभिव्यक्ति होगी जैसे निम्न कथनों में - खानदान की नाक कटा दी, पुरखों की नाक नीची कर दी - इज्जत मिट्टी में मिला दी - टके की इज्जत कर दी - कहीं का न छोड़ा - नाम पर बट्टा लगा दिया - मुंह काला करा दिया - मुख दिखाने योग्य न छोड़ा, आदि । इन वाक्यों में झुंझलाहट के साथ साथ आवेशपूर्ण घृणा की व्यंजना होती है ।

तिरस्कार में आलम्बन को लज्जित करने का प्रयत्न प्रधान रहता है । इसके लिये कुछ विशिष्ट शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग होता है जैसे -

- यह क्लीव कपूत, मां, अपनी पौरुषहीन आंखों से सर्वनाश की लीला देख रहे हैं । तेरी छाती पर आततायियों का ताण्डवनृत्य देखते हुए भी इनकी आंखों से खून नहीं टपकता । ये मृतप्राय अपने प्रश्वास को जीवन का नाम दे रहे हैं, धिक्कार ।

(पृष्ठ ९६ 'अन्तर्नाद' वियोगी हरि)

धिक्कार है - लानत है - थू है - दुर दुर - आ़ा़ - परे हट' धिक धिक, टुच्.. आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं । जब घृणा बहुत तीव्र हो जाती है और आलम्बन असहनीय हो जाता है तब - मेरी आंखों से दूर हो जाओ - मेरी नज़रों से ओझल हो जाओ - मुझे कभी अपना काला मुंह न दिखाना, जाकर कहीं डूब मरो, अपना मुंह काला करो, आदि वाक्य कहे जाते हैं । इनमें बहुत अधिक आवेश रहता है ।

स्त्रियों द्वारा किया गया तिरस्कार कहीं अधिक तीखा और मर्मस्पर्शी होता है - इन्हीं को तो चुल्लू भर पानी में डूब मर, अंजुरी भर पानी में डूब मर, गंगा जी में डूब जा, आदि साधारण प्रयोगों म के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट वाक्यों एवं मुहावरो

का भी प्रयोग करती है जैसे - न जाने कहां कहां का पानी पिया है, कई घाट का पानी पिया है, सतर चुहिया खाकर बिल्ली हज को चली, आँखों का पानी मर गया है। दीदे का पानी ढल गया है, लाज शरम धोकर पी ली है,आदि । यही वाक्य क्रोधयुक्त तिरस्कार में अपेक्षाकृत कुछ अधिक आवेश में कहे जाते हैं । एक उदाहरण - एक स्त्री बाहर निकल कर दूसरी को सुनाती हुई कहने लगी "अब नायं या गाम में रैबे कौ धरम हमने कबहू नांय जानी ही के जि ऐसी होयगी । सबरे गाम कूं लजायौ है या ने ।"

दूसरी बोली "कहीं जमा गई है जि कि चमेली । मैंने कई न तोपूं ऐसरन घर घाले मई है न जाने कहां कहां का पानी पियौ है ।"

तीसरी कह रही थी "हाय मेरी मैया, जिकिर आय गई । देखौ तौ कैसी सांपिनी सी फिरतये । याइ नायें हया-सरम"

(पृष्ठ १६२ लोक परलोक, उदयशंकर भट्ट)

४.६ <u>क्षोभयुक्त घृणा की अभिव्यक्ति का आलम्बन के आधार पर वर्गीकरण</u> :

क्षोभयुक्त घृणा को आलम्बन के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है । क्षोभयुक्त घृणा जब किसी व्यक्ति के प्रति न होकर किसी वस्तु भाव या मानवेतर प्राणी के प्रति होती है तो अभिधा के द्वारा ही व्यंजित कर दिया जाता है । उस वस्तु या विषय का घृणित वर्णन करना घृणा की अभिव्यक्ति की एक शैली है - जैसे "औकूप" कितना बीभत्स दृश्य था । चारों ओर गन्दगी-कूड़ा और उसमें से आती हुई वो भयानक दुर्गन्ध ।

निर्जीव वस्तु या परिस्थिति के प्रति क्षोभयुक्त घृणा की अभिव्यक्ति मन पर पड़ने वाले प्रभाव और आन्तरिक स्थिति के स्पष्ट कथन द्वारा भी होती है । जैसे निम्न उदाहरणों में

- "और मैं" पुष्पिका ने सीना कर कहा ।

और तुम टिंक्चर आयोडीन की तेज गन्धवाली बोतल हो और मैं वह दर्शक हूं जिसके सामने यह भयंकर आपरेशन हो रहा है .... जिसे देख कर जी में यह आता है कि इन सब चीजों पर थूक दूं ... आंखें बन्द कर लूं ।

(पृष्ठ २६० 'खाली कुर्सी की आत्मा ', लक्ष्मीकान्त वर्मा)

ऐसा सुनने में भी पाप होता है लक्ष्मण । यह तुमने क्या कहा, और मैं चुपचाप सुनता रहा । सुनने से पहले मैं बहरा क्यों नहीं हो गया भगवान ।

(पृष्ठ २२, भूमिका)

इसी प्रकार के अन्य वाक्य - गन्दगी देख कर मेरा तो जी घबड़ाने लगा, मेरी तो तबियत घबड़ा गयी, जी मिचलाने लगा, मुझे तो देखकर उल्टी आने लगी, बदबू से मेरी नाक सड़ गयी, घृणा के मारे मेरे रोंगटे खड़े हो गये आदि । जन भाषा में प्रचलित एक रूप मिलता है 'तबियत गनगना गयी'। 'मेरे तो घिन छूट गई', 'घिन आती है'। अभिव्यक्ति के ये रूप साहित्य में बहुतायत प्रयुक्त होते हैं । कभी वाचिक अभिव्यक्ति के रूप में इनका प्रयोग होता है, कभी अन्यथा लेखक वर्णनात्मक शैली में इनका प्रयोग करता है । -

- मनतोरा दाई को देखते ही सन्तोली का एक एक रोंआं खड़ा हो जाता है । उसका दम घुटने लगता है और वह छटपटाने लगती है ।

(पृष्ठ १२)

- शंकर पण्डित पलक झपकाते ही अन्दर घुस आये । सन्तोली की बांह पकड़ कर कहने लगे 'हाय राम इतनी उतावुरा '।

याद आते ही सन्तोली को लगा जैसे उसकी बाहों पर कोई चिपचिपा कीड़ा रेंगने लगा हो । वह अन्धेरा में रगड़ रगड़ बाहें पोंछने लगी ।

(पृष्ठ १३ 'सन्तोली ' कृष्णलाल श्रीवास्तव, धर्मयुग ५ दिसम्बर १९६५)

"लवलपूल भी " कहती हुई वह अन्दर गुसलखाने में भाग गयी । यू डी कोलन को शॉवर से मुंह और शरीर पर छिड़का । दराज से पीपरमेन्ट की गोलियां निकाल

कर चुकी । धीरे धीरे वह अपनी स्वाभाविक स्थिति पर आने लगी । पर पूरे शरीर पर अभी तक घृणा के मारे छोटे छोटे रोयें उभर आये थे ।

(पृष्ठ १२ `आक्टोपस और सैकीन` लीलू कुमार, धर्मयुग ३१ अक्तूबर १९६५)

यदि आलम्बन मनुष्य होतो भी अभिव्यक्ति का रूप उसके प्रति घृणा के रूप के अनुसार परिवर्तित होता रहता है । फू हूह... गन्दी आकृति गन्दे वस्त्रों वाले व्यक्ति के प्रति घृणा वस्तुगत घृणा के समान ही होती है । इसके साथ साथ कुछ प्रताड़ना भी मिश्रित रहती है - जैसे,शर्म नहीं आती, गन्दे कहीं के, फू हूह कहीं के तुम्हें घृणा नहीं आती, इतने गन्दे रहते हो, दूर रहो, मेरे पास मत आओ, तुम्हारे मुंह से बदबू आती है, छि: छि: थू, थू,आदि ।

जब घृणा का पात्र कोई धूर्त व्यभिचारी या पाखंडी होगा तो घृणा की व्यंजना में कुछ अन्तर पड़ जाता है उसमें तिरस्कार के साथ साथ क्रोध भी जुड़ जाता है । अत: अपशब्दों का प्रयोग अधिक होता है । इससे भर्त्सना और प्रताड़ना का रूप कटु हो जाता है । अपशब्दों का एक विशिष्ट क्रम होता है जैसे गधा न कह कर कुत्ता कहना, उल्लू,बेवकूफ, आदि के स्थान पर नीच,पापी का प्रयोग ।

कायर या वृद्ध व्यक्ति के प्रति दयायुक्त या उपहासयुक्त घृणा की व्यंजना होती है । तिरस्कार रहता है किन्तु उसके साथ करुणा रहती है - आह बिचारा कितने छोटे दिल का है, बिल्कुल चूहे की तरह । भिखारियों के प्रति प्रदर्शित होने वाली घृणा में करुणा का समावेश रहता है - नाली के कीड़ों की तरह बिलबिला रहे हैं, रेंग रेंग कर जिन्दगी बिता रहा है,इसी प्रकार के कथन हैं । कायर बुजदिल, डरपोक, चिड़िया के कलेजे वाले आदि सम्बोधन इसी श्रेणी में आयेंगे ।

जहाँ आलम्बन की विशिष्टता देख कर घृणा तो हो किन्तु साथ साथ हंसी भी आये वहाँ वाचिक अभिव्यक्ति उपहास, खिल्ली, ताने,आदि के रूप में होती है । किसी पाखण्डी को देखकर पण्डित जी, कायर व्यक्ति को वाह रे बहादुर बड़े तीसमारखां हो, जवाब नहीं आपका, आदि कहना, घृणा की व्यंजना है ।

४.१० घृणा और क्रोध :

घृणा एवं क्रोध का घनिष्ट सम्बन्ध है। घृणा क्रोध का शान्त रूपान्तर है। क्रोध अधिक काल तक अव्यक्त रह कर घृणा में परिवर्तित हो जाता है। दूसरी ओर घृणा में यदि आवेश की मात्रा अधिक होगी तो क्रोध के समान ही उसकी अभिव्यक्ति होगी। जहां घृणा में प्रत्यक्ष प्रतिकार की भावनां रहती है वहां क्रोध स्पष्ट रूप से प्रकाशित होता है। इसे क्रोधयुक्त घृणा या क्रोध मिश्रित घृणा कहते हैं। वास्तव में दाोम युक्त घृणा और आवेशयुक्त घृणा क्रोधयुक्त घृणा के ही रूप है जिसमें दु:ख का भाव अपदााकृत अधिक रहता है। यह व्यक्ति के स्वभाव पर निर्भर करता है। निम्न उदाहरण में आवेशयुक्त घृणा का है किन्तु पात्र यदि उग्र स्वभाव का हो तो यही आवेश क्रोध में परिवर्तित हो जाता है -

बाबा मदन सिंह : शेखर सुना है कि वहां (चटगांव में) सैनिक मनमानी कर रहे हैं। गांव के लोगों को पीट पीट कर सलामी कराई जाती है। स्त्रियों पर बलात्कार किया जाता है। और....वो...." एकाएक बाबा मदनसिंह का गला रुंध गया वे कुछ बोल नहीं सके। आवेश में खड़े हो गये।......।

(पृष्ठ ८४ 'शेखर : एक जीवनी ' भाग २,अज्ञेय)

क्रोधयुक्त घृणा की भाषागत अभिव्यक्ति में आवेश के कारण क्रोध की भाषागत अभिव्यक्ति की भांति ही, शब्द कृम परिवर्तन, शब्दावृत्ति,स्वरभंग आदि के उदाहरण मिलते हैं

- मनीषी : यह नहीं हो सकता। मैं उससे नहीं मिल सकती। मैं उससे नफरत करती हूं,मैं इसे देख भी नहीं सकती।

(पृष्ठ २७ 'मां ' विष्णु प्रभाकर)

क्रोधयुक्त घृणा और साधारण क्रोध में अन्तर रहता है। यह अन्तर तिरस्कार अथवा व्यंग्य के रूप में व्यक्त होता है इसका विस्तार 'क्रोध ' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत किया हुआ है यहां एक उदाहरण पर्याप्त होगा। -

बस इतनी सी बात सुन कर गाड़ीवाला बिगड़ गया और आवेश में कुछ तीव्र एवं व्यंग्य भरे स्वर में बोला..... "बस बस मेमसाहब... इ सब तिरियाचरित हम जानित है..... इ कहसन मरद रहा जौन आई के लाई सन्दक में फाट पड़ा। ×××××भला कौन मुँह लेके सहर जाबु,मेमसाहब......"

(पृष्ठ १८६ 'खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकांत वर्मा)

प्राय: आवेशयुक्त घृणा एवं क्रोध में इतना कम अन्तर रहता है कि परिस्थिति एवं सन्दर्भ को दृष्टि में रख कर ही दोनों का वर्गीकरण किया जा सकता है। प्राय: लेखक नाटककार और कहानीकार इस ओर संकेत भी करते हैं जैसे 'घृणायुक्त क्रोध से', 'घृणासे'और'क्रोध से' 'क्रोधपूर्ण घृणा' से आदि।

शुद्ध क्रोध एवं आवेशयुक्त घृणा दोनों ही में भर्त्सना प्रताड़ना का स्थान है किन्तु दोनों की भर्त्सना-प्रताड़ना में कम भेद है। क्रोधयुक्त भर्त्सना का उद्देश्य व्यक्ति को भयभीत एवं पीड़ित करना रहता है जब कि घृणायुक्त भर्त्सना में निषेध एवं धिक्कार की मात्रा अधिक रहती है। क्रोध युक्त भर्त्सना आलम्बन केन्द्रित रहती है जब कि घृणायुक्त भर्त्सना में आश्रय की प्रतिक्रिया अधिक स्पष्ट एवं प्रधान रहती है। इसीलिये क्रोध में अपशब्दों की मात्रा अधिक रहती है और आवेशयुक्त घृणा में दुष्कृत्यों का उल्लेख अधिक रहता है। उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा -

<u>क्रोधपूर्ण भर्त्सना :</u>

वाह! उसकी यह मजाल! अच्छी बात है देख लूंगा! मेढ़की को जुकाम हुआ है? मेरी बराबरी करेगा। बराबरी कहां आगे बढ़ेगा? यह भुनगा? कल तक जो मेरे द्वार पर जूतियां चटखाता फिरता था। जिसकी मां के हाथ में चक्की पीसते पीसते छाले पड़ गये। आज वह यों चलेगा? अकड़ कर? इस ठाठ से?

<u>घृणायुक्त भर्त्सना :</u>

एक ने उसके चेहरे पर थूक कर कहा "अगला जन्म तेरे लिये जो अपना समय हत्या में व्यतीत करता है,जो,बन्दूक उठाते ही लूटमार शुरू कर देता है। डायन के बच्चे

अगले जन्म की चिन्ता है तुझे"।

(पृष्ठ १२५ : हाय मेरी तैन्युल ` नवनीत आस्त ६१)

क्रोधपूर्ण मर्त्सना में भूतकाल और भविष्य को लेकर भी कुछ कहा जा सकता है - तू ऐसा था, तूने यह यह कर्म किये या तू भविष्य में ऐसा ऐसा कर सकता है। किन्तु घृणा में सदैव सीधा कथन रहता है तू ऐसा है और तू वैसा है।

क्रोधयुक्त मर्त्सना में कारण से अलग हटकर इधर उधर की बातों का उल्लेख अधिक रहता है, आवेश की अधिकता के कारण असम्बद्धता अधिक रहती है किन्तु घृणायुक्त मर्त्सना में घृणा के कारण पर दृष्टि केन्द्रित रहती है।

क्रोधयुक्त मर्त्सना :

थोड़ी देर बाद शायद उन्होने पानी मांगा होगा कि चाची एकदम बम की भांति फूट पड़ी "पानी, अरे कलमुहे तुझे तो आग देनी चाहिए आग। अब लेकर सारा बिस्तरा गन्दा कर दिया कैसी बदबू फैला दी मुए ने, हाय राम मेरे तो मां-बाप ही बैरी थे जो ऐसे शराबी के साथ मेरी गांठ जोड़ी।

(`लभ मैरिज ` चन्द्रकिरण सौनरेक्सा)

घृणायुक्त मर्त्सना :- चमेली कह रही थी "यही तेरा रूप है तू तो बड़ा ज्ञानी बनता था। गंगा के किनारे भजन करने आया है तो भजन कर, मुझे नहीं मालूम था कि तू मनुष्य के रूप में इतना बड़ा पशु है, शैतान है। मन में इतनी ही नीचता थी तो यहां आया ही क्यों। चला जा यहां से नीच पापी कुत्ते।"

चमेली ने मिठाई का दोना उसके मुँह पर दे मारा

(पृष्ठ ११०, लोक-परलोक - उदयशंकर भट्ट)

प्रथम उदाहरण में मर्त्सना, झुंझलाहट, तिरस्कार तथा आत्ममर्त्सना आदि क्रोध के कई रंग हैं जब कि द्वितीय उदाहरण में आदि से अन्त तक तिरस्कार के माध्यम से घृणा की व्यंजना है। वास्तव में क्रोध में की गई मर्त्सना में आहत अहं की

की प्रतिक्रिया, विरोधी पर हावी होने की इच्छा, विरोधी को अपमानित करने की चेष्टा, चिढ़ एवं चिढ़ाने का प्रयत्न, ईर्ष्या, द्वेष, कटुता, जिद का भाव,आदि कई रंग होते हैं जब कि घृणा में की गई भर्त्सना में तिरस्कार ही प्रधान रहता है। यह कहा जा सकता है क्रोध की अभिव्यक्ति की अनेक शैलियों में एक शैली घृणायुक्त घृणा या घृणा युक्त क्रोध की भी है जो तिरस्कार के माध्यम से व्यक्त होती है।

क्रोधयुक्त भर्त्सना में क्रोध से आलम्बन को नष्ट करने,पीड़ित करने,या उससे प्रतिशोध लेने का भाव रहता है फलस्वरूप व्यक्ति भर्त्सना के पात्र में रुचि रखता है, वह उसे छोड़ना नहीं चाहता जब तक कि उसका क्रोध शान्त न हो जायें अथवा प्रतिशोध पूरा न हो जाये। किन्तु घृणा में आलम्बन को दूर करने का या बिलकुल नष्ट कर देने का प्रयत्न रहता है अत: वाचिक अभिव्यक्ति में भी यह भिन्न भिन्नता दृष्टिगोचर होती है जैसे क्रोध में कहते हैं - बताऊंगा तुम्हें, ऐसे सस्ते नहीं छोडूंगा, भाग कर कहां जाओगे, कभी तो हाथ आओगे, कभी तो मिलोगे तब बताऊंगा किन्तु घृणा में भर्त्सना के पात्र को दूर करने का प्रयत्न रहता है - चल चल दूर हट, आंखों से ओझल हो जाओ, अपना मुंह न दिखाना, मैं तुम्हारी सूरत नहीं देखना चाहता।

-- भरत : (माला एक ओर फेंक कर) जा दुर्मुख। जा दुर्मुख मृत्यु ने भी तेरी ओर से घृणा से मुंह फेर लिया है। अपना पाप लेकर जीवित रह। अभी खड़ा क्यों है कृतघ्न ? चला जा मेरी आंखों के सामने से। (पृष्ठ ३०, भूमिजा)

घृणायुक्त भर्त्सना में प्रयुक्त अपशब्दों की भी अपनी अलग विशिष्टता रहती है। क्रोध में प्रयुक्त अपशब्द प्राय: अर्थहीन और परिस्थिति तथा सन्दर्भ से असम्बद्ध रहते हैं। गालियों के अपरिमित कोश से कहीं से भी कोई भी गाली, किसी भी उद्देश्य अपमानित करने, पीड़ित करने, लज्जित करने के लिये दी जा सकती है परन्तु घृणायुक्त भर्त्सना में प्रयुक्त शब्दों में तिरस्कार का भाव ही प्रधान रहता है जैसे नीच, पापी, कुल्टा, हरजाई, कमीना,आदि।

- इन सब क्रियाओं के मध्य वह बराबर फुसफुसाती चली गयी "चली आयी

कलमुंही सात चूल्हे कि राख सिर पर डाल कर × ×-××-× × मर गयी होती कुतिया उधर ही तो क्यों आज जलों के फफोले खिले ।

(पृष्ठ २६७, गीला-बारूद, नानक सिंह)

४.११ घृणा और भय :

कभी कभी घृणा के साथ भय भी सम्मिलित रहता है । ऐसा साधारणत: तभी होता है जब आलम्बन में बहुत अधिक बीभत्सता रहती है और उससे बचने का कोई साधन भी नहीं होता है जैसे अचानक किसी छिपकलीआदि का छू जाना या किसी कीड़े का शरीर पर चढ़ जाना । कुष्ठ के रोगी, गन्दगी, घिनौने आदमी, मवाद, पस, कीड़े पड़े हुए घाव से छू जाने पर भी जो घृणा की अनुभूति होती है उसमें भय भी सम्मिलित रहता है । ऐसी घृणा की वाचिक की अपेक्षा शारीरिक अभिव्यक्ति अधिक होती है । रोमांचित होना, भागना, पीछे हटना, वमन करना, आदि कुछ विशेष शारीरिक अनुभाव हैं । इनके अतिरिक्त आरम्भ में दिये हुए घृणा के लगभग सभी शारीरिक अनुभाव भी हैं । घृणा एवं भय के मिश्रित रूप को उद्वेगी घृणा के अन्तर्गत रख सकते हैं । भाषा के माध्यम से आकस्मिक रूप से उत्पन्न चीख, दुहाई बचाने के लिये पुकारना घृणा-भय की वाचिक अभिव्यक्ति है । लगभग यही वाचिक अभिव्यक्ति भय में भी मिलती है किन्तु भय में आतंक रहता है और आलम्बन या परिस्थिति की भयंकरता कुछ और अधिक होती है । एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा - यदि अचानक छिपकली पर पैर पड़ जाय तो घृणा-भय की अनुभूति होगी किन्तु यदि कोई छिपकली को हाथ में लेकर जबर्दस्ती पटका रहा है तो भय की अनुभूति होगी ।

घृणा-भय की वाचिक अभिव्यक्ति लगभग वही होगी जो घृणा के स्थूल जड़, अचेतन आलम्बन के प्रति होती है जैसे देखा छू न जाये - अरे राम, छि: छि:, थू थू, दूर हट, परे हट, आदि ।

"बीभत्स और भयानक में कुछ आलम्बनों में समानता के कारण व्यक्तिभेद से बीभत्स की सिद्धि के स्थान पर भयानक रस की सिद्धि भी हो सकती है ।

बीभत्स और भयानक दोनों ही में आत्मरक्षा और विकर्षण का भाव विद्यमान रहता है किन्तु भयानक रस में आसन्न आपत्ति का बोध प्रधान होता है और बीभत्स में आपत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता । वहां किसी पदार्थ अथवा कृत्य को देखकर उस वस्तु के घिनौनेपन से बचने के लिये आंखें बन्द करके अथवा दूसरी ओर देख कर काम चलाया जा सकता है ।"[१]

उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि घृणा-भय और भय में वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से विशेष अन्तर नहीं है । भय के हल्के रूप की जो वाचिक अभिव्यक्ति होती है वही घृणा-भय की भी ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस विचार की पुष्टि की है । उनके अनुसार मानसिक प्रवृत्ति की दृष्टि से घृणा एवं भय दोनों की दृष्टि एक सी होती है । दोनों ही अपने विषयों से दूर रहने की प्रेरणा देते हैं अन्तर केवल इतना है कि घृणा में दु:ख स्थायी रहता है और भय में इसकी वृद्धि होने की आशंका रहती है । "भय का विषय भावी हानि का अत्यन्त निश्चय करने वाला होता है और घृणा का विषय उसी क्षण इन्द्रीय या मन के व्यापारों में संकोच उत्पन्न करने वाला होता है ।"[२]

४.१२ घृणा और हास्य :-

घृणा के साथ कटु व्यंग्य एवं तीक्ष्ण हास का भी घनिष्ट सम्बन्ध है । प्राय: सभ्य समाज में तथा यों भी सभ्य और शिक्षित व्यक्तियों द्वारा घृणा की अभिव्यक्ति हास्य एवं कटु व्यंग्य के माध्यम से ही होती है । तीखे व्यंग्य को हास्य में नहीं घृणा में गिनना चाहिए । "हास्य में जब आलम्बन के प्रति सहानुभूति या अनुराग की भावना रहती है तो वह शुद्ध हास्य माना जाता है जब हास्य में

१- पृष्ठ २०६ रस सिद्धान्त: स्वरूप विश्लेषण, आनन्द प्रकाश दीक्षित

२- पृष्ठ १०५ 'घृणा ' रामचन्द्र शुक्ल

कटुता आ जाती है तो व्यंग्य कहलाता है । व्यंग्य में भी जब हास्यास्पद से छेड़ छाड़ का ही भाव रहता है उसे हानि पहुंचाने या समाप्त करने का भाव नहीं रहता तब तक वह हास्य रस का व्यंग्य कहलायेगा जहां हास्यास्पद के प्रति कटुतापूर्ण घृणा की भावना जागती है वहां व्यंग्य बीभत्स रस में सम्मिलित होगा ।[१]

हास्य और घृणा का यह संयोग बीभत्स रस में दो स्तरों पर होगा । एक तो वहां जहां हास्य घृणा प्रदर्शन के साथ आये किन्तु घृणा की अभिव्यक्ति को प्रभावित न कर पाता हो जैसे निम्न उदाहरणों में :-

- "आपको तो किसी का डर नहीं है" बहुनिया मुस्करा कर व्यंग्य से बोली और घृणा के अतिरेक से मुंह बना कर दरवाज़े की ओर बढ़ गयी"।

(पृष्ठ १४ 'चोर' शिवसागर मिश्र, धर्मयुग मार्च १९६२)

- विद्याभूषण : (घृणा से मुस्कराते हुए) बिना धन के जो कापुरुष मनुष्य अपना जीवन बिता रहे हैं वे उस दिन पछताते होंगे ।

(पृष्ठ ८१ गरीबी-अमीरी सेठ गोविन्द दास)

व्यंग्य में हास्य है अथवा घृणा यह कंठस्वर के माध्यम से प्राय: स्पष्ट हो जाता है । यह कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा 'आपका भी जवाब नहीं', हास्य में कहते हैं उस समय इसका उच्चारण स्पष्ट और लय सम रहती है किन्तु प्रथम 'आ' पर बल देकर तथा थोड़ा खींच कर उच्चारण करने पर तथा शेष अन्य शब्दों पर भी हल्का सा बलाघात वाक्य को कटु व्यंग्य में परिवर्तित कर देता है । इसी प्रकार कुछ अन्य वाक्य भी उच्चारण भेद के कारण हास्य के स्थान पर कटु व्यंग्य की व्यंजना करने लगते हैं जैसे - क्या तीर मारा है, क्या बुद्धिमानी दिखायी है, भला आपसा बुद्धिमान और कहां मिलेगा आदि । परिस्थिति एवं पात्र के अनुसार इसके असंख्य रूप बन सकते हैं ।

१- पृष्ठ १३१ - 'बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य', डा० कृष्णादेव झारी ।

घृणा और हास्य में ऐसा नहीं होता कि घृणा-भय, घृणा-क्रोध के समान दोनों साथ ही उत्पन्न हुए हों वरन् घृणा व्यक्ति के मन में पहले से रहती है कटु व्यंग्य उसको व्यक्त करने की एक शैली मात्र है। इस प्रकार कटु व्यंग्य करके दूसरे को दु:खित करने की कुछ विशिष्ट शैलियां होती है जैसे किसी अति कुरूप व्यक्ति को अत्यन्त सुन्दर कह कर उसका उपहास करना - वाह क्या रूप है बिलकुल कामदेव लग रहे हो, देखो कहीं नज़र न लग जाये काजल का टीका लगा लिया करो। किसी रूपगर्वित के प्रति घृणा उसके रूप की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा के माध्यम से व्यक्त की जाती है - आपकी क्या बात है, आप तो साक्षात उर्वशी हैं।

साधारणत: कटुव्यंग्य में व्यक्ति की किसी भी चारित्रिक - शारीरिक अथवा मानसिक दुर्बलता पर आघात रहता है। कभी तो उस आलम्बन का वर्णन करके ही घृणा की व्यंजना हो जाती है जैसे निम्न उदाहरणों में प्रथम उदाहरण शारीरिक म वीभत्सता का है। वैसे मानसिक घृणा की अभिव्यक्ति कटु व्यंग्य के माध्यम से अधिक होती है।

- मौहें मुख से लार बह रही है, आंखों में कीचड़ लगा है, कान से राध गिर रही है। अपने पेट को वह सर्र सर्र खुजलाती है। घाघरे की चुन्नटों में से बार बार ढींगर बीन बीन कर मार रही है। उसके कपड़ों से दुर्गन्ध आ रही है। वाह ! फूहड़ क्या बहार दे रही है। - शंकर

उपर्युक्त वर्णन के बाद "वाह फूहड़ क्या बहार दे रही है" तीखा व्यंग्य है। किसी की मानसिक दुर्बलता का जैसे कृपणता, कृतघ्नता आदि का वर्णन भी कटु व्यंग्य रहता है - लोग भी कैसे अजीब है कि दाऊ ऐसे दानी को मक्खीचूस कहते हैं। बेचारे घर में किवाड़ देकर सोते हैं। हां गाली देने में आप बड़े उदार हैं। यदि कोई दूसरा देता देता है तो उसकी भांजी मार देने में आप बहुत उदार हैं। दूसरे को दोष देने में भी दाऊ की बराबरी कोई नहीं कर सकता है।

व्याजस्तुति के माध्यम से घृणा की अभिव्यक्ति होती है। व्याज स्तुति कटु व्यंग्य का ही एक रूप है। जैसे उपर्युक्त उदाहरण।

कभी कभी घृणा में भर्त्सना भर्त्सना के रूप में न होकर कटु व्यंग्य के रूप में होती है -

- सुमन : नारायण नारायण । जरा सी दाढ़ी पर इतने जामे से बाहर हो गये । मान लीजिये मैंने जान कर ही दाढ़ी जला दी तो ? आप मेरी आत्मा भी मेरी दाढ़ी को रोज जलाते हैं क्या उसका मूल्य आपकी दाढ़ी से भी कम है ? मियां आशिक बनना हुं मुंह का नेवाला नहीं है, जाइये अपने घर की राह लीजिये । अब यहां कभी न आइयेगा मुझे ऐसे छिछोरे आदमियों की जरूरत नहीं है ।

(पृष्ठ ६२ 'सेवासदन ' प्रेमचन्द)

घृणा की वाचिक अभिव्यक्ति में कटु व्यंग्य को एक शैली मान लेना पर्याप्त है । इस शैली के विभिन्न रूपों और स्तरों का वर्गीकरण बहुत कठिन है । क्यों कि प्रत्येक व्यक्तित्व, सन्दर्भ, परिस्थिति के साथ इसका रूप परिवर्तित होता रहता है ।

४.१३ घृणा और अरुचि :-

घृणा के विभिन्न रूप मिलते हैं । घृणा की तीव्रता एवं गहराई के अनुसार इसके अनेक स्तर होते हैं इसका एक रूप अरुचि भी है । अरुचिकर वस्तु से व्यक्ति दूर रहने का प्रयत्न करता है । अरुचि का क्षेत्र बहुत विस्तृत है - कोई भी वस्तु, व्यक्ति, गुण, प्रवृत्ति, परिस्थिति यहां तक कि रंग, स्वाद, गन्ध,आदि इसका आलम्बन हो सकती है । अरुचि की अभिव्यक्ति मे आवेश का सर्वथा अभाव रहता है अत: वाचिक अभिव्यक्ति स्पष्ट और प्रत्यक्ष कथन के रूप में होती है - मुझे यह पसन्द नहीं है, मुझे ऐसे लोग पसन्द नहीं है, मैं उसे नहीं देख सकता, उसे नहीं सह सकता, मैं इसे देख नहीं सकता, छू नहीं सकता, मुझसे यह नहीं हो सकता, मुझसे देखा नहीं जायेगा, मैं छू भी नहीं सकता आदि । अरुचि की अभिव्यक्ति 'निन्दा' के माध्यम से भी होती है । 'निन्दा ' के विभिन्न रूप पहले दिये जा चुके हैं ।

अरुचि - ऊब :-

एक स्तर पर आकर अरुचि ऊब में परिवर्तित हो जाती है। यह ऊब विरक्ति का ही एक रूप है। घृणा के ये विभिन्न रूप मानसिक अथवा कामज तथा शुद्ध घृणा के है इसकी शारीरिक अभिव्यक्ति उस वस्तु अथवा परिस्थिति से पलायन के रूप में होती -

- अब हवलदार ने अपने कानों में ऊंगली ठूस ली...... आंखें मींच ली.... घुटनों के बीच अपनी कनपटी दबा ली और इस बात की व्यर्थ चेष्टा करने लगा कि अब कुछ न देखें....कुछ न सुने.... लेकिन उसे लग रहा था कि उसके शरीर का सारा ताप ठण्डा होता जा रहा है।

(पृष्ठ ३६ 'खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकांत वर्मा)

अन्य शारीरिक प्रतिक्रियाओं में नाक बन्द कर लेना, सांस रोक लेना, आंखें बन्द कर लेना आदि आते हैं। इसकी वाचिक अभिव्यक्ति भी स्पष्ट कथन के रूप में होती है - मैं तो ऊब गया, जी उचट गया, मन नहीं लगता, कहीं कोई आकर्षण नहीं है, मैं अब और नहीं देख सकता, सह और नहीं सकता, सब निरर्थक है आदि।

ऊब के लिए एक शब्द 'बोर' और 'बोरियत' आजकल बहुत अधिक प्रयुक्त होता है। 'बोर हो गया', 'बड़ी बोरियत है' आदि ऊब व्यक्त करते हैं।

ऊब - चिढ़ एवं झुंझलाहट :-

ऊब एक स्तर आगे जा कर चिढ़ एवं झुंझलाहट में परिवर्तित हो जाती है। चिड़चिड़े एवं कमजोर स्वभाव के व्यक्तियों द्वारा ऐसा अधिक होता है। एक और भी तत्व है उसी व्यक्ति की अरुचि और ऊब झुंझलाहट तथा चिढ़ में परिवर्तित होती है जिसका आलम्बन चेतन तथा उपयुक्त अभिव्यक्ति सहने योग्य है। वाचिक अभिव्यक्ति में कुछ मात्रा में क्रोध भी सम्मिलित रहता है जैसे - हटाओ ये सब, बन्द करो यह बकवास क्या बकवास लगा रखी है, क्या चिल-पिल लगा रखी है, क्यों सर चाट रहे हो, किसी तरह पीछा छोड़ो, पिण्ड छोड़ो, जान बख्शो, मुक्ति दो, मेरा गला छोड़ो, आदि।

अरुचि एवं उदासीनता :-

कभी कभी परिस्थितियाँ ऐसी रहती हैं कि जिस व्यक्ति से अथवा जिस वस्तु से तीव्र घृणा हो उसकी प्रशंसा करनी पड़ती है। यह प्रशंसा भी अपने विशिष्ट रूप के कारण घृणा को छिपाती नहीं वरन् और स्पष्ट कर देती है। यह प्रशंसा बहुत ही सीमित और भावहीन होती है जैसे - हां अच्छी है, अच्छी ही है, ठीक ही है, चल जायेगा, कोई बुरा नहीं है आदि। यहां कंठस्वरम अपेक्षाकृत शिथिल हो जाता है। स्वरों को खींच कर उच्चारण करने की प्रवृत्ति मिलती है जैसे हांऽऽ ठीऽऽक हीऽ है, चऽल ऽऽ जायेगा।

अरुचि की अभिव्यक्ति की एक शैली उदासीनता प्रदर्शन भी है। यदि कोई कार्य किसी व्यक्ति के मन का नहीं होता तो लोग कहते हैं "उंह! हमसे क्या मतलब जो चाहे सो हो" हम मगापच्ची क्यों करें, क्यों दिमाग खराब करें।

"सभ्यता या शिष्टता के व्यवहार में 'घृणा' उदासीनता के नाम से छिपाई जाती है। दोनों में जो अन्तर है वह प्रत्यक्ष है। जिस बात से हमें घृणा है, हम चाहते हैं, क्या आकुल रहते हैं कि वह बात नहीं पर जिस बात से हम उदासीन हैं उसके विषय में हमें परवाह नहीं होती वह चाहे हो, चाहे न हो।

(पृष्ठ १०६ 'चिन्तामणि' रामचन्द्र शुक्ल)

४.१४ आत्मघृणा :-

आत्मघृणा या आत्मग्लानि भी घृणा का ही एक रूप है। यह शुद्ध मानसिक घृणा है। ग्लानि एवं लज्जा में अन्तर है, लज्जा सदैव समाज के परिप्रेक्ष्य में होगी और ग्लानि ऐकान्तिक। आत्मग्लानि के साथ साथ आत्मभर्त्सना भी रहती है। किन्तु दोनों में सूक्ष्म भेद है।

आत्मभर्त्सना दूसरे पर क्रोध आने पर भी की जा सकती है किन्तु आत्मग्लानि के साथ ऐसी कोई स्थिति नहीं है। व्यक्ति जब किसी कारणवश अपना क्रोध पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाता या व्यंग्य के रूप में अपने माध्यम से दूसरे की भर्त्सना करता है तब आत्मभर्त्सना का आकार ऐसा है कि भगवान मुझे मौत भी नहीं देता कि इस दुःख से पीछा तो छूट जाय, मैं तो नौकरानी हूँ, नौकरानी, आदि।

आत्मभर्त्सना में क्रोध का समावेश रहता है और आत्मग्लानि में घृणा और शोक का। शोकपूर्ण आत्मग्लानि और घृणापूर्ण आत्मग्लानि में क्या अन्तर है यह प्रथम अध्याय में 'ग्लानि' के अन्तर्गत दिया हुआ है। यहां केवल आत्मभर्त्सना और आत्मग्लानि के अन्तर और साम्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है क्यों कि दोनों ही आत्मघृणा के दो पहलू हैं। आत्मघृणा में हुई आत्मग्लानि जब आवेशयुक्त होती है तो आत्मभर्त्सना का रूप ले लेती है -

- उसे इतना क्रोध आता है कि आवेश में आकर अपने मुंह में चांटे तक मारने लगता यह सोचते हुए 'दुष्ट, नीच! तुझमें शर्म नहीं आती ऐसा कुल्टा को मन में लाते हुए। धिक्कार है तुझे, डूब कर मर क्यों नहीं जाता।

(पृष्ठ ६८, 'गीली बारूद' नानक सिंह)

आत्मग्लानि में व्यक्ति सोचेगा कि मैं इतना निर्बल चरित्रहीन क्यों हुआ कि ऐसे गन्दे विचार मेरे मन में आते हैं। दोनों उद्धरणों का अर्थ एक ही है किन्तु अभिव्यक्ति में अन्तर रहता है। यह अन्तर स्वभावगत भी हो सकता है। उग्र एवं चंचल स्वभाव के व्यक्तियों में आत्मग्लानि आत्मभर्त्सना का रूप ले लेती है। उपर्युक्त उद्धरणों में भी आत्मग्लानि एवं आत्मभर्त्सना में आवेश की मात्रा में ही अन्तर रहता है।

आत्मभर्त्सना से कहीं अधिक गहरी स्थिति आत्मग्लानि की होती है। प्राय: गम्भीर एवं अन्तर्मुखी स्वभाव वाले व्यक्तियों में आत्मग्लानि की व्यंजना अधिक रहती है और उग्र तथा चंचल स्वभाव वाले व्यक्तियों में आत्मभर्त्सना की।

- अम्भीक : मैं देशद्रोही हूं। नीच हूं। अधम हूं। आह कहां जाऊं मैं क्या करूं, जिससे मुझ पर किसी की दृष्टि न पड़े।

(पृष्ठ १७८ 'चन्द्रगुप्त' जयशंकर प्रसाद)

- रामविलास ने अपनी कोठरी में जाकर अन्दर से दरवाजा लगा लिया और लाठी को चूल्हे में जला दिया। उसकी लाठी की मार से एक सुकुमार बालक की खोपड़ी फट गयी थी। उसने मन में कहा 'बेचारे निहत्थे एवं निरपराधों को कुत्तों की तरह लाठी से मारना। राम राम यह हत्या किसके लिये, पेट के लिये।

पापी पेट को तो जानवर भी भर लेता है तो क्यों इतना पाप करें। बस रुपये के लिये यह कसाईपन अब न होगा।

('पापी पेट' सुभद्रा कुमारी चौहान)

केवल आत्मग्लानि का रूप भी स्वभाव के अनुसार बदलता रहता है। चंचल एवं क्षुद्र स्वभाव वालों की आत्मग्लानि प्राय: हानि या दुख तक ही सीमित रहती है - हा हमारी यह गति हुई, आह! मेरी यह दुर्दशा हुई। यहां घृणा नहीं होती किन्तु सात्त्विक प्रकृति वालों की आत्मग्लानि में हानि के कारणों का उल्लेख, स्वत्व तथा अपने किये पर पश्चाताप रहता है। यहां घृणा का अस्तित्व भी रहता है।

आत्मग्लानि दो प्रकार की होती है। कभी तो यह भाव रहता है कि दूसरे हमें बुरा समझते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने सामर्थ्य का परिचय ही देता है - मुझे वह कायर समझता है मैं उससे अधिक ताकतवर हूं, मैं शेर से लड़ सकता हूं। यहां घृणा नहीं है परन्तु जब अन्तर में यह भाव होता है कि हम सचमुच बुरे हैं तो वास्तविक आत्म घृणा की अभिव्यक्ति होती है।

४.१५ आयु एवं घृणा की अभिव्यक्ति

शैशवावस्था से ही घृणा का विकास आरम्भ हो जाता है। मैकडूगल ने चौदह मूल प्रवृत्तियों में एक प्रवृत्ति जुगुप्सा की इसीलिये मानी है। आरम्भ में घृणा का रूप बहुत भिन्न रहता है। बाल्यावस्था तक यह मात्र आंगिक अथवा उद्वेगी घृणा और अरुचि के रूप में रहती है। शैशवावस्था में इस अरुचि की प्रतिक्रिया, वस्तु मुख में जाने पर बच्चा उसे बाहर निकाल देता है, तीखी रोशनी और ताप की ओर से मुख फेर लेता है। कुछ और समझ होने पर लगभग आठ दस महीने में किसी अप्रिय अशोभन व्यक्ति को देखकर वह रोने लगता है। भाषा का प्रयोग सीख लेने पर लगभग तीन साल का होते होते बड़ों के अनुकरण पर वह कुछ वाक्य जैसे गन्दी बात, बुरी बात तथा विस्मयादिबोधक शब्दों, छि: छि:, थू: थू: आदि का प्रयोग भी करने लगता है किन्तु अभी तक बालक के अन्दर मानसिक और शुद्ध घृणा की

अनुभूति नहीं होती । उसका अनुभूति मात्र उसके इन्द्रिय ज्ञान तक सीमित रहता है । अभिव्यक्ति भी इतनी ही होती है । अरुचि, वितृष्णा आदि का अनुभव वह करता है किन्तु क्रोध, आवेश, वैराग्य आदि का नहीं । वह पापी से घृणा करता है क्यों कि वह स्थूल है, पाप से नहीं क्यों कि वह स्थूल नहीं है ।

कालान्तर में शिक्षा-संस्कार बालक के अन्दर मानसिक घृणा की नींव डालते हैं । यदि ये दोनों तत्व उदात्त हुए तो मानसिक घृणा में वैराग्य और उदासीनता अधिक रहेगी किन्तु यदि साधारण या निम्न श्रेणी के हुए तो मानसिक घृणा का रूप उग्र और आवेशयुक्त होगा । यद्यपि यह नियम कोई निश्चित नहीं, परिस्थितियां और व्यक्तित्व इसे अधिक प्रभावित करते हैं । किशोरावस्था तक आते आते घृणा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रौढ़ एवं किशोर में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं रह जाता ।

४.१६ घृणा तथा अन्य भाव :

घृणा के भाव के साथ भी भाव शबलता की स्थिति मिलती है । साधारणतः यह धारणा बनी हुई है कि घृणा का विपरीत प्रेम भाव है । यह कथन सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक है किन्तु किसी के अन्दर किसी के प्रति विद्यमान घृणा भाव एकदम प्रेम में नहीं बदल जाता । किसी की कृतघ्नता से हमें घृणा है इसके लिये हम उसका तिरस्कार करते हैं उसकी भर्त्सना करते हैं, तभी अचानक यह ज्ञात होने पर कि वह तो बहुत कृतज्ञ और हितचिन्तक है हम उससे तुरन्त प्रेम नहीं करने लगते वरन् पहले तो अपने विचारों पर लज्जा आती है - "हाय मैंने क्यों ऐसा सोचा" । इसके बाद पश्चाताप या ग्लानि का भाव उदय होता है - मैंने उसको इतने कठोर वचन कैसे कह दिये, उसे कितना कष्ट दिया । इसके बाद घृणा का भाव समाप्त हो जाता है अब यदि किन्हीं कारणों वश आलम्बन के प्रति प्रेम उदय भी होता है तो उसकी पृष्ठभूमि घृणा नहीं आत्मग्लानि या पश्चाताप रहती है ।

घृणा का परिवर्तन करुणा के रूप में हो सकता है। किसी घिनौने कुरूप व्यक्ति के प्रति उपेक्षा या हास्यमय घृणा प्रदर्शन के समय यदि वह व्यक्ति रोने लगे अथवा दुःखी हो जाये तो घृणा का स्थान करुणा ले लेती है यद्यपि इस करुणा के पूर्व भी ग्लानि अथवा पश्चाताप जागृत होता है - हा मैंने क्यों ऐसा किया। और उसके बाद करुणा। इसी प्रकार किसी व्यक्ति का हास-विदारत मृत शरीर देखकर हृदय में घृणा जागृत होगी किन्तु यह पता लगने पर कि यह तो हमारा निकट सम्बन्धी है घृणा शोक में परिवर्तित हो जायेगी।

घृणा के साथ आने वाले अन्य भावों में क्रोध तो घृणा के आवेशमयरूप की भांति आता है। भय और घृणा का सम्बन्ध आलम्बन की उत्कटता पर आधारित होता है। उदासीनता और वैराग्य घृणा के स्थायित्व के शान्त रूप है। इस प्रकार प्रेम, वात्सल्य, विस्मय आदि कुछ भावों को छोड़कर शेष अन्य सभी से घृणा का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार से अवश्य है और अभिव्यक्ति में भी यह मिश्रण रहता है।

- शोक -

५-१ काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि :-

गौतम बुद्ध ने दु:ख को चिर नित्य बताया है यह दृष्टिकोण केवल दार्शनिक स्तर पर ही सत्य नहीं है वरन व्यवहारिक स्तर पर भी प्रत्येक भाव के साथ दु:ख जुड़ा हुआ है। प्रत्येक भाव अपने किसी न किसी रूप एवं स्थिति में दु:खात्मक है। सम्भव है इसीलिये भवभूति ने " एकोरस: करुणएव माना । भरत ने तैंतीस संचारियों के अन्तर्गत एक भाव ' विषाद ' भी माना है। यद्यपि शुक्ल ने ' विषाद ' को मन के वेग के रूप में किसी भाव (क्रोध, भय,राग आदि) के कारण से उत्पन्न होकर उसी के अन्तर्गत उद्भूत तथा विलीन हो जाने वाला संचारी भाव माना है। वे इसे स्वतन्त्र भाव न मान कर मन का वेग मानते हैं । वास्तव में दु:ख को परिभाषित करने के लिये शुक्ल जी के विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल ने भी अपने वर्गीकरण में शोक या दु:ख को कोई स्वतन्त्र स्थान नहीं दिया है। चौदह मूल प्रवृत्तियों में से शरणागति (appeal) सम्बद्ध संवेग करुणा (distress) एवं दैन्य (submission-, आत्महीनता Negative Selffeeling) के योग से शोक का जन्म माना है । यह दृष्टि भी अधूरी है क्योंकि दु:ख का भाव तो लगभग प्रत्येक स्थायी भाव के साथ जुड़ा हुआ है ।

' शोक ' के विस्तृत क्षेत्र को दृष्टि में रखकर नाट्यदर्पणकार ने ' दु:खरस ' नामक स्वतन्त्र रस की उद्भावना की एवं इसका स्थायी भाव ' अरति ' माना । काका कालेलकर ने अपनी पुस्तक ' रसों का संस्कार ' में प्रेम रस ' तथा विषाद रस की स्थापना की है । इलाचन्द्र जोशी ने भी ' विषाद रस ' को मान्यता दी ।[१]

आठ प्रमुख स्थायी में से प्रथम चार दु:खात्मक भाव, क्रोध, घृणा, करुणा, भय के साथ शोक कारण एवं फल दोनों रूपों में उपस्थित रहता है । शोक का आलम्बन

---

१ ' विश्लेषण ' इलाचन्द्र जोशी पृष्ठ १२६

कभी कभी अन्य भाव का आलम्बन भी बन जाता है । प्रत्येक स्थायी भाव के साथ इन्हें अलग देखना होगा ।

५-२ क्रोध- शोक :- क्रोध के साथ शोक कारण एवं फल दोनों रूपों में जुड़ा रहता है । शोक का आलम्बन कभी कभी क्रोध का कारणबना जाता है और क्रोध पराजय की अवस्था में ग्लानि,क्षोभ,अथवा सन्ताप में बदल जाता है जो अपनी प्रकृति में दु:खात्मक हैं ।

कभी कभी शोक एक सीमा पर आकर क्रोध में परिवर्तित हो जाता है विशेषकर जब दु:ख किसी के द्वारा चेतन स्तर पर यातना के रूप में दिया जाये और भोक्ता निरपराध हो । अभिव्यक्ति,भर्त्सना एवं दुर्वचनों के रूप में होती है -

-- नन्दसिंह के स्थान पर पारो बोल उठी आँखों में आँसू भरे घिघियाई आवाज में " हाल क्या पूछता है , मार मार कर हलाक कर डाला निपूते ने , कोढ़ चले उसके हाथ में , गुरु महाराज बेड़ा गर्क करे दाढ़ीजार का, न रहे हाथ उठाने लायक ।" यह कहते कहते पारो की आँखों में रुके आँसू बह निकले ।

(पृष्ठ ३७, ठीला बारूद, नानक सिंह)

- उफ्‌, नीलाम्बर,वे बस रुलीफ के लिये थे, यही न कहना चाहते हो ।कह दो और भी कुछ कह दो । मुझे विष क्यों नहीं दे देते हो । इस तरह से घुल घुल के मरने से तो श्रेयस्कर होगा वह ।---------(हल्की खिड़कियाँ)

क्रोध का अन्त में दु:ख में परिवर्तन तो साधारण है किन्तु उसमें भी रुदन स्त्रियों की विशेषता है। क्रोध युक्त शोक या शोक युक्त क्रोध का एक रूप उन्मादावस्था में मिलता है। इस स्तर पर क्रोध के साथ साथ शोक का रूप भी उग्र हो जाता है ।

- (विस्फारित नेत्रों से एक बारगी फूट कर) ओह रानी.! अशोक का सर्वनाश हो, अशोक का सर्वनाश हो । मुझे भी मार डालो ।

(पृष्ठ ११६ "विजय पर्व" राम कुमार वर्मा)

- धृतराष्ट्र :अरे हा पुत्र ! इन हत्यारों ने अधर्म से तुम्हें परास्त किया संजय मेरे इस उत्कट स्नेह का ऐसा अन्त ! मैं नहीं सह सकता । मैं नहीं सह सकता !

(पृष्ठ २१ महाभारत की साँझ,भारतभूषण अग्रवाल)

क्रोध और शोक का मिश्रण कुछ सीमा तक आत्मभर्त्सना में भी रहता है। यद्यपि क्रोध में की गयी आत्मभर्त्सना ग्लानि से भिन्न होता है । आत्मभर्त्सना में

में शोक क्रोध की पूर्णत: व्यक्त न कर पाने की विवशता का परिणाम होता है पश्चाताप या ग्लानि का नहीं जैसे -

- थोड़ी देर बाद शायद उन्होंने पानी मांगा होगा कि चाची एकदम बम की भांति फूट पड़ी, " पानी, अरे कलमुहे तुम्हें तो आग देनी चाहिये आग, अब लेके सारा विस्तर खराब कर दिया । ऐसी बदबू फैला दी मुए ने । राम राम मेरे मइया- बाप ही बैरी थे जो ऐसे शराबी के साथ मेरी गांठे जोड़ी "

" भगवान मुझे मौत भी नहीं देता कि इस मुए से पीछा छूट जाये । सारी कमाई सराब में फूंक देता है और आधी आधी रात को छाती पे मूंग दलने चला आता है। (" ली मैरिज" चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, धर्मयुग, २६ दिसम्बर १९६५)

क्रोध और शोक का मिश्रण ईर्ष्या का प्रतिहिंसा जनित उदगारों में भी मिलता है। मनो वैज्ञानिक ईर्ष्या का मूल ' भय' मानते हैं जो कि शोक का ही एक रूप है। वास्तव में दूसरे की उन्नति या विजय को देखकर हुआ शोक या कष्ट ही ईर्ष्या है । वाचिक अभिव्यक्ति में भी यह स्पष्ट दिखायी पड़ता है -

-- ओह मेरा रक्त खौल रहा है। इस साधारण नीच मनुष्य ने जीवन की सारी प्रसन्नता लूट ली। प्रतिहिंसा । रख दूं गले पर छुरी । फिर देखूं प्राण-भिक्षा मांगता है या नहीं ।

(चन्द्रगुप्त , प्रसाद)

क्रोध के विभिन्न उपभाव चिढ़, खीज आदि भी शोक युक्त क्रोध है। इन स्थितियों में व्यक्ति केवल शुद्ध क्रोध से ही वशीभूत , नहीं रहता वरन मिली हुई पीड़ा या असफलता के प्रति बेचैन रहता है।

-- चाची को मानो बिच्छू छू गया। वे तड़पी " मेरे बाप के पास ढेरों कमाई होती तो मेरी किस्मत में तू ही न लिखा जाता । कमाई तेरे बाप कर गये है न कि हे बैठे सराब पी और उड़ा । भगवान जानता है नरक में पड़े होंगे ।

-- छोटी बहू पिरिया कहीं से कड़कड़ा उठी" ससुर जी यह तो देखेंगे कि कहीं कि अभी जाकवाल से छोटी हूं --------- फिर भी जरा सबर नहीं है ------ कहीं हाई बहू तम्बाकू भर के ? हुक्म दे दिया । बहू की बेटी गयी तहट्टमें ।"

(पृष्ठ १७७ पुरवा, शैलेश मटियानी, नवनीत नवम्बर १९६६)

५-३ <u>भय-शोक</u> :- भय एवं शोक में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक प्रकार से भय शोक को जन्म देता है। स्थायी भय भी शोक में परिवर्तित हो जाता है। शोक एवं भय के संचारी भाव मूलत: एक ही है तथापि उनकी प्रकृति में कुछ भिन्नता है। भयपूर्ण चिन्ता परिणाम की अनिश्चितता को लेकर होती है अत: वह आशंका के अधिक निकट है - क्या होगा, कैसे होगा । परन्तु शोक में चिन्ता निश्चित परिणाम से बचने के लिये रहती है - क्या करूं ? कैसे करूं ? -

भविष्य के प्रति चिन्ता भय है -

-- ` वह ही सब, नहीं आधा भी मिल जाये तो कुर्की रुक सकती है (टहलता हुआ) वह तो कहीं राम नारायण की धरोहर तीन हजार की रक्खी हुई है। तीन हजार (सोचकर) तीन हजार कहां । हजार तो मंगली पण्डित की शादी में गये और यदि कल राम नारायण भी आ जायें तो ? (मुंह पर पसीने की बूंदें चमकने लगती है) फिर क्या दूंगा ? फिर कहां से दूंगा उसे ?

(पृष्ठ ५४ ` मन का रहस्य ` उदयशंकर भट्ट)

वर्तमान के प्रति चिन्ता शोक है -

-- क्या करूं, कैसे करूं, सब कुछ हुआ विपरीत जीवन
कूप पर आती कलश ले, नीर लेने हेतु जब मैं
पैर ले जाते उन्हे अनजान में यमुना नदी तट ।

चिन्ता की भावगत अभिव्यक्ति में साधारणत: कोई विशेषता नहीं होती है ।

` शंका ` नामक उपभाव भी शोक तथा भय दोनों में मिलता है। किन्तु शंका का वास्तविक क्षेत्र भय है। वस्तुत: इस मन:स्थिति में भाव की स्थिति के आधार पर चित्त की दुखानुभूता रहती है। शुक्ल जी के अनुसार धारणा तथा बुद्धि के ये व्यापार हैं
स्थायी दशा से सम्बद्ध है। मात्र भाव दशा से नहीं मिलते
भाव की शंका को दो प्रकार से वर्णित भी किया है एक अपने लिये उत्पन्न होती है दूसरी अन्य के प्रति इन्हें क्रमश: आत्मस्थ एवं परस्थ कहते हैं। इन्हें स्पष्ट कथन से जाना जा सकता । ` आशंका ` भी शोक एवं भय दोनों का कारण एवं फल होती है। परन्तु दोनों स्थितियों की आशंका के रूप एवं मात्रा में अन्तर रहता है। जब दुष्कल्पनायें अस्पष्ट हो और परिणाम सामने न हो तो आशंका भय को जन्म देती है किन्तु जब दुष्कल्पनायें निश्चितता में बदल जाये और परिणाम की भयानकता स्पष्ट हो तो वह शो

का कारण होती है।

भयपूर्ण आशंका -

---..... तो फिर क्या मुझे कृष्ण के पास लौट जाना होगा दी। नहीं दी सखी " चन्द्रायणी " तो फिर मुझे गृहस्थी के खण्डहरों में भटकने को छोड़ जाओगी दी ? (आवेश और व्यथा से चारू चन्दर जी का गला रुंध गया। (पृष्ठ ६५)

--" अगर तुम्हारी ये स्थितियां मुझसे विलग होंगी और मेरी गृहस्थी भी खण्डित हो गयी तो मैं जी नहीं सकूंगा दी" कहते कहते चारूचन्दर जी की आंखें भर आयी। (पृष्ठ ६४ चन्द्रायणी; शैलेश मटियानी नवनीत, दिसम्बर १९६३)

शोकपूर्ण आशंका का रूप कुछ इस प्रकार होगा -

- दामोदर : अब क्या होगा ? कुर्की होगी और क्या होगा। मकान चला जायेगा। दुकान बोली पर चढ़ जायेगी। कुछ भी नहीं रहेगा। कल दुपहर तक सब कुछ साफ। रहने को मकान भी नहीं। व्यापार बन्द। भीख मांगनी पड़ेगी।

(पृष्ठ ५४ " मन का रहस्य " भट्ट)

शोक एवं भय दोनों की वाचिक अभिव्यक्ति में समानता एक और स्तर पर भी मिलती है। जब शोक आकस्मिक रूप से जागृत होता है अथवा शोक का आलम्बन आकस्मिक रूप से सामने आ जाता है तो जो अविश्वास सन्देह आदि की वाचिक अभिव्यक्ति होती है लगभग वही अभिव्यक्ति आकस्मिक रूप से भय उत्पन्न होने पर होती है। कोई शोकपूर्ण या भयानक समाचार सुनने पर लोग प्राय: कहते हैं - तुम सच कह रहे हो ? " क्या यह ठीक है " " कानों पर विश्वास नहीं होता है " ऐसा नहीं हो सकता आदि। यह कायरता की नहीं वरन शोकपूर्ण समाचार की स्वाभाविक शब्दगत प्रतिक्रिया है।

-- रत्नी : क्या से क्या होगा। जो इतनी तपस्या से संचित किया था वह सब क्षण भर में खो दिया। नहीं नहीं यह सच नहीं है। यह सच नहीं है, झूठ है।

(पृष्ठ २०३ " सांप और सीढ़ी " विष्णुप्रभाकर)

दोनों ही स्थितियों की शारीरिक अभिव्यक्ति भी लगभग समान होती है। अभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त वाक्य भी लगभग एक से होते हैं जैसे - आंखें मुंह को आगईं, जी सन्न हो गया, पैरों तले जमीन खिसक गयी, कलेजा मुंह को आ गया, मुंह फक रह गया। दिल धक रह गया, आदि।

'दैन्य' संचारी भाव में भी शोक एवं भय का मिश्रण रहता है दूसरे शब्दों में जहां पीड़ा या दुःख मिलने का भय रहता है वहीं "दैन्य" उपभाव जागृत होता है। दैन्य के साथ ही आत्महीनता का भय भी जुड़ा हुआ है आत्महीनता की भावाभिव्यक्ति दूसरे के सम्मुख प्रार्थना, स्तुति अथवा गिड़गिड़ाहट के रूप में होती है जैसे-हाथ जोड़ता हूं, पैर पकड़ता हूं, चरण छूता हूं, आंचल फैलाती हूं, भीख मांगती हूं, पगड़ी पैरों पर रखती हूं, नाक रगड़ता हूं, कान पकड़ता हूं आदि। यह आत्महीनता स्वयं ही व्यक्ति को पीड़ा देने वाली है। किन्तु यहां शोक की अपेक्षा भय की मात्रा अधिक है। कभी कभी दैन्य में भय की अपेक्षा शोक अधिक स्पष्ट हो जाता है। जब दृष्टि भय के कारण पर नहीं वरन् अपनी असमर्थता पर रहती है तो अभिव्यक्ति का रूप कुछ इस प्रकार का हो जाता है - मैं इसी (प्रताड़ना या दण्ड) योग्य हूं, किसी के योग्य नहीं हूं, दर दर ठोकरखाने योग्य हूं, मुंह काला कर दूं, डूब मरूं, आदि

-- नीली : (पागल सी) जीजी बस आगे कुछ न कहना। मैं हाथ जोड़ती हूं। मैं अब यहां नहीं आऊंगी। कभी यह गन्दी सूरत तुम्हें न दिखाऊंगी।

(पृष्ठ २०२ 'सांप और सीढ़ी' विष्णु प्रभाकर)

-- वेदना से सन्दीप का मुंह काला पड़ गया। व्यथित स्वर में कहा 'दिमाग मेरा ही खराब है प्रभा तभी तो --------' (पृष्ठ ११७ 'सुनरी रातें' सोमावीर)

आत्महीनता, दैन्य आदि भाव कभी तो भयप्रद होते हैं और कभी दुःखात्मक साधारणतः वर्तमान स्थिति में दुखात्मक होते हुये भी मूलतः भय अधिक रहता है किन्तु भूत एवं भविष्य के सन्दर्भ में यही दैन्य एव आत्महीनता विषाद उत्पन्न करता है। प्रथम में गिड़गिड़ाहट एवं प्रार्थना रहती है और द्वितीय में विषादपूर्ण कथन :-

-- बूढ़े पेटमैन ने डा० बनर्जी के का पैर पकड़ लिया। रोने, गिड़गिड़ाने लगा। बोला पोस्टमास्टर से यह न कहना हुजूर --------।

-- बूढ़ा पेटमैन चुप रह गया। केवल दांत निकाल कर रोने लगा। अपने साफे से अपना मुंह ढक बोला -

"आप मालिक हैं-------- जो चाहें करें हुजूर ----------"

(पृष्ठ २१४ 'खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकान्त वर्मा)

भयजन्य दैन्य के कुछ रूप आरम्भ में दिये हुये हैं उनके अतिरिक्त- आपकी शरण में हूं , आपका सेवक हूं , आपका ही आसरा है, लाज रखिये, पगड़ी की लाज रक्खो , स्त्रियों द्वारा मेरी चूड़ी की लाज रख लो, मेरे सुहाग की लाज रख लो आदि कथन कहे जाते हैं । दैन्य जब विषाद में बदल जाता है तो इसका रूप विषाद पूर्ण कथनों की भांति ही हो जाता है ।-

-- अचला : (जहां जहां राख गिरी है, उन स्थानों को फाड़ते हुए) दिन भर ------ दिन भर फाड़ू---------(लम्बी सांस लेकर) तकदीर में फाड़ू ही देना बदा हो तो ।

(पृष्ठ ९० गरीबी-अमीरी,सेठ गोविन्द दास)

-- मैं वही तो हूं जिसके संकेत पर मगध का साम्राज्य चलता था । वही शरीर है, वही रूप है, पर (वही ऐश्वर्य है!) छिन गया है अधिकार और मनुष्य का मानदण्ड ऐश्वर्य । अब जीवन लज्जा की रंगभूमि बन गया है ।

(पृष्ठ १५८ चन्द्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद)

" त्रास " का भाव भी भय एवं शोक के योग से बनता है। भय की मात्रा अपेक्षाकृत कुछ अधिक ही होती है । वास्तव में त्रास का सम्बन्ध शारीरिक पीड़ा से है। शुक्ल जी ने इसे मनोवेगों । के रूप में मान कर स्वीकार किया है कि इसमें न तो विषय की स्फुट धारणा होती है न लक्ष्य साधन की और गति । इसी प्रकार शारीरिक एवं मानसिक रूप से मिली पीड़ा की वही मानागत प्रतिक्रिया होती है जो आकस्मिक रूप से भय जागृत होने पर होती है। प्राय: इस प्रकार की अभिव्यक्ति विस्मयादिबोधक शब्दों तक ही सीमित रहती है ।

-- बार बार उसका पीड़ित हृदय आर्तनाद कर रहा था । हाय ईश्वर इतना घोर कलंक । (पृष्ठ ८० " निर्मला " प्रेम चन्द)

--गंगा ने पुजारी की गोदी में अपना रक्त से सना मुंह छिपा लिया और भी कि वरह रंभा कर बोली " बाबा "

(पृष्ठ ५६ " गंगा " निर्गुण)

भय एवं शोक दोनों ही में कंठस्वर गत अन्य विशेषतायें कंठविरोध, कंठस्वर का भरा जाना, हकलाना, आदि मिलती है दोनों के मिश्रण से शैथिल्य और जड़ता भी उत्पन्न होती है। कंठस्वर की विशेषताओं का देख कर सरलता से बिना

परिस्थिति एवं सन्दर्भ ज्ञान के यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि यह शोकजन्य है अथवा भय जन्य जैसे निम्न उद्धरण में -

--लक्ष्मीदास (अत्यन्त भर्राते हुए स्वर ,टूटते हुए शब्दों में) बेटा- बेटा (चिट्ठी दिखाते हुए मानो शब्दों में कुछ कहने की हिम्मत न हो) यह---- यह--- चिट्ठी----चिट्ठी------(खड़े न रह सकने के कारण सोफा पर गिर जाता है)

(पृष्ट १२५,गरीबी-अमीरी, गोविन्द दास)

५-४ घृणा-शोक:- घृणा के स्थायी भाव की मूल प्रकृति दु:खात्मक है क्यों कि घृणा करना अपने आप में कष्टपूर्ण है। घृणा के विभिन्न रूप वितृष्णा, असन्तोष आत्मग्लानि, के साथ दु:ख अस्पष्ट रूप से जुड़ा रहता है। शुक्ल जी के अनुसार जब अरुचिकर विषय हमारे सामने आता है तो हम चाहने लगते है कि हमें उसका ज्ञान न हो और यह सोचने में हमें जो दु:ख होता है उसे घृणा कहते है ---- घृणा में केवल दु:ख का अनुभव कर किसी प्रकार से उसके कारण को दूर करने का प्रयत्न करता किया जाता है । वाचिक अभिव्यक्ति में यह सम्बन्ध भाव अधिक नहीं मुखर हो पाता । घृणा की वाचिक अभिव्यक्ति पूर्णत: घृणा की ही होगी भले पृष्ठभूमि में भले ही शोक हो । इसी प्रकार शोक अपने आप में इतना तीव्र होता है । इसी प्रकार शोक अपने आप में इतन तीव्र होता है कि वाचिक अभिव्यक्ति स्वतन्त्र रूप से ही होती है । घृणा प्रच्छन्न रूप से उसमें निहित रहती है । केवल अनुमान से दूसरे भाव को जाना जा सकता है जैसे निम्न उद्धरण में -

-- यह कहते हुए वह आगे बढ़ी और ब्लाउज की छोटी टांगे कुचलती हुई निकल गयी । कोठी ------ यह भिखारी भी अजीब है। तुम्हारा हिन्दुस्तान कैसा है डियर, कैसा लोग रहता है।यहाँ----- हमारा तो जी घबड़ा गया ।

(पृष्ठ २४०' खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकांत वर्मा)

करुणा- शोक

करुणा रस का स्थायी भाव शोक माना गया है। भरत ने शोक एवं करुणा को मिला दिया है जब कि दोनों में बहुत भिन्नता है। शोक का दु:ख आत्मकेन्द्रित है जब कि करुणा उसका विकसित और सामाजिक रूप है। मानुषत्व ने इसके स्वनिष्ठ तथा

परनिष्ठ दो भेद किये हैं । अपने शाप, बन्धन, क्लेश आदि जनित होने पर करुणा स्वनिष्ठ तथा दूसरे के नाशादि होने पर परनिष्ठ माना जाता है ।[१] पहला रूप दु:ख है और दूसरा रूप करुणा । शोक या दु:ख तथा करुणा में अन्तर है । प्रथम अपने आप में परिपूर्ण है जब कि करुणा में आनन्द एवं दु:ख दोनों का मिश्रण है, इस प्रकार करुणा सहानुभूति के अधिक निकट है । श्री रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में दूसरे की विशेषताअपने परिचितों के थोड़े क्लेश या दु:ख होने पर जो वेग रहित दु:ख होता उसे सहानुभूति कहते हैं । करुणा में भी विभेद करते हुए शुक्ल जी ने माना -" जो करुणा हमें साधारण जनों के दु:ख के परिज्ञान से होती है वही करुणा हमें प्रिय जनों के सुख के अनिश्चय से होती है । अतिरिक्त बात के लिये सुखी या दु:खी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है। इस प्रकार के दु:ख या करुणा को प्रान्तिक भाषा में मोह कहते हैं ।

करुणा का भाव शोकपूर्ण है । तथापि आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार दूसरे पर करुणा करके , दूसरे से सहानुभूति दिखा कर व्यक्ति का अपना अहं सन्तुष्ट होता है ।[२] यह कथन अपने आप में कितना सत्य है यह एक अलग प्रश्न है ।

करुणा की भाषागतअभिव्यक्ति लगभग शोक के समान ही होती है। अन्तर केवल इतना रहता है कि शोक का आलम्बन व्यक्ति स्वयं रहता है और करुणा का आलम्बन कोई दूसरा ।

कंठस्वर - अन्य भावों की भांति ही करुणा के प्रदर्शन में भी कंठस्वर बहुत सहायक होता है। व्यवहार में तो ऐसे कंठस्वर को सरलता से पहचाना जा सकता है किन्तु लिखित साहित्य में लेखक द्वारा इस ओर संकेत रहता है । जैसे -

---

१- स्वशापबन्धनक्लेशानिष्टैर्विभावैः : स्वनिष्ठ :

परेष्टनाश शापबन्धनक्लेशादिभिर्नाशकैः स्मरणैर्विभावैः : परनिष्ठ

र०सु० पृ० १४६

2. Professional Sympathizers and alms-giver are not to be divorced from their activity for they are actually creating a feeling of their own superiority over the miserables and poverty-stricken Victim whom they are alleged to be helping.

- Understanding Human Nature by A.Adler
1927 Ed., Page 276.

- सुशीला : (करुणा स्वर में) ओह ! ये अनाथ बच्चे ।

(पृष्ठ ४६ आंचल और आंसू विष्णु प्रभाकर)

-- " मत रो बहू ! " सास का आर्द्र स्वर सुनाई पड़ा " न रो बेटी अच्छी हो जायेगी जल्दी ही ।"

(पृष्ठ ८५ " उनके लिये " मुहम्मद ताहिर , नवनीत जून १६६१)

कभी कभी वक्ता न तो चेतन स्तर पर शब्दों के माध्यम से करुणा व्यक्त करता है और न कंठस्वर में ही कोई विशिष्टता लाने का यत्न करता है किन्तु हावभाव एवं वाक्य के सुर में करुणा अनायास ही व्यक्ति हो जाती है । -

-- उसकी आंखों से आंसू की दो बूंदे टपक पड़ी , और वह बोला " साहब ऐसे लोग ज्यादा दिन जीते नहीं इसलिये ।"

(पृष्ठ ११६ " किस्मत " सरोज कुमार राय चौधरी ,नवनीत जून १६६१)

-- जवाब की आंखों में आंसू थे बार बार यही कह रहा था -

" लेकिन उस बच्चे का क्या होगा ? ----------

(पृष्ठ ४०६,खाकी कुर्सी की आत्मा,लक्ष्मीकांत वर्मा)

-- जज: (वेदना मिश्रित स्वर) और अपनी पत्नी की हत्या के अपराध में वह गिरफ्तार कर लिया गया । उस पर मुकदमा चला, एक लम्बा मुकदमा, विचित्र मुकदमा । (पृष्ठ ११६)

-- जज ?(वही गम्भीर स्वर) हां मैंने उसे फांसी की सजा दे दी । इसलिये दी कि वह जिन्दगी भर अपने खूनी हाथों को देखकर तड़पता न रहे ,दोस्ती उसे जिन्दा रखना उसकी पवित्र भावना का अपमान करना होता ।

(पृष्ठ ११७ " जज का फैसला " विष्णु प्रभाकर)

इसके विपरीत कभी कभी सम्प्रयास एवं चेतन स्तर पर कंठस्वर में कोमलता एवं करुणा लाकर शोक संतप्त प्राणी को सांत्वना देने का प्रयास किया जाता है जैसे -

-- गंगाजली और पूजा की कौरी वहीं एक ओर घास पर रख कर उस बुढ़िया के पास आ बैठी और दया भरे, ममता भरे कंठ से बोली " आओ बाबा मैं तुम्हारी रोटी सेंक दूं । "

(पृष्ठ ३७ गंगा , निर्गुण)

इसके बाद भी करुणा की अभिव्यक्ति में कंठस्वर की व्याख्या नहीं की जा सकती । बलाघात स्वराघात आदि को लेकर कोई नियम नही निर्धारित किया जा सकता है शब्दों के मध्य विराम, लगभग प्रत्येक शब्द का एक एक कर उच्चारण, शान्त वाणी, समलय आदि ही करुणा को व्यंजित करते है ।

शब्द विशेष का प्रयोग : कंठस्वर के अतिरिक्त कुछ शब्द विशेष भी करुणा के प्रदर्शन में सहायक होते हैं । प्राय: ऐसे शब्द विस्मयादिबोधक ही होते हैं, जैसे हाय , ओह हा, हा ! ओफ ! , अहह आदि । करुणा के प्रदर्शन में इनका प्रयोग स्त्रियां ही अधिक करती है। आवश्यकता से अधिक दुखित होकर वैसाधारण कथनों में भी इनका प्रयोग करती है जैसे -

-- हाय हाय ! ऐसा सुन्दर रूप न कभी आंखों से देखा न कानों से सुना । उसकी दोनों हाथों से बलैया लेने को जी चाहता है। हाय हाय ! इसके मां बाप का कलेजा पत्थर का है जो ऐसे सुकुमार पुरुष को घर से निकाल दिया ।

(पृष्ठ ११ ,विद्या सुन्दर ब्रजरत्नदास)

करुणा प्रदर्शन के कुछ अपने विशिष्ठ विस्मयादिबोधक शब्द भी हैं जिनका प्रयोग मात्र करुणा के प्रदर्शन में होता है जैसे " च्च----च्च " और " बेचारा " । इन शब्दों का प्रयोग इतना रूढ़ हो गया है कि अब ये वास्तविक संवेदना का प्रदर्शन नही करते वरन् यान्त्रिक प्रतिक्रिया मात्र प्रतीत होते हैं । इनका प्रयोग प्रत्येक वर्ग के स्त्री द्वारा होता है। वास्तव में करुणा का वास्तविक प्रदर्शन कुछ विशेष वाक्यों द्वारा होता है । इनमें से कुछ तो रूढ़ हो गये है इनमें सहानुभूति और संवेदना की अपेक्षा शिष्टाचार ही अधिक रहता है जैसे " मुझे आपके लिये दु:ख है" मुझे आपके बारे में सुन कर दु:ख हुआ , मुझे आपसे हार्दिक सहानुभूति है। स्त्रियां अधिक भावुक होती है अत: उनकी अभिव्यक्ति कुछ अधिक संवेदनशील होती है । मुहावरों का प्रयोग वे अपेक्षाकृत अधिक करती है जैसे - मत रो आंसुओं से प्यास नही बुझती , उसकी हालत देखकर कलेजे पर छुरियां चलने लगी, उसके बारे में सोचकर मेरे आंसू नही थमते , काश मैं उसके आंसू पोछ सकती, उसका रोना देखकर जी भर आया, उसका हाल देख कर दिल उमड़ आया ।

-- " बेटी जब मैं तेरे बारे में सोचती हूं , कलेजा फटने लगता है" वे आरामकुर्सी पर बैठ गयी", भली, चंगी, हंसती चहकती सी गुड़िया को कौन सा रोग दे दिया तूने ! उनकी आंखों में आंसू आ गये ।

(पृष्ठ ८५ उनके लिये " नवनीत जून १९६१)

-- धाय मां : बेटा कहीं चल (चलते हुए) हाय तेरी मां । भगवान वैरी को भी ऐसा दु:ख न दे जैसे उसे दिये ।

(पृष्ठ १०१ " अन्धेरा -उजाला" रेवतीसरन शर्मा)

- सहानुभूति के विभिन्न रूप -

इन व्यवहारिक वाक्यों से एक स्तर आगे " करुणा " अथवा सहानुभूति को प्रदर्शित करने वाले गम्भीर वाक्य मिलते हैं । इनमें अपेक्षाकृत गहराई एवं गम्भीरता रहती है। इनके द्वारा शोक सन्तप्त व्यक्ति को ढाढस आश्वासन एवं सांत्वना देने का प्रयास किया जाता है। आश्वासन (Assurance) का मूल अर्थ तो है अच्छी तरह या सुखपूर्वक सांस लेना परन्तु अपने विकासित अर्थ में यह ऐसी स्थिति का वाचक है जब मनुष्य स्वयं सुखी रहता है तथा दूसरे को सुखी करने का प्रयास करता है। वाचिक स्तर पर ही इस प्रयास की अनेक रीतियां एवं शैलियां हैं । सान्त्वना (Consolation Solac) का मुख्य अर्थ है किसी असन्तुष्ट या रुष्ट व्यक्ति को प्रसन्न या सन्तुष्ट करना । किन्तु इसका प्रयोग मुख्यत: दो अर्थों में होता है एक तो सहानुभूतिपूर्वक किसी को समझाना कि जो अनिष्ट या हानि हो चुकी वह अनिवार्य या अवश्यम्भावी थी, उसके लिये अब चिन्ता करना व्यर्थ है। दूसरे दु:ख या खिन्नता को दूर करने के प्रयत्न में कहे गये हर प्रकार के वाक्य । सांत्वना एवं आश्वासन देने का ढंग व्यक्ति के आधार पर भिन्न भिन्न होता है ।

दु:ख के प्रति अवहेलना भाव की अभिव्यक्ति :

सहानुभूति प्रदर्शन की एक शैली शोक अथवा पीड़ा के प्रति अवहेलना प्रकट करना भी है। प्राय: फक्कड़, निश्चिन्त अथवा बहुत गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति इस प्रकार की सहानुभूति का प्रदर्शन करते हैं । जैसे- अरे कौन सा पहाड़ टूट पड़ा जो रोना

धोना मचा रखा है, यह सब तो होता ही रहता है, यह तो एक दिन होना ही था, जो होना था सो हो गया उसके लिये कैसा दु:ख मनाना । इस शैली का प्रयोग दो स्त्रोतों से होता है एक तो वे लोग जिन्हें जीवन के सारे कड़वे मीठे अनुभव हो चुके है तथा दूसरे युवा वर्ग या मित्र वर्ग के द्वारा जहां गम्भीरता के स्थान पर स्वाभाविक उत्साह एवं क्रियाशीलता होती है । जैसे -

---" मन छोटा नही करते वैरे भाई ", सईल ने उसे बाहों में भर कर कहा -" तो क्या हुआ । कोई क्यामत तो नहीं आ गई इस दुनियमें सभी कुछ सम्भव है ।"

(पृष्ठ ७६ "गीला बारूद" , नानक सिंह)

इसी प्रकार " मन छोटा मत करो " ," दिल छोटा मत करो " , दिल भारी मत करो , हिम्मत न हारो , साहस न छोड़ो , जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है, आदि उद्बोधनात्मक वाक्य इसी शैली के अन्तर्गत आयेंगे ।

ख भविष्य के प्रति आशा और विश्वास उत्पन्न करना :-

व्यक्ति में भविष्य के प्रति आशा और विश्वास जगाने का प्रयत्न भी सहानुभूति प्रदर्शन की एक शैली है। प्राय: हर वर्ग हर आयु एवं स्वभाव का व्यक्ति इस विधि का प्रयोग हर वर्ग, हर आयु एवं स्वभाव वाले के लिये करता है। - सब कुछ ठीक हो जायेगा । अच्छे दिन आते देर नहीं लगती, धीरज का फल मीठा होता है, तुम्हारे भी सुखी दिन शीघ्र ही आयेंगे, तुम्हारे जीवन में भी खुशियां आयेंगी आदि । यह सब सुनकर अनेक/संतप्त व्यक्ति में नहीं आस्था एवं विश्वास जागृत हो जाता है ।

ग- दु:ख को बांटने का आश्वासन :-

किसी दु:खी व्यक्ति को उसकी पीड़ा या दर्द बंटाने का आश्वासन मात्र ही देना उसके दु:ख को बहुत कम कर देना है। साधारण कथन के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है जैसे जब तक मेरे दम में दम है, जब तक मेरे अन्दर प्राण है तब तक तुम्हें कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। स्त्रियों द्वारा इसी भाव का कथन कुछ इस प्रकार होता है - आओ तुम्हें अपने हृदय में छुपा लूं ,

तुम्हें आंखों छुपालूं जहां कोई तुम्हें कष्ट न दे सकेगा, तुम्हारे ऊपर अपने आंचल की छांव करके तुम्हें संसार की सारी परेशानियों से बचा लूंगी । व्यवहारिक रूप में - मैं तुम्हारा हर दु:ख बंटाने का प्रयत्न करूंगा, तुम्हारे कष्ट को भरसक दूर करने का प्रयत्न करूंगा, आदि वाक्य कहे जाते हैं।

--- रजिया ने उसे छाती से लगा कर कहा " क्यों रोती हो बहन , वह चला गया तो मैं तो हूं किसी बात की चिन्ता मत कर ।

(पृष्ठ २३५ " सौत " प्रेमचन्द,मानसरोवर भाग ३)

--- मुरली : (उठकर मनोहर की पीठ पर हाथ फेरता हुआ) हिम्मत से काम लो मनोहर, अम्मा नहीं है तो क्या हुआ हम तो है । तुम क्यों चिन्ता करते हो ? (पृष्ठ ११ , काले कौए , गोरे हंस, विनोद रस्तोगी)

घ विषय परिवर्तन द्वारा दु:ख का परिहार करना :-

दु:खी व्यक्ति का ध्यान दु:ख से हटाकर इधर ऊपर लगा कर, उसका मनोरंजन करके भी उसके दुख को दूर करने का यत्न करते हैं। यह करूणा प्रदर्शन का अप्रत्यक्ष ढंग है। बच्चों पर इसका उपयोग अधिक होता है। बच्चा जब गिर कर चोट लगाकर रोने लगता है तो मां कहती है " देखो देखो तुमसे दब कर चीटीं मर गयी " और बच्चा रोना भूलकर चीटी खोजने लगता है। यह तो इस शैली को स्पष्ट करने के लिये एक साधारण सा उदाहरण है। गम्भीर स्थिति जैसे मृत्यु आदि में भी संवेदना प्रकट करने के साथ साथ लोग कहते हैं - तुम्हें अभी बहुत कुछ करना है , कब तक यों मन मारे बैठे रहोगे जाने वाला तो चला गया, अब इस बच्चे की ओर देखो इसे तुम्हें ही सम्भालना है, देखो इतने लोग तुम्हारा मुख देख कर जी रहे हैं इनका तो ख्याल करो । दूसरों की परेशानियों के कष्टों के दृष्टान्त देकर भी किसी की पीड़ा को शान्त करने का यत्न किया जाता है । जैसे तुम्हारा तो नुकसान ही हुआ , अमुक व्यक्ति की ओर देखो उसका तो सब कुछ स्वाहा हो गया, तुम्हारे पास एक आंख तो है वह तो दोनों आंखों का अन्धा है ।

ङ- दु:ख में स्वयं भी सम्मिलित होना :-

सांत्वना एवं सहानुभूति की एक अधिक संवेदना पूर्ण शैली वह है जिसमें वाचिक रूप से किसी के हृदय की पीड़ा को अपने माध्यम से व्यक्त कर देते हैं। किसी के दर्द को ठीक ठीक समझ कर अनुभव करने उसे सहानुभूतिपूर्वक उसके सामने व्यक्त कर देना भी एक सांत्वना का कारण बन जाता है जैसे -

-- कितने दु:खी मालूम पड़ते हैं ये जमाने के सलूक से, अपने प्यार के मिट जाने से, बेचारे, ।(पृष्ठ २३ " ये लोग", एस०एम०शहनवाज,नवनीत अप्रैल १९६६)

-- बहुत चोट आयी उस्ताद जी ? मंगतू ने भर्राये स्वर में कहा ।

(पृष्ठ ३७ मीठा बारूद , नानक सिंह)

---(सांस लेकर), कितनी वेदना, कितना विषाद भरा है इस कविता में " एकाकी है यह जीवन इसमें मिलन- विछोह नहीं " बेचारे ने अपना जीवन ही आंक कर रख दिया है ।

(पृष्ठ २२" युग युग या पांच मिनट" भारत भूषण अग्रवाल)

निष्क्रिय सहानुभूति की यह शैली अन्य सब की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। दैनिक जीवन में लोग इसी प्रकार की सांत्वना देकर अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं किन्तु कभी कभी उपयुक्त पात्र द्वारा इस शैली का मार्मिक एवं हार्दिक प्रयोग हृदय को छूने की क्षमता रखता है ।

च- दु:खित व्यक्ति को औचित्य का ध्यान दिलाना :-

शोक सन्तप्त व्यक्ति को उसके औचित्य का ध्यान दिलाकर भी इसके दु:ख को कम करने का यत्न किया जाता है बाक्य की समझदारी, क्षमता एवं उसके उत्तरदायित्व का ध्यान दिला कर उसे धैर्य धारण करने का आग्रह रहता है तुम तो बुद्धिमान हो, समर्थ हो, तुम्हें यों अज्ञानियों की भांति रुदन करना शोभा नहीं देता , तुम पुरुष हो , दृढ़ हो , स्त्रियों की भांति क्यों व्याकुल हो रहे हो । रामायण में मुनि वशिष्ट ने भरत को समझाते हुए कहा है -

" हे महायशस्वी पुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो । बहुत हुआ अब शोक मत करो , महाराज का समय भी हो चुका था । अब विधि विधान से उनकी अन्त्येष्टि करने क्रिया करो ।

छ- आलम्बन की हित कामना का ध्यान दिलाना :-

यदि शोक का कारण किसी प्रिय एवं निकटवर्ती की मृत्यु हो तो आलम्बन की हित कामना का स्मरण कराके शोक के शमन का आग्रह रखता है। जैसे- तुम्हारे रोने से दिवंगत की आत्मा को कष्ट होगा, शोक संताप करने से मृतप्राणी का भला नहीं होना आगे जो काम है उसे करो, जो मार्ग वो तुम्हें दिखा गये हैं उस पर आगे बढ़ो, जो कार्य वे अधूरा छोड़ गये है उसे पूरा करो, उनके विचारों एवं सिद्धान्तों कापालन करो, उनकी आत्मा सुखी होगी, वो स्वर्ग से तुम्हें आशीर्वाद देंगे *,आदि।

ज- आलम्बन के यशस्वी एवं सफल जीवन का उल्लेख :-

आलम्बन के यशस्वी जीवन की प्रशंसा करके उसके लिये शोक करना निरर्थक बताते हैं। जैसे - उन्होंने अपने सारे कर्तव्य पूरे कर लिये, जीवन का हर सुख उन्होंने भोग लिया। उनके लिये रोना व्यर्थ है। दशरथ की मृत्यु पर शोक सन्तप्त परिजनों को सांत्वना देने के लिये वशिष्ट ने भी कुछ इसी प्रकार का उपदेश दिया-

तात राउ नहीं सोचै जोगू। बिढ़ई सुकृत जस कीन्हे भोगू।
जीवन सकल जनम फल पाये। अंत अमर पति सदन सिधाये।।

× ×   × ×   × ×   × ×   × × × × ×

सब प्रकार भूपति बड़ भागी, बादि बिषाद करिअतेहित्यागी।

झ- नियति और भाग्यवाद का स्मरण कराना :-

उपयुक्त हेडिंग्स के भांति ही व्यक्ति को नियति और भाग्यवाद का स्मरण कराके उसे शोक न करने का आग्रह रखा है। सांत्वना देने में इसका प्रयोग बहुत अधिक होता। व्यक्ति का व्याकुल चंचल मन नियति एवं भाग्यवाद के सामने स्थिर और शान्त हो जाता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार समानज द्वारा प्रदर्शित सहानुभूति संन्तप्त प्राणी के लिये उसके महत्व की प्रदर्शिका बन जाती है। सहानुभूति प्रदर्शन में प्रकट उसका महत्व उसकी अंहवृत्ति की सन्तुष्टि का कारण

होता है जिसके फलस्वरूप वह शान्ति प्राप्त कर लेता है। ऐसे अवसरों पर प्राय: मनुष्य भाग्यवाद का सहारा लेता है जिसे करुण मनोभावों को सह्य बनाने का साधन कहा जा सकता है। जब तक प्रकृति विजय के साधन अपूर्ण हैं, तब तक दरिद्रता यौनि, अनाचार, विक्षिप्त दशा, पाप तथा युद्ध जैसे सामाजिक समस्याओं के लिये प्रभावशाली साधन नहीं मिलता है तब तक त्याग की भावना चाहे भाग्य के लिये हो अथवा ईश्वर के प्रति मानसिक शान्ति के लिये निकटतम मार्ग है।[1] जैसे -

--(मगंगू की आंखों में आंसू आ जाते है)

मगंगू : सरकार भगवान पर विश्वास रक्खे। जो कुछ भाग्य में है वह होगा। मोहन अभी बिलकुल बच्चा है।

(पृष्ठ १०६, मैं और केवल मैं , भगवतीचरण वर्मा)

--निर्मल : (समझाता हुआ) भगवान की इच्छा के आगे किसी का वश नहीं चलता। आप लोगों को धीरज से काम लेनाचाहिये। होनी को कोई टाल नहीं सकता।

इसी प्रकार विधि के आगे किसी का वश नहीं चलता , विधि का विधान सर्वोपरि है, भाग्य का लिखा कोई मिटा नहीं सकता नियति पर किसी का वश नहीं है, करम गति टारे नाहि टरे , हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि-हाथ, आदि वाक्य दूसरे को सांत्वना देने के लिये कहे जाते हैं। प्रौढ़ एवं अनुभवी तथा गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति इसका प्रयोग अधिक करते हैं।

वैराग्य का उपदेश देना :-

इसी प्रकार शोक संतप्त व्यक्ति को सांत्वना देने को लिये वैराग्य

---

1. So long as tools and technique for the mastery of nature are lacking, so long as there is no effective solution for the sociol problem of poverty, injustice, insanity, crime, and power the attitude of resignation be it to fate or the will be God is the shortest way to peace of mind.

— Ency of Sociol Sc's, Macmillion & Co New York – Ed- 1935.

का उपदेश भी देते हैं - जीवन के प्रति व्यर्थ मोह न करो, संसार क्षणभंगुर है, जीवन भी क्षणभंगुर है, फिर उसके लिये मोह कैसा। मृत्यु से केवल शरीर का नाश होता है - आत्मा तो अजर अमर है, सुख दु:ख को समान समझो, आदि वैराग्यपूर्ण वाक्य सांत्वना देते हैं। वैराग्य के स्थान पर जीवन-मृत्यु के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रदर्शन भी होता है।

उपर्युक्त शैलियों के अतिरिक्त परम्परागत लोकाचार, सामाजिक व्यवहार रीति आदि का ध्यान दिला कर व्यक्ति के दु:खित मन को धैर्य देने का यत्न होता है।

५-६ शोक या दु:ख

शोक और भाषा :- शोक का शुद्ध रूप मिलना लगभग असम्भव है जिसमें वह अन्य भावों से स्वतन्त्र हो, तथापि जहाँ किसी भी अन्य भाव की अपेक्षा शोक अधिक प्रधान रहता है उसे ही शुद्ध शोक की अभिव्यक्ति मानना पड़ेगा। कुछ मन:स्थितियों जैसे, ग्लानि, सन्ताप त्रास, वैराग्य, वेदना, उदासी, निराशा, व्याकुलता, पीड़ा, जड़ता, उन्माद आदि में भोक्ता अन्य भावों की अपेक्षा शोक का अनुभव ही अधिक करता है। शोक, दु:ख या पीड़ा का वाचिक अभिव्यक्ति से कैसा और कितना सम्बन्ध है यह एक जटिल प्रश्न है। जेस्पर्सन ने भाषा और शोक का सम्बन्ध बहुत शिथिल माना है।[1] वास्तव में शोक का गहन गम्भीर भाव वाणी के माध्यम से बहुत सीमित रूप में ही व्यक्त हो सकता है किन्तु केवल गहन गम्भीर भाव की अभिव्यक्ति ही दुष्कर है/साधारण रूप से मिली हुई कोई भी पीड़ा अथवा दु:ख (शारीरिक अथवा मानसिक) सरलता से भाषा के माध्यम से व्यक्त हो सकती है यह अलग प्रश्न है कि उस पीड़ा या शोक को कितने संवेद्य रूप में

---

1. The genesis of language is not to be sought in the prosaic, but in gloomy seriousness but merry play and youthful hilarity — Jespersen

भाषा व्यक्त कर सकी । यह व्यक्ति की अभिव्यक्ति की क्षमता पर निर्भर करता है। साहित्य का आधार भण्डार पीड़ा या शोक की चेतन अभिव्यक्ति से ही भरा हुआ है । प्राय: शोक की अभिव्यक्ति अचेतन स्तर पर ही भाषा के माध्यम से हो जाती है। आकस्मिक रूप से मिले कष्ट की प्रतिक्रिया भाषा के माध्यम से विस्मयादि बोधक शब्दों के माध्यम से ही जाती है इसके लिये व्यक्ति को प्रयास नहीं करना पड़ता है। " भय शोक " शीर्षक के अन्तर्गत इस पर विचार हो गया है अत: अब यहां इसे दोहराया व्यर्थ है। किसी भी भाव से सम्बन्धित साधारण प्रश्न कथन, आत्मस्वीकृति , वर्णन, आज्ञा या विस्मयादिबोधक शब्द अपनी उच्चारणगत विशेषता के कारण शोक को व्यक्त कर सकते हैं । किसी भी भाव से सम्बन्धित अभिव्यक्ति में कुछ परिवर्तन करके उसे शोक अथवा पीड़ा की अभिव्यक्ति मानी जा सकती है। अत: स्पष्ट है कि भाषा से अधिक कंठस्वर का विशिष्ट उतार चढ़ाव शोक के प्रकाशन में सहायक होता है ।

शोक एवं शारीरिक अभिव्यक्ति :-

कंठस्वर पर विचार करने से पूर्व शोक की शारीरिक अभिव्यक्तियों पर भी एक दृष्टि डालना उचित होगा । वैवर्ण्य , रोमांच, अश्रुपात आदि साधारण अनुभाव गिनाये गये हैं । गहरी सांस लेना, लम्बी सांस लेना, ठण्डी सांस लेना, निश्वास लेना, आहें भरना, ठण्डी उसांसे भरना आदि, केवल श्वास के आधार पर ही शोक को व्यक्त करने की कुछ रीतियां हैं। इन शब्दों का प्रयोग अपने दु:ख की अभिव्यक्ति के लिये करते हैं और दूसरे के शोकपूर्ण स्थिति के वर्णन के लिये मुहावरों के रूप में भी इनका प्रयोग होता है। श्वास के अतिरिक्त नेत्रों के द्वारा भी शोक की बड़ी सशक्त व्यंजना होती है जैसे - उदास दृष्टि से देखना, आंखें डबडबाना, आंखों में पानी भर उठना, आंखों में आंसू आ जाना, आंखें गीली हो जाना, आंखें धुंधला जाना, अनिमेष दृष्टि से देखना, आंखों में नमी आ जाना, आंखें भीगी हो जाना, आंसू छलछला उठना, सूनी सूनी दृष्टि विषाद भरी दृष्टि , वेदना भरी दृष्टि,आदि अनेक इस ओर किये जाते हैं । इसके अतिरिक्त मुखाकृति की कुछ और विशेषतायें भी हैं, चहरे मुरझाना, होंठ भींचे पड़ना, होंठ कांपना, हाथ सिर पर मारना, पछाड़ खाकर गिर पड़ना,

मुख काला पड़ना, मलिन मुस्कान , सिर थाम कर बैठ जाना, ओंठ चबाना, सर नीचे झुक जाना, शरीर शिथिलता ठुड्डी का थरथराना, पैर लड़खड़ाना, चेहरा फीका पड़ना, हाथ मलना, आदि कुछ अन्य संकेत भी है जो कि एक ओर व्यक्ति के शोक को व्यक्त करते हैं दूसरी ओर दूसरे की स्थिति के वर्णन में मुहावरों के रूप में प्रयुक्त होते हैं । " शोक की शारीरिक अभिव्यक्ति में भी भिन्न भिन्न देशों एवं जातियों की रीतियों में अन्तर पाया जाता है, यही नही यह अन्तर कालगत भी होता है। युग ने माना कि यौरप में मध्य विक्टोरिया युग से आज रोने का ढंगपरिवर्तित हो चुका है । अपने यहां भी सिद्ध साहित्य के अन्तर्गत शोक प्रकाशन के समय हाथ उठाने एक दो प्रसंगों की चर्चा हुई है किन्तु इस प्रकार की कोई प्रगति धार्मिक काल में परिलक्षित नहीं होती है। धार्मिक काल में छाती पीटने का वर्णन हुआ है। स्त्री पुरूष प्रकाशन रीति में भी अन्तर पाया जाता है । पुरूष प्रायः सिर पीटते है तो स्त्रियां छाती पीटती है। पुरूष अश्रुमोचन के समय आंसे मीढ़ते हैं तो स्त्रियां प्राय: छाती पीटती है। पुरूष अश्रुमोचन के समय आंसे मीढ़ते है तथा आंसे वस्त्रादि से पोंछते हैं जाते हैं किन्तु स्त्रियां प्राय: इन क्रियाओं को नहीं करती है पुरूष शोक में इधर उधर घूमता है किन्तु स्त्रियां स्थान बदलना उचित नहीं समझती है ।[१]

शोक और कंठस्वर :-

साधारण व्यवहार में हम कंठस्वर के द्वारा दूसरे के हृदयगत भावों को समझ लेते हैं। किन्तु उपन्यास एवं कहानी के पात्र जब कंठस्वर के माध्यम से शोक व्यक्त करते हैं तो लेखक को स्वयं अपनी ओर से उसका स्पष्टीकरण करना पड़ता है। कभी कंठस्वर की विशेषता शब्दों में बांधा जा सकता है कभी भी नहीं जैसे- -- सुधान ने सहसा मुंह फिरा लिया, न जाने कैसे स्वर में कहा था" नहीं भूली हूं । इसीलिये मैं जा रही हूं । (पृष्ठ ८८ बिखरे मोती विमल देव) नवनीत १९६५

१- पृष्ठ ३३ आंसू एवं, डा० कृष्णाजी लाल श्रीवास्तव

कभी कभी कंठस्वर की विशेषता को शब्दों में बाधा जा सकता है। इसके लिये अनगिनत शब्दों का प्रयोग होता है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं जैसे
--- रंजन : (वेदना से) मुझे ? मुझे बहुत कुछ हो गया है ? (पृष्ठ ७४)
--- रंजन : (ऐसे स्वर में जिसमें विषाद की झलक स्पष्ट है) मैं क्या देखूं माई, मैं तो पत्थर की बटूटी हूं किसी ने अपना लिया तो सालिगराम नहीं तो पत्थर का पत्थर।

(पृष्ठ ८१ " रोशनी " ~~रेखती~~ चरन शर्मा)

-- पुजारी दर्द भरी वाणी में बोले " इतने निर्दयी न हो बेटा उस दुखिया पर तरस खाओ। (पृष्ठ ४२ " गंगा " निर्गुण)

--- वेदना से संदीन का मुखमाला पड़ गया, व्यथित स्वर में कहा " दिमाग तो मेरा ही खराब है प्रभा तभी तो --------"

(पृष्ठ ११६ " सकरी राहें " , सोमावीरा)

-- यह कहते कहते उसकी आवाज इस तरह कांपने लगी जैसे किसी पानी भरे बर्तन की आवाज। पृष्ठ ११५, तिरशूल (गुप्त धन) प्रेम चन्द)

दुःख में कंठस्वर में एक अतिरिक्त गहनता आ जाती है। स्वर में गूंज पैदा हो जाती है एवं ध्वनि- उच्चारण हृदय से होता है। लेखक द्वारा कभी कभी इस और भी संकेत रहता है। जैसे -

--- शंकर (गम्भीर स्वर) तुम्हें शायद पता नहीं कि मालती अब इस दुनिया में नहीं है (तारा सहसा कांपती है, प्याला गिरते गिरते बचता है)

(पृष्ठ २२, डॉक्टर और आंसू " विष्णु प्रभाकर)

दुःख एक प्रकार की शिथिलता उत्पन्न करता है। कंठस्वर पर भी इस शिथिलता का प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति अपेक्षाकृत धीरे धीरे बोलता है जब कि क्रोध एवं भय में व्यक्ति शीघ्र और अधिक बोलता है। प्रायः गम्भीर एवं अन्तर्मुखी स्वभाव के व्यक्ति शोक में धीरे धीरे बोलते हैं -
-- श्री०केदार : (धीरे धीरे) डाक्टर सारा कसूर मेरा है। मैंने ही तुम्हें रस देने की वकालत की। ओह।

--- धीरे बोली परम दु:ख से जीवन धार आवो
दोनों भैया मुख शशि हमें लौट आके दिखावो । - हरिऔध

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त स्वर का भर्रा जाना और रुँध हो जाना भी शोक का एक रूप है जो साहित्य एवं साधारण व्यवहार दोनों में ही बहुल मिलता है -

--- वह मुस्काती पनीली आँखों से देख कर भर्राये स्वर में बोली - " हम लोग गरीब भी तो हैं "

--- मुकुन्द दास का सिर झुक गया । उन्होंने भर्रायी आवाज में कहा " उन्होंने बघेला सरदार को मार डाला, और मेरे प्यारे भतीजे को भी जिसके कंगन भी अभी नहीं खुले थे ।

(पृष्ठ ६२ " दरबार की रात " चतुरसेन शास्त्री)

--- भोला रुँधे कण्ठ से कहने लगा " बाबा मेरी कहानी ,मेरी कहानी ।

(पृष्ठ ११६ " भोले के मामा " राजेन्द्र सिंह बेदी,नवनीत जनवरी ६१

--- जीवन : (रुद्ध कंठ से) मुझे क्षमा कर दो । मैने तुम लोगों के प्रेम को ठुकराया है। (पृष्ठ ५५,ईमान का सौदा - विनोद रस्तोगी)

" स्वर भंग " और " हकलाहट " :-

कंठस्वर की शोक की वाचिक अभिव्यक्ति में सबसे स्वाभाविक स्थिति स्वर भंग की है । स्वर भंग के दो रूप मिलते हैं - पूर्वस्वरभंग या स्वरावरोध एवं पश्चात स्वरावरोध । कभी तो व्यक्ति कुछ कहना चाहता है और वह नहीं पाता तथा कभी कुछ कहते कहते रुक जाता है । पहली स्थिति को कंठस्वरोध एवं दूसरी को स्वर भंग कहना अधिक उचित होगा ।

पूर्वस्वर भंग एवं स्वरावरोध के कुछ उदाहरण -

--- कंठ में अटकते बोलों को अटकने का व्यर्थ सा प्रयास करते हुये कहा उसने "कोठी जायी थी पुना ?

(पृष्ठ ११७ ,अंधेरी रातें ,सोमावीरा)

-- गले में कुछ अटक गया था । थूक निगल कर विनोद ने स्वर को सहज बना कर कहा - "युनाइटेड स्टेट्स जा रहा हूं उर्मि । " (दो फूल एक जिन्दगी ", नवनीत जुलाई १९६७)

भाषागत अभिव्यक्ति में पूर्वस्वरावरोध या कंठावरोध अभिव्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं डालता किन्तु बाद में हुए स्वर भंग से भय की वाचिक अभिव्यक्ति जैसी हकलाहट आ जाती है । किन्तु दोनों स्थितियों में अन्तर रहता है । भय की स्थिति में "हकलाहट " शारीरिक जड़ता का फल है और शोक में हकलाहट मानसिक विभ्रम का फल है जैसे -

- राकेश : (रुका सा) तो सुशीला तुम...... तुम...... ।
- तब ....तब.....मेरा क्या होगा । वह जैसे शून्य से पूछती है ।

(पृष्ठ २१ "डर" गोपाल उपाध्याय", धर्मयुग ७ नवम्बर १९६५)

- लक्ष्मीदास : (अत्यन्त मराते हुए एवक टूटते हुए शब्दों में) बेटा....बेटा ....(चिट्ठी दिखाते हुए मानो शब्दों में कुछ कहने की हिम्मत नहीं)

यह.....यह.....चिट्ठी.....चिट्ठी । खड़े न रह सकने के कारण चौका पर गिर जाता है (पृष्ठ १२५ ग़रीबी-अमीरी, गोविन्ददास)

- कमला : (रुंधे कण्ठ से) पिता जी....पिता जी का क्या होगा ? तुम जानते हो मेरे सिवा उनका कोई नहीं है । उनका मुझ पर कितना स्नेह, कितना स्नेह है और मैं....मैं भी उन्हें कितना चाहती हूं यह तुमसे छिपा नहीं है ।

(पृष्ठ २० गरीबी-अमीरी)

क्रोध में भी "हकलाहट " की स्थिति मिलती है किन्तु वहां स्वर भंग शारीरिक जड़ता एवं मानसिक विभ्रम से नहीं वरन् आवेश के कारण भाव एवं भाषा का सम्बन्ध टूट जाने से होता है ।

कभी कभी दुःख की वाचिक अभिव्यक्ति में भाषा अस्पष्ट एवं फुसफुसाहट में बदल जाती है । प्राय: शोक में शारीरिक शैथिल्य के कारण वाक्य फुसफुसाहट से लगते हैं । ऐसे आंशिक प्रलाप एवं आंशिक कथन स्वगत कथन के रूप में उपन्यास एवं कहानियों में मिलते हैं -

- "त्याग ?" मदूवी के ओंठ फुसफुसा उठे । फिर कितने क्षण कष्टदायी चुप्पी । उसके ओंठों में फिर कंपकपी होती है ।

(पृष्ठ १६ "दुर्घटना" उग्रसेन गोस्वामी , नवनीत, अक्तूबर १९६६)

- प्रतिमा : (तीव्र उत्कण्ठा दबाते हुए) अब क्या आयेंगे ? (निराशा का अस्फुट स्वर)

(पृष्ठ २७ "सोहाग बिन्दी " गणेश प्रसाद द्विवेदी)

इसके विपरीत कभी कभी शोक में कंठस्वर में अस्वाभाविक तीव्रता आ जाती है विशेषकर आकस्मिक अनुभूति पर ।

- हाम्स के अन्तर से एक चीख निकली जैसे कोई जानवर मरने से पहले चीखता है । उसने दोनों हाथों से अपना चेहरा ढक लिया और लड़खड़ाता हुआ अपने कमरे से बाहर निकल गया ।

(पृष्ठ १२२, "अपराजिता " समरसेट माम, नवनीत मार्च १९६६)

- गंगाधर चिल्ला पड़े "मनुष्यता की रक्षा में आहुति देने वाला यह प्राणी संसार से मुस्कराते हुए विदा ले रहा है रघुनन्दन बाबू " उनकी आंखें छलछला आयी)

(पृष्ठ २०५ लोक परलोक उदयशंकर भट्ट)

वास्तव में शोक में विह्वल व्यक्ति इतना आत्मविस्मृत सा हो जाता है कि अनैच्छिक मांस पेशियों पर भी उसका वश नहीं रह जाता और कंठस्वर नियन्त्रण से बाहर हो जाता है ।

५.६.४ उच्छ्वासयुक्त कथन :-

शोक की भावागत अभिव्यक्ति का सबसे स्वाभाविक रूप उच्छ्वास के साथ साधारण कथन है । इस प्रकार के कथनों में वक्ता का अभिप्राय कभी तो भाव प्रकाशन रहता है और कभी अनजाने में ही उच्छ्वास पूर्ण कथन शोक व्यक्त कर देते हैं - जैसे

जैसे -

- कोई बात नहीं (लम्बी सांस) अच्छा मामी ... मैं चलूं (धीमा स्वर एवं धीमा संगीत) (नदी प्यासी थी 'धर्मवीर भारती, गुरुलक्ष्मी कार्यक्रम) ४-५-६८)

- एक सांस भर कर बोले "परन्तु मैं कर क्या सकता हूं उपेन्द्र मैं कर ही क्या सकता हूं।" (पृष्ठ ४५ सोमाबीरा, अधूरी गांठें)

- माँ: (एक गहरा नि:श्वास) नहीं आया...... वह आज भी नहीं आया गाड़ी आ चुकी, टांगे आ चुके, मोटर भी आ चुकी पर मैं.....मैं अभागिन आंखें बिछाये रही.....। ('नये-पुराने' विष्णु प्रभाकर)

कभी कभी कथन के बीच का विराम भी 'उच्छ्वास' के साथ जुड़ जाता है। इससे वाक्य में अनावश्यक विराम आ जाता है। किन्तु यह विराम हकलाहट नहीं वरन् शैथिल्य जन्य है।

- राजमाता : (लम्बी सांस) तब.......तब तो वसूली न होगी।
(पृष्ठ ८० 'सप्तरश्मि' गोविन्द दास)

- रत्नी : (निश्वास) मैं अब क्या करूं ? कैसे भैया को इससे मिलने से रोकूं। आदमी ने अपने को क्या.... क्या बना लिया है।
(पृष्ठ २१३ 'सांप और सीढ़ी' विष्णु प्रभाकर)

५.६.५ शोक की एक शब्दीय अभिव्यक्ति :-

क्रोध एवं भय की भांति ही दु:ख की भी एक शब्दीय अभिव्यक्ति हो सकती है। कभी कभी व्यक्ति एक आध शब्द कह कर रुक जाता है। उसी एक शब्द में उसके हृदय की सम्पूर्ण पीड़ा व्यक्त हो जाती है।

- च० : निर्झरिणी! .... गला भर आता है।
(पृष्ठ ९८३ 'पूर्वार्द्ध' कमलाकान्त वर्मा)

एक शब्द के बाद का विराम कंठावरोध के कारण होता है कभी तो व्यक्ति इतना भाव के वशीभूत हो जाता है कि उसके पास और कुछ कहने को ही नहीं रह

आता है । यह एक शब्द प्राय: संज्ञा रहती है । परन्तु तीनों भावों की संज्ञा के इस उच्चारण में बहुत अन्तर रहता है । क्रोध में यह उच्चारण बलाघात युक्त एवं अपने में पूर्ण होगा अर्थात् वक्ता को इस विशिष्ट उच्चारण के बाद कुछ कहना शेष नहीं रह जायेगा जैसे 'राम' । प्रेम में इस उच्चारण में शब्द के प्रथम और अन्तिम भाग पर हल्का सा बल पड़ेगा जैसे राम । विस्मय में बीच में स्वर को खींच कर उच्चारित करेंगे जैसे 'रा ऽऽ म' । शोक में प्रथम अक्षर पर बल पड़ेगा और शेष का फुसफुसाहट के रूप में उच्चारण होगा । ध्वनि, क्रमश: धीमी होती जायेगी । यदि शब्द लम्बा है तो प्रथम दो अक्षरों पर हल्का बल पड़ेगा ।

५.६.६ शोक में हास्य :

दुख या शोक की भाषागत अभिव्यक्ति प्राय: 'हास' के साथ भी होती है । यद्यपि हास एवं शोक अपनी मूल प्रकृति की दृष्टि से परस्पर विरोधी है तथापि कभी अपने भावों के छिपाने, पीड़ा के प्रति निर्लिप्तता प्रदर्शित करने अथवा पीड़ा को हल्का करने के प्रयास में हास का मिश्रण शोक के साथ वाचिक अभिव्यक्ति के स्तर पर मिलता है । व्यवहारिक जीवन में भी 'करुण मुस्कान', 'दर्द भरी हंसी', 'मलिन मुस्कान' प्राय: देखने को मिलती है । कभी कभी हृदय में ही एक या एक से अधिक भावों की संयोजना इस प्रकार हो जाती है कि व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति के प्रति स्वयं कोई रुख निश्चित नहीं कर पाता । आयु के साथ साथ इस प्रकार की जटिलता बढ़ती जाती है ।[१]

साधारणत: गम्भीर संयत परिपक्व स्वभाव के व्यक्तियों की शोक की भाषागत अभिव्यक्ति में हास का योग रहता है । इस हास्य में क्षोभ रहता है -

---

१- "With the fuller development of mental structure the adult man learns to know 'sweet sorrow', joys touched with pain, hope deferred that maketh the heart sick, and strong webs of melancholy mirth, his sincerest laughter with some pain is fraught." x x x x x "In short the grown man no longer is capable of the simple feeling of the child because he has learned to look before and after and pine for what is not"-

W. McDougall - Emotional Feelings Distinguished.

- मंगलू हंस दिया - यह दूसरी बात तो खूब कही मास्टर जी भला मेरे जैसा आदमी जो खुद मुंह के बल न गिर पड़ा हो दूसरों को क्या उठायेगा (गीली बारूद - नानक सिंह)

- दामोदर : (हंस कर) दिवाला निकलने के बाद भी कोई देता है सब खा गये होंगे। सम्मिलित परिवार है। (कभी हंसता है कभी गुमसुम होकर देखने लगता है)

शोक के साथ हास्य का एक विशिष्ट रूप होता है। जैसे क्रोध के साथ हास्य व्यंग्य के रूप में आता है वैसे ही शोक के साथ भी। अन्तर मात्र इतना है कि क्रोध में व्यंग्य दूसरे के प्रति होता है और शोक में स्वयं अपने प्रति, अपने भाग्य के प्रति।

शोक की उन्मादावस्था में भी कभी कभी हास मिलता है किन्तु वह हास अस्वाभाविक एवं अचेतन स्तर पर होता है तथा मानसिक अस्वस्थता का प्रतीक है।

- (अचानक तीव्र संकीत उठता है) मैं कहती हूं मेरी तरफ मत बढ़ो। मैंने पाप किया है। हट जाओ, जाओ, जाओ। हा....हा.... हा मैं पापिन हूं हा....हा...हा अचेत हो जाती है।

(मन के कोने ` शिवशंकर वशिष्ठ श्यामछल: कायाकल्प विवाह...)

५.६.७ शोक में प्रयुक्त विशिष्ट वाक्य (बैन या विलाप)

अन्य भावों की भाषागत अभिव्यक्ति भांति ही विषाद की भाषागत अभिव्यक्ति में कुछ विशिष्ट प्रकार के वाक्य पाये जाते हैं जिनका प्रयोग मात्र शोक की अभिव्यक्ति में होता है। व्यवहारिक भाषा में इन्हें `बैन ` कहते हैं, यद्यपि बैन अपने रूढ़ अर्थों में कुछ निश्चित वाक्य है जिनका प्रयोग ग्रामीण स्त्रियां किन्हीं विशेष शोक के अवसरों पर करती है (जैसे मृत्यु, कन्या की विदाई, आदि पर)। इनके रूप सुनिश्चित होते हैं। इन के अतिरिक्त जीवन में दु:ख आने पर व्यक्ति जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण अपना लेता है और समय-असमय, दूसरे से बात करते समय अथवा स्वगत कथन के रूप में कुछ विशेष वाक्यों द्वारा अपनी पीड़ा व्यक्त करता है। इन वाक्यों की कोई शैली नहीं है। मात्र विषय के आधार पर ही इन्हें वर्गीकृत किया जा सकता है।

५.६.७क जीवन के प्रति अरुचि एवं मृत्यु कामना :-

दु:ख मनुष्य में जीवन के प्रति वितृष्णा जागृत कर देता है। वह भाषा के माध्यम से भी अपनी अरुचि का प्रदर्शन करता रहता है। इन वाक्यों का रूप व्यक्तित्व के आधार पर परिवर्तित होता रहता है। अत: प्रत्येक रूप को यहाँ देना असम्भव है। उदाहरणस्वरूप विषय को स्पष्ट करने के लिये कुछ वाक्य दिये जा सकते हैं जैसे - अब जी के क्या होगा, अब किस आशा पर जीयूं, जिन्दगी पहाड़ हो गई है, जीवन बोझ हो गया है, मेरा जीवन व्यर्थ है, मैं जी कर क्या करूंगा, इस जीवन से तो मौत ही अच्छी है - हे भगवान तू मुझे उठा ले, मुझे मौत भी नहीं आती, आदि। इसके अतिरिक्त मृत्यु के प्रति रुचि लेना एवं आत्महत्या की इच्छा प्रकट करना भी इसी श्रेणी में आयेगा जैसे - हम प्राण दे देंगे। जीवन का अन्त कर देंगे। कभी कभी मृत्यु कामना स्पष्ट न होकर निर्वेद एवं वैराग्य के भावों में प्रच्छन्न रूप से सम्मिलित रहती है जैसे निम्नलिखित वाक्यों मे - कब तक इस झूठी आशा के सहारे इस जीवन से चिपका रहूं, इस संसार में मेरे लिये अब क्या रह गया है, जीवन में अब कुछ सार नहीं रह गया है, आदि। कुछ थोड़ा बहुत अन्तर के साथ इन्हीं वाक्यों का प्रयोग होता है।

वास्तव में 'बैन' शब्द का तात्पर्य हिन्दी में उन वाक्यों से है जिनमें आत्महीनता, आत्मदैन्य और निराशा की अभिव्यक्ति होती है, जैसे - छाती फटती है, कलेजा छिलता है, अब सहा नहीं जाता, मेरी तो किस्मत फूट गयी, मैं तो उजड़ गया, हम तो लुट गये, मेरा तो संसार उजड़ गया, मेरी दुनिया लुट गयी, मैं बर्बाद हो गया, मेरी तो दुनिया उजड़ गयी, संसार उजड़ गया, इधर की दुनिया उधर हो गई, जिन्दगी दूभर हो गई, सारे जीवन भटकना ही भटकना है, क्या सोचा था क्या हो गया, मुझ सा अभागा और कौन होगा, सारी आशायें धूल में मिल गयी, अरमान मिट्टी में मिल गये, सारे सपने टूट गये आदि।

५.६.७ख भाग्य एवं ईश्वर पर दोषारोपण :-

शोक ही एक ऐसा भाव है जिसमें सबसे ज्यादा व्यक्ति ईश्वर एवं भाग्य को याद करता है, सम्भवत: निर्वेद से भी अधिक। 'बैन' की एक अलग श्रेणी बनाई जा सकती है जिसमें ईश्वर, विधि एवं भाग्य को सम्बोधित किया जाता है। इसका

दृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार है। एक कारण तो यह है कि दुर्भाग्य को ईश्वर को समर्पित कर देने पर वह सह्य बन जाता है, व्यक्ति का मन उसे नियति मान कर धैर्य धारण कर लेता है।[१] इसके अतिरिक्त एडलर के अनुसार भाग्यवाद मानव की हीन भावना ग्रन्थि का प्रकाशन मात्र है। भाग्यवाद के स्वर में वह यह दिखाना चाहता है कि वह संसार से किसी प्रकार भी कम नहीं था यदि भाग्य ने ऐसा प्रतिकूल विधान उसके साथ न किया होता। अत: कहा जा सकता है कि उसके अभाग्य के मूल में गर्व रहता है।[२]

साधारण कथन के रूप में इस भाव की अभिव्यक्ति होती है जैसे - मेरा भाग्य ही ऐसा है मैं क्या करूं, मेरा भाग्य ही खोटा है, मैं अभागा हूं, मैं जन्म से अभागा हूं, मेरी भाग्य ही फूटी हुई है, मेरे नक्षत्र ही खराब है, मेरे गृह ही अशुभ है, मनहूस किस्मत लेकर पैदा ही हुआ हूं, आदि। स्त्रियाँ इसी भाव की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत कुछ अधिक अलंकारिक रूप में करतीं है जैसे - मैं तो जन्मजली हूं, भाग्य जली हूं, नसीब फूट गये, भाग्य में यही लिखा है।

भाग्य की भाँति ही ईश्वर एवं विधि को सम्बोधित करके उपालम्भ, प्रश्न, विनय, आदि की अभिव्यक्ति होती है। जैसे - ईश्वर किन अपराधों का दण्ड दे रहे हो, ईश्वर ही मेरे प्रति निष्ठुर हो गया है, पूर्व जन्म के किन कर्मों का दण्ड दे रहे हो, प्रभु मेरी थोड़ी सी खुशियां भी तुमको देखी नहीं गईं। तू बड़ा निर्दयी है आदि। कभी कभी 'हे भगवान' या 'हे ईश्वर' का उच्छ्वास के साथ उच्चारण अन्य विस्मयादिबोधक शब्दों की भाँति शोक की गहरी सशक्त अभिव्यक्ति करता है।

- -

१- Moral failure loses its power to crush, material loss becomes tolerable, if both can be attributed to a force behind human control."

(Ency of Social sces, Macmillan, Page 147).

2. Vanity is at the e root of their misfortune. Being unlucky is one way of being important." - Alfred Adler -

(Understanding Human Nature, Page 262).

५.६.७ ग भूत, वर्तमान एवं भविष्य को लेकर कहे गये वाक्य :-

'बैन' या दुखपूर्ण कथनों का तीन वर्गों में बांटा जा सकता है - प्रथम तो भूतकाल अथवा अतीत के सुख और मधुर क्षणों का स्मरण करना । दुख में तो मनुष्य अपने बीते सुन्दर दिनों को याद करता है । जैसे - आह वे दिन कितने सुन्दर थे जब हम दोनों साथ थे, यही वे नेत्र थे जो सदा स्नेह की वर्षा किया करते थे, कितना सुख और आराम था, आदि । कभी कभी वर्तमान के कष्ट के लिये अतीत को उत्तरदायी भी ठहराते हैं जैसे काश मैंने उस समय ऐसा न किया होता तो आज यह दिन न आते, मैंने क्यों उस निष्ठुर से स्नेह सम्बन्ध जोड़ा, वह कौन सा अशुभ क्षण था जब मेरा उनका साथ हुआ आदि । इसके पश्चात् वर्तमान दु:ख एवं कष्ट को लेकर कहे गये वाक्यों का स्थान है । इनमें उपर्युक्त भाग्यवाद, मृत्युकामना आदि सभी आ जायेंगे । भूत एवं वर्तमान के बाद भविष्य के प्रति आशंका के रूप में 'बैन' कहे जाते हैं जैसे - पता नहीं क्या क्या देखना पड़ेगा, कहां कहां भटकना होगा, दर दर की ठोकर खानी पड़ेगी अपने शत्रु के आगे हाथ फैलाना होगा, उससे दया की भिक्षा मांगनी होगी, सब का अपमान और तिरस्कार सहना होगा, जीवन नर्क हो जायेगा, आदि ।

व्यक्ति जब दु:खी रहता है तो सारी सृष्टि उसे दुख भरी दिखायी पड़ती है । वर्षा उसे रुदन के समान लगती है, ओस की बूंदें आंसू के समान लगती हैं, दिन रात उदास से लगते हैं । व्यक्ति जितना अधिक भावुक एवं संवेदनशील होगा इस प्रकार की अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक करेगा । कवियों के द्वारा इस प्रकार की उक्तियां बहुत कही जाती हैं ।

५.६.७ घ आलम्बन के गुणों का स्मरण :-

वास्तव में 'बैन' शब्द का प्रयोग किसी की मृत्यु पर किये गये विलाप के लिये होता है । इसके कई रूप एवं वर्ग हो सकते हैं । सर्व प्रथम तो आलम्बन का स्मरण करना उसके गुणों का कथन करना है । वह इतना महान था, इतना स्नेही था, इतना सहनशील था, वह दया ममता की मूर्ति था, आदि - प्राय: इन कथनों में अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा रहती है । यदि किसी बहुत निकट व्यक्ति की मृत्यु हो तो उसके साथ अपने मधुर सम्बन्धों का स्मरण, उसके साथ व्यतीत किये गये

जीवन के मधुर क्षण का स्मरण किया जाता है ।

५.६.७ ड - आलम्बन की क्षतिपूर्ति को असम्भव समझना :-

आलम्बन की क्षतिपूर्ति को असम्भव समझ कर व्यक्ति कुछ वाक्य कहता है जैसे - अब तुम्हारे बिना जीवन में और रही क्या गया, तुम नहीं तो यह जीवन किसके लिये है,मैं किसका मुख देख कर जियूं, कौन मुझे माँ कहेगा, किसके लिये मैं सांसारिक व्यवहार में लिप्त रहूं,आदि । व्यक्ति आलम्बन से सम्बन्धित सभी बातों को विनष्ट प्राय समझता है पति की मृत्यु पर पत्नी कहती है - तुम नहीं तो यह तुम्हारा दिया सुख वैभव सब व्यर्थ है, मैं अब किस के लिये शृंगार करूं, तुम्हें अमुक वस्तु कितनी पसन्द थी अब किसके लिये वह कार्य करूं,आदि । आलम्बन की क्षति से आलम्बन के अभाव की अनुभूति होती है - तुम्हारे बिना यह जीवन सूना हो गया । तुम अपने साथ मेरी सारी प्रसन्नता ले गये, मेरे सब सुख समाप्त हो गये, तुम्हारे ऊपर ही मैंने कितनी आशायें केन्द्रित कर रखी थी, मेरे जीवन की सारी खुशियां तुम से आदि ।

मृत्यु पर किये गये विलाप में उपर्युक्त भावों के अतिरिक्त भाग्यवाद, आत्म ग्लानि, करुणा, दैन्यआदि का भी मिश्रण रहता है । एक दो उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा ।

रावण ने राम की मृत्यु का झूठा समाचार सीता को दिया । सीता व्याकुल हो कर विलाप करती हैं । इस विलाप में एक साथ कई भावों की व्यंजना होती है -

- मुझ अभागिन के कारण, मुझ कुलघातिनी के कारण तुम्हारी मृत्यु हुई (आत्मग्लानि), निश्चय ही मैंने पूर्वजन्म में किसी के कन्यादान में बाधा डाली थी, जिसके फलस्वरूप इस जन्म में मुझे यह घोर दण्ड मिला (भाग्यवाद), रावण तू बड़ी कृपा करे यदि मुझे भी मार कर राम के ऊपर डाल दे (दैन्य), मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रहना चाहती, मैं पति की अनुगामिनी होऊंगी (मृत्युकामना) ।

शोक के अन्तर्गत कहे गये बैन के अन्तर्गत अन्य कई भाव एवं उपभाव भी आते हैं। इन्द्रजीत की मृत्यु पर रावण का विलाप उसे स्पष्ट करता है -

- हा पुत्र तुम कहां चले गये, अपने पिता को छोड़ कर क्यों चले गये(आर्तनिवेदन), एक इन्द्रजीत के बिना तीनों लोक एवं सारी पृथ्वी मुझे सूनी प्रतीत होती है, अब मैं किसका मुख देख कर जियूंगा, मैं जीवित नहीं रहना चाहता, मेरा जीवन व्यर्थ है (वैराग्य), ओह तुम्हारा वह यश और पौरुष और इन्द्र को हराने वाला तुम्हारा पराक्रम, तुम्हारी सुन्दर छवि (स्मरण), मैंने जो विभीषण को निकाल दिया यह उसी का फल है, उस हृदय को धिक्कार है जो तुम्हारे शोक में फट कर हजार टुकड़े नहीं हो जाता (ग्लानि) तुम्हारे क्रोध के सामने इन्द्र भी कांपता था, विश्वास नहीं होता कि एक मनुष्य ने तुम्हें मार डाला, निश्चय ही वह मनुष्य नहीं या तो वह स्वयं काल है अथवा यमराज (गुण कथन)।

उपर्युक्त उद्धरणों को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि शोक प्रधान होते हुए भी अनेक भाव उपभाव इसमें सम्मिलित रहते हैं अतः इनका क्रम निश्चित नहीं किया जा सकता यों भी मनुष्य की भावात्मक अभिव्यक्ति को लेकर कोई नियम नहीं बनाया जा सकता।

५.६.८ शोक की अभिव्यक्ति की कुछ अन्य शैलियां :-

व्याकरण की दृष्टि से शोक की भाषागत अभिव्यक्ति में प्रयुक्त वाक्यों में कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं रहती है क्यों कि इसमें आवेश उस सीमा तक नहीं जाता कि वाक्य रचना विश्रृंखलित हो जाये। प्रायः विषादपूर्ण कथन अन्य भावों के कथनों की अपेक्षा लम्बे एवं व्यवस्थित होते हैं, भाषा में विशृंखलता नहीं होती अधिकतर गम्भीर एवं अन्तर्मुखी स्वभाव के व्यक्तियों के विषादपूर्ण कथन लम्बे एवं अलंकृत होते हैं। इस तथ्य को व्यावहारिक जीवन में ही अनुभव किया जा सकता है। साहित्य में भी इसके उदाहरण मिल सकते हैं। किन्तु शोक में लम्बे कथन सामान्यतः स्थिति को व्यक्त करते हैं जब कि व्यक्ति अपने दुःख के प्रति तटस्थ दृष्टिकोण अपना लेता है।

शोक की भाषागत अभिव्यक्ति का एक अन्य दृष्टि से भी वर्गीकरण किया जा सकता है। वास्तव में यह शोक जन्य बन नैराश्य की वाचिक अभिव्यक्ति है। एक में कष्ट या पीड़ा को मुक्ति पाने की आशा रहती है, ऐसे वाक्य प्रश्न के रूप में होते हैं। पूरा कथन भले ही नैराश्य का सूचक हो किन्तु प्रश्न इस ओर संकेत करते हैं/मुक्ति की संभावना या आशा है अवश्य जैसे -

- हाय रे मन और तेरी वंचना, कब तक इसकी झूठी आशा के सहारे चिपका रहूँ।

- अब तो सहा नहीं जाता भगवान। कब छुटकारा मिलेगा इस दु:ख भरे जीवन से।

- हे ईश्वर पूर्व जन्म के किन कर्मों का इतना कठोर दण्ड दे रहे हो। कभी कभी प्रश्नात्मक वाक्य उन्माद या अति शोक की अवस्था में भी मिलते हैं किन्तु वहाँ इनका प्रयोग 'Exclamatory sentences' के रूप में होता है। जैसे निम्न उदाहरणों मे -

- धृतराष्ट्र :- (सारंगी पर आलाप उठता है, ठण्डी सांस लेकर) कह नहीं सकता संजय किन पापों का यह फल है, जिसकी भूल थी ~~यह~~ दु:ख भीषण दण्ड मुझे मिला।

(पृष्ठ २१, `महाभारत की सांझ` भारतभूषण अग्रवाल)

- माँ (एक गहरा नि:श्वास) < < < < < ५ आह कैसी? कैसी है उसकी माया क्यों इतना दुख होता है? क्यों दर्द दिया उसने? क्यों.....क्यों?

(`नये पुराने`, विष्णु प्रभाकर)

विषादपूर्ण कथन का दूसरा रूप वह रहता है जिसमें दु:ख के प्रति समर्पण का भाव रहता है। व्यक्ति पूर्णत: निराश हो जाता है। इस प्रकार के अन्तर्गत मृत्यु कामना, प्रार्थना या उपालम्भ रहता है।

- सूनी सूनी काली आँखों से शून्य में न जाने क्या सोचा करती और थक कर खिड़की के चौखट पर सिर टेक बैठी" इस जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी है

(पृष्ठ १२, डाक बंगला, पीछे पर्दे, सोमावीरा)

- कलाकार : मेरा जीवन व्यर्थ है, एक भार है मैं उसका अन्त कर दूंगा, मैं जी कर करूंगा भी क्या ? कौन मेरी देखभाल करेगा, कौन मुझे अपना कहेगा ।

(पृष्ठ ६५ सवेरा ` विष्णु प्रभाकर)

स्त्रियों द्वारा शोक की अभिव्यक्ति में कुछ विशिष्ट वाक्यों का प्रयोग होता है जो मुहावरों की भांति ही प्रचलित है । पुरुष वर्ग भी इनका प्रयोग करता है किन्तु अपेक्षाकृत कहीं कम । जैसे विवशता प्रदर्शन के लिये - मन मसोस कर रह गया, मन पत्थर का कर लिया, कलेजे पर पत्थर रख लिया, छाती पर पत्थर रख लिया, आंसू पी लिया, मन कड़ा कर लिया, सब कुछ देख कर भी आंखें मूंद ली, अनदेखा कर दिया, अपने को पत्थर बना लिया, कलेजा थाम कर देखा, मन मसोस कर रह गया, तड़प कर रह गया, आंसू पी लिये आदि ।

पीड़ा या दुःख को व्यंजित करने के कुछ विशिष्ट वाक्य है - आंतें मुंह को आ गईं, दिल पर छुरियां चलने लगीं, मन उखड़ गया, कब पैर तले जमीन खिसक गई, जान हवा हो गयी, जी भर आया है, जी बैठ गया, दिल उमड़ आया दिल डूब गया, दिल भारी हो गया, मन छोटा हो गया, प्राण सूख चले गये, कलेजा टूट गया आदि ।

कभी कभी विषाद को विशेषकर चिन्ता को व्यक्त करने के लिये जिन्हीं विशेष वाक्यों का प्रयोग होता है जैसे शोक में प्राण घुल रहे हैं जिन्दगी दूभर हो गयी, दिन रोते रात घड़ियां गुजरते बीत गयी, मन आठों पहर सूली पर टंगा रहता है, दिन भारी हो चले, आदि ।

दूसरे की विपत्ति के वर्णन के लिये कुछ अलग वाक्य है जैसे उसके मुंह पर हवाइयां उड़ रही थी, उसके चेहरे पर एक रंग आता एक जाता था, चेहरा फक पड़ गया था, चेहरा पीला पड़ गया था, आदि ।

इसी प्रकार निराशा को व्यक्त करने वाले कुछ वाक्य हैं जैसे - जिन्दगी के दिन भर रहा हूं, मैंने तो जुआ डाल दिया है, दिल उचाट हो गया है आदि, भाग्य सो गये हैं, कलेजा पक गया है, हथियार डाल दिये हैं, दिल टूट गया है, दिल बुझ गया है, आदि ।

शोकजन्य नैराश्य की अभिव्यक्ति विरक्ति के रूप में होती है कंठस्वर के द्वारा भी यह किसी सीमा तक व्यंजित हो जाती है विशेषकर उच्छ्वासपूर्ण कथनों के माध्यम से -

- प्रतिमा : (तीव्र उत्कण्ठा दबाते हुए) अब क्या आओगे ? (निराशा का अस्फुट स्वर । (पृष्ठ २७, सौंदाक-बिन्दी, गणेश प्रसाद द्विवेदी)

शोक या विषादजन्य नैराश्य कभी कभी शारीरिक अनुभावों के माध्यम से भी व्यक्त हो जाती है - 'सूखा मुँह' 'उदास दृष्टि' निराशापूर्ण मन:स्थिति को व्यक्त करते हैं । 'उच्छ्वास' भी निराशा व्यक्त करता है -

- फादर ने लम्बी सांस लेकर कहा - "ईसाई बच्चे । यहाँ ज्यादा......
.... यह कह कर पादरी ने उदास दृष्टि से गिरजे की ओर देखा...... बूढ़े के गालों पर दो बूँदें टपक आयीं । आँखों ने आखिर उसे दगा दे ही दिया ।

(पृष्ठ ३४ 'दायरे' रांगेयराघव)

- एक गहरी सांस लेकर प्रोफेसर पुण्डरीक भी लौट आये । अपने कक्ष में पहुँच कर दोनों हाथों से सिर थाम कर बैठ गये वह ।

(पृष्ठ २६६, 'रात की पुड़िया', सोमावीरा)

- राणा साहब के चेहरे पर क्षीण उदास मुस्कराहट आ गयी, मगर फिर वही नैराश्य छा गया ।

(पृष्ठ २१६ 'गबन' प्रेमचन्द)

५.७ शोक के विभिन्न रूप

दु:ख के अनेक भेद उपभेद एवं उपभाव हैं इनकी संख्या अनन्त है , दु:खात्मक भाव सुखात्मक भावों की अपेक्षा संख्या में कहीं अधिक है । इनमें से कुछ मुख्य भावों का उल्लेख नीचे है । उनका स्वरूप स्पष्ट करने एवं उनकी वाचिक अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है । शेष भावों का विश्लेषण प्रथम अध्याय में हो गया है ।

शोक :- हिन्दी में शोक शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से बहुत तीव्र दुख का भाव सूचित करने के लिये होता है जो किसी परमआत्मीय, प्रिय मित्र, एवं महापुरूष की मृत्यु से होता है। इसका कारण कदाचित यही है कि पुराणों में "शोक" को मृत्यु का पुत्र कहा गया है। किन्तु "शोक" का क्षेत्र इतना सीमित नहीं है। कई रूपों में इसकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति होती है। इसका एक नाम ताप अथवा परिताप (Sorrow) है। यह लोक व्यवहार में प्राय: ऐसे साधारण एवं हल्के दु:ख का वाचक है जो मनुष्य को चिन्तित करता है। इस दृष्टि से यह साधारण खेद से कुछ बढ़ा हुआ रूप है, यथा -

- उठहु राम भंजहु शिव चापू, मैटहू तात जनक परितापू - तुलसी

सन्ताप (Anguish) :- मन में होने वाले बहुत अधिक दु:ख का वाचक है। इसका प्रयोग प्राय: लौकिक क्षेत्र में ऐसे बहुत अधिक मानसिक दु:ख की अवस्था में होता है जिसमें मनुष्य बराबर बहुत अधिक चिन्तित और विकल रहता है और जिससे छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं होता। दुर्बल हृदय के व्यक्तियों के लिये साधारण परिताप ही सन्ताप का रूप ले लेता है। सन्ताप के समकक्ष ही क्लेश (Torment) का स्थान है। वह पूरी तरह मानसिक अनुभूति है। यह उस मानसिक स्थिति का सूचक है जिसमें मनुष्य चिन्ताओं एवं विपत्तियों के कारण बहुत अधिक विकल तथा सन्तप्त हो। रोगी, अपाहिज, कुरूप, अभिशप्त का दु:ख इसी प्रकार का होता है। इसकी वाचिक अभिव्यक्ति में भाग्यवाद एवं ईश्वर-उपालम्भ ही प्रधान रहता है जैसे - न जाने किन पापों का फल है, सब कर्मों का भोग है, पता नहीं किसकी नजर लग गयी, ईश्वर किन पापों का दण्ड दे रहा है, अवश्य मैंने किसी को सताया होगा, ईश्वर तू बड़ा कठोर है, मुझे रुला कर तू क्या पायेगा आदि। शिक्षित लोगों में इन भौतिक आपदाओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि रहती है। कभी कभी ग्लानि एवं मृत्युकामना का समावेश भी अभिव्यक्ति में हो जाता है जैसे सब कर्मों का भोग है, जीवन व्यर्थ है इस जीवन से मृत्यु ही अच्छी है, मैं बेकार हूं, सब के लिये बोझ हूं, सबको कष्ट देता हूं मुझे कोई नहीं चाहता, सब मेरा मज़ाक उड़ाते हैं, मुझे मर जाना चाहिये, भगवान ने मुझे क्यों ऐसा बनाया। इसमें मेरा क्या दोष है, मैं जीवन के हर सुख से वंचित रह जाऊंगा, मैं इस संसार में पैदा ही क्यों हुआ, जन्म लेते ही मर क्यों न गया, आदि। अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्राय:

हर वर्ग की अभिव्यक्ति एक सी होती है। बाल्यावस्था तक इन मन:स्थितियों का निर्माण नहीं होता है। व्यक्ति जब कुछ सोचने समझने लगता है तभी इनका निर्माण होता है। वे मात्र इतना सोच सकते हैं और व्यक्त कर सकते हैं कि मैं सबसे अलग हूं, मैं सबकी तरह नहीं हूं, मुझे कोई नहीं चाहता, कोई नहीं प्यार करता।

दु:ख के दो अन्य रूप भी हैं - वेदना (Agony) और विषाद (Dejection) । वेदना कष्ट या पीड़ा के उस बहुत बढ़े हुए रूप का वाचक है जो हमारे संवेदन सूत्रों पर बहुत ही तीव्र एवं अप्रिय प्रभाव डाल कर हमें विचलित कर देता है। मानसिक पीड़ा जब बहुत ही उग्र रूप धारण कर लेती है तब उसे वेदना कहते हैं। इसका एक हल्का रूप व्यथा (Anguish) है। साधारण ताप ही आयु, स्वभाव, व्यक्तित्व एवं सन्दर्भ के आधार पर वेदना एवं व्यथा का रूप धारण कर लेता है। तिरस्कृत कलंकित, असाध्य रोग से ग्रसित, शोषित, अपमानित व्यक्ति के लिये साधारण सी बात भी वेदना को जन्म देने वाली होती है। वस्तुत: यहां व्यक्ति स्वयं में दोषी नहीं होता उस स्थिति में तो मनस्ताप एवं ग्लानि की अनुभूति और अभिव्यक्ति होती है। तिरस्कृत अपमानित एवं कलंकित व्यक्ति की अभिव्यक्ति में एक प्रकार का संकोच एवं दैन्य रहता है - कोई मेरी चिन्ता नहीं करता, मेरी कोई औकात नहीं है, कोई पूछ नहीं है, मैं किसी योग्य नहीं हूं, किसी को मुंह दिखाने योग्य नहीं हूं। मैं इस दुनिया से दूर चला जाऊंगा बहुत दूर जहां कोई परिचित नहीं है, मैं किसी से नहीं मिलना चाहता, मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूं मेरा जीवन न किसी के लिये है, न कोई और मेरे लिये दु:ख मनायेगा, आदि। इस प्रकार की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष कथन से अधिक स्वगत कथन के रूप में होती है। इन अनुभूतियों में बहुत अधिक अन्तर्गतता है और व्यक्ति इन्हें दूसरों की दृष्टि से छिपा कर रखना चाहता है। इनकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति तभी होती है जब ये बिल्कुल असहनीय हो जाती हैं और आवेश के रूप में फूट पड़ने को आकुल हो जाती है।

'शोक का एक रूप विषाद है। ये संस्कृत के 'विषद' का विकारी रूप है जिसके कई अर्थ हैं परन्तु इसका मुख्य अर्थ है निराशा या उत्साहहीन होने के कारण

दु:खी होना । यह विकलता एवं उससे होने वाली विरक्ति का सूचक है । इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है । जहां जहां शोक है वहां वहां तो विषाद है ही शोकेतर भावों पर भी विषाद की छाया स्पष्ट है । श्री इलाचन्द्र जोशी ने इसी विषदता को देखकर एक नवीन विषादरस की कल्पना की है । उन्होंने इसे संसार के सभी उत्तम काव्यों का मूलतत्व माना । इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है - 'विषादरस अलंकार शास्त्र के करुण रस से अभिव्यक्त नहीं हुआ है बल्कि करुण रस ही महारस का एक अंग है । जब कवि प्रतिदिन की सुख दु:ख तथा महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में मनुष्य के पग पग पर होने वाली बाधाओं का चित्र अंकित करने बैठता है तब उस चित्रांकन से जो रस उद्वेलित होता है वही विषाद रस है ।'[1] इसे रस माना जाय अथवा नहीं यह एक अलग प्रश्न है किन्तु इतना तो निश्चित है कि विषाद की व्याप्ति केवल करुण रस में ही नहीं शान्त प्रेम, वात्सल्य और भयानक में भी है । कुछ मात्रा में घृणा के साथ भी इसका मिश्रण रहता है । यह मिश्रण अनुभूति के साथ साथ अभिव्यक्ति के स्तर पर भी मिलता है ।

- -

१- 'विश्लेषण' पृ० १४६ - जोशी

-: विस्मय :-

६.१ काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि :-

विश्वनाथ ने विस्मय की परिभाषा इस प्रकार दी है -

चमत्कारश्चित्त रूपों विस्मयापर पर्याय: (३:३,वृ० साहित्य दर्पण)
अर्थात् चित्त की वह चमत्कृत अवस्था जिसमें वह सामान्य की परिधि से बाहर उठ कर विस्तार लाभ करता है 'विस्मय कहलायेगी । इस का प्राण लोकोत्तर चमत्कार माना जाता है । इस प्रकार प्रत्येक रस के साथ अद्भुत रस का सम्बन्ध माना जा सकता है । मनोवैज्ञानिकों ने विस्मय को मूल प्रवृत्तियों में स्थान दिया है जिसके साथ जिज्ञासा का सहयोग रहता है । शास्त्रीय दृष्टि से अलौकिकता से युक्त शील कर्म एवं रूप अद्भुत रस के आलम्बन माने गये हैं । अलौकिकता के गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव हैं, आंखें फाड़ना, टकटकी लगा कर देखना, रोमांच, आंसू, स्वेद, हर्ष, साधुवाद देना, उपहारदान, हा-हा करना, अंगों का घुमाना, कम्पित होना, गद्गद् वचन बोलना उत्कंठित होना आदि इसके अनुभाव हैं और वितर्क, आवेग, हर्ष, भ्रान्ति, चिन्ता, चपलता, जड़ता, और औत्सुक्य व्यभिचारी भाव हैं । ए०एफ० शैंड ने इस पर नयी दृष्टि से विचार किया ।[१]

इस प्रकार विस्मय का भाव एक ओर संवेग है व तो दूसरी ओर मनुष्य की सामान्य बौद्धिक प्रवृत्ति भी है । अपने इस विस्तार क्षेत्र के कारण विस्मय प्रत्येक भाव एवं प्रत्येक रस के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है । विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति की भावात्मक एवं संवेगात्मक रीतियों का विश्लेषण भी इसी सन्दर्भ में करना होगा । शास्त्रीय दृष्टि से विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति (वाचिक अनुभाव)

१- .... Curiosity is one of the most important. It presents more the character of an impulse than of an emotion as generally understood, but it is none the less a primary system and the basis of the intellectual life. It appears to include a wellformed instinct, and to be susceptible of some degree or emotional excitement.

—A.F. Shand, Page 57, The Nature of Emotion.

तीन प्रकार की मानी गयी है - हा हा करना, साधुवाद देना, गदगद वचन बोलना । इनमें से प्रथम एवं द्वितीय क्रमश: शोक और हर्ष की अभिव्यक्ति है । 'गदगद् होना कंठस्वर की विशिष्टता है अत: हिन्दी के १६ वीं श० के पूर्व के साहित्य में विस्मय के अनुभावों का विशेष कर वाचिक अनुभावों का मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन नहीं हुआ है ।

विस्मय में भाषा का प्रयोग अचेतन स्तर पर और यान्त्रिक रूप से होता है । इस दृष्टि से इसमें और भय में समानता है । विस्मयविमुग्ध होकर अथवा विस्मया-विमूढ़ होकर वह जो कुछ भी बोलता है यान्त्रिक रूप से हुई प्रतिक्रिया मात्र रहती है । अन्य भावों जैसे क्रोध, प्रेम, घृणा की आवेश की अभिव्यक्ति व्यक्तित्व के आधार पर भिन्न भिन्न होती है । वात्सल्य एवं हास्य में तो व्यक्तित्व अभिव्यक्ति को बहुत ही प्रभावित करता है किन्तु विस्मय में व्यक्तित्व के आधार पर बहुत कम भिन्नता मिलती है ।

६.२ विस्मय एवं शारीरिक प्रतिक्रियायें :

अन्य भावों की भांति ही विस्मय की बड़ी स्पष्ट एवं तीव्र प्रतिक्रिया में शारीरिक अनुभावों की संख्या बहुत अधिक है । वाचिक अभिव्यक्ति की भांति ही शारीरिक प्रतिक्रिया भी अचेतन स्तर पर और यान्त्रिक रूप से होती है । जैसे -

-- गूंगे ग्राहक को इस तरह से बोलता देखकर पी०पी० का चाल्स केवल आधा डूब ही नीचे होता तो उसके गंजे सिर को कुछ कुछ कर देता ।

('बाक्स बैक्टर', महेन्द्र सिंह सरना, धर्मयुग ५ दिसम्बर १९६५)

-- औरंगजेब ने एक बार हीराबाई की ओर देखा और फिर प्याले को, अचानक उछल कर खड़ा हो गया " शराब " ।

(पृष्ठ १०१, 'इम्तहान', अनन्त चौरसिया, नवनीत जनवरी १९६६)

-- ज़ीने के ऊपरी में पैर रखते ही वह चकरा कर यों चौंका/उछला उसका पैर बिजली के नंगे तारों पर आ गया हो । उसने आँखें झपकाईं, सिर झटका, फिर आँखें झपकाईं और सिर झटका और तीसरी बार भी यही तरीका इस्तेमाल करने पर भी वही बात रही तो वह उल्टे पाँव लौट भागा और तीन तीन सीढ़ियाँ एक छलांग में पार करते हुए दफ्तर की मंजिल में अपने कमरे में आ गया ।

('बाक्स बैक्टर', महेन्द्र सिंह सरना, धर्मयुग ३१ दिसम्बर, १९६५)

विस्मय की शारीरिक प्रतिक्रियाओं में मुखाकृति परिवर्तन महत्वपूर्ण है -

--" क्यों ?" आश्चर्य से उसका मुख खुला रह गया । इसी प्रकार विस्मय की व्यंजना के लिये कुछ मुहावरे बने हैं जैसे मुँह फटा रह गया, मुह बा दिया (ग्रामीण प्रयोग) शरीर के अन्य अंगों की अपेक्षा नेत्रों द्वारा विस्मय की अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट होती है -

-- उनके मुह से एक सांस आधी उपर खिंचीं सी बाहर लड़खड़ा आयी फिर उन्होंने घूर कर देखा ----------

(दायरे " पृष्ठ २१ रांगेयराघव)

-- बाबू साहब ने विस्फारित नेत्रों से पंडित जी की ओर देखा मानो कोई अचम्भे की बात सुनी है ।

(पृष्ठ २२, निर्मला, प्रेमचन्द)

-- सुमन्त ने फटी फटी आंखों से उसकी ओर देखा मानो पहचाना ही न हो ।(पृष्ठ १५८ " आत्महत्या" सोमावीरा)

-- कितने छोटे छोटे हैं मीना कहती और हैरान आंखों को और फैला कर हंस पड़ती " छोटे छोटे चूहे जैसे ।

(पृष्ठ ८६ " एक घटना छोटी सी, कैलाश, नवनीत, मई, १९५६)

" उत्सुक दृष्टि" , " विस्मित दृष्टि", " विस्मय विमुग्ध" दृष्टि, आदि कुछ अन्य संकेत भी हैं ।

विस्मय की अभिव्यक्ति में कुछ शब्द और प्रयुक्त होते हैं जो शारीरिक प्रतिक्रिया को स्पष्ट करते हैं जैसे चौंकना उठना , अवाक् रह जाना , पुलक उठना, सिर चक्कर खाना, शरीर जड़ होना, भौचक्का होना, लड़खड़ा उठना, अचकचा जाना, स्तम्भित हो जाना, ठगा सा रह जाना, हक्का बक्का गुम हो जाना, भिन्नाचित्त से रह जाना, मूर्छित बन जाना, गूंगा बना जाना, दांतों तले उंगली दबा लेना, इत्यादि। ये शब्द अपने और दूसरे, दोनों की भावाभिव्यक्ति के लिये प्रयुक्त होते हैं ।

६.३ विस्मय और कंठस्वर :-

६.३.१ कंठावरोध - आवेश की अधिकता के कारण विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति में कंठावरोध भी हो जाता है। व्यक्ति कुछ कहना चाहता है किन्तु स्तब्ध- जड़मूक बना चुप ही रह जाता है -

-- इस महत्वपूर्ण प्रस्ताव के अन्त में जब लछमी विनीत गम्भीरता से मेरे मुख को देखने लगी तब मैं विस्मय से कुछ बोल ही न सकी।

(पृष्ठ १२४ " अतीत के चलचित्र " महादेवी वर्मा)

भारतेन्दु ने चन्द्रावली नाटिका में चन्द्रावली की इस स्थिति का सुन्दर वर्णन किया है -

हरी सी हकी सी, जड़ भई सी डकी सी घर
हारी सी बिकी सी सो तो सब ही घरी रहै
बोले ते न बोले, दृग खोले नाहिं, डोले बैठी
एकटक देखै सो खिलौना सी धरी रहै ।।

(पृष्ठ २४८, भारतेन्दु ग्रन्थावली, भारतेन्दु)

कंठावरोध से मुक्ति पाकर जब व्यक्ति बोलने का प्रयास भी करता है तो आवेश के कारण एक या दो शब्द ही बोल पाता है। विस्मय की मात्रा के आधार पर भी प्रतिक्रिया का रूप निर्भर करता है। विस्मय की मात्रा अधिक होने पर कंठावरोध अथवा स्वरभंग की स्थितियाँ मिलती हैं। यह अभिव्यक्ति साधारण विस्मय (Surprise) से भिन्न है। इसमें विस्मय या आश्चर्य अविश्वास की सीमा तक पहुंच जाता है। अंग्रेजी में इसके लिये एक शब्द है Astonishment कभी कभी अचानक विस्मय जागृत होने पर एक धक्का सा लगता है जिसके लिये Astounded (Shocking Astonishment) शब्द का प्रयोग होता है अचानक जो विस्मय का झटका लगता है वह व्यक्ति को जड़ कर देता है(Flabbergast, जड़मूक बनाने तक की अविश्वसनीयता) ।

६.४ शब्द विशेष का प्रयोग :-

वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से उपर्युक्त मन:स्थितियों में कंठावरोध

के बाद विस्मयादिबोधक शब्दों का ही स्थान आता है। जड़ता से मुक्ति पाने के पश्चात पहली वाचिक अभिव्यक्ति यही होती है। जैसे " अरे--------, ऐ ------ हे -------, ओह --------, वाह--------, अं-------, आय--------आदि

कभी कभी इन विस्मयादिबोधक शब्दों का स्थान संज्ञा अथवा सम्बोधन ले लेता है। आशा के विपरीत किसी आगन्तुक को देखकर उच्छ्वास के साथ उसका नाम मुख से निकल पड़ता है। जैसे -

--" मामी " ! रंजीत अनाथ विस्मय से बोल उठा।

(पृष्ठ ११ ढलती कगारें, सौमावीरा)

--श्यु० मु० डी०: भांग तुमने ठीक समझा। मैं ही श्युवान चुवाड० हूं(संगीत)

--डी चाग०:(चकित) आचार्य। (श्युवान चुआंग - विष्णु प्रभाकर)

किसी के अप्रत्याशित साक्षात्कार से " आप !" या " तुम !" भी इसी प्रकार निकल पड़ता है। इन सम्बोधनों के उच्चारण में विशिष्टता रहती है। इनका सम उच्चारण आश्चर्य नहीं व्यक्त कर सकता। शब्द के प्रथम अक्षर पर बलाघात एवं अवरोहात्मक उच्चारण विस्मय की ~~विस्मय~~ की व्यंजना करता है।

साधारण कथन	विस्मयात्मक कथन
आप	आप
तुम	तुम
रजनी	रजनी

जिस स्वर पर बलाघात पड़ता है वह दीर्घ हो जाता है। जैसे " आऽऽप" या " रजनीऽऽऽ" जब ऐसे उच्छ्वासपूर्ण वाक्यों में दो शब्द एक साथ आ जाते हैं जैसे " आचार्य आप " अथवा " रजनी तुम " तो प्रथम शब्द का उच्चारण सम ही रहता है और द्वितीय शब्द का बलाघातयुक्त अवरोहात्मक उच्चारण होता है जैसे - रजनी तुम। कभी कभी इस प्रकार के वाक्यों में विस्मयादिबोधक शब्द भी जुड़ जाते हैं जैसे " अरे रजनी तुम !" या " ओह आचार्य आप !"

इस स्थिति में वाक्य के प्रथम एवं अन्तिम शब्द पर बल पड़ता है मध्य के शब्द का उच्चारण सम ही रहता है। प्रथम दो शब्द अथवा केवल प्रथम शब्द के बाद विराम खुलता है। शेष दो का उच्चारण साथ होता है। -

अरे रजनी ऽऽऽ तुम ! या अरे ऽऽऽ रजनी तुम !

कभी कभी एक ही वाक्य में आश्चर्य के दो दो कारण एक साथ आ जाते है जैसे " राम आया है " सुन कर किसी को दो आश्चर्य एक साथ हो - राम का आगमन और आने का समय विशेष। प्रत्युत्तर में वह कह बैठेगा " राम, इस समय । इस वाक्य में विस्मय दो बिन्दुओं पर केन्द्रित हो गया। ऐसी स्थिति में बल भी दो स्थानों पर पड़ेगा - " राम " पर और " इस समय " पर दोनों के मध्य विराम होगा। अतः उच्चारण की दृष्टि से वाक्य का रूप कुछ इस प्रकार होगा - राम -------- इस समय । इस प्रकार वाक्य में विस्मय के जितने अधिक केन्द्रबिन्दु होंगे बलाघात उतने स्थानों पर पड़ेगा। एक वाक्य है - आप---यहां---ऐसे---इतनी रात गये----इस हालत में " । इस पूरे वाक्य में आश्चर्य के कई केन्द्र है और उच्चारण में प्रत्येक पर बल पड़ेगा।

अधिकतर इस प्रकार का बलाघात संज्ञा पर पड़ता है किन्तु जब विशेषण अथवा क्रियाविशेषण अपनी स्थिति या मात्रा के कारण महत्वपूर्ण हो जाते है तो उच्चाघात के साथ इन्हीं का बलाघात-युक्त उच्चारण होता है। जैसे किसी ने कहा " इस लड़की के बाल घुटनों तक लम्बे हैं ।" सुनने वाला आश्चर्य से कहेगा " घुटनों तक " । इसी प्रकार यह सुनकर कि " वह हवा कि तरह दौड़ता है " प्रतिक्रियास्वरूप कोई पूछ सकता है " हवा की तरह " अभिव्यक्ति का एक रूप यह भी हो सकता है - " इतने लम्बे " या " इतनी तेजी " । दोनों ही रूपों का उच्चारण सामान्य कथन ही होगा। इनमें प्रथम शब्द के मध्य भाग पर बल देकर शेष कथन का अवरोहात्मक उच्चारण विस्मय व्यंजक होगा।

साधारण कथन	विस्मयात्मक कथन
घुटने तक	घुटने तक
हवा की तरह	हवा की तरह
इतने लम्बे	इतने लम्बे

इस प्रकार की अभिव्यक्ति में व्यक्तिगत भिन्नता बहुत अधिक होगी एक ही बात की प्रतिक्रिया विभिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न भिन्न होगी । जैसे-

--" मुझे तराजू चाहिये "

मनीषि : (चकित) तराजू !

बादल : (अनबूझ) तराजू कैसी तराजू !

--- एक शिष्य : अरे टकेसेर

दूसरा शिष्य: ऐं -------

तीसरा शिष्य: हि हि हि हि टके सेर सचमुच

(" अन्धेर नगरी", हवा महल कार्यक्रम, १५-५-६८)

यह भिन्नता होने के बाद भी अन्य भावों की अपेक्षा अभिव्यक्ति की एकरूपता ही अधिक होगी । इस प्रकार के वाक्य अथवा वाक्यांश अपने आपमें अभिव्यक्ति के लिये पर्याप्त होते हैं किन्तु कभी कभी पूरे वाक्य के साथ भी इनका प्रयोग होता है । इस स्थिति में विस्मय की मात्रा पहले की अपेक्षा कम होगी, इसी मनावस्था को अंग्रेजी में *Surprise* कहते हैं । जैसे -

--" अरे तुम !" मधुर विस्मय से पुलक मंजु बोल उठी ।" कब आये रंजीत"।

(पृष्ठ १० ", ढलती कीरारें", सोमावीरा)

उपर्युक्त कथन में " अरे ! तुम !" ही विस्मय की व्यंजना करता है शेष साधारण प्रश्न मात्र है । जैसे ही शीशे में बाली ने आगन्तुक की परछाई देखी कि कठपुतली की तरह एक छोटे से चक्कर में पीछे मुड़ी और बोली " ऑम आप ? मैं सोचती ही आ रही थी फिर मनाया उसने आपको ! (पृष्ठ १४५ गीला बारूद ननकसिंह

-- कान्ता चकित रह गयी । कहा" अरे । वाह बहन गंगा जी से लौटते समय मुझसे दो बातें किये बगैर तो तुम कभी नहीं जाती थी"।

(पृष्ठ २२६ " धरती की बेटी" सोमावीरा)

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में क्रमशः " ऑम आप " और " अरे ! वाह " विस्मय की व्यंजना करते हैं शेष साधारण कथन मात्र है । इसी प्रकार निम्न

उदाहरण में ' हैं ' का प्लुत उच्चारण (हैंऽऽ) विस्मय की व्यंजना करता है।

-- रूमी जीने की ओर बढ़ती हुई ठिठक गयी। विस्मय से भौंह उठा कर बोली ' हैं ' इतनी सी लड़की के गले में मोतियों की कण्ठी।"

(पृष्ठ ९६ ' सच बोलने की भूल, यशपाल, नवनीत, नवम्बर १९६१)

-- हैं-- हैं -- खुदा खैर करे आज तो आसमान पर दुलत्तियां झाड़ रहे हो। मामी जी क्या बात है।

(पृष्ठ ३५ उतार-चढ़ाव, रेवतीसरन शर्मा)

स्त्रियां, विशेषकर ग्रामीण स्त्रियों द्वारा, कुछ विशिष्ट प्रकार के वाक्यों का प्रयोग होता है जैसे हे भगवान हे राम हे ईश्वर , हाय राम, हाय दैया या केवल ' हाय ', आदि।

मंजु : हाय दैया , मेरे साथ भागना चाहती है, नारी नारी के साथ ? (एकदम) मनीषी यह कैसी दुर्बलता है।

(पृष्ठ २५ ' मां ' विष्णुप्रभाकर)

विस्मय की एक शब्दीय अभिव्यक्ति में लोगों के कुछ अपने विशिष्ट तकिया कलाम होते हैं जैसे हैं ऽऽ ऐ ऽऽ, ऐसा, सचमुच, सच, भला जी, अरे मां, ओ मैा , अहि री मां (ग्रामीण स्त्रियों द्वारा) अरे मोरी मइया, अरे बप्पा, बाप रे।

-- सुना है रात भर कोठी फिकी, कोई सेठ आया है।"

" भला जी !" विष्णु ने चौंक कर पूछा।

(पृष्ठ २१, लोक-परलोक , उदयशंकर भट्ट)

६.५ अधूरे एवं प्रश्नात्मक वाक्य -

विस्मय की आकस्मिक अभिव्यक्ति में प्रयुक्त शब्द या अधूरे वाक्य प्राय: प्रश्नात्मक होते हैं। इन प्रश्नात्मक वाक्यों में कुछ तो विस्मयादिबोधक शब्द रहते हैं जिनका प्रश्नात्मक उच्चारण होता है और किन्ही वाक्यों में विस्मय की व्यंजना करने वाले अन्य वाक्यांश रहते हैं। जैसे -

--" हैं - रात भर बचारा ?"

--" हैं यह क्या चक्कर है ----?" वह एकदम जैसे चीखता उठा

(पृष्ठ २०४, राजेन्द्र यादव, जहां लक्ष्मी कैद है)

' क्या चक्कर है ,' क्या मामला है' ,' क्या माजरा है' , असलियत क्या है' , क्या गोलमाल है' ,' क्या घपला है ' , दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त कुछ वाक्य हैं जो विस्मय की व्यंजना करते हैं ।

वास्तव में विस्मयसूचक वाक्यों का हिन्दी में कोई निश्चित रूप नहीं है नहीं व्यकरण के अनुसार ही इसका कोई निश्चित रूप एवं क्रम है। उच्चारण के आधार पर ही प्रश्नात्मक वाक्यों से विस्मय एवं साधारण प्रश्न में से एक को ग्रहण किया जा सकता है । एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा ।

--" क्या कहा ?' वसुन्धरा देवी को अपने कानो पर विश्वास नहीं हुआ। भ्रमित सा अरविन्द अपने पिता का मुह ताकता ही रह गया ।

(पृष्ठ २६८ ' राख की पुड़िया ' सोमावीरा)

उपर्युक्त " क्या कहा ?" यदि सन्दर्भ से अलग करके देखा जाय तो साधारण प्रश्न मात्र लगेगा । किन्तु उच्चारण की विशिष्टता के कारण विस्मय की व्यंजना होगी ।

साधारण प्रश्न	विस्मयात्मक प्रश्न
क्या कहा ?	क्या कहा !

-- राधाकृष्ण (चकित सा उपर को मुह उठाता है)" गुरु---- गुरु---- तुम क्या कह रहे हो ? (टूटा बन्धन', विष्णु प्रभाकर)

साधारण प्रश्न	विस्मायात्मक प्रश्न
तुम क्या कह रहे हो ?	तुम क्या कहरहे हो !

उपर्युक्त कथन उच्चारण एवं कंठस्वर की दृष्टि से साधारण कथन है तथा अर्थ की दृष्टि से विस्मयात्मक कथन । इसी प्रकार निम्न उदहरण में भी

---- सुरेन्द्र ! (भावनाओं के वेग से कांपते हुए) चाय माँ यह तुम क्या कह रही हो ? क्या सुना रही हो ? क्या यह सच है ?

(पृष्ठ १०७, अन्धेरा -उजाला, रेवती सरन शर्मा)

६.६ साधारण कथन और विस्मय प्रदर्शन :-

आवश्यक नहीं कि विस्मय की व्यंजना केवल प्रश्नात्मक वाक्यों के माध्यम से हो। कभी कभी बिलकुल साधारण कथन भी उच्चारण की विशिष्टता के कारण विस्मय व्यक्त करते हैं। वास्तव में उच्चारणगत विशिष्टता के कारण ही इनका रूप प्रश्नात्मक एवं विस्मयात्मक हो जायेगा। जैसे एक साधारण सा वाक्य है -- "वह खाना खायेगा" अपने आप में तो यह एक सूचना मात्र है किन्तु उच्चारण भेद से यही वाक्य क्रमशः प्रश्नात्मक एवं विस्मयात्मक हो गया है

प्रश्नात्मक - वह खाना खायेगा ?

विस्मयात्मक - वह खाना खायेगा !

विस्मयात्मक वाक्य में बलाघात दो स्थानों पर है "खाना" एवं "खायेगा" पर यदि पात्र पर सन्देह हो तो "वह" पर भी बलाघात पड़ सकता है। एक अन्य उदाहरण -

महादेवी : (आश्चर्य एवं दुःख से) आर्यपुत्र चार लक्षवीर इस संग्राम में बलि हुये। (विजय पर्व, पृष्ठ ३८, डा० रामकुमार वर्मा)

यह कथन सम लय में उच्चरित होने पर साधारण सूचना है किन्तु विशिष्ट उच्चारण के कारण विस्मयाभिव्यंजक वाक्य -

आर्य पुत्र ---- चार लक्ष वीर इस संग्राम में बलि हुए ।

पूरे कथन का रूप अवरोहात्मक है तथा वीरों की संख्या एवं चार लक्ष पर हल्का सा बल है। बलि होने की प्रक्रिया दुःखपूर्ण है अतः उसका अपेक्षाकृत धीमा और बलाघातहीन उच्चारण होगा।

हमारे व्यावहारिक जीवन में हर पग पर होने वाले आश्चर्य की अभिव्यक्ति साधारणतः कंठस्वर के माध्यम से ही होती है।

६.७ शब्द, वाक्यांश एवं वाक्यों की पुनरावृत्ति :-

विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति की एक अन्य विशेषता है। वक्ता के शब्द,

वाक्यांश अथवा वाक्य की पुनरावृत्ति । श्रोता द्वारा दुहराया हुआ वाक्य या वाक्यांश लय, सुर, उच्चारण की दृष्टि से अपने प्रथम रूप से बहुत भिन्न होता है। जैसे -

--" मैं दूसरे मतलब से आया हूं ।"

" दूसरे मतलब से ?" अपनी लम्बी लम्बी पलकें उठाते गिराते हुये माली ने उसकी ओर ताका ।

(पृष्ठ १४५ " गीला बारूद " नानक सिंह)

प्रथम उच्चरण	आवृत्ति
दूसरे मतलब से	दुसरे मतलब से (दू ऽऽ सरे मतलब से)

-- विधाभूषण : (आश्चर्य से) प्रेम प्रदर्शित ? और प्रेम तो दूर रहा कभी बात भी न करती थी । कभी मेरी ओर देखती तक न थी ।

अचला : (आश्चर्य से) ऐ-------- ऐसा----- ऐ-------

(पृष्ठ ६०, गरीबी-अमीरी , गोविन्द दास)

इस " प्रेम प्रदर्शित " का रूप प्रश्नात्मक होगा और यही प्रश्नात्मक रूप विस्मय की अभिव्यक्ति करता है । इसी प्रकार निम्न उदाहरण में " ज्योत्सना का राज्य " विस्मय की व्यंजना करता है ।

-- छाया (आश्चर्य से) ज्योत्सना का राज्य ? वही जिसे गांव भर में सुनाई , जम्हाई न जाने क्या क्या कहते थे । उसी ज्योत्सना का साम्राज्य ।

(" ज्योत्सना " सुमित्रा नन्दन पन्त)

जिस प्रकार दूसरे के शब्दों अथवा वाक्यांशों को व्यक्ति आवेश में दुहरा देता है उसी प्रकार अपने वाक्य या वाक्यांश को भी दुहरा देता है यह क्रिया यान्त्रिक रूप से होती है जैसे - यह क्या, यह क्या " या अरे ---- अरे

६.८ <u>शब्द अथवा वाक्य का विश्लेषण :-</u>

कुछ लोगों की प्रकृति होती है कि आश्चर्य चकित होने पर वे बात का विश्लेषण करते हैं । विस्मय के साथ साथ अविश्वासनीयता का भाव भी रहता है । अंग्रेजी में इस मनःस्थिति [illegible] भी कहते हैं । ऐसी स्थिति में विस्मय

की वाचिक अभिव्यक्ति में व्यक्ति बात को कई प्रकार से कह कर , उसकी व्याख्या करके उसेसमझने का प्रयास करता है । प्राय: पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग भी रहता है । जैसे

--- जी----- दाद ----- यानी खुलकर तारीफ करना ?

--- क्या रोग ? ------ यानी बिमारी ?

पर्यायवाची की भांति ही शब्दों का अनुवाद भी प्रयुक्त होता है - जी क्या कहा आपने, बुक ----- यानी किताब ------ यानी की पुस्तक । इसी प्रकार कभी की आश्चर्य के कारण वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण भी मिलता है जैसे यह सुनकर कि " राम भाग गया " --" कौन राम ----- अरे----- वह शुक्ल जी का लड़का ----- पीली कोठी वाला ?" कहना । कभी कभी विशेषणों का प्रयोग भी मिलता है जैसे किसी ने कहा" गिलास टूट गया" तो सुनने वाले में यदि आश्चर्य उत्पन्न होगा तो कह सकता है -

" अरे वह नीला वाला --- जिस पर सुनहरी धारियां थी न --- ओह कैसे ।" साधारण अवस्था मेंप्रश्न का रूप यह होगा " कैसे ?" अथवा " कौन सा"

-- पुरूषोत्तम : (चौंककर) यानी तुम चलोगे, यानी तुम हमारे साथ काम करोगे ।

-- प्रौढ़ : तो मर गया ---- इतनी जल्दी । मेरे एक पड़ोसी लेते ही क्या इतनी जल्दी मौत आ गई । अच्छा था, बुड्ढा बेचारा ।

(पृष्ठ ५०, मन का वक्तव्य, उदयशंकर भट्ट)

४.६ विस्मय एवं भाषागत विकृतियां :-

विस्मय की व्यंजना में कुछ भाषागत विकृतियां भी मिलती है । जैसे स्वर-भंग, हकलाहट आदि ।

-- हकलाती आवाज में बोली " तुम्हें क्या हो गया है काका ? दोपहर को घर से अच्छा भला गया था । और अब --- अब तो तू ----"

(" वाश बेसिन", महेन्द्र सिंह सरना, धर्मयुग, ३१ दिसम्बर

--- मैं ------ मैं और शुगर मिल ? साहब यह कैसे होगा ।

(पृष्ठ १४७ `दीदी` श्री गोपाल नेवटिया, नवनीत मार्च १९६५)

विस्मयजन्य हकलाहट भी दो प्रकार की होती है । प्रथम प्रकार में उसी स्थान पर प्रवाह भंग होता है जो विस्मय का मुख्य केन्द्र है। यह शब्द- संज्ञा , सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, क्रिया- विशेषण कुछ भी हो सकता है। उपर्युक्त उद्धरणों में क्रमश: ` अब` और ` मैं` विस्मय का मुख्य केन्द्र है। इसी प्रकार निम्न उद्धरण में ` यह` पर स्वरभंग है ।

-- तारा क्या चीज है ? ओरह , यह--- यह तो बालक है ।
(आश्चर्यमय गहन संगीत) पर तुम्हें कहाँ मिला ।

(पृष्ठ ७७ `उपचेतना का छल` विष्णुप्रभाकर)

द्वितीय प्रकार में कंठस्वर का प्रवाह अपेक्षाकृत आकस्मिक रूप से किसी भी शब्द या वर्ण पर भंग हो जाता है। ये शब्द या वर्ण महत्वपूर्ण नहीं होते हैं जैसे-

ये ये ये ये ---- ये ये ये -- मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं या सचमुच हो रहा है ।

अरे---रे--रे---- ये--ये--ये-- तुम क्या कह रही हो । मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है (मुन्शी जी `मदलाल शर्मा रूवा महल १३-५-६८)

विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति में अधूरे वाक्य भी मिलते हैं आश्चर्य की मात्रा अधिक होने पर आवेश के कारण वाक्य पूरे नहीं होते ।

---` चिठ्ठि में आज सुबह कोलम्बो आ रही हूं ।`

` क्या कहा ? क्वालालम्पुर ? कुवा के लिये --- क्यों मई ---- अ

--- सरकार ? सभी ------ अभी ------ अभी अम ---- भगवान के पास

अभी

आवेश के कारण विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति में भी शब्दक्रम परिवर्तन और व्याकरणगत त्रुटियाँ मिलती हैं। इस प्रकार के वाक्य क्रम भंग नियमानुसार होते हैं । जिस वस्तु रूप मात्रा या आकार को लेकर आश्चर्य होता है वह वाक्य में उसके पूर्व या उसके अन्त में आता है ।

---" इतनी रबड़ी पांच आदमी खा गये।" सेठ जी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा। (पृष्ठ ४३ लोक-परलोक उदयशंकर भट्ट)

उपर्युक्त कथन में रबड़ी की मात्रा "इतनी" आश्चर्य का कारण है अतः वह कथन में सबसे पूर्व आया है। अन्यथा साधारण मनःस्थिति में वाक्य क्रम होगा- 'पांच आदमी इतनी रबड़ी खा गये'। इसी प्रकार यदि कोई कहे कि 'मैं घर खरीदूंगा' तो साधारण कथन होगा। परन्तु यदि इसे ऐसे कहा जाय " घर खरीदूंगा मैं ?" तो विस्मय की व्यंजना होगी। यहां पर "मैं" प्रधान है, अतः उसका वाक्य के अन्त में बलाघातपूर्ण उच्चारण होगा।

विस्मय की भावात्मक एवं संवेगात्मक अभिव्यक्ति का एक ढंग है-" कितनी सुन्दर है ? यहां " कितनी" शब्द प्रश्न के रूप में आकर आश्चर्य की व्यंजना करता है वास्तव में "कितना" प्रश्न भी नहीं है मात्र विस्मय की अभिव्यक्ति की असमर्थता प्रकट करता है। कितना या " कितनी" के समान ही " इतना" या " इतनी" का प्रयोग भी होता है। -

-- अरे इतना बड़ा आदमी, इतना नार्मल : सीधासाधा -निश्छल, उसके स्वभाव में कितनी विनम्रता थी, कितनी मुखरता ! ------ रीता ने आश्चर्य से सोचा।

(पृष्ठ १३२, रीता, नवनीत, कुलदीप नैयर)

६.१० <u>विस्मय और अनवरत प्रश्न करना -</u>

जहां विस्मय में एक ओर हकलाने और स्वर भंग की प्रवृत्ति मिलती है दूसरी ओर अनवरत प्रश्नों की झड़ी के रूप में भी विस्मय व्यक्त होता है। यह आवश्यक नहीं कि विस्मय की प्रतिक्रिया स्वरूप जड़ता, कंठावरोध, स्वरभंग आदि ही हो। कभी कभी आवेग की प्रथम प्रतिक्रिया में उपर्युक्त मनःस्थितियाँ होती हैं और आवेग के कुछ शान्त होने पर वाणी का स्रोत अचानक बह उठता है अतः लोग एक ही वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में अनेकों प्रश्न कर डालते हैं। यह भी विस्मय की भावात्मक एवं संवेगात्मक अभिव्यक्ति की एक शैली है। आचार्य शुक्ल ने इसी स्थिति को " हड़बड़ाहट" भाव का नाम दिया है और उदाहरण स्वरूप रावण का निम्नलिखित कथन दिया है -

बांधे वननिधि ? नीरनिधि ? जलधि ? सिन्धु ? बारीस ? सत्य तोयनिधि?

कंपासै उदधि ? पयोधि ? नदीस ?

तुलसी - रामायण

उपर्युक्त कथन में सारा आश्चर्य समुद्र की विशालता को बांध लेने पर है। पूरे कथन का केन्द्रबिन्दु " समुद्र" है अत: उसी कि विशेषतावों का उल्लेख है और अनेक सम्बोधन दिया गया है। इसी प्रकार पन्त की निम्नपंक्तियों में छाया की दैन्यावस्था के केन्द्र बना कर अनेक प्रश्न किये गये हैं।

कौन कौन तुम परिहत वसना, म्लानमना भूपतिता सी
वातहता विच्छिन्न लता सी, रति श्रान्ता व्रज वनिता सी ?

-- पन्त

आवश्यक नहीं कि विस्मय का केन्द्र विन्दु वस्तु या व्यक्ति की कोई एक विशेष बात हो। कभी कभी विस्मय केन्द्रिय न होकर वस्तु या व्यक्ति को परिधि बन कर, चारों ओर से घेर लेता है। जैसे -

तुम कौन हो , क्या, कर रहेहो , क्या तुम्हारा कर्म है ?
कैसा समय, कैसी दशा, कैसा तुम्हारा धर्म है ?
है अनय ! क्या यह विज्ञता भी आज तुमने दूर की होती परीक्षा
ताप में ही, स्वर्ण के सम दूर की।

गुप्त जी

इस प्रकार की अभिव्यक्ति वास्तव में विस्मय जैसे गहन भाव की नहीं वरन कुतूहल (Curiosity) की होती है। यह परिस्थिति के अनुसार सुखात्मक एवं दु:खात्मक दोनों ही होता है।

उत्सुकता या कौतूहल में विस्मय व्यक्ति के हृदय एवं मन को अभिभूत नहीं करता केवल उत्तेजित कर देता है। फलस्वरूप उत्सुकता या कुतूहल जागृत हो जाता है। इससे भी घटी कम है एक तो मन की साधारण सन्देह या भ्रम की अवस्था होती है। व्यक्ति एक ही वस्तु लेकर सोचता है- यह ये है अथवा वो है। इसे सन्देह कहते है।

-- कहुं मानवी यदि मैं तुमको तो वैसा संकोच कहां ?
कहुं दानवी तो उसमें है यह लावण्य की लोच कहाँ ?

--- साकेत

-- की तुम तीन देव मह कोउ
नर नारायन की तुम दोउ -- रामायण

कौतूहल में " यह अथवा वो " का प्रश्न नहीं रहता । प्रश्न का लक्ष्य एक ही वस्तु या स्थिति को भलिभांति जानना रहता है

--कुमार : बोलते नहीं ? कौन ? (प्रश्न उठता है और राजकुमारी को कोई नारी समझ कर स्तम्भित हो जाता है) कोई नारी ! इस समय ? यहां ? कौन है आप ? (पूर्णाहुति- विष्णु प्रभाकर)

--- शारदा: (हैरानी से) क्या आप जुगल किशोर नहीं है ? क्या आप बाबू जुगल किशोर नहीं है जो इंगलैण्ड से अभी आये हैं। कहिए ? कहिये ! बोलिये (एक दम सिर पकड़कर बैठ जाती है ।

६.११ दृश्य के प्रति विस्मय :-

विस्मय में प्रयुक्त विशेष वाक्यों के अध्ययन के लिये भी गुलाबराय द्वारा विस्मय के अनुभावों के वर्गीकरण को आधार मान लेने पर सरलता होगी । यद्यपि यह वर्गीकरण भी पूर्णत: मनोवैज्ञानिक नहीं है तथापि इसके आधार पर विस्मय प्रदर्शन में कहे जाने वाले विभिन्न वाक्यों का वर्गीकरण सुविधापूर्वक हो सकता है । गुलाबराय ने पहला भेद अद्भुत दृश्यमाना अर्थात् देखने पर आश्चर्य प्रकट करना। किसी वस्तु को आंखों से देखकर विस्मय का अनुभव होने पर विशेष प्रकार के वाक्य कहे जाते हैं जैसे -

- मुझे अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ
- मैं जो कुछ देख रहा हूं वह सपना है या सच
- मैं यह क्या देख रहा हूं कहीं मेरी आंख धोखा नहीं खा रही है
- मेरी तो आंखें खुल गयीं, फटी फटी आंखों से देखना ।

यही कथन अधिक आलंकारिक रूप में इस प्रकार भी हो सकता है -

शाल्व : (चौंककर) हैं यह क्या ? अम्बा तुम यहाँ । कहीं आँख धोखा नहीं दे रहे हैं । आँखों की पुतलियों की चंचलता ने कहीं चौंधिया तो नहीं दिया ।

(पृष्ठ ७५ ' विद्रोहिणी अम्बा ' उदयशंकर भट्ट)

अवसर विशेष पर ' अद्भुत दृष्ट ' की अभिव्यक्ति इस प्रकार से भी हो सकती है । -

-- अरे आज ईद का चांद तो निकल आया, लगता है आज सूरज पश्चिम से निकला है ।

६.१२ श्रव्य के प्रति विस्मय :-

बाबू गुलाबराय ने अनुभावों का दूसरा भेद विस्मय युक्त माना अर्थात सुनी हुई बातों की प्रक्रिया । गुलाबराय जी ने यह स्पष्ट नहीं किया कि यह अनुभव शारीरिक है अथवा वाचिक । किसी सीमा तक ये वाचिक अनुभाव दृष्ट विस्मय के समान ही होते है किन्तु कुछ विभिन्नता भी होती है जैसे -

सन्दीप को सहसा अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ ।
आश्चर्यान्वित हो बोल उठा ' प्रभा ! आप प्रभा को जानती है ? '

(पृष्ठ १११, ' संकरी राहें, ' सोमावीरा)

-- किन्तु आशा के विपरीत उसके मुख से निकला यह प्रश्न सुनकर वह भौंचक्का हो उठा । केवल इतना ही कह सका ' शायद नहीं ' ।

(पृष्ठ ११२, संकरी राहें, सोमावीरा)

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में कानों से सुनकर विस्मय का भाव जागृत हुआ है और उसकी वाचिक अभिव्यक्ति ' अपने कानों ' पर विश्वास नहीं हुआ , भौंचक्का रह गया, रूप में हुई है। इसी प्रकार आश्चर्यजनक बातें सुन कर लोग कह उठते हैं - ' क्या कहा ? जरा फिर से तो कहो ' , ' यह मैं क्या सुन रहा हूं, ठीक कह रहे हो न , या मैं ही गलत सुन रहा हूँ ' के रूप में होती है । आश्चर्यजनक बातें सुनकर प्रतिक्रिया के रूप में अकार को भी (यदि वह उस योग्य हुआ तो) कुछ बातें सुननी पड़ती है । जैसे -

-- आप भांग तो नही खा आयें है ।
आप नशे में तो नही हैं ।
दिमाग की चूले तो नहीं ढीली हो गई है ।
मजाक तो नहीं कर रहे हो, होश में हो न
आप सच कह रहे हैं । सचमुच ।

कहीं पागल तो नही हो गये हो, दिमाग तोनही खराब हो गया है ।

उपर्युक्त वाक्यों में रूप एवं शब्दों में परिवर्तन हो जाता है शब्दों के पर्याय आ जाते है किन्तु मूल अर्थ नहीं बदलता है । गुलाबराय द्वारा किया गया तीसरा भेद अनुमान के द्वारा विस्मय ' विस्मय अनुमित', कहलाता है । इसकी वाचिक अभिव्यक्ति काकोई निश्चित रूप नही है। चौथे भेद 'संकीर्तित' में विस्मय में प्रशंसा के द्योतक विशिष्ट शब्द और वाक्य आते हैं । संकीर्तित का शाब्दिक अर्थ है आश्चर्यजनक युक्त वस्तु की प्रशंसा करना ।आश्चर्य को व्यक्त करने वाले सब विस्मयादिबोधक शब्द इसके अन्तर्गत होते हैं तथा कुछ अन्य प्रयोग भी जैसे - आश्चर्य है, अजीब बात है, विश्वास नही होता , क्या कहूं कुछ कहते नही बनता , किसी वस्तु के प्रति प्रशंसायुक्त विस्मय प्रकट करने के लिये कुछ इस प्रकार के वाक्य कहे जाते है - क्या रंग है, क्या रूप है, कितना सुन्दर है, क्या कहने, आदि । उच्चारण की विशिष्टता के आधार पर ही ऐसे प्रयोग आश्चर्ययुक्त माने जा सकते हैं अन्यथा ये साधारण प्रशंसा मात्र है। आश्चर्य अथवा विस्मय के साथ हास्य भाव का मिश्रण होने पर भी अभिव्यक्ति का रूप प्रायः यही होता है - जवाब नही, अरे भाइ कमाल है आदि। कुछ वाक्य हास्यामिश्रित अथवा प्रसन्नता मिश्रित विस्मय को व्यक्त करते हैं शोक और उलझन उत्पन्न करने वाले आश्चर्य के लिये कुछ भिन्न वाक्यों का प्रयोग होता है जैसे अजीबमुसीबत है,क्या मुसीबत है, क्या चक्कर है,आदि।

६.१२ अप्रत्याशित एवं अलौकिक के प्रति विस्मय :-

अप्रत्याशित घटना विस्मय को जन्म देती है । यह घटना भौतिक भी हो सकती है, दैविक भी और कृत्रिम भी । किन्तु अनुभूति में अन्तर आ जाता है । दैवी घटना या चमत्कार मन में केवल विस्मय ही नहीं जगाते वरन श्रद्धा का भाव भी उत्पन्न करते हैं अतः वाचिक अभिव्यक्ति में विस्मय के साथ साथ प्रशंसा एवं स्तुति का भाव भी रहता है। जैसे जादूगर के प्रति विस्मय में कौतूहल प्रमुख नहीं रहता है,

एक विश्वास अथवा अर्धविश्वास कामाव रहता है । दैवी घटना या चमत्कार के प्रति कुछ इस प्रकार की उक्तियां पायी जाती है जैसे - प्रभु,तेरी लीला अनोखी है, ईश्वर की महिमा अपरम्पार है, उसकी मया को कोई नही समझ सकता है, भगवान की इच्छा को कौन जानता है आदि। कौतूहल के अभाव में इस प्रकार के कथन तटस्थ अभिव्यक्ति केअन्तर्गत आते है । दैवी घटना को,स्त्रोत,कारण या पृष्ठभूमि को जानने का कोईप्रयत्न नही रहता है । ईश्वर के विस्मयकारी स्वरूप के लिये " नेति नेति " शब्द का प्रयोग इसी मनःस्थिति का द्योतक है ।

दैवी शक्ति व , दैवी गुणों से युक्त साधु सन्तों के प्रति श्रद्धापूर्ण विस्मय की व्यजंना होती है।

धर्म :(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र । तुम्हारे बिना कौन होगा जो आयी लक्ष्मी का त्याग करेगा । धन्य तुम्हारा धैर्य, धन्य तुम्हारा विवेक , धन्य तुम्हारी महानुभावता ।

(पृष्ठ १०७ " सत्य हरिश्चन्द्र" भारतेन्दु ग्रन्थावली)

इस प्रकार की विस्मय व्यजंना में कार्यकारण सम्बन्ध पर ध्यान नही रहता है । यह अनुभूति सुखद होती है ईश्वरीय घटना यदि भयानक भी होती मनुष्य का मन उसे नियति मान कर आतंकित नही होता । विस्मय के उपभावों में एक निर्वेद भी है। रचयिता की रहस्यमयी सृष्टि के प्रति वैराग्यपूर्ण तटस्थ जिज्ञासा की अभिव्यक्ति होती है। निम्न दोहे का भाव कुछ इसी प्रकार का है ।

अतिअपारजलनिधि पुनि तिहि बढ़ि मुनि किय पान
तासों बढ़ि लघु घट जनम काको अचरज मान

(महामहिम अगस्त्य मुनि द्वारा समुद्र पान का यह वर्णन- प्रथम तो समुद्र ही सारे आश्चर्यों का खजाना है फिर ऐसे समुद्र का एक चुल्लू में पी जाना और भी आश्चर्य की बात है । इससे भी बढ़ कर आश्चर्य यह है कि एक छोटे से घड़े में जन्म लेने वाले अगस्त्य जी ने पी लिया। इस जगत में आश्चर्य का क्या प्रमाण है)

मायावी प्रभाव के प्रति आश्चर्य भी इसी श्रेणी में आयेगा । जब तक यह ज्ञात नही रहता कि यह सब माया का प्रपंच है तब तक भौतिक घटना या चमत्कार की अनुभूति ही होती है किन्तु ज्ञात हो जाने पर भाव बदल जाता है। जब दैवी घटना या चमत्कार का भाव रहता है तब केवल श्रद्धा एवं प्रशंसायुक्त विस्मय की

अभिव्यक्ति शैली है किन्तु उसे भौतिक घटना समझ लेने पर तर्क एवं सन्देहयुक्त विस्मय की अभिव्यक्ति होती है। उसमें क्यों और कैसे लग जाता है। सन्देह एवं भ्रम का जन्म भौतिक घटनाओं एवं चमत्कारों के प्रति होता है दैवी के प्रति नहीं।

६-१५ भौतिक घटना एवं चमत्कार के प्रति विस्मय :-

भौतिक घटना या चमत्कारों की अनुभूति कुछ दूसरे प्रकार की होती है। ऐसी घटना या वस्तु मनुष्य के समझ से बिल्कुल परे नहीं होती है। अत: कौतूहल एवं जिज्ञासा भी साथ में मिली रहती है। भौतिक घटना और चमत्कार का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। एक ओर तो वैज्ञानिक चमत्कारों से लेकर साधारण मनुष्य द्वारा किया गया कोई भी कार्य इसका आधार हो सकता है, दूसरी ओर जीवन के किसी भी क्षेत्र में इसकी सामग्री मिल सकती है। वैज्ञानिक चमत्कारों के प्रति विस्मय की प्रतिक्रिया बहुत तीव्र होती है और धीरे धीरे इसका रूप परिवर्तन होता जाता है। आरम्भ में जब जेम्सवाट ने अपने वाष्प इंजन का प्रदर्शन किया था तो इंजन को दानव एवं जेम्सवाट को पैशाचिक शक्तियों का नियन्त्रक मान कर उससे घृणा की गयी। कालान्तर में धीरे धीरे घृणा, प्रशंसा में बदल गयी। विस्मय का स्थान आरम्भ में अधिक मात्रा में घृणा के साथ था बाद में कम मात्रा में प्रशंसा के साथ रहा। इसी प्रकार कभी कभी आरम्भ का प्रशंसापूर्ण विस्मय कालान्तर में घृणा में परिवर्तित हो जाता है। समय के साथ साथ इस प्रतिक्रिया में भी अन्तर आ गया है। अब मनुष्य वैज्ञानिक चमत्कारों एवं आविष्कारों को देखकर विस्मय विमुग्ध होकर मानव बुद्धि की स्तुति करता है। आज वैज्ञानिकों द्वारा चन्द्र विजय की प्रतिक्रिया के रूप में जनसाधारण की विस्मयभरी प्रशंसा ही मिली। मनुष्य कितना शक्तिशाली है, उसने चाँद पर विजय प्राप्त कर ली, वह कितना बुद्धिमान प्राणी है उसने अन्तरिक्ष के रहस्यों को खोज लिया है। वैज्ञानिक चमत्कारों के प्रति तुलनात्मक प्रशंसा की अभिव्यक्ति भी होती है- क्या थे क्या हो गये। पत्थर युग से लेकर आज तक मनुष्य ने कितनी प्रगति की।

कौतूहल एवं जिज्ञासा की मात्रा वैज्ञानिक चमत्कारों के प्रति बहुत अधिक होती है। ऐसा क्यों हुआ कैसे हुआ, इसके कारण क्या है, प्रक्रिया क्या आदि प्रश्न उठते हैं। कभी कभी वैज्ञानिक चमत्कार आतंक को भी जन्म देता है तब विस्मय के साथ

भय भी जुड़ जाता है जैसे हाइड्रोजन बम राकेट आदि जैसी विनाशक शक्तियों का अविष्कार । दैवी घटनाओं को ठीक विपरीत वैज्ञानिक चमत्कारों के प्रति सन्देह एवं वितर्क की अभिव्यक्ति नहीं होती है क्योंकि उनकी सत्यता एवं प्रमाणिकता स्वत: सिद्ध होती है ।

भौतिक घटनाओं एवं चमत्कारों के कुछ अन्य रूप भी हैं। जैसे,कहीं पूर्ण कारण के होते हुए भी बाधाओं के अभाव में कार्य न हो तो आश्चर्य उत्पन्न होता है । ऐसे स्थानों पर अभिव्यक्ति स्वकृतियों के आधार पर कई रूपों में हो सकती है । कभी तो भ्रम प्रदर्शन रहता है - जाने इन नेत्रों को कैसी प्यास लगी है, छक छक के रूप रस पान करते है फिर भी प्यास बुझती है । और कभी अज्ञानता के रूप में विस्मय की व्यंजना होती है जैसे- यद्यपि हरि ने ने मुझे अत्यन्त सुन्दर रूप दिया तथापि पता नहीं उसबाला ने मुझे क्यों नहीं कहा । कभी कभी कारण का प्रत्यक्ष उल्लेख रहता है,पूरी परिस्थिति का वर्णन रहता है और या तो उस वर्णन में ही विस्मय का तत्व सन्निहित रहता है अथवा उच्चारण के विशिष्ट ढंग द्वारा व्यक्त होता है।-'भौंरा खिले कमल पर न आकर तेरे मुख पर आ रहा है उसमें उतना मधुरस नहीं है जितना तेरे मुख में है ।'

इस स्थिति के विपरीत जब बिना हेतु या कारण के बाधाओं के रहते हुए भी कोई कार्य सम्पन्न हो जाता है तो विस्मय कीअभिव्यक्ति होती है । ऐसी स्थिति में विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति में वितर्क के साथ कारणों की कल्पना रहती है । इन काल्पनिक कारणों में कभी साधारण एवं सहायक हेतु दूरवर्ती कभी विशिष्ट प्रधान तात्कालिक या निकटवर्ती कारणों की कल्पना होती है । वाचिक अभिव्यक्ति इन्हीं का उल्लेख रहती है। कभी कारणों का अज्ञेय बता कर अज्ञानता का प्रदर्शन किया जाता है । ऐसी स्थिति में सन्देह एवंवितर्क की प्रधानता रहती है- ऐसा हुआ कैसे,क्यों हुआ, यह कारण है या वह कारण है, कहीं ऐसा तो नहीं आदि । कभी कभी ऐसी स्थिति को दैवी चमत्कार मान कर सब ईश्वर की माया है कह कर सन्तोष कर लिया जाता है ।

६.१५ असंभाव्यता के प्रति विस्मय :-

असंभाव्यता भी विस्मय को जन्म देती है। यह असम्भाव्यता कई रूपों में हो सकती है। कोई कारण यदि बिलकुल ही असम्भव हो अर्थात प्रकृति विरुद्ध हो जैसे पशुओं का मनुष्य की भाषा में बोल उठना, तो वह विस्मय के साथ भय भी उत्पन्न कर देता है फलस्वरूप व्यक्ति आतंकित हो उठता है- अरे यह क्या ---- कहीं मैं कोई दु:स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। इसी प्रकार पूर्ण असम्भाव्यता सुखात्मक भी हो सकती है। कोई पुराना रोगी पल भर में स्वस्थ हो जाये तो उसकी वाचिक अभिव्यक्ति भी लगभग यही होगी।

जब कोई व्यक्ति ऐसा कार्य कर देता है जो शारीरिक एवं मानसिक शक्ति की दृष्टि से एक व्यक्ति द्वारा किया जाना असम्भव हो तो आश्चर्य की साथ साथ प्रशंसा, सन्देह एवं ईर्ष्या का भाव भी व्यंजित होता है। यदि व्यक्ति प्रिय है तो अभिव्यक्ति का रूप होगा - वाह कितना बहादुर है, कितना ताकतवर, कितना बुद्धिमान है। किन्तु अप्रिय व्यक्ति के लिये इस विस्मय का रूप कुछ भिन्न होगा जैसे विश्वास नहीं होता वह इतना कर भी सकता है, कहीं यह सब झूठ नहीं तो है। या ईर्ष्यायुक्त विस्मय अरे इतना साहस है उसका, देखने में तो बिलकुल मूर्ख लगता है। प्राय: वाचिक अभिव्यक्ति में इन सब उपभावों का सम्मिलित रूप ही व्यक्त होता है कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो अवश्य संभव नहीं होते किन्तु असंभव होते है। अत: ऐसे कार्य करने वाले के प्रति ईर्ष्या, वितर्क, कौतुहल एवं सन्देह की व्यंजना होती है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो मनुष्य मात्र के लिये असम्भव होते हैं किन्तु दैवी शक्तियों के लिये नहीं। यदि कोई व्यक्ति ऐसे कार्य करता है तो उसके प्रति श्रद्धापूर्ण विस्मय की व्यंजना होती है।

असम्भव वस्तु या घटना की अनुभूति की वाचिक अभिव्यक्ति में अविश्वास का भाव अथवा, लोकोक्ति और दृष्टान्त अलंकारों द्वारा पुष्ट किया जाता है - आज तक ऐसा नहीं हुआ, संसार में कहीं ऐसा नहीं होता है, यह तो बिलकुल नवीन बात है। आलम्बन के हेतु का कथन भी रहता है- वह तो जन्मजात अंधा है, वह कैसे इस पत्र को पढ़ सकता है। कहीं असम्भाव्यता स्पष्ट व्यक्त होती है- यह तो बिलकुल असम्भव है ऐसा कैसे हो गया, यह अनहोनी कैसे हो गयी।

६.१६ वैचित्र्य के प्रति विस्मय :-

किसी विचित्र वस्तु का या घटना को देखकर भी विस्मय काभाव जागृतहोता है। किसी तीन पैर के आदमी को देखकर आश्चर्य होता है किन्तु कौतूहल या जिज्ञासा नहीं, तर्क एवं भ्रम की भी स्थिति नहीं होती है। अर्थात विचित्रता से उत्पन्न आश्चर्य कौतूहल, तर्क भ्रम से परे होता है यहां केवल पहेला रहती है और वाचिक अभिव्यक्ति भी इस प्रकार की होती है- अजीब बात है क्या अजीब बात है, क्या अचरज है क्या बिलकुल विचित्र बात है, अद्भुत अनूठी वस्तु है, नयी बात है। विलक्षण वस्तु है, वाह, आदि। कुछ शब्दगत परिवर्तनों के साथ हर आयु के व्यक्ति की यही अभिव्यक्ति होगी। कभी कभी उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग नहीं रहता किन्तु भाव वही रहता है जैसे - ऐसी रीति तो मैंने कहीं देखी नहीं, इतनी आयु बीत गयी ऐसी वस्तु आज तक नहीं देखी, इतने स्थानों पर घूमा ऐसा कहीं नहीं देखा।

६.१७ असंगति के प्रति विस्मय :-

स्वभाव रूप वस्तुओं आदि की असंगति भी विस्मय को जन्म देती है। दो भिन्न स्वभाव वाली वस्तुओं का एक स्थान पर मिलना, दो भिन्न प्रकृति की वस्तुओं का एक साथ मिलना, आश्चर्य उत्पन्न करता है। इस प्रकार के विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति में सबसे पूर्व भ्रम का भाव व्यक्त होता है - अरे यह क्या, यह क्या देख रहा हूं। इसके पश्चात अविश्वास का- नहीं यह झूठ है, यह गलत है ऐसा नहीं हो सकता, यह स्वाभाविक नहीं है। साथ ही जिज्ञासा का भाव भी प्रबल रहता है - यह आश्चर्य कैसे हुआ, इसके पीछे कौन सा रहस्य है। विश्वास होने के बाद भी सन्देह बना रहता है - इसमें कहीं कोई गड़बड़ है ऐसा नहीं हो सकता है। कारण यदि ज्ञात रहता अथवा हो सकता है तो समय एवं सन्दर्भ के अनुकूल दु:ख या सुख का भाव उत्पन्न होता है। कभी कभी लोकोक्ति और मुहावरों के प्रयोग द्वारा व्यंग्य भी रहता है; गई रही हरि भजन को ओटन लगी कपास। असंगति एवं विषय के प्रति विस्मय में शब्दों का रूप विशिष्ट होता है- कहां वे, कहां वो। कहां राजा भोज कहां गंगवा तेली, - कहां गुलाब, कंटक कहां, पंकज कहां

सरोज, सुतरानन की चूक है , मृदु उर कठिन उरोज ।

६.१८ चमत्कार के प्रति विस्मय :-

कुछ आश्चर्यजनक घटनायें एवं चमत्कार मनुष्यों द्वारा सप्रयास घटित किये जाते हैं । जैसे जादूगर का जादू प्रदर्शन, इन्हें कृत्रिम चमत्कार कहना उचित होगा । इस प्रकार के विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति कभी तो सन्देह एवं तर्क के रूप में होती है किन्तु अधिकतर प्रशंसामिश्रित जिज्ञासा ही रहती है। कभी कभी चमत्कारपूर्ण घटनाओं के साथ हास्य भी जुड़ा रहता है। ~~अद्भुत घटनाओं के साथ हास्य भी जुड़ा रहता है~~। हास्य भी विपरीत पर आधारित है और अद्भुत भी अद्भुत में हास्य की अपेक्षा विपरीतता कहीं अधिक होती है और हास्य के समान उसके कारण का संकेत नहीं मिलता है अद्भुत अघटनीय घटनाओं और लोकोत्तरता पर आधारित रहता है किन्तु हास्य में अद्भुत लोकोत्तर एवं अघटनीय बन कर नहीं उपस्थित होता । हास्य में बुद्धि विवेक का त्याग नहीं होता है जब कि अद्भुत में घटना की अघटनीयता भय को उत्पन्न करने के साथ ही विवेक का भी क्षणभर के लिये हरण कर लेती है। अद्भुत में विवेक की कड़ी क्षणभर को टूटती है किन्तु हास्य में वह आरम्भ से ही उसका सहारा लेकर चलती है। अत: हास्यपूर्ण विस्मय की अभिव्यक्ति में सन्देह , भ्रम , तर्क आदि की व्यंजना नहीं होती है केवल प्रशंसा या व्यंग्य की ही अभिव्यक्ति होती है। भय का भाव भी रहता है किन्तु तभी तक जब तक कि रहस्यों का ज्ञान न हो जाये । वाचिक अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार की होगी - वाह क्या बात है, क्या कहने है, बलिहारी है आपकी बुद्धि की । इस कथनों में से विस्मय प्रशंसा और व्यंग्य में से कौन अधिक रहेगा यह श्रोता की क्षमता, योग्यता तथा परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कभी कभी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भी विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति होती है। किसी कृत्रिम चमत्कारिक घटना को देख कर लोग व्यंग्य से कह उठते है - आपका भी जवाब नहीं- जब कि कथन के वास्तविक अर्थ की यथार्थता श्रोता एवं वक्ता दोनों जानते है । इसी प्रकार आश्चर्ययुक्त किन्तु हास्यास्पद बातें सुनकर लोग कह उठते हैं - वाह क्या दूर की कौड़ी लाये हो, अन्धे को अन्धेरे में बड़ी दूर की सूझी, तुम तो बड़े हुये रुस्तम

निकले , मान गये तुम्हें आदि । जब ये चमत्कारिक बातें बिलकुल ही अर्थहीन एवं अप्रासंगिक होती है तो वक्ता को श्रोता के रोष का भाजन भी बनना पड़ता है और नहीं तो कटु व्यंग्य का शिकार तो वह हो ही जाता है कि क्या उलजलूल बना रहे हो, क्यों पेपर की उड़ा रहे हो,क्यों हवा में उड़ रहे हो ,और रोष की मात्रा अधिक बढ़ने पर यही भी सुनना पड़ता है- अपनी शेखचिल्लियों वाली बकवास बन्द करो ।

६.१९ आकस्मिकता के प्रति विस्मय :-

आकस्मिकता चाहे जिस रूप में हो विस्मय का कारण बनती है। यह स्थिति सुखात्मक भी हो सकती है और दु:खात्मक भी । वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से आकस्मिकता की प्रथम प्रतिक्रिया जड़ता के रूप में होती है। यह जड़ता शारीरिक भी हो सकती है और वाक्गत भी ।इसके बाद अविश्वास ,आग्रह प्रश्न आदि की अभिव्यक्ति होती है। यदि किसी को अचानक यह समाचार मिले कि उसके नाम पांच लाख की लाटरी निकली है प्रथम प्रतिक्रिया का रूप लगभग ऐसा होगा -" सच । झूठ तो नहीं कह रहे हो । नहीं तुम मजाक कर रहे हो , मैं इतना भाग्यवान कहां, तुम्हें मेरी कसम सच सच बताओ ।" संभव है वह इतना भी नहीं कह सके , केवल आश्चर्य से मुंह खोल दे- हैं---- सचमुच ।

आकस्मिक रूप से कोई बात या समाचार सुनने से अधिक तीव्र प्रतिक्रिया आकस्मिक रूप से किसी वस्तु या व्यक्ति को देखने से होती है । ऐसी स्थिति में विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति विस्मयादि बोधक शब्दों या स्वर भंग आदि तक ही सीमित रहती है जैसे किसी प्रिय व्यक्ति के आगमन पर जिसकी बिलकुल ही आशा न हो व्यक्ति सुखद विस्मय में डूबकर केवल इतना ही कह पाता है - अरे--- आपक- । इस स्थान पर कोई अवांछित व्यक्ति होगा तो अभिव्यक्ति का रूप सम्भवतः होगा — ओह आप--- आप! उच्चारण की दृष्टि से यह अन्तर और भी स्पष्ट होगा । पहले क्रम में उल्लास होगा जबकि दूसरे में भय ।

६.२० विभिन्न भाव एवं विस्मय की अभिव्यक्ति :-

विभिन्न प्रकार की घटनाओं और चमत्कारों के साथ साथ विस्मय की

अभिव्यक्ति जिस प्रकार परिवर्तित होती जाती है उसी प्रकार भिन्न भिन्न भावों के सान्निध्य से भी अनुभूति फलस्वरूप अभिव्यक्ति में भी अन्तर आता जाता है ।

६.२०.१ क्रोध और विस्मय :-

क्रोध के साथ विस्मय या आश्चर्य संबंधित है। क्रोध की आरम्भिक अवस्था में आलम्बन की स्थिति के प्रति भ्रम, सन्देह, एवं तर्क के रूप में विस्मय की व्यंजना होती है। आदेश में आश्चर्य का रूप कुछ इस प्रकार का होता है - तेरी यह हिम्मत या इतनी हिम्मत तेरी तेरा इतना साहस के मेरे मुंह लगता है । सब स्थानों पर वाचिक स्तर पर ही विस्मय की व्यंजना होती है। वास्तव में क्रोध एवं भय अपनी प्रकृति की दृष्टि से बहुत भिन्न है। घृणा की प्रकृति भी विस्मय के विरुद्ध है। घृणा एवं विस्मय में कोई सामंजस्य नहीं है। दोनों का आलम्बन एक हो सकता है किन्तु एक समय में एक ही भाव उत्पन्न होगा । घृणा की वाचिक अभिव्यक्ति में अत्युक्ति दिखाने के लिये कहे गये कथन अपनी संरचना की दृष्टि से विस्मयात्मक होते हैं जैसे छि: छि: , कितना गन्दा है, कितना घिनौना सा है ।

६.२०.२ भय और विस्मय :-

भय के साथ विस्मय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों में केवल मात्रा भेद है । विस्मय के लिये प्रयुक्त दो अंग्रेजी शब्द- Flabbergast (भकुमुख बनाने तक की अविश्वसनीयता) और Stupefaction, विस्मय के कारण चेतना का अभाव) उस स्थिति का द्योतक है जब भय एवं विस्मय की मात्रा लगभग समान रहती है । आकस्मिक रूप से किसी वस्तु को देखकर या किसी घटना के घटने पर मन में विस्मय से पहले एक हल्का सा भय आभूत होता है । उस घटना या वस्तु के बारे में पूरा ज्ञान होने पर मन विस्मय एवं भय में से एक को चुनता है । विस्मय अधिक मात्रा में भय का स्थान ले लेता है। दोनों की प्रथम वाचिक प्रक्रिया भ्रम या सन्देह के रूप में बिल्कुल एक सी होती है भ्रम या सन्देह के रूप में -

-- ई यह क्या चक्कर है -------? वह हकबक कैसे बौखला गया ।

(मुक्त स्वर ' कहाँ इतनी देर है ' राजेन्द्र यादव)

भय एवं विस्मय दोनों की प्रथम प्रतिक्रिया अविश्वास के रूप में होती है ऐसा कैसे हो सकता है, यह नहीं हो सकता ।

-- कान्ता: (जैसे उपर से नीचे गिरकर) नौकरी छूट गयी है ? ऐसा कैसे हो सकता है ।

भय एवं विस्मय दोनों के विस्मयादी बोधक शब्द भी लगभग एक ही है । किसी भयानक वस्तु को देखकर भी हमारे मुँह से अरे/हाय रे ईश्वर निकल पड़ता है और अद्भुत वस्तु को देख कर भी ।

फिर भी दोनों की वाचिक अभिव्यक्ति में आगे बढ़ कर अन्तर आ जाता है । भय की अपेक्षा विस्मय में मुखरता अधिक होती है। भय में वाणी की जड़ता स्थायी होती है किन्तु विस्मय में कुछ क्षणों को चाहे जड़ता आ जाये अन्यथा अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय हो जाती है। कौतूहल एवं जिज्ञासा का भाव भय में नहीं होता सन्देह और भ्रम की अभिव्यक्ति चाहे हो जाये । विस्मय में कौतूहल या जिज्ञासा का भाव होने के कारण प्रश्नों की अनवरत झड़ी लग जाती है। वाणीगत जड़ता, कंठस्वर का भर्रा जाना, हकलाना, तुतलाना, आदि दोनों में समान रूप से पाये जाते हैं ।

४.२०.२ शोक एवं विस्मय :-

शोक और विस्मय का प्रकृति की दृष्टि से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु कभीकभी दोनों की अभिव्यक्ति साथ साथ होती है। विशेषकर दुःख जब आकस्मिक होता अथवा बहुत अधिक होता है तब अविश्वास को जन्म देता है ।

---अजित : (एकदम) वर्षा में सचमुच फेल हो गया। क्या सचमुच ? क्या पिता जी सुनकर क्रोध से पागल नहीं हो उठेंगे ।

(पृष्ठ ६१, " चांदनी और अंकुर " विष्णु प्रभाकर)

विस्मय के साथ यदि दुःख भी जुड़ा हो तो विस्मयादिबोधक शब्दों का रूप, उच्चारण एवं प्रयोग की दृष्टि से अन्तर नहीं रहेगा , किन्तु बाद के कथन में अन्तर आ जाता है। जैसे -" अरे वह मर गया " में " अरे" का उच्चारण तो विस्मय प्रधान होगा किन्तु वाक्य के शेष अंश का धीमा और बलाघातहीन

अवरोहात्मक उच्चारण शोक की व्यंजना करेगा । यदि वाक्य लम्बा होगा तो अन्त फुसफुसाहट में बदल जायेगा । किन्तु आवेग में स्थिति भिन्न रहती है । जब शोक के साथ क्रोध एवं उन्माद भी हो तो वाचिक अभिव्यक्ति का रूप अनिश्चित ही रहता है। फिर भी उसका रूप कुछ इस प्रकार का ही होगा -

- श्यामलाल : (सहसा कांप कर) देवी सिंह, वह दुष्ट बदमाश गुण्डा । नीली उसके जाल में फंस चुकी है। क्या ? देवी सिंह ----नीली देवी सिंह की वासना का शिकार ! नीली देवी सिंह की वासना की शिकार !! नीली देवी सिंह की वासना का शिकार !!! (आवेग बराबर बढ़ता जाता है) (चीख कर) मैं देवी सिंह का गला घोंट दूंगा ।

(सांप और सीढ़ी , विष्णु प्रभाकर)

६.२०.४ प्रेम वात्सल्य और विस्मय :-

प्रेम और वात्सल्य से भी विस्मय का कोई प्राकृतिक सम्बन्ध नहीं है किन्तु दोनों भावों से युक्त विस्मय की अभिव्यक्ति मिलती है। इस प्रकार के भावों से युक्त विस्मय की व्यंजना दो रूपों में होती है (प्रथम तो मन्त्रमुग्धता (Fascination) के रूप में विस्मय की अभिव्यक्ति भाव के स्तर पर होती है। इस भाव स्थिति में विस्मय का ज्ञान व्यक्ति को नहीं रहता । वह तो वस्तु या व्यक्ति के रूप सौन्दर्य एवं गुण ~~सौन्दर्य~~ पर मुग्ध रहता है और विस्मय अचेतन स्तर पर पृष्ठभूमि ~~पर मुग्ध रहता है और विस्मय अचेतन के रूप सौन्दर्य स्तर पर पृष्ठभूमि~~ के रूप में रहता है। प्रेम में प्रिय के रूप सौन्दर्य के प्रति आश्चर्यजनक मुग्धता, मां का शिशु के क्रिया कलापों के प्रति विस्मययुक्त आल्हाद इसी प्रकार का होगा । इस भावस्थिति की कोई विशेष वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती । प्राय: इस प्रकार के वाक्य मिलते है जैसे - तुम कितनी सुन्दर हो , कितनी मधुरता है तुम में , या मेराबेटा कितना बहादुर कितना होनहार है ।

-- मीरा : ओह श्याम ! मेरे बच्चे श्याम ! तुम कितने बड़े हो । कृष्णगोपाल :(मधुर हंसी) ओह श्याम , तुम कितने बच्चे हो तुमने [illegible] किया है ।

(पृष्ठ [illegible] सांप और सीढ़ी' विष्णु प्रभाकर)

-- भावुकता की अधिकता के साथ वाक्यों का रूप संक्षिप्ततर होता जाता है जैसे - कितना रूप, कितना लावण्य, कितनी कोमलता है उसमें, आदि ।

द्वितीय रूप में विस्मय की अभिव्यक्ति वाचिक स्तर पर होती है । प्रेम में प्रियपात्र की प्रशंसा भी रहती है। प्रेम में प्राय: झूठी प्रशंसा एवं प्रशंसा हेतु झूठा आश्चर्य प्रकट किया जाता है - अरे इन वस्त्रों में तुम कितनी सुन्दर लग रही हो इतना सौन्दर्य तो मैंने कहीं नहीं देखा , जवाब नहीं । यहां कृत्रिम रूप से आश्चर्य प्रदर्शन होता है। साधारण प्रशंसा की अपेक्षा अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा में आश्चर्य अधिक रहता है। जैसे - आकाश जितनी ऊंचाई है या ताड़ जितना लम्बा है ।

६.२०.५ व्यंग्य एवं विस्मय :-

केवल वाक्य की संरचना की दृष्टि से विस्मय व्यंग्य की भी अभिव्यक्ति में मिलता है। " ओह आ ऽऽप हैं " कथन व्यंग्य एवं विस्मय दोनों ही प्रदर्शित करता है । आपके क्या कहने , आपका जवाब नहीं आदि कथन इसी प्रकार के हैं । यह एक रूपता " उच्चारण के विशिष्ट ढंग द्वारा स्पष्ट होती है। किसी भी फटी पुरानी पुस्तक पर यदि कोई कह दे- अच्छा ऽऽ तो यह पुस्तक आपकी है " तो सुनने वाले को व्यंग्य ही लगेगा चाहे ही वक्ता का अभिप्राय केवल विस्मय प्रदर्शन रहा हो। किसी संगीतज्ञ में कोई व्यक्ति से आश्चर्य से मात्र इतना ही पूछना " अरे आपको ताल ज्ञान नहीं है , तीखा व्यंग होगा। व्यंग्य एवं आश्चर्य की मिश्रित अभिव्यक्ति में काकु वक्रोक्ति का प्रयोग होता है - मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू ।
तुम्हहि उचित तप मो कह भोगू ।।

प्रशंसा की भांति ही निन्दा भी यदि विस्मययुक्त हो तो अधिक प्रभावशाली हो जाती है। " तुम मूर्ख हो " कहने का इतना प्रभाव नहीं पड़ेगा जितना " अरे तुम मूर्ख हो । कहने का विस्मय पूर्ण निन्दा अथवा प्रशंसा की एक और शैली है। " और ही रूप है " ," और ही बात है " कह कर वर्णन में अपनी विस्मय जन्य असमर्थता दिखायी जाती है ।

और कछु सिखवति सखनि, और कछु मुसकान
और कछु कछु देखै हैं, जो न देत बखान
जानि और धीरज धरत, लिखि न सकति समान
कछु सिखावति औरै कछु देखि कह सोच सुजान ।

६.२१ अविश्वास , भ्रान्ति , सन्देह :-

अन्त में विस्मय भाव के विभिन्न उपभावों की शाब्दिक अभिव्यक्ति पर अलग अलग एक दृष्टि डालना ठीक रहेगा। विस्मय में सबसे पहले अविश्वास का भाव जागृत होता है। शाब्दिक अभिव्यक्ति भी सर्वप्रथम इसी की होती है। साधारणतः अविश्वास विस्मयादिबोधक शब्दों और प्रश्न क्या यह सच है के रूप में होता है।

-- विनोद (स्वागत) : अरे मैं यह क्या सुन रहा हूं , मैं क्या देखरहा हूं। कहीं यह स्वप्न तो नहीं है ?

(पृष्ठ ४०, अजन्ता की गूंज)

अविश्वास का भाव यश एवं विस्मय में प्रमुखतः और शेष अन्य भावों में साधारण रूप में जागृत होता है। अभिव्यक्ति लगभग समान ही रहती है। कभी कभी इसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट कथन के रूप में भी होती है - मुझे विश्वास नहीं होता। वाक्य में जहां अविश्वास रहता है वहां बलाघात तथा कभी कभी एक या एक से अधिक शब्दों कीआवृत्ति भी रहती है। मुझे स्वर्ग ले जाना चाहते हो मुझे। अविश्वास के पश्चात भ्रान्ति का स्थान है (भ्रान्ति सदैव दो या दो से अधिक वस्तुओं को लेकर होती है - ये या वो , सत्य या असत्य। जब अविश्वास कई वस्तुओं के प्रति हो जाता है तो भ्रान्ति में बदल जाता है। -

सरदार :(उच्छ्वास के रूप में) स्वर्ग ------अभी------इसी क्षण ---- भगवान के पास------ अभी।

भ्रान्ति में पूछे गये प्रश्नों का क्रम अविश्वास में पूछे गये प्रश्नों से कुछ भिन्न रहता है। भ्रान्ति में,क्या मतलब ? क्या अर्थ है ? क्या तात्पर्य है ? यह प्रश्न स्पष्ट होते हैं और संक्षिप्त भी। अविश्वास में प्रश्न का रूप होगा -- " अरे मैं यह क्या सुन रहा हूँ" , भ्रम में होगा - इसका क्या अर्थ है , सन्देह में यही बात सम्भवतः इस रूप में कही जायेगी -" तुम ठीक तो कह रहे हो?, तुम कहीं मज़ाक तो नहीं कर रहे हो"?। यद्यपि तीनों वाक्यों में अविश्वास सन्देह एवं भ्रान्ति का अस्तित्व है किन्तु इन तीनों में जो भाव प्रधान रहता है वाक्य

का रूप उसी आधार पर बनता है । प्रश्न में प्रश्नों की संदिग्धता के कुछ अन्य उदाहरण क्याकहा ? है ऽऽ ? फिर कहो ? आदि है । कभी कभी पूरी स्थिति का उल्लेख भी प्रश्न में रहता है -

-- नायक ने जब लाल साड़ी के घूंघट में छिपी नायिका का मुखमण्डल देखा तो मुग्धावस्था में बावले की भांति चिल्ला उठा - औरे अग्नि की लपटों में कमल कैसे खिल उठा ।

प्रश्न में वस्तु को कई तरह से व्याख्यायित करके समझने का प्रयत्न रहता है ।

६.२२ <u>आयु एवं विस्मय की अभिव्यक्ति :-</u>

विस्मय का भाव शैशवावस्था से ही जागृत हो जाता है शिशु अपने आसपास के वातावरण में कोई नई अजनबी वस्तु पाकर आंखें फाड़ कर एकटक उसे देखता है । भाषा का ज्ञान होने पर भी शिशु आश्चर्यचकित होने पर उसका प्रयोग नहीं करता है केवल शारीरिक प्रतिक्रियाओं और मुखमुद्राओं से ही विस्मय प्रकट करता है । वाचाल शिशु भी जो कि अन्य भावों की वाचिक अभिव्यक्ति में पटु होता है आश्चर्यचकित होने पर मौन धारण कर लेता है । बच्चों के विस्मय प्रदर्शन में एक बात और दृष्टव्य है । उनके आश्चर्य के साथ सुखात्मक एवं दु:खात्मक भाव नहीं जुड़े रहते हैं अत: अभिव्यक्ति में यह दो वर्ग नहीं होते है । किन्तु विस्मय की वाचिक अभिव्यक्ति बिलकुल शुद्ध हो ऐसी बात नहीं उसमें भय एवं अल्हाद का भाव रहता है । कोई भी अद्भुत घटना या वस्तु बच्चे के अन्दर इन दोनों में से एक अवश्य जागृत होती है । छोटे बच्चे किसी नवीन वस्तु को देखकर (जिसमें वे रुचि ले सके) विस्मय से पुलकित हो जाते हैं -

मां, घोड़ा - बड़ा सा घोड़ा ।

लड़का अपनी मां का हाथ छुड़ा कर घुड़साल की ओर दौड़ा और घोड़े से कुछ दूर खड़े होकर घोड़े को पुकारता रहा । घोड़े ने सिर ऊंचा किया और कान हिलाये । लड़के ने घोड़े की तरह अपना सिर ऊंचा किया पर कान नहीं हिला सका। लड़का तरह तरह की आवाजें करता, मुंह बनाता और अपना एक पैर बार बार जमीन पर पटक कर कहता क मां घोड़ा , बड़ा सा घोड़ा ।

(पृष्ठ २६३ लम्बी कोकोमिल सुरिची , नवनीत मई १९६६)

बच्चों की प्रवृत्ति होती है कि यदि विस्मय की वस्तु आल्हादात्मक हुई तो माँ अथवा अन्य किसी प्रिय व्यक्ति को अवश्य दिखायेंगे। इसलिये उनकी वाचिक अभिव्यक्ति प्राय: इस प्रकार से होती है - देखो माँ, कितनी बड़ी गाड़ी है। पांच वर्ष तक के बच्चों की वाचिक अभिव्यक्ति लगभग इसी प्रकार के साधारण कथन तक सीमित रहती है। विस्मय में प्रयुक्त विभिन्न मुहावरों, विस्मयादिबोधक शब्दों, वाक्यखण्डों आदि का प्रयोग वे नहीं करते हैं। विस्मय में वे बड़ों की भांति मौखिक तक्रियाकलापों का प्रयोग भी नहीं करते हैं। शैशवावस्था के अन्त तक उत्सुकता अधिक हो जाती है। फलस्वरूप आश्चर्य उत्पन्न करने वाली प्रत्येक वस्तु के बारे में वे प्रश्न करते हैं। बाल्यावस्था के आरम्भ से ही बालक के अन्दर जिज्ञासा की मूल प्रवृत्ति क्रियाशील हो जाती है फलस्वरूप इसे अपने चारों ओर के परिवेश में, हर वस्तु में, हर घटना में कौतूहल की सामग्री मिलती है। बालपना कौतूहल प्रश्नों के माध्यम से व्यक्त करता है। आरम्भ में उसके प्रश्न भौतिक दृश्य जगत से सम्बन्धित रहते हैं। वह पेड़ ऐसा क्यों है मकान इतना बड़ा क्यों है, मोटर का रंग लाल क्यों है आदि। किन्तु छ:सात वर्ष तक के बालक कुछ अन्य प्रकार के प्रश्न भी करने लगते हैं जैसे हम कहां से आये हैं मरने के बाद कहां जायेंगे, भगवान कहां रहते हैं आदि। यह प्रश्न भी एक प्रकार से विस्मय की ही वाचिक अभिव्यक्ति है किन्तु इसमें कौतूहल की मात्रा अधिक है। बाल्यावस्था के अन्त तक किसी आश्चर्यजनक घटना या वस्तु को देखकर बालक भी प्राय: उसी प्रकार से अभिव्यक्ति करते हैं जैसे प्रौढ़ करते हैं।

किशोरावस्था के आरम्भ से लिंगों के आधार पर भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। साधारणत: किशोर बालक भय की भांति ही जिज्ञासा प्रदर्शन में भी संकोच का अनुभव करता है। अन्य कोई विशिष्टता नहीं होती। बालिकाओं तथा स्त्रियों की अभिव्यक्ति अवश्य विशिष्ट रहती है। अन्य भावों की भांति ही इसकी अभिव्यक्ति में भी स्त्रियां अधिक मुखर होती हैं। विस्मयात्मक कथनों का स्त्रियों का उच्चारण अधिक बलात्मक एवं <s>प्रश्नात्मक</s> [आवेगात्मक] होता है। आरम्भ में

दिये गये विस्मयादिबोधक शब्दों की अपेक्षा कुछ अन्य शब्दों का प्रयोग भी करती है जैसे - ये लो , अरे लो , जरा इनकी सुनो । वाचिक अभिव्यक्ति के साथ ही आंगिक अभिव्यक्ति में नारी अधिक पटु होती है ।

विस्मय का विलोम शान्त भाव है । जब विस्मय के कारण और पृष्ठभूमि का ज्ञान हो जाता है तो मन भावहीन और शान्त हो जाता है । कभी कभी विस्मय भय में परिणित हो जाता है । इसके अतिरिक्त विस्मय अपने आप में पूर्ण नहीं होता उसके साथ सुखात्मक एवं दु:खात्मक भाव भी जुड़ा रहता है । अत: अभिव्यक्ति में भी यह मिश्रण रहता है ।

-: उत्साह :-

७.१ काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि :-

पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "मनुष्य के हृदय में साहसपूर्ण आनन्द की जो उमंग उत्पन्न होती है, वही उत्साह कहलाती है। मूल अनुभूति दुःख से उत्पन्न होने वाले भावों में जो स्थान भय का है वही सुख की मूल अनुभूति से उत्पन्न होने वाले श्रद्धा प्रेम उत्साह, आदि भावों में उत्साह का है।" उत्साह में कष्ट या हानि सहने की दृढ़ता के साथ साथ कार्य में प्रवृत्त होने का योग भी रहता है। आनन्दपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कंठा में ही उत्साह का सच्चा दर्शन होता है, केवल कष्ट सहने के निश्चेष्ट साहस में नहीं। धृति और साहस दोनों का उत्साह के बीच संचरण होता है। इस प्रकार उत्साह साहस, धैर्य, दृढ़ता और प्रसन्नता का मिश्रण हुआ। वीर रस के स्थायी भाव "उत्साह" को लेकर बहुत वाद-विवाद हुआ है। कुछ आधुनिक विद्वान "अमर्ष" अथवा "साहस" को इसका स्थायी भाव मानने के पक्ष में हैं, परन्तु निन्दा अपमान आक्षेप आदि के कारण उत्पन्न "अमर्ष" और आनन्दशून्य "साहस" जिसमें केवल निर्भीकतापूर्ण धैर्य है "उत्साह" की समकक्षता नहीं कर सकता। "उत्साह" में धैर्य प्रसन्नता और साहस के अतिरिक्त अविषाद, शक्ति, शौर्य तथा त्यागादि भी आते हैं। (भरत द्वारा मान्य - ना०शा० पृष्ठ ८३)। हेमचन्द्र ने अनुभाव के अन्तर्गत स्थैर्य, धैर्य शौर्य, गाम्भीर्य तथा त्याग एवं वैशारद्य आदि माने हैं और धृति स्मृति औत्सुक्य, गर्व, मति आवेग को संचारी माना है (काव्यानुशासन अ० २, पृ० १४, पृ० १९७) वस्तुतः "उत्साह" में इनके अतिरिक्त संलग्नता, अतिशयता साहसिकता का मिश्रित रूप भी होता है।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने उत्साह की ऐसी समग्र सम्पूर्ण व्याख्या नहीं की है। उन्होंने क्रोध की मूल प्रवृत्ति के अन्तर्गत ही उत्साह को आवेश या आवेग के रूप में स्थान दिया है, यद्यपि इसका भी कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

"उत्साह" स्थायी वाले वीर रस के अनेक भेद-उपभेद किये गये हैं जैसे युद्धवीर, दयावीर, दानवीर, धर्मवीर, कर्मवीर, बुद्धिवीर आदि किन्तु वास्तव में "मनुष्य में

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोधादि जितने भी गुण हैं मनुष्य के लिये परोपकार, दान, दया, धर्म आदि जितने भी सुकर्म है, और ऐसे ही जितने अन्यान्य विषय है उन सभी में वीरता और उत्साह दिखाया जा सकता है। (पृष्ठ ३६१, रस सिद्धान्त-स्वरूप विश्लेषण, आनन्द प्रकाश दीक्षित)।

आनन्दपूर्ण उत्साह या साहस तीन रूपों में मिलता है - शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक। साधारणतः 'उत्साह' की अनुभूति दो रूपों में होती है। पहली आन्तरिक शक्ति या मनोबल तथा आत्मविश्वास के रूप में स्व-केन्द्रित तथा दूसरी बाह्य शक्ति या सहायता के रूप में। अभिव्यक्ति के भी दो रूप हैं एक तो स्व केन्द्रित उत्साह आशा या प्रफुल्लता, दूसरे परकेन्द्रित उत्साह, उत्साह आशा एवं प्रसन्नता जिसकी अभिव्यक्ति उद्बोधन आश्वासन, एवं सहानुभूति के रूप में होती है।

७.२ उत्साह एवं शारीरिक अभिव्यक्ति :-

अभिव्यक्ति के क्षेत्र में प्राथमिक स्थान शारीरिक अभिव्यक्ति का है। अन्य भावों की भांति ही उत्साह की स्पष्ट शारीरिक अभिव्यक्ति होती है। 'उत्साह' वास्तव में एक सुखद आवेश होता है अतः उसकी शारीरिक प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। उत्साह में भय क्रोध आदि की भांति मांसपेशियों का संकोचन नहीं होता वरन् विस्तार होता है।

- उसने हुंकार भरी और खूब तन कर खड़ा हो गया।
(पृष्ठ २२ 'मेवाड़ का सरदार' चतुरसेन शास्त्री)

- युवक राव ने सुनकर सिर ऊंचा उठाया, उसकी छाती तन गयी और नथुने फूल गये, उसने तलवार की मूठ पर और से हाथ दे मारा।
(पृष्ठ २६ 'मेवाड़ का सरदार' चतुरसेन शास्त्री)

- वह घुड़की घोड़े पर सवार, सीना ताने चारों तरफ देखते हुए आगे बढ़े गये।
(पृष्ठ ११६, 'सोने की रिहाई', चतुरसेन शास्त्री)

- जैसे जैसे शत्रु की सेना के मारू बाजों का शब्द स्पष्ट होता जाता है तथा शत्रु की सेना आगे आती जाती है, उसी क्रम से वीरवर छत्रसाल के मुख पर लालिमा आती जाती है। उनकी भुजाएं शस्त्र उठाने को फड़कने लगती हैं और बख्तर की कड़िया कड़कड़ाने लगती हैं। - हरिकेश कवि

- जग के दृढ़ विश्वासयुक्त थे दीप्तिमान जिनके मुखमण्डल
पर्वत को भी खण्ड खण्ड कर रजकण कर देने को चंचल
फड़क रहे थे अति प्रचण्ड, भुजदण्ड शत्रु मर्दन को विह्वल
ग्राम ग्राम से निकल निकल ऐसे युवक चले दल के दल।

- रामनरेश त्रिपाठी

"तन कर खड़ा होना", "सिर ऊँचा उठाना, "छाती तानना", "भुजायें फड़कना", "मुख मण्डल लाल होना" आदि हैं उत्साह की स्थूल शारीरिक अभिव्यक्ति हैं। उत्साह के साथ हर्ष या उल्लास का स्वाभाविक सम्बन्ध है। शारीरिक अभिव्यक्ति में यह हर्ष चापल्य के रूप में व्यंजित होता है। बालक एवं किशोरों में यह चापल्य स्वाभाविक रूप से रहता है अतः उनके प्रत्येक क्रियाकलाप में शीघ्रता एवं उत्फुल्लता दिखाई पड़ती है। जब कि प्रौढ़ों में यह कभी कभी और किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर ही दृष्टिगोचर होती है।

- आकाश साफ था। उसके पैर जल्दी जल्दी चल रहे थे। छाती आगे निकली हुई थी कमर सधा ओठ सीधी सीधी मुस्कराहट में फैल गये थे। .... उसका उत्साह अकारण नहीं था।

हर्षपूर्ण उत्साह की अभिव्यक्ति नेत्रों की चमक मुखमण्डल की दीप्ति, उल्लास पूर्ण मुस्कराहट से हो जाती है। उत्साह के अन्य उपभावों में 'गर्व' महत्वपूर्ण है। गर्वयुक्त उत्साह या उत्साहयुक्त गर्व मुखमण्डल की दमक से ही स्पष्ट हो जाता है, इसकी अन्य शारीरिक अभिव्यक्तियों में हाथ उठा कर ललकारना, मुट्ठियां बांधना, खम ठोंकना, ताल ठोंकना, मूँछों पर ताव देना, बाहें चढ़ाना, आदि आते हैं।

७.३ उत्साह एवं कंठस्वर :-

वास्तव में 'उत्साह की अभिव्यक्ति' का सबसे अधिक सशक्त माध्यम वाणी है। हिन्दी काव्यशास्त्र में वीररस के वाचिक अनुभावों के उदाहरणों में गर्वोक्ति, आत्मप्रशंसा, प्रतिज्ञा, चुनौती, ललकार, आदि मिलते हैं। तथापि आचार्यों एवं कवियों ने इन्हें प्रमुखता नहीं दी है, वर्णनात्मक अभिव्यक्ति में ही अधिक रुचि ली है।

'उत्साह' की वाचिक अभिव्यक्ति में कंठस्वर का विशेष महत्व है। कंठ स्वर में बहुत परिवर्तन आ जाता है विशेषकर जब उत्साह का लक्ष्य वीरता प्रदर्शन या कोई अन्य गम्भीर कार्य हो -

सुन सारथी की यह विनय बोला वचन वह वीर यों
करता घनाघन गगन में निर्घोष अति गम्भीर ज्यों
हे सारथे, हे द्रोण क्या आवें स्वयं देवेन्द्र भी
वे भी न जीतेंगे समर में आज क्या मुझसे कभी।

- जयद्रथ वध

आवेश के कारण जहां एक ओर कंठस्वर में अतिरिक्त गम्भीरता आ जाती है, दूसरी ओर कुछ अतिरिक्त तीव्रता भी आ जाती है।

- कर्मचारी (और से) बोलो, क्या तुम लड़ाई में मर्दों की तरह तलवार से खेलना पसन्द करते हो या घरों में मायर मूली की तरह विदेशियों के हाथों काट दिये जाना ? बोलो।

(पृष्ठ ६६, 'दुर्गावती')

अन्य भावों की भांति उत्साह की अभिव्यक्ति में वाणीगत परिवर्तनों को श्रेणियों में नहीं विभक्त किया जा सकता। जैसे क्रोध में वाणी में रुक्षता, कठोरता, कर्कशता, आदि आती है। प्रेम में कंठस्वर स्निग्ध और कोमल हो जाता है। इस प्रकार की कोई विशेषता उत्साह की वाचिक अभिव्यक्ति में नहीं मिलती। उत्साहपूर्ण कंठस्वर के लिये भी 'दहाड़ना' 'चिंघाड़ना', 'गरजना' आदि विशेषण प्रयुक्त किये जाते हैं, किन्तु वे स्पष्ट नहीं है मात्र आलंकारिक हैं, और इन्हें क्रोध से अलग नहीं

किया जा सकता । 'उत्साह' की वाचिक अभिव्यक्ति में उच्चारणगत विशेषताएं महत्वपूर्ण हैं । सर्वप्रमुख विशेषता बलाघातपूर्णउच्चारण है । किसीभी कथन को बल देकर अधिक प्राणशक्ति के साथ कहना, दृढ़ इच्छाशक्ति व्यक्त करता है जो कि उत्साह की विशेषता है । पूरे वाक्य में मूल बात पर जिस पर श्रोता का ध्यान आकर्षित करना है, अपेक्षाकृत अधिक बल पड़ेगा ।

- सो जाओ तुम भी कृतवर्मा । पहरा मैं देता रहूंगा रात भर । कल तक मैं लूंगा प्रतिशोध, सुनते हो, सो जाओ सैनिकों तुम ।

उपर्युक्त कथन में "मैं" का बलाघातपूर्ण उच्चारण क्रियात्मक उत्साह व्यक्त करता है । "सो जाओ तुम भी कृतवर्मा" मात्र कथन या अनुरोध है । "पहरा मैं देता रहूंगा रात भर" भी केवल सूचना मात्र हो यदि उसके उच्चारण का निम्नलिखित विशिष्ट ढंग न हो ।

पहरा मैं देता रहूंगा रात भर

"मैं" पर अधिक और "रात भर" पर अपेक्षाकृत कुछ कम बलाघात तथा प्रत्येक शब्द का रुक रुक कर उच्चारण आश्वासन एवं आत्मविश्वास की व्यंजना करता है ।

उत्साह की वाचिक अभिव्यक्ति में बलाघात के इसी महत्व के कारण व्याकरणात्मक शब्द क्रम कोई महत्व नहीं रखता वाक्य का क्रम "पहरा मैं देता रहूंगा रात भर" हो अथवा "मैं रात भर पहरा देता रहूंगा" अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता है किन्तु बलाघात का स्थानान्तर और लयात्मक भिन्नता अवश्य अर्थ में भी भिन्नता ला देती है । इसी कथन को बलाघातहीन समान लय से कहा जाय तो विवश स्वीकृति प्रतीत होगी ।

आत्मविश्वास प्रकट करने के लिये बलाघात उत्तम पुरुष वाचक शब्दों पर पड़ता है जैसे - "हम जीते, हम तैयार हैं हमारा खून कणों की तरह मचल मचल कर बह उठने को उतावला हो रहा है ।" कथन में हम का बलाघात उच्चारण आत्मविश्वास व्यक्त करता है ।

- चित्रांगद : (दूर से स्वर सुनाई पड़ता है) नहीं मां मुझे जाना होगा । मैं जाऊंगा । यही अवसर है देश के लिये प्राणदान का प्रतिशोध का (चला जाता है)
(पृष्ठ ३५ `विद्रोहिणी अम्बा ` उदयशंकर भट्ट)

`मुझे ` एवं `मैं` का बलाघातयुक्त उच्चारण क्रमश: दृढ़ता एवं आत्मविश्वास की व्यंजना करता है और यही बलाघात सम्पूर्ण कथन को उत्साहपूर्ण बनाता है ।

किसी को उत्साहित करने के लिये मध्यमपुरुष वाचक शब्दों पर बल पड़ता है जैसे, तुम बहादुर हो, तुम्हारे पूर्वज वीर थे, तुम्हारे कुल में बड़े बड़े पराक्रमी हुए कथनों में क्रमश: `अहं को जागृत करने के लिये और सम्बन्ध भाव स्पष्ट करने के लिये `अहं`तुम` एवं `तुम्हारे ` पर बल पड़ा है । सम्बन्ध भाव स्पष्ट करके भी अहं को ही जागृत किया गया है ।

- सरस्वती : यह सुन करतुम्हें लज्जा नहीं आई ? तुम क्षत्रिय हो । राजपूत हो, तुम मेवाड़ के होने वाले राणा हो । राना ने तुमको मेवाड़ पर चढ़ाई होने की खबर भी नहीं दी और बड़े लड़के को इतनी दूर जोधपुर से बुला भेजा । उससे क्या प्रकट होता है स्वामी ? (पृष्ठ ५८ `दुर्गादास `)

संज्ञा एवं सर्वनाम के साथ साथ विशेषण एवं क्रिया-विशेषण पर भी बल पड़ता है एवं वाक्य के अन्य शब्दों से अधिक । `वीर बालक चलो ` में `वीर ` शब्द का बलाघात युक्त उच्चारण आवाहन व्यक्त करता है । दूसरे के अहं को जागृत करने के लिये भी बलाघात विशेषण पर पड़ता है - तुम बहादुर हो, तुम कायर नहीं हो। जब सम्बन्धभाव दर्शाना हो तो वाक्य में बलाघात सर्वनाम पर और जब विशेषता बतानी हो तो विशेषण पर पड़ता है - `तुम क्षत्रिय हो ` (सम्बन्ध भाव) `तुम महान हो (विशेषता) ।

क्रियात्मक उत्साह में और किसी को उत्साह दिलाने में बलाघात क्रिया पर पड़ता है - मैं उसे जीत कर ही आऊंगा । तुम भागोगे नहीं तुम्हें मर मिटना होगा, उठो बहादुरों, आगे बढ़ो साथियों । इस प्रकार क्रिया पर बल पड़ने से वाक्य आवाहक हो जाता है ।

इसी प्रकार कभी कभी उपमानों पर भी बल पड़ता है विशेषकर उद्बोधन में `तुम शेर से बहादुर हो`, वह हाथी के समान बलवान है ।

उत्साहपूर्ण कथनों में वाक्य के पूर्वार्द्ध पर अधिक बल पड़ता है । संभवत: इसका कारण यह है कि प्राय: वाक्य के पूर्वार्द्ध में ही संज्ञा-सर्वनाम रहते हैं ।

- रानी : सुनो ग्रामवासियों, किन्तु मैं अपना दु:ख जताने तुम्हारे पास नहीं आई हूं । आई हूं आज सुन्दर माड़वाड़ के लिये तुमसे सहायता मांगने । बादशाह एक लाख से भी अधिक सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने आ रहा है । तुम लोग माड़वाड़ की सन्तान हो, तुम राजपूत हो, तुम वीर कह कर प्रसिद्ध हो। तुम क्या निश्चिन्त होकर अपनी जन्मभूमि को पददलित होते लुटते और मिटते देख सकोगे ।

(पृष्ठ ७१ दुर्गादास)

उपर्युक्त कथन में लगभग प्रत्येक वाक्य के आरम्भ में बलाघात है । लय की दृष्टि से इस प्रकार के वाक्य आरोह-अवरोहात्मक है अर्थात् पहले ऊँचे जाकर फिर नीचे आते हैं ।

रानी : बैठके । मैं क्या यहां अपने लिये जगह खोजने आयी हूं ? नहीं राना मैं उसे नहीं खोजती । मैं आप आपत्ति को खोजती हूं । आपत्ति की गोद में पली हूं । भूकम्प में मेरा जन्म हुआ है, तूफान में मेरा घर है प्रलय के बादलों में मेरी सेज है । - विपत्ति - विपत्ति को मैंने अपनी सखी बना लिया है राना ।

(पृष्ठ ३५ "दुर्गादास")

उपर्युक्त कथन के प्रथम दो वाक्य तो साधारण प्रश्न हैं आवेश की स्थिति तो उसके बाद आरम्भ होती है

मैं आप आपत्ति को खोजती हूं

भूकम्प में मेरा जन्म हुआ है

तूफान में मेरा घर है

प्रलय के बादलों में मेरी सेज है   विपत्ति

विपत्ति को मैंने अपनी सखी बना लिया है राना

- भीम : सेनापति आप निश्चिन्त रहिये । अपना कर्तव्य समझकर मैं युद्ध में प्राणत्याग करने आया हूं, यह कर्तव्य मेरा अपने प्रति है, पिता के प्रति है और सारी राजपूत जाति के प्रति है । उस कर्तव्य मार्ग में भीम एक पग पीछे नहीं हटने का । आप मुझपर विश्वास रखिये ।

(पृष्ठ ७६ 'दुर्गादास')

उपर्युक्त कथन में भी वाक्यों की लय आरोह-अवरोहात्मक है । -

मैं युद्ध में प्राण त्याग करने आया हूं

यह कर्तव्य मेरा अपने प्रति है

पिता के प्रति है और सारी राजपूत जाति के प्रति है

उत्साहपूर्ण कथनों में मात्राओं का संकोचन होता है । कथन में तत्परता रहती है । शीघ्रता से कहने के कारण शब्दों एवं वर्णों के मध्य का विराम अल्पतम रहता है विशेषकर जहाँ उत्साह की मात्रा अधिक हो । जहाँ धैर्य अधिक हो वहां अपेक्षाकृत ठहर ठहर कर उच्चारण होता है ।

लय की दृष्टि से उत्साहपूर्ण कथनों की एक विशेषता यह है कि यदि कथन लम्बा है तो आवेग की मात्रा धीरे धीरे बढ़ती जाती है फलस्वरूप पूरे कथन का लय आरोहात्मक हो जाता है, स्वर धीरे धीरे ऊपर चढ़ता जाता है ।

- गुल: रोते हो काका। तुम्हारा रोना ठीक है। औलाद की मोहब्बत रुलाती ही है लेकिन काका। अब तुम रोते हो। पर जब तुम अपनी औलाद की इज्जत अपनी आंखों के सामने उन खूंखार वहशी डाकुओं के हाथ लुटते देखोगे तब क्या करोगे ?

गुल को जोश आ जाता है उसका धीमा किन्तु आवेशपूर्ण स्वर गहरी गूंज पैदा करता है

('रक्तचन्दन' विष्णु प्रभाकर)

राधाकृष्ण : (एकदम संभलकर) हां गुल मैं बुजदिल नहीं हो सकता। मेरे सामने मेरी बेटी की मिसाल है। (आवेश) मैं बेटी यकीन रखो। मैं तुम्हारे खून का बदला लूंगा। मैं दुनिया को तुम्हारी कहानी सुनाऊंगा। मैं एक तूफान पैदा कर दूंगा और उस तूफान में मेरे वतन का एक एक दुश्मन तबाह हो जायेगा।

(रक्त चन्दन, विष्णु प्रभाकर)

स्वराघात अथवा लय की दृष्टि से उत्साह की व्यंजना करने वाले शब्दों की संरचना में विशिष्टता आ जाती है। आवेश एवं उल्लास को व्यक्त करने वाले वाक्य शान्त मन:स्थिति में कहे गये वाक्यों से सदैव छोटे होते हैं। यदि वाक्य लम्बा भी हो तो उसके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं। जैसे निम्न उद्धरण में -

- दामोदर स्वरूप : लेकिन मैं बाप हूं। अशोक का बाप हूं, अशोक वीरपुत्र था। मैं वीरपुत्र का वीर बाप बनूंगा। सुनो यदु, रामदास, अनीता, अनवर, राजेन्द्र, तुम सब सुनो।

('मां-बाप' की विष्णु)

७.४ विशिष्ट शब्दों एवं विस्मयादिबोधक शब्दों का प्रयोग :-

उत्साह में प्रयुक्त होने वाले शब्द विशेष में विस्मयादिबोधक शब्दों का स्थान नगण्य है क्योंकि अन्य भावों की भांति इसकी आकस्मिक उत्पत्ति नहीं होती है। बल्कि व्यक्ति धीरे धीरे चिन्तन मनन के बाद इस मन:स्थिति में आता है। हर्ष भी उत्साह का ही एक तत्व है। किन्तु जहां हर्ष की मात्रा अधिक होती है वहां उत्साह उल्लास में बदल जाता है। उल्लास की वाचिक अभिव्यक्ति में कुछ

विस्मयादिबोधक शब्द मिलते हैं जो सन्दर्भ की दृष्टि से 'उत्साह' के विस्मयादि - बोधक शब्द लगते हैं किन्तु वास्तव में हर्ष की अभिव्यक्ति करते हैं जैसे 'ह..हा', हा....हा.. या 'अहा' सन्तुष्टिजन्य हर्ष व्यक्त करता है ।

- अर्जुन : (आनन्द से) अहा ! यह कुरुराज अपनी सैन्य को बढ़ावा दे रहा है । (पृष्ठ १३ 'धनंजय विजय' भारतेन्दु ग्रन्थावली)

इसी प्रकार के कुछ अन्य शब्द है जैसे अहा, ओहो, वाह वाह आदि ।

- इन्दु : (हर्ष से) वाह बेटा अब ले लिया ।

परि० : वाह वाह मैं ऐसा नहीं जानता था । तब तो इस प्रयोग में देर करना ही भूल है

(पृष्ठ २० 'धनंजय विजय' भारतेन्दु ग्रन्थावली)

कुछ अन्य विशिष्ट शब्द भी विस्मयादिबोधक शब्दों की भांति ही 'उत्साह' में प्रयुक्त होते हैं । विशेषकर उत्साह दिलाने में 'सावधान', 'उठो', 'आगे बढ़ो', 'बढ़े चलो' आदि । इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग पूरा समूह उत्तेजित होने पर एक साथ करता है । इसमें कुछ तो अर्थहीन होते हैं और कुछ सार्थक जैसे 'हिप हिप हुर्रे'.....जिन्दाबाद और '..... मुर्दाबाद'

७.५ शब्दावृत्ति एवं वाक्यांश आवृत्ति :-

उत्साह जन्य आवेश में शब्दावृत्ति या वाक्यांश की प्रवृत्ति भी मिलती है । आवृत्ति का कारण अपनी बात पर बल देना रहता है, जैसे "साथ नहीं दोगे तो मैं अकेले जाऊंगा, जाऊंगा, जाऊंगा," । इस प्रकार की आवृत्ति में हठ भी रहता है । कभी मात्र हर्ष जन्य पुलक के कारण शब्दावृत्ति मिलती है ।

- अरे मिल गया, मिल गया बस अब तो चुटकी में हल हो जायेगा ।

साधारण स्वीकृति या अस्वीकृति में भी शब्दावृत्ति के कारण उत्साह व्यक्त होता है । हां आप इस पुस्तक को ले जाइये' की अपेक्षा " हां हां आप इस पुस्तक को ले जाइये," में उत्साह की व्यंजना अधिक होती है । अस्वीकृति में भी "नहीं

मुझे जाना होगा " की अपेक्षा " नहीं नहीं मुझे जाना होगा " अधिक प्रभावशाली है ।

वाक्य में जिस शब्द पर बल देना हो उसकी आवृत्ति भी कर देते हैं - "मैं जाऊंगा मैं " । इसी प्रकार कभी कभी वाक्य को ही दुहरा देते हैं -" मैं जाऊंगा, मैं जाऊंगा । वाक्य को दुहराने में उसका क्रम कुछ भिन्न भी हो सकता है - "तुम वीर हो, वीर हो तुम", वह आयेगा-अवश्य आयेगा वह । क्रिया की आवृत्ति द्वारा अधिकतर हठ का भाव ही व्यक्त होता है जब कि विशेषण एवं संज्ञा सर्वनाम की आवृत्ति कथन में बल पैदा करने के लिये होती है ।

७.६ <u>अन्य पुरुष का सम्बोधन देना</u> :-

उत्साह की भाषागत अभिव्यक्ति में मिलने वाली शाब्दिक विशेषताओं में ही एक है - स्वयं को अन्य पुरुष का सम्बोधन देना । अहं प्रदर्शन की कामना ही सम्भवत: इस प्रवृत्ति के पीछे कार्यशील रहती है । इस प्रकार के उदाहरण उत्साह की वाचिक अभिव्यक्ति में बहुत अधिक मिलते हैं । -

- चन्द्र टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार
  पै दृढ़ हरिश्चन्द्र को टरै न सत्य विचार ।

- भारतेन्दु [illegible] हरिश्चन्द्र

- अश्वत्थामा "कल तक मैं लूंगा प्रतिशोध, सुनते हो, सो जाओ सैनिकों तुम, कल अश्वत्थामा बतायेगा कि क्या करना है तुम्हें ।

("अन्धा युग " धर्मवीर भारती", "रत्नाकर कार्यक्रम " २८-५-६८)

- भीष्म : आज भीष्म आप लोगों के इसी पाप का प्रायश्चित करेगा । शान्तनुपुत्र आज आपको दिखा देगा कि वह इन कन्याओं को सब लोगों के सामने कैसे ले जा सकता है ।

(विद्रोहिणी अम्बा " उदयशंकर भट्ट)

- कुमार : (हंस कर) ज़माने में इन दर्जों के आदमियों से कुछ ऊँचे ख्याल का आदमी हूँ । कुमारसिंह जीवन में केवल अपने कर्तव्यों को मुख्य मानता है और उसे ही पहचानता है । कुमारसिंह के वंश में अब तक किसी की यह मजाल नहीं उसके स्वर्गवासी रूपवन्तसिंह

के किसी आदमी के बदन पर हाथ लगा सके। अच्छा चलता हूं, जहांपनाह, आदाब !
(पृष्ठ ७ 'दुर्गादास')

इस प्रकार अपना नाम स्वयं लेने से 'अहं' एवं 'गर्व' की व्यक्त होता है कभी कभी दृढ़ता की अभिव्यक्ति भी होती है जैसे मैं रामसिंह हूं रामसिंह, तुम रामसिंह को जानते होगे'।

७.७ उत्साह एवं हर्ष :-

उत्साह के विभिन्न उपभावों में हर्ष प्रमुख है। हर्ष, आशा, विश्वास आदि के कारण ही उत्साह क्रोध के आवेश से भिन्न सुखात्मक हो जाता है 'हर्ष' का 'उत्साह' से दुहरा सम्बन्ध होता है, एक ओर तो किसी प्रकार का प्राप्त सुख व्यक्ति में अन्य कार्यों के लिये उत्साह जागृत करता है दूसरी ओर किसी सुखद कार्य करने का उत्साह हर्ष की अनुभूति कराता है।

७.७.१ हास्य : हर्षजन्य उत्साह या उत्साहजन्य हर्ष की कोई विशिष्ट भाषागत अभिव्यक्ति नहीं होती है। कभी तो साधारण कथन के साथ हास्य इस भाव की व्यंजना करता है

- "ओ !" उसने उल्लासभरा कहकहा लगाया ,"अब समझा ! अच्छी बात है, तो मैं लिख देता हूं मास्टर बेलीराम को।
(पृष्ठ २५६ 'गीला बारूद' नानक सिंह)

इसी प्रकार साधारण कथन, साधारण प्रश्न - उत्तर, अपनी लयात्मक विशिष्टता के कारण उल्लास की अभिव्यक्ति करते हैं

- "बताऊं ?" कुन्ध उत्साहित हो उठी। देख इधर तो रंगीले छायावाले वृक्ष इनकी छाया में .... (पृष्ठ १२७ 'मिट्टी के खिलौने' सोमावीरा)

हर्षपूर्ण उत्साह में एक प्रकार की तत्परता रहती है कार्य अथवा समस्या को शीघ्र से शीघ्र हल करने का प्रयास रहता है। -

- सब सरदार एक स्वर में चिल्ला उठे , "कभी नहीं, चलो हम अभी केसरी सिंह को छुड़ायेंगे ।

(पृष्ठ ११७ "कैदी की रिहाई" उदयशंकर भट्ट)

- यह "तत्परता" भाषा में कभी तो प्रत्यक्ष रूप से मिलती है और कभी समस्या एवं समाधान अथवा कार्यप्रणाली के उत्साहपूर्ण वर्णन द्वारा तत्परता की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होती है जैसे "अरे यह कार्य तो मैं चटपट कर डालूंगा ", "इतनी लकड़ियां तो मैं फटाफट तोड़ सकता हूं ।" कहीं से कोई वस्तु लाने के लिये - "मैं यह गया और वह आया "।

- जारि डारौ लंकहि, उजारि डारौं उपवन
  फारि डारौं रावन तो मैं हनुमन्त हौं

७.७.२ अत्युक्तिपूर्ण कथन -

उपर्युक्त कथन में हनुमान उत्साहजन्य तत्परता से अपने कार्यों का वर्णन कर रहे हैं । इस प्रकार के अत्युक्तिपूर्ण कथन उत्साहजन्य तत्परता की व्यंजना करते हैं जैसे - "उसे ढूंढने के लिये मैं जमीन आसमान एक कर दूंगा । "कहो तो आकाश से तारे तोड़ लाऊं, यह क्या काम है", "इसे तो मैं चुटकियों में कर दूंगा ", "इस काम को पलक झपकाते पूरा कर सकता हूं , "तुम कहो तो मैं आसमान से भी टक्कर ला सकता हूं", "यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है", "मैं ईंट से ईंट बजा दूंगा", "जान देकर काम करूंगा", "जान लड़ाके काम करूंगा ", आदि । निश्चय ही इन कथनों में अतिशयोक्ति रहती है किन्तु उसका स्थान भावना के साथ नहीं वरन् भाषा के साथ रहता है । हृदय के उल्लास को साधारण कथन के माध्यम से व्यक्त करना सम्भव नहीं अत: इस प्रकार की अलंकारिक अभिव्यक्ति होती है ।

७.७.३ उल्लास-तत्परता :-

आवश्यक नहीं कि उत्साहजन्य तत्परता का वर्णन केवल अपनी कार्यप्रणाली से सम्बन्धित हो । किसी भी अन्य वस्तु की वर्णन शैली के द्वारा भी यह तत्परता व्यक्त होती है जैसे निम्नलिखित वर्णन में उत्साहजन्य तत्परता के कारण ही एक प्रवाह आ गया है -

गिरे बैरियों के फुण्ड, फिरे रुण्ड बिन मुण्ड
भरे शौणितों से कुण्ड, मचे घोर घमासान
मद पीले गटागट्ट, गले काट कटाकट्ट
मरे पापी पटापट्ट, हँसे रुद्र भगवान ।। - शङ्कर

श्री रामचन्द्र शुक्ल ने अपने उत्साह शीर्षक निबन्ध में एक स्थान पर लिखा है - "कभी कभी आनन्द का मूल विषय तो कुछ और रहता है पर उस आनन्द के कारण एक ऐसी स्फूर्ति जागृत होती है जो बहुत से कामों की ओर हर्ष के साथ अग्रसर होती है । x x x x इसी प्रकार किसी उत्तम फल या सुख प्राप्ति की आशा या निश्चय से उत्पन्न आनन्द फलोन्मुख प्रयत्नों के अतिरिक्त और दूसरे व्यवहारों के साथ संलग्न होकर उत्साह के रूप में दिखाई पड़ती है ।" [2] (चिन्तामणि)

वास्तव में यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है । भाषागत अभिव्यक्ति की दृष्टि से उत्साह का इस प्रकार का स्थान अथवा विषय परिवर्तन कभी तो उछाह के रूप में व्यंजित होता है ।

- अम्बिका : मेरे हृदय में गुदगुदी उठ रही है, ऐसा लगता है इन फूलों की सुगन्ध से, मदमाते पवन से चिपट कर आकाश में उड़ चलूं और टिमटिमाते तारों का मुख चूम लूं और चन्द्रमा को छाती से चिपका लूं ।

(पृष्ठ ५१ 'किङ्किणी' 'अम्बा' उदयशंकर भट्ट)

हर्षजन्य चापल्य की अभिव्यक्ति बालक एवं स्त्रियों द्वारा अधिक होती है । पुरुषवर्ग विशेषकर प्रौढ़ में गाम्भीर्य अधिक रहता है । बच्चों एवं ~~स्त्रियों~~ किशोरों द्वारा चपलता की यह अभिव्यक्ति क्रियात्मक रूप से एवं वाचिक रूप से होती है । किसी कार्य को करने के आग्रह में यही हर्षजन्य उत्साह व्यक्त होता है । - "इस कार्य को मैं ही करूंगा, यह समस्या मैं ही सुलझाऊंगा, बाजार से सामान लाने मैं ही जाऊंगा । कार्य की कठिनाइयों के प्रति लापरवाही या उदासीनता भी इसी आनन्दपूर्ण उमंग की अभिव्यक्ति है - अरे क्या हुआ जो इतनी बड़ी समस्या आ गई, सब ठीक हो जायेगा, उत्साहजन्य हर्ष में एक प्रकार की निश्चिन्तता रहती है ।

- "हां हां एक पान इन्हें दे । आज तो बड़ी उड़ैगी लछमना क कहि आया हूं, उस्ताद ऐसी चकाचक बने कि रंग जामि जाय का है, कल्लि को बूतर फारिकै मरनोई तो है । तोले भर को अण्टा चढ़ायो है । बं बं बं भोला रहे न गम ।

(पृष्ठ ११ 'लोक-परलोक' उदयशंकर भट्ट)

पूर्व कर्मों का अथवा बीती हुई घटना जिसमें उत्साह का समावेश रहा हो का वर्णन करते समय उसमें वर्तमान वाचिक अभिव्यक्ति में भी हर्ष के साथ उत्साह की व्यंजना होती है जैसे निम्न उद्धरण में

(बुढ़ा उत्सुकता से सुनता है)

बुढ़िया : लड्डू बरातियों को पूरे हो गये, उन्होंने खूब खाये और खूब फेंके और सुनो इक्कीस जोड़ी कुल मिला कर कपड़े दिये । तीस बर्तन, एक कुर्सी, एक मेज, एक बड़ा शीशा, लोग कहते थे खूब दिया, खूब दिया ।

(पृष्ठ ४८ 'मन का रहस्य' उदयशंकर भट्ट)

इस प्रकार उत्साहजन्य हर्ष की व्यंजना 'शाबाश', 'वह मारा', 'वो गिराया', आदि शब्दों द्वारा होती है । अपने भूतकालीन कार्यों का वर्णन करते समय यदि साथ में हर्ष भी हो तो वर्णन में अतिशयोक्ति आ जाती है - "मैंने ऐसा मारा, ऐसा मारा कि वह दुम दबा कर भाग गया। मैंने उसे ऐसी खरी खरी सुनाई कि उसकी जबान ही बन्द हो गई । इसी प्रकार भविष्य में किये जाने वाले कार्यों की भी यदि प्रसन्न मन:स्थिति है तो अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन होगा जैसे -

अच्छा / महाराज मैं आपके शासन से अत्यन्त प्रभावित हुआ । मैं आपका नाम बच्चे बच्चे की जबान पर ला दूंगा । मेरी कलम में वह ताकत है कि मैं आपका नाम रौशन कर दूंगा । मेरी कलम में जादू है महाराज । (एक ही साँस में पूर्ण कथन)

('नरक का रहस्य' नया प्रभाव दिल्ली हवा-महल कार्यक्रम १७-७-६८)

पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार यदि किसी मनुष्य को बहुत सा लाभ हो जाता है या उसकी कोई बड़ी भारी कामनापूर्ण हो जाती हो तो जो भी काम उसके सामने आता है उन सब को बड़े हर्ष और तत्परता के साथ करता है । इस हर्ष एवं तत्परता को भी लोग

उत्साह कहते हैं। इस मन:स्थित में साधारणत: व्यक्ति बहुत अधिक बोलते हैं। अन्तर्मुखी एवं गम्भीर स्वभाव वाले व्यक्ति भी अपेक्षाकृत अधिक मुखर हो उठते हैं। आवेश अधिक हो तो कथन या वक्तव्य बहुत लम्बा एवं असंबद्ध भी हो जाता है विशेषकर वर्तमान उत्साह की वाचिक अभिव्यक्ति में। एक उदाहरण -

- मालिक : (हर्ष) जी हां नम्बर एक। लेकिन व जीत तो नम्बर दस की हुई है। खैर आपकी ओर से नहीं, नहीं यह कैसे हो सकता है। मेरे नगर का छोकरा मुझे झुका सके। मैनेजर साहब...... हेड ब्वाय.......अरे तुम सब कहां हो ? तुरन्त बढ़िया से बढ़िया माल लाओ, आओ पण्डित जी आपका ही शिष्य हूं। आओ ठाकुर साहब आपकी ही प्रजा हूं, आओ भाइयों, जी हां सब गाओ (सब मस्ती में गा उठते हैं) सब हैं समान, जी हां सब हैं समान, सब में एक प्राण सब मिल कर हरिराम गाओ ।

(पृष्ठ २५० 'सब है समान' विष्णु प्रभाकर)

- शारदा - और मैं जा रही हूं अभी मुझे बहुत काम है, कपड़े बदलना है। आपने मुझे बुलाया था। ओह् वण्डरफुल बुक। क्या आपने इसे पढ़ा है ? शा भी खूब लिखते हैं। एनी जीन का करेक्टर। अरे तो क्या आप जा रहे हैं ?

('वर निर्वाचन' उदयशंकर भट्ट)

७.८ <u>उत्साह और गर्व (आत्म प्रशंसा)</u> :

'उत्साह' के उपभावों में 'गर्व' अथवा अहं प्रकाशन का महत्वपूर्ण स्थान है। 'अहं' ही उत्साह का प्रेरणास्रोत है। उत्साह में की गई आत्मप्रशंसा साधारण आत्मप्रशंसा से भिन्न होती है। उत्साह में किसी लक्ष्य को सामने रख कर उससे सम्बन्धित अपने गुणों, विशेषकर कार्यक्षमता, का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रहता है। इस प्रकार की आत्मप्रशंसा दो रूपों में मिलती है - प्रत्यक्ष एवं परोक्ष। प्रत्यक्ष आत्मप्रशंसा में अपनी शक्ति, दान आदि का वर्णन रहता है यह कभी तो सीमित एवं मर्यादित रूप में रहती है जैसे दानवीर का यह कथन -

- मांग लो याचक जो कुछ तुम्हें मांगना हो। मैं अपनी सामर्थ्य भर प्रत्येक वस्तु

देने को तैयार हूं।

यहां सामर्थ्यभर की सीमा निश्चित करके अतिशयोक्ति से कथन को बचा लिया गया है किन्तु प्राय: इस प्रकार की सीमा का अभाव रहता है जैसे परशुराम के निम्न कथन में -

- भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही, विपुलबार महिदेवन्ह दीन्ही
  सहसबाहु भुज छेदनहारा, परशुबिलोकु महीप कुमारा

कुछ इसी प्रकार का भाव निम्न कथन में भी है -

बारि बल टारि डारौं, कुम्भकर्णहि बिदारी डारौं
मारौं मेघनाथ, आजु यौं बल अनन्त हौं

उपर्युक्त उद्धरणों में मात्र अहं का प्रकाशन है आत्मप्रशंसा, गर्वपूर्ण आत्मश्लाघा बन गई है। कभी कभी इस प्रकार की आत्मप्रशंसा अहं के प्रकाशन के साथ साथ दूसरों को आश्वासन देने के लिये भी होती है जैसे - 'आप घबड़ाइये नहीं, मेरी बांहोंपर भरोसा रखिये, सब ठीक हो जायेगा।' वस्तुत: यहां आत्मप्रशंसा गौड़ एवं आश्वासन प्रधान है।

- आप भय न करें। हम पांच सौ, पचास हजार के लिये बहुत हैं।
(पृष्ठ ३ 'हठी हम्मीर' चतुरसेन शास्त्री)

- गोपीनाथ अपनी बायीं मूंछ मरोड़ते हुए बोला 'दाल रोटी की क्या बात है दोस्त गोपीनाथ की शरण में आकर भी अगर तुम्हें दाल रोटी की चिन्ता है तो फिर धिक्कार है मुझ पर।
(पृष्ठ १२८ 'गीता बालक' नामक सिंह)

आवश्यक नहीं की प्रशंसा मात्र अहं प्रकाशन या आश्वासन ही हो। तुलना द्वारा अपनी वीरता एवं दूसरे की कायरता प्रकाशित कर दूसरे का तिरस्कार करना भी आत्मप्रशंसा का उद्देश्य होता है जैसा कि निम्नउद्धरणों से प्रदर्शित होता है -

आज भीष्म इन दोनों के इसी पाप का प्रायश्चित करेगा। शान्तनु पुत्र दिखा देगा कि वह इन कन्याओं को इन दोनों के सामने कैसे ले जा सकता है।
('विद्रोहिणी अम्बा' उदयशंकर भट्ट)

आत्मप्रशंसा के अप्रत्यक्ष रूप में कार्य या समस्या की कठिनता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करके इसकी तुलना में अपना साहस दिखाया जाता है। "मैं बहादुर हूं" ऐसा न कह कर "उसकी मृत्यु आ गई है" कहना अधिक प्रभावशाली होगा।

- हे रघुबीर अब तो इन तीक्ष्ण व्यंग्यबाणों की पीड़ा नहीं सही जाती यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अभी पृथ्वी को मरोड़ कर समुद्र में डुबो दूं। आपके प्रताप से पर्वत को उखाड़ कर आकाश तक पहुंच जाऊं। यदि आप एक बार मुंह से निकाल दें तो मैं शरासन को चटाक से मढ़ा दूं। "ललित कवि"

- यदि रोके रघुनाथ न तो मैं अभिनय दृश्य दिखाऊं
  क्या है चाप सहित शंकर के मैं कैलाश उठाऊं
  जनकपुरी के सहित चाप को लेकर बायें कर में
  भरतभूमि घूम आऊं मैं लूप सुनिये पल भर में।

(रा०च० उपाध्याय। का०द०)

युद्ध में प्रतिद्वन्द्वी की वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करना अथवा किसी जगत प्रसिद्ध योद्धा को प्रतिद्वन्द्वी के स्थान पर रख कर उसे चुनौती देना अपने शौर्य की प्रशंसा की अप्रत्यक्ष शैली है - "आज स्वयं यम भी आ जायें तो मैं हिम्मत नहीं हारूंगा", "मैं मौत से टकराने का साहस रखता हूं" आदि अप्रत्यक्ष प्रशंसा है।

सुन सारथी की यह विनय, बोला वचन वह वीर यों
करता घनाघन गगन में निर्घोष अति गम्भीर ज्यों
हे सारथे, हे द्रोण क्या, आवें स्वयं देवेन्द्र भी
वे भी न जीतेंगे समर में आज क्या मुझसे कभी।

जयद्रथ वध

प्रतिद्वन्द्वी और समस्या के अतिशयोक्ति वर्णन के ठीक विपरीत् इन्हें अत्यन्त नगण्य या क्षुद्र बता कर उपेक्षा भाव प्रदर्शित करना भी अपनी प्रशंसा की एक शैली है - "बस इतना ही काम है, यह तो मैं चुटकियों में कर दूंगा" "उस सीकियां पहलवान को हराना कौन बड़ी बात है, एक दांव में ही उसे चित कर दूंगा।"

- "बस " थहानी ने अपने स्वर में तुच्छता का भाव प्रदर्शित किया । अपनी आँखें फटक कर विचित्र भाव दिखलाया "अरे कोई और बड़ी बात कही होती ।

(पृष्ठ ७८, 'सायकिल' राजेन्द्र यादव ' जहाँलक्ष्मी कैदहैं)

गर्व का एक रूप 'जातीय गर्व' है । अभिव्यक्ति की दृष्टि से तो जाति की प्रशंसा अपनी ही प्रशंसा की एक शैली है किन्तु इसका रूप साधारण आत्मप्रशंसा से कुछ भिन्न होता है । यह आत्मश्लाघा एवं आत्मप्रवंचना नहीं है वरन् आत्मगौरव है ।

- दुर्गादास : वीरवर विजय सिंह आज शक्ति की परीक्षा है । मुगल सेना के महासागर में राजपूत को बड़वानल की भाँति कार्य करना है क्या यह कर सकोगे ?

विजय : सेनापति राजपूत बचपन से ही खिलौनों से नहीं कृपाणों से खेलता है, और रक्त से भीगी शय्या पर ही शयन करता है ।

(पृष्ठ २ 'जौहर की ज्योति ' राम कुमार वर्मा)

- वह बोल पड़ा "नेति तुम घघरिया - उड़निया पैरि के घर जाइ बैठो, भले मानस, तुम यू इतनेउ न भयौ कि द्वै चारि के मूढ़ फोरिके आवते फिरि हम देखिलेत लोधनु के हिम्मत नाय होति छत्री तो दो ही है, के तो ठाकुर और के जाटव ।

(पृष्ठ ७४ 'लोक-परलोक' उदयशंकर भट्ट)

यह जातीयगर्व भी किन्हीं विशिष्ट जातियों की ही विशेषता है विशेषकर राजपूत जाति की ।

७.६ उत्साह एवं दृढ़ता :-

'साहस' एवं 'दृढ़ता ' उत्साह के अन्य महत्वपूर्ण उपभाव हैं । किसी भी कार्य के करने, न करने दोनों ही पक्षों से इसका प्रदर्शन हो सकता है इस प्रकार दृढ़ता के दो पक्ष होंगे - निषेधात्मक एवं क्रियात्मक ।

वाचिक रूप से दृढ़ता की अभिव्यक्ति होने के पूर्व यह आवश्यक है कि उसका मानसिक रूप से अस्तित्व हो । साहस और दृढ़ता का सबसे महत्वपूर्ण तत्व विश्वास है - अपने पर अपनी कार्यक्षमता पर, और अपने विचारों पर । यदि कोई कार्य

अनचाहा हो तो अपनी विरोध शक्ति पर भी विश्वास होना चाहिये । "भारत पर चीन कभी नहीं विजय प्राप्त कर सकता है" का गम्भीर कथन मन की दृढ़ता को व्यक्त करता है । यह विश्वासयुक्त दृढ़ता बहुत ही धीर गम्भीर तथा साहसी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हो सकती है और कंठस्वर तथा उच्चारण के माध्यम से व्यक्त होती है । सबसे अधिक वक्ता का कर्मठ व्यक्तित्व ही इसे व्यंजित करता है ।

- विजय : जब तक एक भी राजपूत बाकी है आलमगीर की नीति,राजनीति, उसकी छाया भी नहीं छू सकती ।

(पृष्ठ ५ "जौहर की ज्योति" रामकुमार वर्मा)

- सिकन्दर : (बात काटकर) तुम इसे देर कहते हो, हम इसे अपनी हार समझते हैं, हमारे सामने कोई दरिया आज तक इतनी देर नहीं ठहर सका ।

इस प्रकार की अभिव्यक्तिगत दृढ़ता अधिकतर नीतिपरक कार्यों के प्रति ही होती है ऐसा नहीं होना चाहिये । इस प्रकार का भाव कण्ठस्वर एवं उच्चारण के माध्यम से ही व्यक्त होता है - पुरु: हमारा विचार है कि राजा प्रजा के लिये होता है, सिकन्दर का विचार है कि प्रजा राजा के लिये होती है, हमें ऐसे सिद्धान्तों के विरुद्ध लड़ना चाहिये, नहीं तो हम न्याय की आंखों में दोषी ठहरेंगे ।

(पृष्ठ ५४ सिकन्दर, सुदर्शन)

७.६.१ आत्मविश्वास : निषेधात्मक दृढ़ता के समान ही क्रियात्मक दृढ़ता में भी कुछ स्थितियां आती हैं । दृढ़ इच्छा शक्ति इसमें आवश्यक है, इसे आत्मविश्वास भी कहा जा सकता है । किसी कार्य को करने के बल देकर दृढ़तापूर्वक इतना कहना - "यह होगा" अथवा "ऐसा होगा" आन्तरिक उत्साह व्यक्त करता है । अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिये - "मैं चाहता हूं कि ऐसा हो" और कथन पर और अधिक बल देने के लिये "ऐसा अवश्य होना चाहिये" की अभिव्यक्ति होगी । किन्तु उत्साहपूर्ण आत्मविश्वास की इस प्रकार की सीधी अभिव्यक्ति के लिये आवश्यक है कि वक्ता का व्यक्तित्व स्वयं बहुत ही दृढ़ और प्रभावशाली हो । किसी साधारण व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के लिये ये अभिव्यक्ति उत्साह की व्यंजना नहीं वरन् क्षोभ की

व्यंजना करेगी । व्यक्तित्व यहां सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व है और उसके बाद चारित्रिक दृढ़ता का स्थान होगा ।

- रुख्सानां : मैं उस्ताद अरस्तु के सामने नहीं जाऊंगी, उस्ताद अरस्तु मेरे सामने आयेगा । हट जाओ मैं रास्ता मांगती हूं और मेरा हुक्म आज तक किसी ने नहीं टाला ।

- सिकन्दर (मुस्कराकर) "कोई अगर मगर नहीं । निकाटोर देखना चाहता है कि वह कौन सा पत्थर एवं लोहे का बना आदमी है जो आंधी तूफान, भूचाल के सामने झुकने से इन्कार करता है । ऐसे पत्थर और लोहे के आदमी रोज रोज नहीं पैदा होते, सैकड़ों हजारों वर्षों के बाद पैदा होते हैं

(पृष्ठ ५२ "सिकन्दर", सुदर्शन)

"मैं ऐसा चाहता हूं" की भांति "मैंने यह निश्चय किया है" "मैंने यह सोच लिया है" भी प्रभावशाली व्यक्ति के लोगों की आत्मविश्वास की व्यंजना है

- सिकन्दर : अपनी सारी ताकतें जमा कर लो । हमने पहाड़ से टकराने और आसमान को झुकाने का फैसला किया है ।

(पृष्ठ ६८ "सिकन्दर", सुदर्शन)

"उत्साह" में आत्मविश्वास की उपस्थिति उसे क्रोध से एक बड़ी सीमा तक अलग कर देती है । क्रोध में आत्मविश्वास का कोई विशेष स्थान नहीं है । आत्म विश्वास की भाषागत अभिव्यक्ति स्वयं को धैर्य एवं आश्वासन देने के रूप में भी होती है - "मनुष्य गिर गिर के ही तो उठता है तो मैं क्यों इतनी जल्दी हिम्मत हारूं ।" मैं हारूंगी नहीं । मैं क्यों हारूं ? मेरी जिन्दगी इस तरह मेरे हाथ से छूट कर चली जाय यह नामुमकिन है ।"

(पृष्ठ १०२ "बड़ी चम्पा छोटी चम्पा" लक्ष्मीनारायण लाल)

आत्मविश्वास गम्भीर भाव है जिसमें विवेक की प्रधानता रहती है अत: वाचिक अभिव्यक्ति बिल्कुल साधारण कथन मात्र लगता है किन्तु उच्चारण एवं बलाघात द्वारा भाव स्पष्ट होता है जैसे निम्न कथन में -

- अश्वस्थामा : कल तक मैं लूंगा प्रतिशोध , सुनते हो, सो जाओ सैनिकों तुम, कल अश्वस्थामा बतायेगा कि क्या करना है तुम्हें ।

केवल "मैं" का बलपूर्ण उच्चारण आत्मविश्वास की व्यंजना में समर्थ है । कभी कभी आत्मविश्वास की अधिकता गर्वोक्ति के रूप में व्यक्त होती है । ये वाचिक अभिव्यक्ति आत्मप्रशंसा की भांति ही होती है । -

- बेनी शंकर : अरे निपटी कैसी ? मैं कोई दबने वाला थोड़े ही हूं । कर के नाम करता हूं और दुनिया को ठेंगे पर मारता हूं ।

(पृष्ठ १०३ 'मैं और केवल मैं' भगवती चरण वर्मा)

७.६.२ प्रतिज्ञा :- उत्साहपूर्ण आवेश में की गई 'प्रतिज्ञा' की पृष्ठभूमि में यही दृढ़ता कार्य करती है । 'प्रतिज्ञा' का रूप और सन्दर्भ उत्साह में भी लगभग वही होता है जो 'क्रोध' में रहता है किन्तु अपेक्षाकृत गम्भीरता अधिक रहती है । 'क्रोध' में केवल 'प्रतिकार' और प्रतिहिंसा भाव से प्रतिज्ञा की जाती है जब कि उत्साह में किसी महान उद्देश्य या सद्कार्य की पूर्ति के लिये प्रतिज्ञा की जाती है ।

- मैं अपनी आन्तरिक शक्तियों को विकसित करूंगी । सारा ध्यान अपने कार्य पर एकाग्र कर लूंगी । कोई भी शक्ति मुझे मेरे पथ से विचलित नहीं कर सकती ।

'प्रतिज्ञा' के कुछ बहु प्रचलित रूप हैं 'ऐसा न किया तो मेरा नाम...... नहीं", "बिना पूरा किये मुंह में अन्न नहीं डालूंगा", "मुंह नहीं दिखाऊंगा", मूंछ नीची कर लूंगा" आदि भी उत्साह की अभिव्यक्ति में मिलते हैं । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'प्रतिज्ञा के' यह रूप उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अपनाये जाते हैं जिनमें दृढ़ इच्छाशक्ति का अभाव रहता है । जिन व्यक्तियों में पर्याप्त मात्रा में दृढ़ता रहती है उन्हें इस प्रकार के झूठे आधारों की आवश्यकता नहीं रहती है ।

- विश्वामित्र : मैं अभी देखता हूं न । जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं । भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने का अभिमान करेगा ।

(पृष्ठ ५५ 'सत्य हरिश्चन्द्र' भारतेन्दु ग्रन्थावली)

पर्याप्त दृढ़ता होने पर साधारण कथन भी सरलता से प्रतिज्ञा में बदल जाता है जैसे निम्न उद्धरण में -

- राजाराम : × × × × अब यहां नहीं ठहरूंगा, बड़े भाई कि चिता की आग पवित्र अग्निकुण्ड की आग की तरह दूर से मुझे बुला रही है, भाई के खून का बदला लूंगा, शत्रु की पुरी में आग लगाऊंगा, महाराष्ट्र जाति के घर घर में शक्ति का संचार करूंगा, कराल काली के मन्दिर का पवित्र खड्ग शत्रु के रंग से रंग दूंगा, मुगलों के हाथ भूमि नहीं बेचूंगा । मां के दूध को कलंकित न होने दूंगा ।

(पृष्ठ ३ "वीर पूजा " प० रूपनारायण पाण्डेय)

'उत्साह' में की गई प्रतिज्ञा में विवेक का ह्रास नहीं होता जब कि क्रोध में शायद ही विवेक का अस्तित्व रहता हो । जैसे क्रोध में प्राय: कहते हैं मैं उसका सर तोड़ दूंगा, बत्तीसी अन्दर कर दूंगा, छठी का दूध न याद कराया तो मूंछें मुड़ा दूंगा, टांगों के नीचे से निकल जाऊंगा आदि । इन प्रकार की 'प्रतिज्ञा ' में मर्यादा का अभाव रहता है । जब कि 'उत्साह ' में की गई प्रतिज्ञा मर्यादाशून्य नहीं होती ।

- चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार
  पै दृढ़ हरिश्चन्द्र को टरै न सत्य विचार

  - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

- लोथ पर लोथ गिरे कट कट
  फिर भी धुनि उठे एक यही
  हम आजादी के दीवाने
  परतन्त्र रहेंगे कभी नहीं

  ("सैनिक की मृत्यु शैय्या पर " उदयशंकर भट्ट)

७.६.३ हठ :- उत्साह की "दृढ़ता " कभी कभी हठ के रूप में व्यंजित होती है । एक स्थूल वर्गीकरण यह किया जा सकता है कि निषेधात्मक दृढ़ता 'हठ' एवं क्रियात्मक दृढ़ता "प्रतिज्ञा " के रूप में व्यक्त होती है । 'ऐसा नहीं हो सकता यह असम्भव है' "उत्साह " की वाचिक अभिव्यक्ति का यह एक महत्वपूर्ण अंग है -

- मैं हारूंगी नहीं । मैं क्यों हारूं ? मेरी जिन्दगी मेरे हाथों से छूट कर चली जाय यह नामुमकिन है ।

(पृष्ठ १०२ 'बड़ी चम्पा छोटी चम्पा' लक्ष्मीनारायण लाल)

- मर मिटे रण में पर हम न दे सक्ते जनकात्मजा

(रा०च० उपाध्याय बा०द०)

- हम देश के लिये लहू की अन्तिम बूंद निछावर कर देंगे । निषेधात्मक दृढ़ता की भांति क्रियात्मक दृढ़ता में भी हठ का भाव रहता है मैं यह कार्य करूंगा ही.... मैं यह कार्य अवश्य करूंगा ।

- दूसरा : हम घर जाना ही नहीं चाहते हम घर जायेंगे और हमें रोकने की किसी में ताकत नहीं है । जो हाथ रोकेगा, वह हाथ नहीं रहेगा, जो तलवार रोकेगी वह तलवार नहीं रहेगी । हमारा फैसला व आखिरी है । (पृष्ठ ११८ सिकन्दर, सुदर्शन)

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में समान इच्छाशक्ति है । इच्छाशक्ति अथवा दृढ़ता की मात्रा की दृष्टि से इनमें कोई अन्तर नहीं है । अन्तर है तो केवल वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से । प्रथम का गम्भीर बलाघातपूर्ण उच्चारण आशय व्यक्त करता है दूसरे का स्पष्ट कथन । साधारण जीवन में द्वितीय प्रकार के अतिशयोक्तिपूर्ण कथनों के उद्धरण ही अधिक मिलते हैं ।

वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से शब्दों या वाक्यांश की पुनरावृत्ति करके अपनी बातों पर बल दिया जाता है

- चित्रांगद : (दूर से स्वर सुनाई पड़ता है । नहीं मां मुझे आना होगा, मैं जाऊंगा । यही अवसर है देश के लिये प्राणदान का प्रतिशोध का (चला जाता है) ।

(पृष्ठ ३५ 'किंकिणी अम्बा ' उदयशंकर भट्ट)

इसी प्रकार "मैं यह कार्य करूंगा, करूंगा, करूंगा " या "मैं नहीं जाऊंगा, नहीं जाऊंगा, नहीं जाऊंगा" क्रमशः क्रियात्मक एवं निषेधात्मक हठ व्यंजित करते हैं । क्रियात्मक "हठ की अभिव्यक्ति" वाक्य में "ही" के विशिष्ट प्रयोग द्वारा व भी होती

है `मैं जाऊंगा ही चाहे जो हो` या `मैं नहीं ही जाऊंगा चाहे जो परिणाम हो`। इस प्रकार के प्रयोगों में अप्रत्यक्ष चुनौती रहती है। `हठ` के भाव के साथ साथ धैर्य और चुनौती प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सन्निविष्ट रहती है।

- दामोदर : नहीं हर्गिज नहीं। जो कुछ होगा देखूंगा। भीख मांगना बदा है तो कौन रोक सकता है। (पृष्ठ ५६ `मन का रहस्य` भट्ट)

७.१० <u>उत्साह एवं साहस</u> :-

`साहस` उत्साह का एक महत्वपूर्ण उपभाव है। `साहसपूर्ण उमंग` का नाम ही उत्साह है। यही `साहस` रौद्र रस में भी होता है। किन्तु दोनों के रूप एवं प्रकृति में बहुत अन्तर रहता है। `उत्साह` चाहे हो युद्धवीर का ही हो धैर्य के समीप पहुंचा हुआ रहता है और क्रोध अमर्ष व्यग्रता आदि के दोनों दो विपरीत अवस्थायें हैं। युद्धवीर में कभी कभी अमर्ष का हल्का सा स्पर्श हो जाता है किन्तु वो हिंसात्मक नहीं होता। वास्तव में क्रोध तीन प्रकार का होता है, पाशविक, भावात्मक तथा बौद्धिक। जब कि उत्साह केवल भावात्मक तथा बौद्धिक होता है क्रोध की अपेक्षा उत्साह का भाव सात्विक होता है। क्रोध की भांति यह सदैव प्रतिक्रिया या प्रतिहिंसा के लिये नहीं उत्पन्न होता है, जब प्रतिक्रिया को लक्ष्य सामने रख कर उत्साह जागृत भ होती हैं तो उसमें उदारता एवं विवेक भी सम्मिलित रहता है। `रौद्र` दु:खद भावों के अन्तर्गत आता है और `उत्साह` सुखद-भावों के अन्तर्गत। यद्यपि दोनों में कुछ समानतायें भी मिलती हैं। दोनों में आवेश की स्थिति आती है क्रोध का आवेश नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही होता है जब कि उत्साह की आवेश प्राय: निषेधात्मक होता है। - मैं यह काम नहीं होने दूंगा` अथवा `नहीं करुंगा`। यदि उत्साह क्रियात्मक है - मैं यह करुंगा तो वहां आवेश नहीं वरन् आत्मविश्वास का गाम्भीर्य अधिक रहता है। किन्तु नकारात्मक स्थिति में आवेश के द्वारा ही भाव-व्यंजना होती है। इसमें क्रोध क नहीं, किन्तु उसका रूप झुंझलाहट अवश्य उपस्थित रहता है।

- मंगतू चोट खाकर बोला - "कोई बड़ा होगा तो अपने घर का होगा, उस्ताद जी हम तो पाव भर अनाज खाते हैं एक तो मार खायें, तिस पर भी जबान न खोलें ? × × × × तो तुम चाहते हो कि एक तो हम लोगों ने मार खाई बिना कसूर के अब जाकर उसके पैर पर माथा नाक रगड़े । न न मुफसे ऐसा न होगा तुम्हारा अगर जी चाहे तो सौ बार जूते चाटो उसके । मैं तुम्हें रोकने वाला कौन होता हूं ।

(पृष्ठ ३९ 'गीला बारूद' नानक सिंह)

उत्साहपूर्ण साहस का साहसपूर्ण उत्साह की वाचिक अभिव्यक्ति नहीं होती वरन् क्रियात्मक रूप से ही इसकी अभिव्यक्ति होती है । दृढ़ता, गर्व, आत्मविश्वास, आत्म प्रशंसा के माध्यम से ही इसकी परोक्षरूप से वाचिक अभिव्यक्ति होती है । उत्साहजन्य आवेश अवश्य चुनौती ललकार और धमकी के माध्यम से व्यक्त होता है । यही तत्व क्रोध की वाचिक अभिव्यक्ति में भी रहते हैं किन्तु उसमें रोष एवं उग्रता रहती है ।

आवश्यक नहीं कि उत्साह में दी गई चुनौती का लक्ष्य प्रतिद्वन्द्वी अथवा शत्रु ही हो । कोई भी समस्या, दोष, अवगुण, इसका लक्ष्य हो सकती है । चुनौती स्वयं को भी दी जा सकती है -

- मैं अपनी आन्तरिक शक्तियों को विकसित, करूंगी सारा ध्यान अपने कार्य पर एकाग्र कर लूंगी । कोई भी शक्ति मुझे मेरे पथ से विचलित नहीं कर सकती ।

✓उत्साह में दी गई चुनौती में गम्भीरता रहती है जब कि क्रोध में कभी कभी तो ~~मात्र~~ केवल आवेश की अभिव्यक्ति रहती है - 'आओ सामने तो देखूं, किस माई के लाल की यह हिम्मत है' आदि इन्हें यदि मात्र गाल बजाना कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी । किन्तु उत्साह में दी गई चुनौती में आवेश नहीं रहता वरन् दृढ़ता रहती है -

- पुलचौक : कौन पुलिस स्टेशन जा रहा है ? रत्नी ?
  रत्नी : हां जा रही हूं कोई हिम्मतवाला रोके तो ।

(पृष्ठ २३१ 'सांप और सीढ़ी' विष्णु प्रभाकर)

उत्साहजन्य आवेश में भी उन्हीं शब्दों का प्रयोग होता है जिनका क्रोधजन्य आवेश की चुनौती में । जैसे 'हिम्मत हो तो आ जाओ', 'साहस हो तो यह कार्य कर लो',

कौन माँ का लाल है जो सामने आता है किन्तु क्रोध में यह तिरस्कार एवं व्यंग्य प्रतीत होते हैं जब कि उत्साह में उद्बोधन -

- साहस है लोगो सीकड़ों को, तलवार दो
सामने खड़े हो फिर देखो क्षण भर में
बाजी लौट आती है महान आर्य देश की
दे दो अब शेष निर्णय का भार तलवार को ?

- आर्यावर्त

क्रोध में दी गयी चुनौती में प्रतिद्वन्दी को भयभीत करने का भाव अधिक रहता है जब कि उत्साह में चुनौती व्यक्ति के आन्तरिक साहस का प्रदर्शन है। इसी लिए क्रोधपूर्ण चुनौती में तिरस्कार एवं भर्त्सना का भी समावेश रहता है -

- बालशास्त्री (गुस्से में) नहीं तो छोकरी तू क्या कर लेगी ? हमें यानी महामहोपाध्याय को तू धमकियाँ देती है ? जा नहीं देंगे...... नहीं देंगे तारुण्य भी नहीं देंगे और पैसे भी नहीं देंगे ।

(~~पृष्ठ ६६~~)

उत्साह में आत्मप्रशंसा के साथ ललकार की अभिव्यक्ति हो सकती है किन्तु र उसमें भर्त्सना एवं तिरस्कार का अभाव रहता है। क्रोध में चुनौती के साथ साथ प्रतिद्वन्दि को चिढ़ाने का भाव भी रहता है जैसे इन कथनों में

- हाँ मुकरी, मैंने ही यह गिलास तोड़ा है.... तो
- कहो न ! तुम्हें जो कुछ करना है मैं तो अपने मन की ही करूँगा

इस प्रकार की चुनौती में 'साहस' नहीं वरन् 'हठ' का भाव प्रदर्शित होता है। उत्साह में 'साहस' के साथ 'आनन्द' का भी संयोग रहता है अतः चुनौती एवं ललकार का रूप अपने साथ साथ प्रतिद्वन्दी के लिये भी उद्बोधन का कार्य करता है - 'उठो कायरों की भांति क्यों छुपे हुए हो, वीर की भांति सामने आओ' - उत्साह में दी गई चुनौती का एक रूप है। उत्साहपूर्ण ललकार अपने साथ साथ प्रतिद्वन्दी के अहं को भी जागृत कर देती है।

आवेश की अभिव्यक्ति 'धमकी' के रूप में भी होती है। यद्यपि 'उत्साह' में हिंसा और रोष का अभाव होने के कारण 'धमकी' का रूप क्रोध में दी गई 'धमकी' से बहुत भिन्न होता है। क्रोध में 'धमकी' का क्षेत्र बहुत विस्तृत है उसके अनेक रूप एवं शैलियां मिलती हैं। उत्साह में 'क्रियात्मक पक्ष' एवं 'आनन्द' का मिश्रण होने के कारण इसका क्षेत्र बहुत सीमित है - "यदि यह न हुआ तो मैं प्राण त्याग दूंगा" यदि वह यहां आया तो मैं उसे ठीक कर दूंगा' आदि। विवेक एवं उत्साह यहां भी नष्ट नहीं होने पाता। 'उत्साह' में दी गई 'धमकी' का एक उदाहरण निम्न कथन है :-

- राणा : डरो नहीं। मच्छड़ मारने के लिये मरहठे की तलवार नहीं निकलती। इन तुम अपने घमण्डी बादशाह से जाकर कहो कि हिन्दुस्तान के लोहे में बहुत अच्छा इस्पात होता है और कराल काली के मन्दिर में जिस खड्ग से बकरे की बलि दी जाती है उसी खड्ग से नरबलि भी होती है। इसीलिये अब वह अपनी तलवार का नाम लेकर न बहके। यदि इस महाराष्ट्र देश को बलिदान के आंगन के रूप में देखने की उन्हें विशेष अभिलाषा है तो जिस तरह अत्याचार चल रहा है उसी तरह चलने दे। हम लोग भी श्मशानेश्वरी कराली देवी के षोड़शोपचार पूजा का प्रबन्ध करेंगे।

(पृष्ठ २६ 'वीर पूजा', रूप नारायण पाण्डेय)

७.११ <u>उत्साह दिलाना या उत्साहित करना</u> :-

अभिव्यक्ति की दृष्टि से उत्साह का दूसरा परकेन्द्रित होता है। ऐसे भी उत्साह के भाव को संक्रामक मानते हैं। एक को देख कर दूसरे में भी उत्साह जागृत हो जाता है। व्यक्ति दूसरे को निराशा और पतन की गर्त में जाता देख, उसे धैर्य देने के लिये उसके अन्दर प्रसन्नता और साहस जागृत करने के लिये, उसे आश्वासन देने के लिये कुछ विशिष्ट शब्दों या वाक्यों का प्रयोग करता है। ये शब्द निराश उत्साहहीन व्यक्ति के अन्दर नया विश्वास, नयी आशा जागृत करके उसे स्फूर्ति प्रदान करते हैं, उसमें नवजीवन का संचार करते हैं। ये विशिष्ट वाक्य एवं शब्द भी उत्साह की वाचिक अभिव्यक्ति है क्योंकि जब तक वक्ता के अन्दर पर्याप्त मात्रा में उत्साह

जागृत नहीं होता, वह किसी दूसरे को प्रेरणा देने में असमर्थ होगा । साधारणतः साहित्यिक भाषा में इस प्रकार की वाचिक अभिव्यक्ति को `उद्बोधन ` की संज्ञा दी जाती है `उद्बोधन ` के भी कई स्तर एवं रूप होते हैं जैसे अनुत्साह से उत्साह तक लाना अथवा साधारणमनःस्थिति से उत्साहपूर्ण मनःस्थिति तक लाना ।

७.११.१ सांत्वना द्वारा :- प्रथम स्तर सांत्वना अथवा ढाढ़स के अधिक समीप है । किसी ऐसे व्यक्ति से जिसका सब कुछ लुट गया हो अथवा किन्हीं कारणोंवश व्यक्ति बहुत अधिक ग्रस्त एवं दुखित हो से ये कहना `उठो बहादुरों आगे बढ़ो उसमें उत्साह नहीं वरन् चिढ़ पैदा करेगा । यहां पहले सहानुभूति, सांत्वना, धैर्य और फिर उद्बोधन की अभिव्यक्ति होगी । उद्बोधन का रूप कुछ इस प्रकार होगा, -`ओह मुझे बहुत दुख है तुम्हारा सब कुछ चला गया, कोई बात नहीं धन तो जीवन में आता जाता रहता है, उठो, उसकी चिन्ता छोड़ो, तुम्हारे हाथों में ताकत है तुम अब भी इससे अधिक एकत्र कर सकते हो `आदि ।

- अजीत : (उमंग से) वाह राजकुमारी ! वीणा के तार टूटने में कौन से अमंगल की बात है ? युद्ध में मेरी तलवार टूट जाती है, आकाश का कोई तारा टूट जाता है, लूना नदी की कोई लहर टूट जाती है, इन सब बातों से यदि अमंगल हो तो संसार में अमंगल के सिवाय कुछ रह ही न जाये । रख दो वीणा को इस ओर । इस सुन्दर चांदनी में अमंगल हो ही नहीं सकता विशेषकर जब तुम मेरे सामने हो ।

(पृष्ठ ८३ `कौमुदी की ज्योति ` रामकुमार वर्मा)

अरस्तु : (बात काट कर) देवताओं पर भरोसा रख । सिपाहियों को नाराज होने का मौका न दे, और अपने आप को हर रसीले और नशीले हालात से बचा । फिर तू देखेगा कि दुनिया की हर फतह और हर खुशी तेरी है । देवता निगहबान ।

(पृष्ठ २७ `सिकन्दर`)

७.११.२ व्यंग्य द्वारा :- साधारण मनःस्थिति से उत्साहपूर्ण मनःस्थिति तक लाने की कई शैलियां हैं । व्यंग्य भी उत्साह दिलाने में सहायक हो सकता है । किसी हारे हुए व्यक्ति से यह कहना `बस यही है तुम्हारा साहस, देख लिया ` उसे पुनः नये जोश से भर देता है । किसी के `अहं` का उपहास उसमें

प्रतिक्रिया स्वरूप नया उत्साह भर देता है । पुरुष के पुरुषत्व पर व्यंग उत्साह जागृत कर देता है । इस विधि का प्रयोग स्त्रियाँ ही अधिक करती हैं विशेषकर पति को उत्साह दिलाने के लिये व्यंग्य अचूक अस्त्र है - `क्या स्त्रियों की भाँति घर में छिपे बैठे हो`, `कुछ करते क्यों नहीं, तुम्हें तो घर में चूड़ी पहन कर बैठना चाहिए` `रहने दो इतना काम मत करो थक जाओगे, कोमल शरीर है`, । किशोरावस्था में साधारण भाव से भी यदि किसी प्रकार की कोमलता का आरोप बालक पर किया जाय तो उसकी प्रतिक्रिया तीव्र जोश के रूप में होती है - `अभी तो बेचारा छोटा सा बालक है` सुन कर ही किशोर का रक्त अपने साहस प्रदर्शन को उतावला हो जायेगा ।

७.११.३ करुणा प्रदर्शन द्वारा :- किसी व्यक्ति पर करुणा दिखायी जाय तो उसे जोश आ जाता है, उसका सुप्त अहं जागृत हो जाता है इस करुणा का रूप साधारण करुणा से भिन्न रहता है यह करुणा कृत्रिम एवं निष्क्रिय होती है जैसे `ओह बिचारा बुरी तरह मार खा रहा है`,`इसके दुश्मन ने इसकी नाक नीची कर दी` या `तुम तो बिलकुल कंगाल हो गये हो,` अब क्या रह गया है तुम्हारे पास` किसी हारे हुए व्यक्ति से कहना `च...च... च..च हर गया बिचारा` जहाँ चिढ़ का कारण होगा, वहाँ वही चिढ़ प्रतिक्रिया के रूप में एक नया जोश भी पैदा करती है कि `उसका यह साहस की मुझ पर तरस खाये'। कभी कभी करुणा प्रदर्शन भी व्यंग्य का ही एक रूप रहता है ।

७.११.४ अयोग्य सिद्ध करके :- किसी व्यक्ति को अयोग्य सिद्ध करने से भी उसे जोश आ जाता है - तुमसे यह काम नहीं हो सकता, तुम क्या खाकर उसे उठा पाओगे । तुम भला इतने धन का मोह छोड़ सकते हो । अरे त्याग करने के लिये बहुत बड़ा दिल चाहिये । ` सुन कर व्यक्ति तुरन्त अपनी योग्यता सिद्ध करने को तत्पर हो जाता है । विशेषकर बालक एवं किशोर वर्ग ।

सरजू :- काशिम लड़ेगा ? हिन्दू राजा को सिंहासन पर बिठाने के लिये मुसलमान लड़ेगा ? क्यों क्या आपकी खानदानी अक्ल में धब्बा मार गया है ।

(पृष्ठ ५८ `दुर्गादास`, हरि नारायण पाण्डेय)

७.११.५ भर्त्सना द्वारा :- "भर्त्सना" विशेषकर मार्मिक भर्त्सना उत्साह दिलाने में सहायक होती है। कालीदास की कथा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। उत्साह दिलाने के लिये की गई भर्त्सना में अपशब्दों के स्थान पर तीक्ष्ण व्यंग्य रहता है। द्रौपदी का दुर्योधन पर किया गया प्रसिद्ध व्यंग्य " अंधे को अंधे ही ब जन्मते हैं"कुछ इसी प्रकार का था जिसने दुर्योधन के अन्दर इतनी प्रतिहिंसा भर दी कि महाभारत का युद्ध हुआ। इसी प्रकार पूर्वजों के अवगुणों अथवा कायरता का वर्णन मात्र व्यक्ति में जोश पैदा कर देता है। तुलनात्मक दृष्टि से किसी को हीन बता कर उसकी भर्त्सना म करने की प्रतिक्रिया भी "उत्साह" होती है - "तुम तो बच्चे से भी कमजोर हो", "चूहे से भी ज्यादा डरपोक हो", "गीदड़ से अधिक कायर हो" सुन कर व्यक्ति अपने साहस प्रदर्शन को तत्पर हो जाता है।

सरस्वती : इससे यह प्रकट होता है कि राना तुमको कायर और नालायक समझते हैं। जोधपुर से दुर्गादास, रूपनगर से विक्रम सोलंकी राठौर वीर गोपीनाथ सब मेवाड़ की सहायता के लिये आये हैं वे इस समय राना के सलाह घर में है और तुम मेवाड़ के होने वाले राना होकर भी रंगमहल में बैठे प्रेम का स्वप्न देख रहे हो। सुन कर लाज नहीं आती ? अपने को धिक्कार देने की इच्छा नहीं होती ? क्या। चुप रह गये।

(पृष्ठ ४६ "दुर्गादास", रूप नारायण पाण्डेय).

७.११.६ सत्य या असत्य प्रशंसा द्वारा :- किसी व्यक्ति की झूठी या सच्ची प्रशंसा करके भी उत्साह जागृत करते हैं। किसी ऐसे व्यक्ति से जो किसी कार्य में हिचक रहा हो केवल इतना कह दीजिये ,"अरे तुम तो बहुत वीर हो तुम जिस कार्य को चाहते हो पूरा कर लेते हैं/यह कौन सी बड़ी समस्या है, इसे तो तुम चुटकियों में हल कर सकते हो" तो वह तुरन्त सक्रिय हो जायेगा। कभी कभी पूर्व पराक्रम का स्मरण भी उत्साह उत्पन्न कराने में सहायक होता है - "तुमने इतनी कठिनाइयों में रह कर भी प्रथम श्रेणी से पिछली परीक्षा उत्तीर्ण की अब क्यों नहीं कर सकोगे - अवश्य कर सकोगे" इस प्रकार का सम्बोधन व्यक्ति के अन्दर आत्मविश्वास जागृत करता है और वह कठिन से कठिन कार्य के लिये तत्पर हो जाता है। यह भी आवश्यक नहीं कि व्यक्ति की ही प्रशंसा की जाय। निराश व्यक्ति की वंश परम्परा, एवं जाति की महानता का स्मरण दिलाना एवं उस वंशपरम्परा में उसके अथवा पितामह आदि किसी के शौर्यपूर्ण कार्य या बलिदान की प्रशंसा एवं स्तुति भी व्यक्ति के आन्तरिक सुप्त गौरव

को जागृत करके उसे नयी प्रेरणा देने में सहायक होती है । वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से यहाँ कोई विशिष्टता नहीं होती । केवल आवेश के साथ ओजपूर्ण भाषा में वर्णनिक रहता है ।

- पुरु : आग और पानी के बने हुए वीरों, तुम उन सूरमाओं की सन्तान हो जो मैदान में मरना जानते थे, मैदान से भागना नहीं जानते थे । तुम उस देश के निवासी हो जिसने अपने लाखों पुत्र कटवाये थे मगर अपनी आन और अपने आदर का भण्डा कभी नीचे नहीं भुकने दिया । तुम उस धरती से उत्पन्न हो जिसके ऊपर किसी विरोधी के पांव नहीं पड़े और आज एक लोभ अधिकार का अन्धा विदेशी आकर तुमसे कहता है - यह भण्डा पृथ्वी पर गिरा दो और मेरे सामने सिर भुकाना स्वीकार कर लो नहीं तो मैं तुम्हें नष्ट भ्रष्ट कर दूंगा - बोलो क्या तुम उनकी बात सुनोगे ?

(पृष्ठ ८६ 'सिकन्दर', सुदर्शन)

७.११.७ जातीय गर्व को उत्तेजना देकर :-

'जातीय गर्व' भाव को उकसा कर भी व्यक्ति के अन्दर उत्साह का संचार किया जा सकता है -

- रानी : संभव नहीं है ? संभव नहीं ? तो तुम यही चुपचाप खड़े देखोगे कि तुमको निकाल कर - नष्ट कर - मुगलों की सेना इस तुम्हारी स्वर्णभूमि पर अधिकार कर ले । हा धिक्कार है । इतना पतला पानी भी अगर उसे अपनी जगह से हटाओ तो बाधा देता है और तुम चुपचाप कोई चेष्टा न करके अपना देश शत्रुओं को सौंप दोगे ? तुम हिन्दू हो । तुम राजपूत हो । तुम क्षत्रीय हो - फिर भी कहते हो कि संभव नहीं ।

(पृष्ठ ८० 'दुर्गादास', रूपनारायण पाण्डेय)

७.११.८ समस्या को तुच्छ बताकर :- समस्या अथवा कार्य को तुच्छ बताकर भी निराश व्यक्ति को प्रेरणा दी जाती है - बस इतने में ही तुम घबड़ा गये, यह तो कोई बड़ी समस्या नहीं है, जीवन में जाने कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । " धैर्य देने के लिये भी लगभग इसी प्रकार के वाक्य कहे जाते हैं किन्तु उन्हें शान्त भाव से कहा जाता है जब कि उत्साह में विठाने के लिये अपेक्षाकृत आवेशपूर्ण

मन:स्थिति में कहा जाता है -

- सरस्वती : अगर कर्तव्य की राह पहचानते हो तो उठो। एक बार प्राण पण से चेष्टा करके इस विलास को फटे पुराने कपड़े की तरह हृदय से दूर कर दो स्वामी। कर्तव्य पथ पर चलना सहज जान पड़ेगा। मेरे कहने से एक बार कर्तव्य की ओर बढ़ो, वह आप हाथ बढ़ा कर तुमको अपनी ओर खींच लेगा और तुमको अपने घेरे में रख कर तुम्हारी रक्षा करेगा। कर्तव्य को तुम जितना कठिन समझते हो उतना कठिन वह है नहीं। एक बार हिम्मत करके उद्योग के सहारे अपने पैरों पर खड़े हो जावो स्वामी। (पृष्ठ ४६ "दुर्गादास", रूपनारायण पाण्डेय)

७.११.६ <u>समस्या को बढ़ा कर रखना</u> :- कार्य को छोटा करके दिखाने के ठीक विपरीत कभी कभी काम अथवा समस्या गहन गम्भीर बताने पर भी निषेधात्मक प्रतिक्रिया के रूप में उत्साह जागृत हो जाता है।

कभी कभी कार्यक्षमता का अतिरंजित और अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन कर के भी जोश दिलाया जाता है -

उठो वीरो तुम शत्रुवों के लेखों को चीर दो, आज सबका मुख पीला पड़ गया है, बनती हुई बात बिगड़ गयी है। वीरों अब देर मत करो। तुम्हारी हुंकार से धैर्य का भी धैर्य भाग जायेगा। समुद्र में धूल उड़ने लगेगी और ठोकर की मार से पहाड़ चूर चूर हो जायेंगे।

इस प्रकार का शब्दाडम्बरपूर्ण उद्बोधन समूहबुद्धि को उत्साहित करने में अधिक समर्थ होता है। विशेषकर जातीय गर्व का भाव व्यक्ति के अपेक्षा समूह को उत्तेजित करने में अधिक सहायक होता है। युद्ध में जुलूस में समूह को उत्तेजित करने के लिये जातीय गौरव अतिशयोक्तिपूर्ण कार्यक्षमता, भविष्य का सुन्दर चित्रण, समूहबुद्धि को जोश दिलाने के लिये पर्याप्त है।

- "मैदाने जंग के शाह सवारों आज कुदरत एक बार फिर तुम्हारी आजमाइश करना चाहती है और आसमान एक बार फिर तुम्हारी दिलेरी का तमाशा देखना चाहता है, दिलों में जोश, दिमाग में दीवानगी और ओठों पर यूनानी देवतावों का

नाम लेकर आगे बढ़ो और दुनिया के तारीख के सफहों पर न मिटने वाले हरफों में लिख दो कि दुनिया की ताकत और तन्दुरुस्ती तुम्हारे पावों में सिर झुकाने के लिये पैदा हुई है। जमीन पर जुपिटर का बेटा तुम्हारे साथ है।"

(सिकन्दर, सुदर्शन)

समूह को उत्साहित करने में 'धार्मिक भावनायें' एवं विश्वास भी बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा 'खुदा के नाम पर' और 'ईश्वर के नाम पर' समूह को उत्तेजित किये जाने का ही परिणाम भीषण रक्तपात के रूप में प्रकट हुवा।

७.११.१० भविष्य की सुन्दर अथवा भयानक कल्पना द्वारा :- कभी कभी भविष्य की सुन्दर या भयानक कल्पना करके या उसका चित्रण करके भी व्यक्ति को किसी कार्य के लिये प्रेरित किया जाता है। बच्चों को उत्साह दिलाने के लिये प्राय: माता पिता कहते हैं - "खूब मेहनत से पढ़ो", कक्षा में प्रथम आवोगे तो सब तुम्हारा आदर करेंगे। तुम्हें पुरस्कार मिलेगा।" या नहीं पढ़ोगे तो कोई तुमसे बात भी नहीं करेगा", 'झूठ बोलोगे तो सब तुमसे घृणा करेंगे, आदि। प्रौढ़ व्यक्तियों के लिये भी यह शैली प्रयुक्त होती है।

भयानक भविष्य की कल्पना -

कुछ : रोते हो काका। तुम्हारा रोना ठीक है औलाद की मोहब्बत रुलाती ही है। लेकिन जब तुम रोते हो पर जब अपनी औलाद की इज्जत अपनी आंखों के सामने इन खूंखार वहशी डाकुओं के हाथ लुटते देखोगे तब क्या करोगे ?

जरा ख्याल की आंखों से देखो, तुम्हारा यूनान यहां से कितनी दूर है और यकीन करो कि अगर तुम हारकर वापस जाना चाहते हो तो रास्ते के कंकड़ पत्थर ही तुम्हारे पांव को पकड़ लेंगे और अगर कोई बच कर यूनान पहुंच गया तो यूनान उसके लिये अपनी इज्जत के दरवाजे बन्द कर लेगा वह यूनान की बेगैरत आंखों में जलील होकर जियेगा जलील होकर मरेगा। इसलिये आगे बढ़ने में जिन्दगी है, पीछे हटने में मौत है बोलो तुम क्या चाहते हो ?

(पृष्ठ ६७ 'सिकन्दर' सुदर्शन)

सुन्दर भविष्य की कल्पना या पुरस्कार का लोभ -

सरस्वती : आओ वीरों का वेष धारण करो उसके बाद अपने पिता के पास जाओ । वहां जाकर अपने पिता से कहो, "इस युद्ध के लिये मुझे किसी ने बुलाया नहीं, मैं आपसे आया हूं ।" तुम्हारे पिता गर्व और स्नेह के साथ तुम्हें वीरपुत्र समझकर तुमको गले से लगा लेंगे । सारा मेवाड़ अभिमान से कहेगा - यही तो हमारे होनहार राना है । सारा राजपुताना सिर ऊँचा करके इस दृश्य को देखेगा । - स्वामी/ धिक्कार के साथ बहुत दिन जीने की अपेक्षा पुण्य और प्रशंसनीय होकर एक दिन जीना भी सुखदायक है ।

(पृष्ठ ५० 'दुर्गादास' प० रूपनारायण पाण्डेय)

अगर तुम अपनी और अपने देश की मर्यादा बचाना चाहते हो, अगर तुम अपने पूर्वजों के सिर ऊँचे रखना चाहते हो, तो अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ लेकर आगे बढ़ो । आप मरकर भी शरीर का मुख मोड़ दो और दिखा दो कि तुम अपनी अपनी जाति के लिये जीना ही नहीं जानते मरना भी जानते हो । तुम्हारे पूर्वज तुम्हारी वीरता स्वर्ग से देखें और आशीर्वाद दें ।

(पृष्ठ ८६ 'सिकन्दर' सुदर्शन)

७.१२ उत्साह और मति एवं धैर्य :

उत्साह के साथ मति और धैर्य का अखण्ड सम्बन्ध है । दोनों के अभाव में यह मात्र आवेश बन कर रह जायेगा अत: दूसरों को उत्साह दिलाने में व्यक्ति की इस प्रवृत्ति को उभारने का भी प्रयास रहता है । वस्तुत: किसी कष्ट को धैर्यपूर्वक सहलेना भी उत्साह का ही एक रूप है -

रोती क्यों हो ममी ? कल तक जो हमने चारों तरफ झूठी दीवारें और पर्दे टांग रखे रखे थे उन्हें हम खुद ही उन्हें नीलाम कर रहे हैं । . . . . .
नीलामी का तो अब प्रश्न ही नहीं रहा, हम यथार्थ के पत्थर पर खड़े हैं । हमारे साथ हैं, आओ पापा आज से हम भी मजदूर हो गये ।

("पुरुष और पत्थर" विष्णु प्रभाकर)

७.१३ उद्बोधन

उद्बोधन के लिये किन्हीं विशिष्ट शब्दों का प्रयोग भी करते हैं जैसे `उठो`, `जागो`, `आगे बढ़ो`, `जागते रहो`, `चेतन रहो`, `सावधान` आदि ।

उठो उठो शोणित की धारें
रोक नहीं पायेंगी पथ को
नभचुम्बी अंगार दहकते
रोकेंगे क्या मनु के रथ को

झांकती संहार में नव सृष्टि की कोई कहानी ।
आज उठ अंगार से श्रृंगार कर मेरी जवानी ।।

इस प्रकार के वाक्य उच्चारण की दृष्टि से आज्ञात्मक लगते हैं यद्यपि इनमें केवल उद्बोधन रहता है । वाणी में गम्भीरता और गूंज रहती है । -

"क्या अपने दुर्भाग्य को दो टुकड़े कर देना है ? तो उठिये समरों एवं महासमरों का आमन्त्रण स्वीकार कीजिए । दुर्भाग्य समुद्र की लहरों में जा छिपा है लहरें काटते चलिये दुर्भाग्य एवं बेड़ियां दोनों कटती चलेंगी ।

(पृष्ठ १३१ साहित्य देवता)

सावधान हो जाओ । उठो बिस्तर छोड़ो । औरों को भी उठा दो ।

उद्बोधन में प्राय: प्रश्नोत्तर शैली का आधार लेते हैं । छोटे छोटे उत्तेजित करने वाले प्रश्नों के माध्यम से निरुत्साहित व्यक्ति को क्रमश: उत्तेजना देते हैं । एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा

ब्रह्मचारी : क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारे इस प्यारे देश का प्रबन्ध महारानी जी के हाथों से निकल कर तुमसे तनिक भी सहानुभूति न रखने वाले विधर्मी विदेशियों के हाथ में चला जाय ?

गंवार : कभी नहीं ।

कर्मचारी : क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी सन्तान दासता की बेड़ियों में जकड़ी जाय और पराधीनता के दु:ख भोगा करे ?

गंवार : कभी नहीं, कभी नहीं

कर्मचारी : तो क्या तुम विदेशियों के पंजे से अपनी स्वतन्त्रता, अपना सुख, अपना घर, अपने भाई-बन्धु, अपने खेत और अपने मन्दिरों की रक्षा करना चाहते हो ? ... मैं तुमसे एक बात पूछता हूं । मुगल और तुर्क म तुम्हारी स्त्रियों को भगा कर ले जायेंगे तुम्हारी गउओं को मार कर खा जायेंगे ।

(गंवारों का क्रोध से तमतमा उठना)

(पृष्ठ ६८-६६ `दुर्गावती बदरीनाथ भट्ट)

उत्साह दिलाने के लिये किन्हीं विशिष्ट वाक्यों का प्रयोग भी होता है जैसे, इनमें उत्साह दिलाने के भाव के साथ वक्ता का उत्साह भी व्यंजित होता है जैसे - सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका नहीं सकते । यह सर आज तक किसी के आगे नहीं झुका टूट जायेंगे पर झुकेंगे नहीं । यह हाथ आज तक किसी का मम है । जियेंगे तो सर ऊंचा करके अन्यथा प्राण दे देंगे, कायरों की भांति घुटघुट कर जीने से अच्छी तो मृत्यु है । जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है । फूल न नहीं तो कांटों से दोस्ती कर लेंगे ..., आदि । इसी प्रकार कभी कभी कसमें दिलायी जाती हैं या प्रतिज्ञा की जाती है - तुम्हें मां के दूध की कसम, तुम्हें मेरे सुहाग की कसम जो तुम इस युद्ध में भाग न लो । तुम्हें मेरे आंसुओं की कसम इससे बदला अवश्य लेना आदि । इस शैली का प्रयोग स्त्रियां अधिक करती हैं ।

७.१४ <u>उत्साह एवं निरुत्साह</u> :-

जिस प्रकार क्रोध की मन:स्थिति की उल्टी शान्तमन:स्थिति है, प्रेम का दूसरा पहलू घृणा है उसी प्रकार उत्साह का विलोम अनुत्साह है । `अनुत्साह` कोई भाव नहीं है मात्र एक मन:स्थिति है, इसमें भय, क शोक, ऊब, तटस्थता का मिश्रण रहता है । कभी कभी यह `निर्वेद` तक पहुंच जाता है । जैसे:

- जो कुछ भी होना था हो जाये अब मुझसे और प्रयत्न नहीं होगा । मैं अपनी सामर्थ्य भर कर चुका अब मुझमें और साहस नहीं है, अब भगवान की इच्छा पर निर्भर करता हूँ ।

औरंगजेब (स्वगत) यही अगर होता । यही अगर हो सकता । नहीं बहुत ज्यादा देर हो गई है । अब इस उम्र में एक और नये मन्सूबे को लेकर काम के मैदान में उतरना नहीं हो सकता है। (प्रकट) दिलेर खाँ मैं क्या कर रहा हूं सो खुद मेरी समझ में नहीं आता । मैं काल की तरह काम किये जाता हूं । सोचने नहीं पाता । मेरी आँखों के सामने जैसे अन्धेरा छाया हुआ है । सिर चकरा रहा है दिलेर खाँ मैं अब औरंगजेब नहीं रहा, मैं उसका ढाँचा हूं ।

(पृष्ठ १६६ 'दुर्गादास' पं० रूपनारायण पाण्डेय)

जड़ता : अपने दुर्भाग्य को कोसने, रोने, ईश्वर को दोषारोपण करने के माध्यम से अनुत्साह व्यक्त होता है । शोक की वाचिक अभिव्यक्ति में भी ये तत्व मिलते हैं किन्तु दोनों में अन्तर रहता है । अनुत्साह की मन:स्थिति में जड़ता और निष्क्रियता रहती है जब कि शोक में आवेश भी । किसी की मृत्यु अथवा आकस्मिक रूप से हुई भीषण दुर्घटना पर शोकजन्य जड़ता भी मिलती है किन्तु वह क्षणिक होती है जब कि अनुत्साही व्यक्ति की जड़ता स्थायी होती है । यही जड़ता प्रौढ़ एवं बूढ़े व्यक्तियों में दिखायी देती है । इसी लिये उनके अधिकांश कथन ईश्वर और भाग्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं । कभी कभी वीर और उत्साही व्यक्ति में भी परिस्थितिवश इस जड़ता के दर्शन होते हैं । -

वीर दुर्गादास : तुम लोग खड़े रहो । मैं भागूंगा नहीं, पचास जनों के आगे एक व्यक्ति अपनी रक्षा नहीं कर सकता है, और अपने प्राण बचाने के लिये अपने जाति भाइयों का खून बहाना नहीं चाहता । मैं एक स्त्री के धर्म की रक्षा नहीं कर सका यह मेरी मृत्यु का यथेष्ट पुरस्कार है । मैं उसकी जान न बचा सका यही खेद है मुझे । अच्छी तरह जकड़ लो - बांध लो जो चाहे दण्ड दो ।

(पृष्ठ १३७ 'दुर्गादास' पं० रूपनारायण पाण्डेय)

अनुत्साह में सक्रियता के स्थान पर निष्क्रियता की अभिव्यक्ति होती है । यह निष्क्रियता जड़ता का ही एक रूप है । इसकी अभिव्यक्ति कई रूपों में होती है - प्रथम तो किंकर्तव्यविमूढ़ता है । वाचिक अभिव्यक्ति मानसिक तर्क वितर्क के रूप में होती है 'क्या करूं, क्या न करूं, यह कार्य करूं या न करूं, और यदि करूं तो कैसे करूं, मुझे करना चाहिये अथवा नहीं' ।

किंकर्तव्यविमूढ़ता : कभी २ एक साथ कई उत्तरदायित्व आ पड़ते हैं अथवा एक साथ ही कई समस्यायें उठ खड़ी होती है ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है - 'कौन सा काम पहले करूं, किस समस्या को पहले हाथ में लूं, किधर से कार्यारम्भ करूं ? , आदि कई भाव एक साथ मन में उठते हैं । यह इतनी शीघ्रता से जन्म लेते हैं और आपस में इतने मिले-जुले रहते हैं कि इनकी अलग अलग स्पष्ट भाषिक अभिव्यक्ति दुष्कर है/टूटे फूटे वाक्य, हकलाहट ही इसकी स्वाभाविक भाषागत अभिव्यक्ति है । जैसे - क्या.... यहीं.... नहीं.... अभी.... और कैसे, आदि ।

रामेश्वर : (एक ठण्डी सांस लेकर देवनारायण की ओर देखते हैं) तुम जो कुछ कह रहे हो मेरी समझ में नहीं आ रहा है । देवनारायण जानते हो । घर में पत्नी मरणशय्या पर है और अबोध बच्चा बिना ममता के, प्यार के घर में फिसल रहा है और मैं निराश से टूटा यहां बैठा हूं । देवनारायण क्या करूं ?

(पृष्ठ १०६ 'मैं ' और केवल मैं ' भगवती चरण वर्मा)

शैथिल्य : यह निष्क्रियता शैथिल्य के रूप में भी व्यक्त होती है यद्यपि मन का शैथिल्य भाषा के माध्यम से पूर्णत: स्पष्ट नहीं हो पाता । धीमा कंठस्वर, अक्षरों का विलम्बित उच्चारण वाक्य के मध्य का आवश्यकता से अधिक विराम मन के शैथिल्य को किसी सीमा तक व्यंजित करता है । 'मैं नहीं आऊंगा, निष्क्रियता की अभिव्यक्ति होगी । 'मैं कैसे आऊं किंकर्तव्यविमूढ़ता की, किन्तु दोनों ही वाक्य उच्चारण की विशिष्टता के कारण मन का शैथिल्य व्यक्त कर सकते हैं । वाक्यों का रूप अवरोहात्मक रहता है और कभी कभी तो इतना धीमा हो जाता है कि 'फुस-फुसाहट ' में परिवर्तित हो जाता है ।

मैं नहीं आऊंगा (निष्क्रियता) मैं ऽऽ नहीं ऽ आ ऊंगा । (शैथिल्य)

मैं कैसे आऊं (किंकर्तव्यविमूढ़ता) मैं ऽऽ कैऽ से आऽऊं । (शैथिल्य)

नैराश्य : निष्क्रियता का तीसरा रूप 'नैराश्य' है। इस भाव में शिथिलता, जड़ता, किंकर्तव्यविमूढ़ता का मिश्रण रहता है। बल्कि व्यक्ति उपर्युक्त मन:स्थितियों से गुजरता हुआ नैराश्य तक पहुंचता है। निराशा के साथ साथ दु:ख भी स्वाभाविक रूप से आ जाता है। साधारणत: निराशा की अभिव्यक्ति शैथिल्य की भांति कंठस्वर से ही जाती है। इस कंठस्वर के लिये 'निराशा भरे स्वर में', 'शिथिल स्वर में', 'अस्फुट स्वर में', आदि संकेत दिये जाते हैं। निरुत्साह में 'निराशा' अकर्मण्यता के रूप में अधिक स्पष्ट होती है जब कि शोकजन्य निराशा में भाग्यवाद और आत्मग्लानि के रूप में। वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है - 'अब और साहस नहीं है मैंने तो जुआ डाल दिया, हथियार डाल दिये। अब और हिम्मत नहीं है। मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं कुछ भी करने में अक्षम हूं', आदि।

" वो एक सांस भर कर बोले 'परन्तु मैं कर क्या सकता हूं, उपेन्द्र मैं कर ही क्या सकता हूं।

(पृष्ठ ४५ 'अधूरी गांठ' सोमावीरा)

- लम्बी सांस छोड़ते हुए बाबा ने कहा - मेरे हाथ में कुछ नहीं रहा। मैं क्या कहूं। मुझको तुम्हारी अवस्था पर दु:ख है पर क्या करूं।

('विधवा' श्री जगदीश झा 'विमल')

इस प्रकार के नैराश्य की चरमपरिणति रोदन में है -

- फूली हुई सांस हांफता हुआ पूरन घर पहुंचता है और अपनी बन्दूक को सामने चारपाई पर पटक देता है और दालान के खम्भे पर सिर मार कर छलछल आंसू रोने लगता है।

(पृष्ठ १४२ 'करामत' करतारसिंह दुग्गल 'नवनीत' मार्च ६७)

- 'इसके बिना गुजारा भी नहीं। घर की हालत ऐसी है कि नौकर भी नहीं रक्खा जा सकता। अब करें भी क्या ? ठण्डी उसांसे भरते हुए माता ने कहा "मां जिन्दा होती तो बात दूसरी थी और उसकी आंखें डबडबा आयीं।

(पृष्ठ १२ 'दुपहर इतवार की' वीरेन्द्र मेहता, धर्मयुग, १६ जनवरी ६६)

इस प्रकार की निराशा अस्थायी होती है। परिस्थितियों के बदलने पर अथवा किसी प्रकार की उत्तेजना मिलने पर व्यक्ति इनसे मुक्ति पा सकता है।

कभी कभी निरुत्साह,उत्साह के विकृत रूप में व्यक्त होता है कि जो व्यक्ति बहुत दृढ़निश्चयी एवं उत्साही होता है वह यदि अपनी लक्ष्य प्राप्ति में असफल हुआ तो उसमें निराशाजन्य विकृत उत्साह उत्पन्न हो जाता है। इस उत्साह का लक्ष्य पहले लक्ष्य के बिलकुल विपरीत रहता है। इसे उत्साह न कह कर हठ कहना अधिक उचित होगा। वस्तु को नष्ट करने का स्वयं को नष्ट करने का और अपने आदर्शों को नष्ट करदेने का हठ -

- गुलनार : क्यों कलंगी ? जानना चाहते हो ? तो सुनो जब तक मैं बादशाह की प्यारी बेगम थी तब तक जिन्दा रही। जब तक मैं हुकुम करती थी तब तक जिन्दा रही। जब तक शान के साथ सिर ऊंचा किये रह सकती थी तब तक जिन्दा रही। आज बादशाह की नफरत, नौकरानी की बदमिजाजी, लड़के पोते का तरस और दिल की बेकरारी लेकर गुलनार इस दुनिया में नहीं रहना चाहती।
(पृष्ठ १७५ 'दुर्गादास' प० रूप नारायण ~~भट्ट~~ पाण्डेय)

<u>दैन्य</u> : उत्साह का एक उपभाव गर्व है। यह गर्व किसी भी वस्तु का हो सकता है जैसे, अपनी सामर्थ्य, कुल, शक्ति आदि। जब व्यक्ति को लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती ~~ह~~ तो उसका गर्व खंडित हो जाता है। उसका आत्मसम्मान नष्ट ही नहीं होता, दैन्य एवं कायरता में परिवर्तित हो जाता है। वह प्राणों के लिये या लक्ष्य प्राप्ति के लिये उचित अनुचित हर साधन को अपनाने को तैयार रहता है। -

- रंगनाथ (स्वगत) :- x x x x x लेकिन कासिम यह क्यों सुनेगा ? वह तो शत्रु है। तो वह शत्रु मैं उसके पैरों की रज सिर में लगाऊंगा। दिन रात अनुनय कर उससे करुणा की भीख मांगूंगा। इस पर भी उसे क्या दया न आवेगी। इसमें भी क्या वह न मानेगा ? मेरे घर के इस पुण्य पेड़ को उखाड़ जावेगा ?
(पृष्ठ ५१ 'वीर पूजा', प० रूप नारायण पाण्डेय)

इस प्रकार का दैन्य और कायरता निम्न प्रकृति के व्यक्तियों में ही मिलती है। इसके लिये एक शब्द 'गिड़गिड़ाना' प्रयुक्त हो सकता है।

- काबलेस खां : माफ करो खुदाबन्द मैं आपका कुत्ता हूं

(पृष्ठ १५०, 'दुर्गादास')

- काबलेस खां : दोहाई है शाहजादा साहब। मुझे जान से न मारिये। मैं आपका गुलाम होकर रहूंगा। आपका काबलेस - मारिये जूते से मारिये - लात मारिये और फिर मार मार कर निकाल दीजिये। जान से न मारिये, दोहाई है।

(पृष्ठ १६७ 'दुर्गादास' प० रूप नारायण पाण्डेय)

उत्साह अपने आप में पूर्णतः सुखात्मक भाव है। अन्य भावों में इसका रूप परिवर्तित नहीं होता है। अर्थात् भाव शबलता की स्थिति इसमें साधारणतः नहीं रहती।

प्रेम

८.१ काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि :-

प्रेम को " शृंगार रस " कहा गया है। विश्वनाथ के अनुसार, काम के अंकुरित होने को शृंग कहते हैं। उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त, रस शृंगार कहलाता है।[1] शृंगार का स्थायी भाव रति है। शृंगार से सम्बन्धित स्त्री पुरुष की परस्पर आसक्ति ही रति है। विभिन्न विद्वानों ने उसकी विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। भोजराज के अनुसार मन के अनुकूल विषयों में सुख अनुभव करना रति है।[2] रति दो प्रकार की मानी गयी है लौकिक एवं अलौकिक। लौकिक स्वरूप पार्थिव नर नारियों की प्रणय लीलाओं से परिपूर्ण है। आलौकिक में प्रेम का आलम्बन ईश्वर या कोई इष्टदेव हो सकता है।

अपनी व्यापकता के कारण शृंगार को रसराज कहा गया है। हास्य के साथ ही हास्य, वीर एवं अद्भुत रसों का मैत्रीभाव माना गया है तथा वीभत्स, करुणा, रौद्र, भयानक और शान्त इसके विरोधी कहे गये हैं। रस दृष्टि से एक या दो को छोड़कर लगभग सभी संचारी इसके अन्तर्गत आ गये हैं। प्रेम के अनुभावों को शास्त्रीय दृष्टि से दो भागों अयत्नज एवं सात्विक में बांटा जाता है। भरत ने काव्य शास्त्र में बीस सात्विक अलंकारों की चर्चा की है। नायिकाओं के इन अलंकारों का विभाजन अंगज में भाव, हाव, हेला अयत्नज, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य तथा धैर्य, स्वभावज में लीला, विलास, ललित, विहृत, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित तथा बिब्बोक है। विश्वनाथ ने नाट्यशास्त्र की संख्या एवं विभाजन को स्वीकार करके भी स्वभावज में आठ और जोड़े हैं - मद, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि।

इन अलंकारों को स्त्रियों की भावाभिव्यक्ति से सम्बन्धित माना गया है। परन्तु कुछ का सम्बन्ध पुरुषों से भी माना गया है।

१- शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः उत्तम प्रकृति-प्रायो रस :
शृंगार इष्यते साहित्य दर्पण ३,१८३

२- " मनोनुकूलेष्वर्थेषु सुख संवेदनं रतिः।"

भोज के अनुसार हेला तथा हाव और भोजराज के अनुसार विलास,विच्छिति तथा विभ्रम पुरूषों में भी होते हैं ।

इन अलंकारों का कई नाम से विवेचन किया गया है भोज ने इनकी चर्चा " वरस्त्रीणां विलास: " में की अर्थात इन्हें विलास माना है। भानुदत्त ने इन्हें " हाव" के रूप में स्वीकार किया है। कुछ आधुनिक विवेचकों ने संस्कृत के आधार पर अलंकार ही कहा है । उपर्युक्त सम्पूर्ण अलंकारों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

(१) शरीर अलंकार जो रूपात्मक सौन्दर्य का संकेत देते है,जैसे,शोभा, कान्ति, दीप्ति तथा माधुर्य

(२) मानस अलंकार जिनसे चरित्र सौन्दर्य की व्यंजना होती है - औदार्य, धैर्य,प्रगल्भता ।

(३) स्वभावज अलंकार के अतिरिक्त नायिका की स्वाभाविक चेष्टायें में आती है जैसे लीला, विच्छित्त, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, मौग्ध्य और व्याज प्रदर्शन ।

(४) अयत्नज हाव नायिका की सहज चेष्टाओं को कह सकते हैं - हेला विलास, विहृत, कुसित एवं चकित ।

पाश्चात्य दृष्टि एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि के अनुसार प्रेम मूलभूत प्रवृत्तियों में है। मैक्डूगल ने अपनी चौदह मूलप्रवृत्तियों में से तीन प्रवृत्तियां संघवृत्ति, पालनवृत्ति एवं काम वृत्ति मानी । वास्तव में तीनों को प्रेम के अन्तर्गत रखा जा सकता है । भारतीय दृष्टि से " पालनवृत्ति " को अलग " वात्सल्य भाव" नाम दिया गया है। एडलर एवं युंग ने समस्त प्रवृत्तियों को तीन भागों में बांटा है - पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा।इनमें से प्रथम " प्रेम" का मूलाधार है। फ्रायड ने समस्त मानवीय कार्यकलापों का आधार मनुष्य की काम प्रवृत्ति को माना है। मनोविज्ञान की शब्दावली में " प्रेम" के स्थान पर " काम भावना" शब्द का ही प्रयोग होता है। किंतु दोनों में बहुत अन्तर है । प्रेम एवं कामभावना में साधन एवं लक्ष्य की दृष्टि से सरलता से वर्गीकरण किया जा सकता है । प्रेम का लक्ष्य अपना समर्पण रहता है जब कि काम का मात्र वासिच यौन की तुष्टि करना ।

विल ड्यूरण्ट ने माना कि संयोगेच्छा मौलिक प्रवृति है तथा वह सदा पूर्णत्व कीकामना से अपने आदर्शों की खोज किया करता है। ऋग्वेद में काम को मन का प्राथमिक विकार माना है । इसका अविर्भाव शैशवावस्था से ही हो ताजा है । प्रारम्भ में प्रेम की भावना स्वकेन्द्रित होती है । अधिक से अधिक इसका विस्तार माता तक होता है । बाल्यावस्था में प्रेम समलिङ्गियों के प्रति आकर्षण में बदल जाता है । किशोरावस्था के आरम्भ से ही विषमलिङ्गिय के प्रति आकर्षण आरम्भ हो जाता है । प्रेम का अपने वास्तविक रूप में विकास इसी काल में होता है ।

प्रेम का भाव कई रूपों में एवं स्तरों पर प्रकट होता है। इच्छा, क्षुधा, लालसा, चाह, प्रेम के ही विभिन्न रूप हैं । इसी प्रकार अनुराग, प्रेम, प्रीति , स्नेह , और अनुरक्ति पर्यायवाची होते हुए भी अर्थ में सूक्ष्म अन्तर रखते हैं । राग उत्पन्न होने पर हमारी जो मधुर एवं अनुकूलतम मानसिक स्थिति होती है उसे अनुराग कहते हैं । श्रृंगार के क्षेत्र में यह आरम्भिक तथा हल्के प्रेम का सूचक होता है तथा एक पक्षीय भी हो सकता है। इससे कुछ आगे बढ़ी हुई स्थिति स्नेह है। अनुराग तो मूर्त एवं अमूर्त दोनों के प्रति हो सकता है किन्तु स्नेह सदा व्यक्तियों में ही होता है। किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति हमारे मन में जो उत्कंठापूर्ण प्रवृति होती है वही प्रीति है और सत्य शिवं सुन्दरं के प्रति स्वाभाविक रूप से होने वाला झुकाव या प्रवृत्ति ही वास्तविक रूप से प्रेम है जैसे ईश्वर, देश, या साहित्य से होने वाला प्रेम । लौकिक अर्थ में यही प्रणय है । प्रेम का एक पर्याय श्रृंगार भी है ।

प्रेम की अभिव्यक्ति को काव्यशास्त्र में गिनेगिनाये अनुभावों में बांधने का प्रयत्न व्यर्थ ही है। अनुभूति की व्यापकता की भांति इसकी अभिव्यक्ति भीव्यापक है अत: ऐसी सीमाओं में उसे बांधा नहीं जा सकता । आचार्यों ने श्रृंगार के दो पक्ष, संयोग एवं वियोग मान कर उसे रसराज कहा है। इसी को दृष्टि में रखकर शुक्ल जी का कथन है कि ऐसा कोई अन्य भाव नहीं होता है जो आलम्बन के रहने पर एक प्रकार की मनोवृत्तियाँ उत्पन्न करे और न रहने पर दूसरे प्रकार की लोम या प्रेम के विस्तृत क्षेत्र के भीतर आनन्दात्मक एवं दु:खात्मक दोनों प्रकार के

मनोविकार आ जाते हैं। प्रेम की एक विलक्षणता यह भी है कि यह हंस कर एवं रोकर दोनों तरह से व्यक्त किया जाता है।

काम मनुष्य की मूल एवं आदिम प्रवृत्तियों में सबसे प्रधान है। आदिम नारी और पुरूष परस्पर प्रेम की अभिव्यक्ति कैसे करते रहे होंगे यह तो कल्पनातीत विषय है किन्तु भाषा के जन्म से पूर्व भी इसकी अभिव्यक्ति अवश्य होती होगी। उस अभिव्यक्ति का रूप सम्भवत: वही होगा जो आज पशु वर्ग का है। कालान्तर में भाषा की सहायता से प्रेम की अभिव्यक्ति ने वह उदात्त रूप ग्रहण कर लिया कि परिनिष्ठित एवं संयमित प्रेमाभिव्यक्ति उत्कृष्ट साहित्य का स्थान ले सकती है। कुछ विद्वानों ने ही प्रेमाभिव्यक्ति की आवश्यकता को भाषा के जन्म का प्रमुख कारण बताया।[1]

किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान का दृष्टिकोण इससे कुछ भिन्न है। सम्भवत: प्रेम की भावात्मक अभिव्यक्ति मे वाणी सबसे अधिक असमर्थ होती है। प्रेमाभिव्यक्ति के भाषेतर साधन, नेत्र, मुखमुद्रा, इंगित व्यवहार आदि अधिक समर्थ होते हैं। इसलिये काव्यशास्त्र में दिये गये प्रेम के अनुभावों में वाचिक अनुभावों का अल्पतम स्थान है। इसका कारण प्रेम के भाव की व्यापकताही है जो कि अभिव्यक्ति के सीमित दायरे में नही बांधी जा सकती। इसके अतिरिक्त जो भावनायें या विषय साहित्य में या जीवन में जितने ही अधिक व्यापक और सामान्य अनुभव के होते हैं उनका स्वरूप प्राय: उतनाही अनिश्चित एवं अस्थिर रहता है कभी कभी विकृत भी हो जाता है। प्रेम व सौन्दर्य की भावना की पूर्ण अनुभवशीलता या प्रामाणिकता का निर्धारण करने का अधिकारी व्यक्ति स्वयं ही है।" वास्तव में प्रेम छिपाने से छिप नही सकता है वह किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाता है। प्रकट करने वाले

1." The human being in the stage of evolution, was not able to express any but the most elementry feelings appertaining to his physical body. With the gradual expansion of mental powers come the drawing of speech to the human race and it seems probable that the sexul instinct did play a considerable part in bringing about this development" Page 62-3, Elements of the Science of Language By Taraporewala.

- It was a fact that animals are "Vocal" during the breeding season. It is not for nothing that our Indian psychologists have called the sexul instinct the [illegible] (The first instinct) From an essay on the Origin of Language by Gadadhar Roy.

रूप गिनती में नहीं बांधे जा सकते ।(पृष्ठ १४० खड़ी बोल काव्य में विरह वर्णन)

८.२ शारीरिक अभिव्यक्ति :-

शास्त्रीय दृष्टि प्रेम के आंगिक अनुभावों पर अधिक है। किन्तु वाचिक अनुभावों का अल्पतम स्थान होते हुए भी मनोवैज्ञानि दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रेम की शारीरिक अभिव्यक्ति बहुत सशक्त होती है विशेषकर नेत्रों द्वारा। इसके लिये कुछ संकेत मुहावरों की भांति रूढ़ हो गये है जैसे - नयन मिलना, नेत्र चार होना, आंखों में आंखे डालना, आंखे जुड़ना, नयना भंभाकना , आंखों में स्नेह भर कर देखना , स्नेह पूरित नेत्रों से देखना, चित्रलिखे से देखते रहना , तिरछे देखना , मुग्ध नेत्रों से देखना , मादक आंखों से देखना , रसभरी दृष्टि से देखना आदि इनके अतिरिक्त कुछ अन्य रूप भी है -

-- सजनि तेरे दृगबाल ।
चकित से विस्मित से दृगबाल
आज खोये से आते लौट, कहां अपनी चंचलता हार ?
झुक जाती पलकें सुकुमार, कौन से नव रहस्य के भार ?
--- महादेवी

-- एक पल मेरे प्रिया के दृगपलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे
चपलता के इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय सम्बन्ध था । - पन्त

बिहारी ने नेत्रों द्वारा प्रेमाभिव्यक्ति का निम्न दोहे में बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है -

--कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत,खिलत, लजियात
भरे भवन में करत है नैनन ही सों बात ।

वस्तुतः प्रेम की शारीरिक अभिव्यक्ति भी अनन्त है । मुखमुद्रा एवं ओठ के विभिन्न कोण भी प्रेम की व्यंजना करते हैं - कांपते अधर, फड़कते अधर, खिले अधर के अतिरिक्त भिन्न रूप भी प्रेमाभिव्यक्ति करता है -

-- जाते समय उसने फौजी अफसर की ओर देखा और स्निग्ध मुद्रा में अपने ओंठ काट लिये ।

(पृष्ठ ७६, 'खाली कुर्सी की आत्मा', लक्ष्मीकांत वर्मा)

इनके अतिरिक्त परस्पर स्पर्श से प्रस्वेद, कम्प, रोमांच एवं वैवर्ण्य आदि शारीरिक प्रतिक्रियाओं होती है। कुछ शारीरिक प्रतिक्रियायें ऐसी हैं जो दृष्टिगोचर तो नहीं होती किन्तु इतनी स्वाभाविक हैं कि इन्हें लेकर मुहावरे बन गये हैं जैसे दिल धड़कना, तनमन की सुधबुध खो जाना आदि । कुछ मुहावरे बिना किसी शारीरिक प्रतिक्रिया के बना गये हैं जैसे - मन चोरी होना, दिल चोरी होना , दिल खो जाना आदि ।

८.३ कंठ स्वर

८.३.१ कंठावरोध :- अन्य भावों की भांति ही प्रेम की अभिव्यक्ति में कंठावरोध एक सामान्य लक्षण है । अन्य भावों में कंठावरोध आवेश या आवेग की अधिकता के कारणहोता है जब कि प्रेम में कंठावरोध आवेशहीनता के कारण होता है । प्रेम के साथ लज्जा या संकोच का भाव जुड़ा रहता है जब तक संकोच रहता है कंठावरोध , स्वरभंग, स्वरावरोध स्वाभाविक है -

-- रवीन्द्र कुछ कहना चाहता था किन्तु कह न सका । इसके अधर खुले फड़के और बन्द हो गये । गौरी ने देखा , समझा और समझ कर हृदय पर पत्थर रख धीरे से कहा" अब जाती हूं रवि । फिर------फिर कभी ।"

(पृष्ठ ८६ ' रेत के टीले' सोमावीरा)

रत्नाकर ने उद्धवशतक में इस स्थिति का बड़ा स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है -

गहबरि आयौ गरौ, भभरि अचानक त्यौं
प्रेम पर्यौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं
नैंकु कही बैननि , अनेक कही नैननि सौं
रही सही सोऊ कहि दीन्ही हिचकिनि सौं ।

कंठावरोध के बाद द्वितीय विशेषता स्वर की होती है । प्रेम की भावात्मक अभिव्यक्ति में कंठस्वर के परिवर्तन महत्वपूर्ण है ।-

-- तूफान की गति से आगे बढ़ के अशोक ने युवती की अस्थिर बिखरी कुन्तल राशि में अपना मुंह छिपा लिया । अस्फुट स्वर में कहा " शीला " ।

(पृष्ठ ६६६ " लाल बौतल ,पीले पत्ते ", सोमावीरा)

यह " अस्फुटता " प्रेम जन्य विह्वलता का ही एक रूप है। वास्तव में कंठस्वर की विशिष्टता ही इस भाव को पूरी गहराई से व्यक्त करने में समर्थ है । जैसे -

-हौले से पुकारा "मधु"

क्या था उस स्वर में , मधु की दृष्टि बरबस ललित की ओर खिंच गई ।

(पृष्ठ २५६ " अम्मा पापा क्वारे हैं " सोमावीरा)

इस " हौले से " पुकारने में ही इतना स्नेह निहित है कि और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं । " म " का स्पष्ट कोमल उच्चारण एवं " धु " का अस्पष्ट " धू " के लगभग बहुत धीमा उच्चारण हृदय के कोमलतम भावों को व्यक्त करता है। वस्तुत: " मधु " शब्द के उच्चारण की व्याख्या नहीं की जा सकती ।

-- शंकर ----------(सहसा स्वर भीगता है) तारा काश तुम मुझे उस बन्धन में न बांधती ।

(पृष्ठ ५८ 'उपचेतना का छल' विष्णुप्रभाकर)

यह " स्वर भीगना " स्वर के धीमे होने की ओर संकेत करता है। धीमे होते हुए भी कथन स्पष्ट सुनाई देता है, परन्तु पूरे वाक्य में कहीं भी बल नहीं रहता है। इस " स्वर भीगने " में कुछ कुछ शोक का भी मिश्रण है। जहां केवल प्रेम होगा वहां इसका रूप कुछ भिन्न प्रकार का होगा -

-- नाथ ! कह अतिशय मधुरता से पगे
सरस में पुतली की करुणा भरी
इस अनूठे कूल में ही हृदय के
भाव सारे भर दिये आशीष से

--- वह स्निग्ध कंठ से बोली ' बस मेरे आका , तुम जीत गये '

(पृष्ठ १०१ ' इम्तहान ',अनन्त चौरसिया, नवनीत जनवरी १९६६)

कंठस्वर की इसी विशेषता के कारण कोई भी एकशब्द चाहे वह प्रेम का हो या भर्त्सना का प्रेमाभिव्यक्ति में समर्थ होता है -

-- उसके गाल पर हल्के से एक चपत लगा कर कहा शरद ने ' पगली '।

(पृष्ठ २४६ , डगमगाते चरण , सोमावीरा)

८.४ प्रेम की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त शब्द विशेषण :-

प्रेम को व्यक्त करने वाले विशेषण शब्दों की संख्या अनन्त है। इन सम्बोधनों में सबसे अधिक संख्या विभिन्न सम्बोधनों की है। ये परम्परा से चले आये हैं । स्त्रियों द्वारा दिये जाने वाले सम्बोधन आदरमिश्रित होते हैं - आराध्य , देवता, सर्वस्व, जीवनाधार, सौभाग्य, स्वामी , नाथ, प्राणनाथ, प्राणवल्लभ , हृदयेश्वर । अब ये इतने रूढ़ हो गये हैं कि प्रेमाभिव्यक्ति में इनका प्रयोग अर्थहीन हो गया है। बराबर के स्तर पर नारी और पुरुष में परस्पर दिये गये सम्बोधन अधिक व्यंजनापूर्ण एवं हृदयस्पर्शी होते हैं जैसे - प्रिय , प्रियतम , मनमीत , मितवा हमसाथी, हमराही, आदि । वाचिक अभिव्यक्ति में नामों को बिगाड़कर बुलाना, या नये नाम रखना प्रेम को व्यक्त करता है। यह प्रवृत्ति वात्सल्य की अभिव्यक्ति में भी देखी जाती है। जैसे निर्मला का निम्मो, सरोज, का सरो । नारी, विशेषकर भारतीय संस्कारशीला नारी में यह प्रवृत्ति कम मिलती है ।

कुछ सम्बोधनों से स्नेहमिश्रित उपालम्भ या स्नेहपूर्ण भर्त्सना भी निहित रहती है। जब परस्पर प्रगाढ़ प्रेम होता है तब इनका प्रयोग मिलता है। जैसे पागल, बुद्धू , अनाड़ी, निष्ठुर, निर्मोही, हृदयहीन, कठोर, पत्थर हृदय आदि ।

-- विश्वभूषण : (अचला की पीठ पर हाथ फेरते हुए गद्‌गद् स्वर में) अचला ! प्यारी अचला !

अचला : भूषण , विश्वभूषण

वि० : निर्दय भूषण !

अ० : (और सिसकते हुए) हां निर्दय,क्रूर --- पाषाणमनः------

हृदय भूषण ।

(पृष्ठ ५७,'गरीबी अमीरी', गोविन्द दास)

अन्य भावों की भांति प्रेमाभिव्यक्ति करने वाले वाक्यों को हम अलग वर्गीकृत नहीं कर सकते हैं । क्योंकि इस भाव की अपनी कई मौलिक विशेषतायें हैं । पहली तो यह कि वात्सल्य, भय क्रोध आदि की भांति इसका स्पष्ट प्रकाशन नहीं होता है कम से कम आरम्भ में तो बिलकुल ही नहीं। उपर्युक्त भावों में प्रथम स्तर से ही कुछ आवेश रहता है तथा अभिव्यक्ति की आकुलता रहती है। जब कि प्रेम में (वासना में नहीं) स्वयं को छिपाने का प्रयत्न रहता है। और जब प्रेमपात्र पर व्यक्त करने की इच्छा आती भी है तो उसके साथ ही साथ लज्जा का एवं संकोच भी उत्पन्न होजाता है । अन्य भावों को प्रकट करने में प्रयास नहीं करना पड़ता जब कि प्रेम की अभिव्यक्ति सप्रयास होती है । यह प्रयास एवं उसका रूप प्रत्येक व्यक्ति के साथ भिन्न भिन्न होता है यही कारण है कि प्रेम की अभिव्यक्ति में व्यक्तिगत भिन्नता बहुत अधिक होती है। अन्य भावों की भांति कुछ सीमित रूप एवं शैलियों में इसे वर्गीकृत नहीं किया जा सकता । प्रेम की भावात्मक एवं सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति की शैलियों का अध्ययन प्रेम की अलग अलग प्रवृत्तियों के आधार पर ही किया जा सकता है । इन प्रवृत्तियों की दृष्टि से प्रेम का क्षेत्र बहुत विस्तृत है ।

प्रेम का आरम्भ आकर्षण से होता है । काम में भी आकर्षण होता है किन्तु वहाँ एकनिष्ठता नहीं होती । आकर्षण के पात्र से वार्तालाप में भाषा एवं कंठस्वर में अतिरिक्त कोमलता और माधुर्य अनायास आ जाती है । वस्तुतः आकर्षण की भावना आत्मस्थ होती है। इसे दूसरे तक पहुंचाने के लिये प्रशंसा एवंस्तुति का आधार लेना पड़ता है। प्रियपात्र के रूपगुण आदि की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा तथा उसका प्रभावोत्पादन इसके अन्तर्गत आता है ।

८.४ <u>आकर्षण</u> :- " सच्चा प्रेम सूर्य की तरह आत्मा के प्रकाश को फैलाता है --- प्रेम का अर्थ है वास्तविक सौन्दर्य का दर्शन --- यह सत्य है कि जिसने कभी प्रेम नहीं किया उसे ईश्वर की प्राप्ति हो ही नहीं सकती ।[१]" आलम्बन

" True love like the sun expands the self... love means perception of beauty...A man who has never loved can never realise God, that

चाहे जो हो देश , ईश्वर , मित्र प्रणयी सौन्दर्य के प्रति आकर्षण सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। आकर्षण से ही प्रेम का जन्म होता है । ईश्वर के सौन्दर्य, करुणा, उदारता आदि गुणों को देखकर ही भक्ति उत्पन्न होती है। अत: प्रेम की वाचिक अभिव्यक्ति में सौन्दर्य की प्रशंसा एवं उसके प्रति मुग्धता की अभिव्यक्ति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है ।

सौन्दर्य दो प्रकार का होता है । स्थूल सौन्दर्य एवंसूक्ष्मसौन्दर्य । स्थूल सौन्दर्य के अन्तर्गत आलम्बन की रूप सज्जा, चेष्टायें आदि आती है । यदि प्रेम देश के प्रति है तो देश का प्राकृतिक सौन्दर्य,उर्वरा भूमि , कलमरी नदियां और देश वासियों द्वारा निर्मित वस्तुकला या यान्त्रिकी के प्रति प्रशंसात्मक उक्तियों की अभिव्यक्ति होगी । जैसे -

--भू लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थान कहां ?
फैला मनोहरगिरि हिमालय और गंगाजल जहां ?
(पृष्ठ ४ भारत- भारती)

--भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है ।
शुचि भाल हिमालय, चरणों पे सिन्धु अचंल
उर पर विशाल सिरता, सित हीर हार चंचल
मणि बद्ध नील नभ का विस्तीर्ण पट अचंचल
सारा सुदृश्य वैभव मन को लुभा रहा है ।
(पृष्ठ ४१ भारत गीता)

ईश्वर के रूप की प्रशंसा में ----- भक्त कवियों ने ग्रन्थ के ग्रन्थ भर दिये हैं । इसी प्रकार प्रिया के रूप सौन्दर्य , शरीराकृति , वर्ण, आयु, कांति , स्वास्थ्य, सौकुमार्य की प्रशंसा भी प्रेमाभिव्यक्ति ही है ।

--नील परिधान बीच सुकुमार, खिल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग

साधारणत: प्रेम के प्रथमस्तपर अर्थात आकर्षण के जन्म काल में प्रशंसा यथार्थ एवं सीमित होती है किन्तु जैसे जैसे प्रेम गहरा होता जाता है प्रशंसा में अतिशयोक्ति आती जाती है। इसका कारण जहां अपने हृदय के भावों को व्यक्त करना रहता है वहीं प्रिय को प्रसन्न करना भी रहता है । फिर प्रेम में साधारण रूप रंग वाला या कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर लगता है। यह अतिशयोक्ति कई प्रकार से होती है,कभी तो तुलना में अत्यन्त सुन्दर वस्तु को उपमा देकर । काव्य शास्त्र में इस प्रकार की असंख्य उपमायें भरी हुई है कभी रूपको अतुलनीय बता कर कि उसके समक्ष और कुछ है ही नहीं ---

--कान्ता : (बड़ी प्रशंसा एवं प्यार भरी आवाज में) आपको ? अरे कोई आप जैसी आवाज पाये तो आप जैसाबोल कर दिखाये तो ।

(पृष्ठ ५४ " रोशनी " रेवती सरन शर्मा)

कभी स्वयं को उस रूप के वर्णन में असमर्थ बता कर -- कि तुम्हारा सौन्दर्य वर्णनातीत है, मेरे पास उसको कहने के लिये शब्द नहीं है। कभीकई सुन्दर वास्तुओं के साथ रख कर प्रिय को सर्वोत्तम बताना- कि चन्दा भी सुन्दर है । सूरज भी सुन्दर है पर मेरेप्रियतम तुम सबसे सुन्दर हो । या तुम्हारे सामने चन्द्रमा और सूर्य भी कुछ नहीं इस प्रकार अनगिनत रूपों में अतिशयोक्ति व्यक्त होती है।

प्रिय की सज्जा एवं वस्त्राभूषण के प्रति एक प्रशंसा भाव रहता है । यह प्रशंसा बहुत स्पष्ट व्यक्त की जाती है ईश्वर के लौकिक रूप के प्रति इस प्रकार की प्रशंसा के अनगिनत उदाहरण भक्त कवियों की रचनाओं में मिलता है । आलम्बन के विभिन्न अंग अवयव,अनुभाव एवं सात्विक चेष्टाओं की प्रशंसात्मक उक्तियाँ भी इसी श्रेणी में आयेंगी। रूप सौन्दर्य की प्रशंसा एवं स्तुति तो बहुत व्यापक रूप में मिलती है। आलम्बन एवं आश्रय में कोई भी सम्बन्ध हो यदि रति भाव है तो वहां एक दूसरे के लिये प्रशंसात्मकउक्तियां होगी । जब प्रेम मनुष्य का मनुष्य के प्रति हो और एक पक्षीय न हो तो हम इस प्रकार की उक्तियों का आदान प्रदान भी रहता है । किन्तु जहां आलम्बन [illegible] पारलौकिक हो वहां प्रशंसा एक पक्षीय होगी जैसे देश प्रेम,एवं ईश्वर प्रेम में ।

सूक्ष्म सौन्दर्य के अतिरिक्त मन वचन और कर्म का सौन्दर्य आता है यह आन्तरिक एवं वास्तविक सौन्दर्य के आराध्य अथवा प्रेमी की शील , संकोच दया, करुणा, उदारता , त्याग, कला प्रेम, श्रद्धा आदि भावनाओं,सुन्दर विचार , विवेक,कल्पना सम्बन्धी बुद्धि, और सुन्दर कर्मों के प्रति मुग्धता एवं उस मुग्धता की स्तुति के रूप में अभिव्यक्ति प्रेमाभिव्यक्ति का ही एक रूप है । भाषागत दृष्टि से इसमें कोई विशेषता नहीं होती है प्रशंसा स्तुति एवं आशंसा को भाव ही रहते हैं ।

ईश्वर के गुण, महात्म्य आदि कि श्रद्धापूर्ण स्तुति इस प्रकार के सौन्दर्य की प्रशंसा है।देश प्रेम में देशवासियों की वीरता,कर्मठता , एवं महानता, का वर्णन, वीर की वीरता की प्रशस्ति तथा देश वासियों के शौर्य का प्रशस्तिगान होगा ।

प्रभावपक्ष :-

वस्तुत: सौन्दर्य के प्रभाव पक्ष की प्रस्तुति अधिक मार्मिक एवं हृदयग्राही होती है। प्रेम की प्रशंसा साधारण प्रशंसा से भिन्न होती है। उसमें व्यक्तिगत दृष्टिकोण प्रधान रहता है। तुम सुन्दर हो " न कह कर " तुम मेरे लिये सुन्दर हो" " तुम चांद के समान हो " न कह कर " तुम मेरे लिये चांद के समान सुन्दर हो " कहना प्रेम को प्रकट करता है ।

-- उस दिन मैं मिट जाऊंगी , झुक जाऊंगी नीलाम्बर ! जिस दिन तुम---- (सिसकियां)

नीलाम्बर : तुम मेरे चन्द्रमा हो , लाखों हरे मंगल गृहों से सजा हूँ ।

" तुम मेरे लिये देवी हो " , तुम्ही मेरे देवता हो , " तुम मेरे लिये अप्सरा के समान हो" आदि प्रेम के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से की गई प्रशंसाये है। इनमें संवेगात्मकता एवं तन्मयता अधिक होती है ।

प्रेमी अपने ऊपर प्रिय के रूप सौन्दर्य के प्रभाव की भी अभिव्यक्ति करता है। यह प्रशंसा का अप्रत्यक्ष रूप है - तुम्हारे सौन्दर्य ने मुझे पागल ही बना लिया, तुम्हारे रूप ने मुझे दास बना दिया, तुम्हारा शौर्य देखकर मैं उसकी पुजारिन बन गई आदि।

-- चमेली ने पढ़ना बन्द कर के उसकी ओर देखा तो वह हंस भरी आंखों से उसकी ओर देखते हुए बोली " एक बार रास लीला ने तो मुझे पागल ही बना दिया था। जो लड़का कृष्ण बना था वह कितना सुन्दर था कि तुमसे क्या कहूं। मैं तो उसके पीछे दीवानी हो गई।"

(पृष्ठ १४६, लोक परलोक, उदयशंकर भट्ट)

सौन्दर्य के प्रभाव से रोमांच, जड़ता, आदि कई प्रकार की शारीरिक प्रतिक्रियायें होती हैं (वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से इनका उल्लेख हो सकता है जैसे मैं तो तुम्हारा रूप देख कर सुधबुध खो बैठा, जड़ हो गया, आदि। अन्यथा साधारण वर्णन मात्र रहता है -

--श्री रामचन्द्र जी दूल्हा एवं सीता जी दुल्हन बनी हैं। सखियां गीत गा रही हैं ऐसे में कंकण के नग में राम का प्रतिबिम्ब निरखकर सीता सुधबुध खो बैठीं।

-- जयमाला के समय सीता जी राम के समीप आकर उनकी छवि देख कर ऐसी स्तब्ध हो गईं कि जयमाला डालना भी भूल गईं।

सौन्दर्य का हृदय पर पड़े हुए प्रभाव का आलम्बन को सम्बोधन करके अथवा अप्रत्यक्ष वर्णन भी प्रेम प्रदर्शित करता है।

--- शान्त ! हृदयेश्वरी, चिरदर्शन से आज तक विक्षिप्त सा घूम रहा हूँ, नीले आकाश में, सांझ की लालिमा में, प्रातः काल की उषा में तुम्हारी मधुर मूर्ति ------ (पृष्ठ ३१, 'विद्रोहिणी अम्बा')

--अम्बा : प्यासी एवं मादक आंखों की ओर से उस नवयुवक के मेरे

हृदय में बिजली सी लरजा दी है। आह कहीं मैं इन्हें ---------

(पृष्ठ ३६, विद्रोहिणी अम्बा , उदयशंकर भट्ट)

--कान्ता : मेरी ? मेरी बात पूछते हैं। मुझे तो आपने कुछ इस तरह मोह लिया कि मुझे आपके सिवा कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। हर समय आपकी सूरत आँखों के सामने नाचती रहती है।

(पृष्ठ ५५ " रोशनी " हैमवती सरन शर्मा)

इसी प्रकार कैवल्य वाक्य हैं - तुम रोम रोम में समा गये हो , नैनों में बस गये हो , मन में बस गये हो , तुम्हारे रूप ने दीवाना बना दिया है , तुम्हारे रूप ने पागल बना दिया है, तुम्हें देख कर सुधबुध खो बैठा हूँ , तुम सामने हो तो सब कुछ भूल जाता है , तेरे रूप ने जादू कर दिया, इस रूप ने मुझे वश में कर लिया।

सौन्दर्य के इस तीक्ष्ण प्रभाव की अभिव्यक्ति उपर्युक्त वाक्यों में स्पष्ट कथन के रूप में है। सौन्दर्य न केवल मन एवंहृदय को आमीभूत कर लेता है वरन एक कभी न तृप्त होने वाली प्यास को उत्पन्न कर देता है। अभिव्यक्ति में भी यह अतृप्ति झलक उठती है जैसे -- इच्छा यही होती है, तुम्हें देखता ही रहूँ , एक पल को भी तुम मेरी आंखों से दूर न हो तुम्हारे मुख पर से दृष्टि नहीं हटती , देखते देखते नयनों की प्यास नहीं बुझती आदि। आलम्बर कोई भी हो दर्शनों की यह प्यास सदैव बनी रहती है -

चितवनि रोके हूँ न रही
स्यामसुन्दर - सिंधु- सनमुख सरिता उमंगि बही ।
प्रेम- सलिल- प्रवाह भंवरनि मिति न कबहुँ लही ।
लोभ- लहर कटाच्छ घूंघट -पट करार ढही ।
थके पल पथ नाव धीरज परत नाहिं न गहीं ।
मिली सूर सुभाव स्यामहिं फेरिहू न फिरी ।। - सुदामा

गोपियां अपनी इस प्रयास के आगे हार हार जाती है । वे नेत्रों को सम्बोधित करके अनेक उक्तियां कहती हैं जो सौन्दर्य के प्रति इसी अतृप्ति को स्पष्ट करती है ।

अंखियां हरि के हाथ बिकानी
मृदुमुसुकानि मोल इनि लीन्ही यह सुनि सुनि पछितानी ।

---- खंजन नैन सुरंग रसमाते :
अतिशय चारु बिमल चंचल ये पल पिंजरा न समाते ।

नेत्रों पर ही नहीं मन पर भी इनका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

--मैं मन बहुत भांति समझायौ
कहा करौं दरसन रस अंटक्यौ बहुरि नहीं घट आयौ -

यही नहीं आकर्षण में यह कामना भी जागती है कि क्यों कितना देख लूं उसेनेत्रों में बसा लूं , एक पल को भी आंखों से ओझल न होने दूं

--जौ विधिना अपबस करि पाऊं
तौ सखि कह्यौ होइ कछु तेरौ अपनी साध पुराऊं ।
लोचन रोम रोम प्रति मांगौं पुनि पुनि त्रास दिखाऊं ।
इकटक ~~कहाँ छवि रस स्यामघन लोचन है नहिं ठाऊं~~ ।
कहा करौं छवि रस स्याम घन लोचन है नहिं ठाऊं
एते पर ये निमिष सूर सुनि यह दुःख काहि सुनाऊं ।

कभी न तृप्त होने वाली प्यास के साथ साथ सौन्दर्य के प्रति एक प्रकार का कृतज्ञता भाव भी रहता है । प्राप्त हुआ आनन्द भोक्ता में सौन्दर्य के प्रति आभार का भाव भी जागृत करता है ।

सौन्दर्य की प्रभावगत प्रशंसा की एक शैली वह होती है जब स्वयं आलम्बन पर उसका घातक प्रभाव चित्रित रहता है। उर्दू की गजल एवं रुबाइयों में इस प्रकार की अभिव्यक्तियां बहुत मिलती हैं। प्रिय अपने रूप सौन्दर्य से स्वयं ही घुमड़ता सो देखता है -

हुस्न की गरमी से आंचल न जल जाये ।
शीशा न चटक जाये,खुद की नजर न लग जाये ।

वास्तव में इस प्रकार के कथन प्रिय को प्रसन्न करने के लिये कहे गये जाते हैं । उनमें सौन्दर्य के प्रति भोक्ता के भाव स्पष्ट नहीं हो पाते । न ही आकर्षण की ही अभिव्यक्ति होती है ।

इस आकर्षणजन्य प्रशंसा एवं स्तुति का रूप आलम्बन के अनुसार बदलता रहता है । सौन्दर्य के वर्णित विषय एवं वर्णनात्मक शैली में तो परिवर्तन होता है प्रभावपक्ष भी बदल जाता है। ईश्वर के सौन्दर्य की प्रभावगत प्रशंसा हो सकती है किन्तु देशप्रेम एवं विश्वप्रेम की नहीं क्योंकि वहां प्रेमी या आराधक उसी का एक अंग होता है । कोई यह नहीं कहेगा कि मेरे देश की सुन्दरता ने सुन्दरता ने मुझे उसका दीवाना बना दिया, क्योंकि यह चिर सहचर्य से उत्पन्न हुआ प्रेम है । अत: सभी पथरीली धरती और पठार एवं जंगल भी प्रिय होंगे और उनके प्रति यह प्रेम किसी दिन अचानक नहीं फूट पड़ेगा वरन शैशवावस्था से क्रमश: विकसित होता रहेगा ।

प्रशंसा के तत्व पर वक्ता का व्यक्तित्व भी बहुत प्रभाव डालता है। कुछ व्यक्ति किसी की प्रशंसा एवं स्तुति शीघ्र कर लेते हैं और कुछ बहुत प्रयत्न के बाद भी नहीं कर पाते । कुछ लोग सीधी सादी यथार्थवादी प्रशंसा करते हैं एवं कुछ लोग अत्यन्त आलंकारिक एवं अतिशयोक्ति पूर्ण सौन्दर्य के प्रभावपक्ष की अतिशयोक्ति पूर्ण व्याख्या तो मात्र प्रिय को प्रसन्न करने के लिये की जाती है ।

-- रही तेरी सुकुमारता, हरी ! या जग मांहि
कमल गुलाब कठोर से किहि को लागत नांहि ।

1. तुलसीदास बहु बात बिकस अति मुंजत सुकवि न बात बखानी
मनहुं सकल स्तुति कला मधुप है विमद, सुजस बरनत बखानी ।
--- गीतावली 1, 20

सौन्दर्य की प्रभावगत अभिव्यक्ति जिसे आकर्षण की अभिव्यक्ति भी कहा जा सकता है की शैली ही नहीं वरन प्रकार भी व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित है। एक सुन्दर युवती को देख कर एक उच्छृंखल युवक में जो काव्यजन्य क्षणिक आकर्षण (fancy) उत्पन्न होगा वह कुछ इस प्रकार व्यक्त होगा मार डाला, क्या रूप है, जालिम ने प्राण ले लिये , दिल घायल हो गया, दिल में तीर सा लगा, तुम्हारी अदाओं ने मेरी जान ले ली, बहुत चमक रही हो , बिजली सी गिरा रही हो , कहीं नजर न लग जाये,आदि। किन्तु एक गम्भीर व्यक्तित्व वाले पुरुष की, जिसके हृदय में उस सौन्दर्य ने सचमुच आकर्षण जगा दिया है, अभिव्यक्ति सम्भवत: इतनी ही हो - वाह ! कितना सौन्दर्य है।

यही नहीं कभी कभी आकर्षण मन में एक आवेश उत्पन्न कर देता है। व्यक्ति स्वयं अपने को नहीं समझ पाता इसे `मद` या संयोगावस्था का मोह कहा जा सकता है।

-- संघमित्रा : (स्वगत एक दीर्घ नि:श्वास लेकर) यह सब क्या है , हृदय में यह धड़कन कैसी है ? (उच्छ्वासित स्वर) क्या प्रेम का ? (कुछ ऊंचा स्वर) क्या मैं सचमुच राजकुमार से प्रेम करती हूं।

(पृष्ठ ७७ `पूर्णाहुति` विष्णु प्रभाकर)

यह आकर्षण उन्माद के रूप में व्यक्त होता है। भाषागत अभिव्यक्ति भी उन्मादपूर्ण स्वगत कथन के रूप में होती है।

-- ओ उन्माद के क्षण, मुझे उन्माद के गाढ़े रंगों के सतरंगे विद्युत्य ज्वार की हथेली पर बिठा कर शून्य में ऐसा उछाल दो कि मैं मूर्छित हो जाऊं , क्यों मैं होश हवास की दुनिया से दूर कहीं बहुत दूर जाने को उमग पड़ी हूं

(`धुंध में डूबे हुए`, बद्रीनाथ)

कभी कभी स्वयं को आकर्षण से मुक्त करने का प्रयास भी रहता है। सौन्दर्य का मादक प्रभाव तन मन को शिथिल कर देता है तो व्यक्ति आशंकित होकर इसे दूर करने का प्रयास करता है। पद्माकर की नायिका की यह उलझन

भाषागत अभिव्यक्ति की दृष्टि से बहुत मनोवैज्ञानिक है - नायिका के नेत्रों में गुलाल एवं नन्दलाल ने एक साथ प्रवेश किया है। गुलाल तो धोने से निकल गया किन्तु नन्दलाल तो हृदय में समा गये हैं। दु:खी होकर गोपी कहती है -

--क्या करूं, कहां जाऊं, किससे कहूं, कौन सुनेगा, कोई तो नन्दलाल को हृदय से निकाल दे जिससे पीड़ा कम हो जाय। इन वैरी आंखों से अबीर तो निकल गया पर अहीर नहीं निकलता है - पद्माकर

आकर्षण कभी इतना तीव्र होता है कि आलम्बन पर व्यक्त होने को आतुर हो जाता है। प्राय: ऐसी मनःस्थिति की बड़ी स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है जैसे निम्न उद्धरण में

-- ओह! पीताम्बर। तुम इतने खूबसूरत हो मैं नहीं जानती थी यदि तुम खूबसूरत न होते तो भी अपना जीवन तुम पर न्योछावर कर देती।

('बिना दहेज का कुंवारा,' सत्य नरायण व्यास, हवा महल २४-५-६८)

ईश्वर प्रेम एवं देश प्रेम में प्रशंसा अपने प्रेम की तुष्टि है जब कि लौकिक आलम्बन के प्रति प्रशंसा उसमें भी प्रेम भाव को जागृत करने के लिये की जाती है।

८.६ समर्पण :-

प्रेम का आधारभूत भाव समर्पण है। अपने अहं को दूसरे के आगे नतमस्तक कर देना, अपने अस्तित्व को दूसरे के अस्तित्व में लीन कर देना ही प्रेम है।[१] यह समर्पण किसी प्रकार का आवेश अथवा स्थूल मन:स्थिति नहीं है वरन् हृदय की अत्यन्त कोमल और सूक्ष्म अनुभूति है। भाषिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से ऐसे भावों का विश्लेषण अत्यन्त कठिन है क्यों कि सूक्ष्मता एवं कोमलता के साथ साथ इसमें बुद्धि का योग भी रहता है। इसका क्षेत्र भी इतना विशद है कि इसे किन्हीं

---

1. The meaning of the love speaking generally to the justification and deliverance of individuality through sacrifice of egoism- Valdimar Solouyer

विशिष्ट शब्दों एवं वाक्यों की सीमा में नहीं बांधा जा सकता है । फिर भी व्यक्तित्व एवं आलम्बन के आधार पर अभिव्यक्ति की रीतियों के स्थूल वर्गीकरण का प्रयत्न किया गया है ।

साधारण रूप से समर्पण - मैं तुम्हारा हूं या मैं तुम्हारी हूं कथन द्वारा व्यक्त होताहै । प्रेम का आलम्बन यहां महत्वपूर्ण नहीं है । ईश्वर ,पति, देश, गुरु, विश्व के समस्त चराचर प्राणियों के लिये यहकहा जासकता है । सम्बन्ध भाव यहां महत्वपूर्ण नहीं है । इसका एक रूप और है। तुम मेरे हो"। प्रथम में पूर्ण एकाग्र समर्पण रहता है जब कि द्वितीय में अधिकार के भाव भी रहता है। साधारणत: प्रथम अभिव्यक्ति नारी वर्ग की है एवं द्वितीय पुरुष वर्ग की । पुरुष की प्रभुत्व कामना इसी प्रकार सन्तुष्ट होती है। स्त्री प्रेमविह्वल हो कर कहेगी - मैं तुम्हारी दासी हूं । तुम्हारी सेविका हूं । किन्तु पुरुष प्रेम में यह नहीं कहेगा कि मैं तुम्हारा दास हूं । तुम्हारा सेवक हूं । यदि ऐसा कहेगा तो वहां प्रेम नहीं वरन् काम होगा । वह यह अवश्य कह सकता है कि तुम मेरी हृदयेश्वरी हो, मेरी रानी हो । देवी हो,आदि ।

द्वितीय स्तर पर समर्पण के साथ साथ कुछ अनुनय का भाव भी रहता है- तुम मुझे अपना समझ लो , अपना मान लो, कभी कभी इस प्रकार के वाक्य आश्वासन हेतु भी कहे जाते है - तुम मुझे अपना मानो , मैं तुम्हारे लिये हूं । ये अभिव्यक्तियां प्रेम के आरम्भिक स्तर पर होती है जब कि आलम्बन के प्रति अपने भावों का स्पष्टीकरण आरम्भ होता है ।

--" यदि मैं तुम्हारी सहायता कर सकूं । तुम मुझे अपना ही समझना चमेली ।" वह तीखी नजरों से चमेली को देखता रहा चमेली नीची नजरें किये तिनके तोड़ती बैठी रही ।

(पृष्ठ ६१,लोक परलोक,उदयशंकर भट्ट)

अनुनय के साथ दैन्य भी मिश्रित रहता है । जहां आलम्बन उपप्रभाव हो अथवा निष्ठुर हो वहां इसी प्रकार का समर्पण रहता है- मुझे अपनी शरण में ले लो, मुझे अपने चरणों में स्थान देदो । जब आलम्बन प्रेम के साथ साथ

श्रद्धा का पात्र भी होता है तब भी समर्पण का रूप कुछ ऐसा ही होगा इस प्रकार के दैन्य के साथ आग्रह भी रहता है - मुझे - अपने हृदय में स्थान देदो, मुझे अपने चरणों की धूल बन कर रहने दो , मुझे अपनी दासी बना लो, मुझे अपने से दूर मत करो , आंखों ही आंखोंमें बिठालो मुझको , मुझे अपनी बाहों का सहारा दे दो, एक बार मेरी ओर देख लो मुझे स्वीकार कर लो, मुझे अपना लो, आदि ।

अपने प्रति आलम्बन की करुणा जागृत करके अपने को पूर्णत: आलम्बन के आश्रित मानना तथाअपने प्रेम की एकाग्रता दिखाना भी समर्पण का ही एक रूप है। मेरा इस संसार में कोई और नही है, केवल एक तुम्हीं मेरे अपने हो - तुम्हें छोड़ कर कहां जाऊं - तुम्हें छोड़ कर और किसकी शरण में जाऊं । ईश्वरोपासना में समर्पण का यह रूप बहुत मिलता है ।-

" जाउं कहां तजि शरण तुम्हारे
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै ।

ईश्वर के प्रति समर्पण का एक विशिष्ट रूप है। ईश्वर की करुणा को जागृत करके उसकी भक्त वत्सलता को उदीप्त करके इस दैन्यपूर्ण समर्पण की पृष्ठभूमि तैयार की जाती है ।

- सरन गये को को न उबार्यो ?
जब जब भीर परी सन्तनि की चक्र सुदरसन तहां संभार्यो ।
महा प्रसाद भयौ अंबरीष कौ , दुर्वासा को क्रोध निवार्यो ।
ग्वालनि हेत धर्यो गोवर्धन , प्रगट इन्द्र को गर्व प्रहार्यो ।
कृपा करी प्रह्लाद भक्त पर खंभ फारि हिरनाकुस मार्यो ।
नरहरि रूप धर्यो करुनाकर छिनक माहि उर नखनि बिदार्यो ।
ग्राह ग्रसत गज को जल बूड़त नाम लेत वाको दु:ख टार्यो ।
सूर स्याम बिनु और करै को रंगभूमि में कंस पछार्यो ।

हे प्रभु तुम तो करुणामय हो , तुम पापियों का भी उद्धार करते हो , सब के दु:खों को दूर करते हो , मै भी तुम्हारी शरण में आया हूं , मेरी रक्षा करो , आदि कथन दैन्यपूर्ण समर्पण के ही रूप है ।

दैन्यपूर्ण समर्पण का ही एक अन्य रूप और है जो प्राय: ईश्वरोपासना में ही मिलता है । समर्पण के पूर्व व्यक्ति अपने समस्त दोषों एवं दुर्बलताओं को खोल कर ईश्वर के समक्ष रख देता है फिर उसके द्वारा अपनाये जाने की प्रार्थना करता है। मैं जैसा भी हूं तुम्हारा ही हूं , (मले बुरे सो तेरे) भक्त कवियों की रचनाओं में इस प्रकार के उद्गार बहुत मिलते हैं -

-- तुम मेरी राखो लाज हरि
तुम जानत सब अन्तरयामी करनी कछु न करी ।
औगुन मोते बिसरत नही, पल छिन घरी घरी । - सूर

-- प्रभु हौं सब पतितन को टीको
और पतित सब दिवस चारि के हौं तो जनमत ही को

-- प्रभु मेरे अवगुन चित न धरयो
सम दरसी है नाम तिहारो चाहो तो पार करो

-- मो सम कौन कुटिल खल कामी

लौकिक प्रेम में पार्थिव जड़ वस्तु के प्रति यह अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। और मानव की मानव के प्रति भी तभी सम्भव है जब आलम्बन बहुत उदार हो या प्रेमी के हृदय में दृढ़ विश्वास हो कि अपनी समस्त दुर्बलताओं के बाद भी वह प्रिय का स्नेह प्राप्त कर ही लेगा ।

इस भाव का विलोम रूप भी दिखायी पड़ता है। - तुम जैसे भी हो मैं तुम्हारी हूं , अपने समस्त गुण अवगुण के साथ तुम मुझे प्रिय हो । यहां भी

कृपा नहीं वरन् समर्पण है। नारी का समर्पण इसी प्रकार का होता है । यह एक प्रकार से समर्पण के प्रत्येक रूप में सर्वश्रेष्ठ है । किसी के समस्त दोषों को जानने के बाद भी उसे अपना स्नेह देना प्रेम का उज्ज्वलतम रूप है ।

अनन्यता या एक निष्ठता समर्पण का दूसरा गुण है। अनन्यता की भाषागत अभिव्यक्ति दुर्लभ है यह केवल अनुभव की जा सकती है । प्रिय के सम्मुख इसका प्रकटीकरण भी किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर ही होती है। जब प्रेम पर सन्देह प्रकट किया जाय तो प्रिय का विश्वास प्राप्त करने के लिये कहते हैं - मेरे जीवन में पहली बार तुम्हीं आये हो , मेरा प्यार केवल तुम्हारे लिये है , तुम्हें छोड़कर मैं और किसी के प्रति समर्पित नहीं हो सकता , तुम्हें छोड़ और किसी का नहीं हो सकता । इस भाव की असंख्य अभिव्यक्तियां व्यक्तित्व के अनुसार बन सकती है - मेरे जीवन में अकेले तुम्हारा ही साम्राज्य है जैसे आकाश में चन्द्रमा का । तुम्हे छोड़ इस संसार में मेरा और कोई नहीं है - तुम्हारी प्रसन्नता मेरी प्रसन्नता है, तुम्हारा दु:ख मेरा दु:ख है , तुम जहां रहोगे परछाई की तरह तुम्हारे साथ रहूंगी ।

अपने विचारों भावों और भावनाओं का पूर्ण समर्पण भी अनन्यता का ही एक पक्ष है। यही पूर्ण एवं वास्तविक समर्पण है तुम जो चाहोगे वही होगा , तुम्हारी इच्छा मेरी इच्छा है, तुम्हारी भावनायें मेरी भावनायें है, और तुम्हारा हृदय मेरा हृदय है। प्रेम के अत्यन्त उदात्त रूप की यह अभिव्यक्ति है मात्र आवेश की नहीं ।

-- जब से तुम्हें देखा है, मेरे दिल का भटकना खत्म हो गया है आगे तुम जैसा चाहोगे वैसा ही होगा ।

---- सोहनी चुप थी। वह रह रह कर कुछ कहना चाहती थी पर बात उसके ओठों तक आकर रुक जाती और सोहनी इज्जत के चेहरे की ओर देखती ही रहती ।

(सोहनी महीवाल (गुरु बख्श सिंह) अनुवादक सुखवीर , नवनीत सितम्बर६६

ईश्वर के प्रति या कभी कभी समर्थ मानवालम्बन के प्रति समर्पण की अनन्यता के साथ साथ पराश्रय की भावना भी होती है। स्वयं को उसके प्रति पूरी तरह समर्पित करके व्यक्ति यह आकांक्षा करने लगता है कि वही उसका पथ प्रदर्शन करें। यहां समर्पण के साथ साथ कामना का योग भी हो जाता है।

-- रमन: मेरी जिन्दगी एक लुटी हुई बहार की तरह है। तुम उसे रंगीन बना सकती हो (उसके दोनों हाथ पकड़ कर) लीला मेरी दुनिया आबाद कर दो।

(पृष्ठ २५ 'हैवान' विनोद रस्तोगी)

कभी कभी समर्पण की अनन्यता में प्रतिदान की कामना नहीं होती - तुम स्नेह के बदले स्नेह दो न दो घृणा तो दोगे ही वही मेरे लिये बहुत है, तुम्हें छोड़कर और कहां जाऊं। प्रिय, स्नेह को स्वीकार भी नहीं करना चाहता तो समर्पण की अनन्यता कुछ इस प्रकार व्यक्त होती है - तुम प्यार करो या ठुकराओ हम तो तुम्हारे है। तुम स्वीकार करो या न करो हमने तो अपना सब कुछ तुम्हें समर्पित कर दिया। मैं जन्म से तुम्हारा हूं, मेरे मीत मैं जानती हूं तुम मेरे नहीं हो किन्तु मेरा प्यार केवल तुम्हारे लिये है। इस प्रकार का निष्काम गहरा एवं अनन्य प्रेम नारी की विशेषता है अत: नारी की प्रेमाभिव्यक्ति में इस प्रकार के कथन अधिक मिलते हैं - तुम अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकते हो तो चरणों में ही पड़े रहने दो मैं तुमसे कुछ नहीं मांगती बस सेवा से वंचित न करो।

कभी कभी यह एकाग्रता दैन्य के स्थान पर आश्वासन के रूप में व्यक्त होती है - मैं तुम्हें छोड़कर और कहीं नहीं जाऊंगी या मेरा स्नेह केवल मात्र तुम तक सीमित रहेगा और कोई नहीं इसे पा सकता, मुझ पर विश्वास करो, मैं केवल तुम्हारा हूं, तुम्हारे लिये हूं, तुम्हारे लिये जिऊंगा और तुम्हारे लिये मरूंगा। इस अभिव्यक्ति में आलम्बन, निरीह और दीन रहता है। प्रेमाभिव्यक्ति की दृष्टि से यह अभिव्यक्ति कभी प्रिय के रूठने पर उसको मनाने एवं उसकी शंकाओं को दूर करने के लिये होती है तो कभी मात्र अपने प्रेम की दृढ़ता प्रदर्शन के लिये।

इस पर भी यदि प्रिय, स्नेह को स्वीकार नहीं करता या उसका प्रतिदान देने को तैयार नहीं होता तो समर्पण इस का रूप धारण कर लेता है - मैं तुम्हारा ही बनूंगा और किसी का नहीं, तुम नहीं अपनाओगी तो यहीं तुम्हारे सामने ही प्राण दे दूंगा, तुम्हारा नाम रटते रटते प्राण दे दूंगा, तुम्हारी आंखों के सामने तड़प तड़प कर प्राण दे दूंगा, तुम्हारे द्वारा पर सरपटक कर प्राण दे दूंगा आदि। प्रेम के एक समर्पण अन्य हुह का एक निषेधात्मक और हिंसात्मक रूप भी हो सकता है - मैं तुम्हें छोड़कर और किसी का नहीं हो सकता की भांति - तुम भी मुझे छोड़ कर और किसी के नहीं हो सकते - भी अभिव्यक्ति का ही एक रूप है यह प्रेम का निम्न रूप है और लौकिक प्रेम को छोड़ कर प्रेम के अन्य किसी रूप में नहीं मिलता।

प्रेम में समर्पण का एक सात्विक रूप भी है जिसमें आलम्बन को व्यक्ति अपना सब कुछ मान बैठता है। - तुम मेरे सब कुछ हो- "त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव"। यह समर्पण वहां मिलता है जहां प्रेम के साथ साथ श्रद्धा का समावेश भी रहता है। अर्थात् ईश्वर एवं गुरु के प्रति। कभी कभी देश प्रेम उदात्त मन:स्थिति में इसी प्रकार की अभिव्यक्ति होती है। यद्यपि लौकिक प्रेम में भी और इसमें भी बहुत साधारण स्तर पर भी इस प्रकार की अभिव्यक्ति मिलती है किन्तु उनमें यह भाव मात्र अभिव्यक्ति के स्तर पर ही माना जा सकता है, अनुभूति के स्तर पर नहीं। लौकिक प्रेम का आलम्बन इस प्रकार व्यक्ति की सारी मानसिक एवं शारीरिक ~~आलम्बन इस प्रकार व्यक्ति की सारी मानसिक एवं शारीरिक~~ आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। कर भी दे तो आदान प्रदान की भावना वहां नि:शेष नहीं हो सकती। - तुम मेरे सब कुछ हो, सर्वस्व हो - का यदि व्यंजना शक्ति के आधार पर विश्लेषण किया जाय तो वास्तव में प्रेम की मूल अनुभूति को ही व्यक्त करता है। जिसके प्रति भी प्रेम होता है चाहे वह देश हो अथवा प्रिय हो अपने आप में पूर्ण, सर्वगुणों और शक्तियों से सम्पन्न लक्ष्य बन कर व्यक्ति को अभिभूत कर लेता है।

समर्पण के साथ त्याग का भाव भी जुड़ा रहता है। वास्तव में अहं का

त्याग ही समर्पण है। त्याग एवं समर्पण में इतना अन्तर है कि प्रथम प्रथम में तटस्थता एवं अनुग्रह का भाव भी जुड़ा रहता है जब कि द्वितीय में अनुगृहीत होने का भाव भी रहता है। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ त्याग सकता हूं तथा मेरा कुछ तुम्हारे लिये समर्पित है मैं यही अन्तर है। त्याग किसी अन्य वस्तु का होता है और यह वस्तु किसी अन्य को दी जाती है जब कि समर्पण में स्वयं का दान दिया जाता है। त्याग एवं समर्पण में स्वयं का दान दिया जाता है त्याग एवं समर्पण का मिश्रित रूप वहां होगा जहां ये भाव रहे - मैं तुम्हारे लिये संसार की प्रत्येक वस्तु का त्याग कर सकता हूं। यह अभिव्यक्ति आलम्बन की विविधता से प्रभावित नहीं होती। यह प्रेम की तीव्रता पर आधारित होती है।

-- या लकुटि अरु कामरिया पर राज तिहु पुर कौ तजि डारौं
आठहुं सिद्धि नवौ निधि के सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं।

--- रसखान

समर्पण का उदात्त रूप वहां मिलता है जहां सब कुछ देने के बाद भी पाने की आशा न हो और न ही आकांक्षा हो।

-- आजु लौं जौं न मिले तो कहा हम तो तुमरे सब भांति कहावें।
मेरो उराहिनो है कछु नाहिं, सबै फल आपुनो भाग को पावे

प्रसाद की एक कविता 'मुझको न मिला रे कभी प्यार' का एक पद इस निष्काम समर्पण की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति करता है।

-- पागल रे वह मिलता है कब
उसको तो देते ही है सब
आंसू के कन कन से गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू क्यों फिर उठता है पुकार?
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

--- लहर, पृष्ठ ३६।

जब आराध्य एवं साधक दोनों एक हो जाते है , और यह ऐक्य सम्पूर्ण समर्पण के बाद ही होता है तो अभिव्यक्ति का रूप इस प्रकार का हो जाता है - 'तुम भिन्न हम भिन्न अन्तर नही या मुझमें तुममें अब कोई अन्तर नहीं है। यहां आकर समर्पण की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है । आराध्य एवं आराधक के मध्य का अन्तर मिट जाता है ।

--अम्बा : (बीच बीच में उसांसे लेकर स्वगत) शाल्वराज (आकाश की ओर ताक कर) आओ यह हृदय तुम्हारे ही स्मृतिकणों से बना है तुम्हारी आकांक्षाओं की धड़कन से गतिमान है,प्रिय ।

(पृष्ठ ४६ " विद्रोहिनी अम्बा" उदय शंकर भट्ट)

आलम्बन की दृष्टि से प्रेम के किसी भी आलम्बन के प्रति यह भाव हो सकता है जैसे देश के प्रति -

-- देश-- मेरा देश है। मेरे पहाड़ है । मेरी नदियां है और मेरा जंगल है, इस भूमि के एक एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं से बने हैं ।

(चन्द्रगुप्त , जयशंकर प्रसाद)

किन्तु अलौकिक आलम्बन के प्रति इस प्रकार की अभिव्यक्ति अधिक मिलती है । केवल मानव के पारस्परिक प्रेम सम्बन्धों में तो आदान प्रदान की भावना लगी ही रहती है किन्तु सूक्ष्म के प्रति प्रेम सम्बन्धों में आदान प्रदान की स्थूल भावना से मुक्त हो कर शुद्ध व निर्मल हो जाता है। कदाचित सूक्ष्म के प्रति प्रेम का चरमोत्कर्ष ही ईश्वर प्रेम है। इस सूक्ष्म प्रेम के अन्तर्गत हम विद्या प्रेम , कला प्रेम (संगीत ,चित्र , काव्य,आदि का) आदर्श प्रेम,गुण, सदाचार,आदि के प्रेम की सूक्ष्म भावनाओं को सम्मिलित कर सकते हैं । आदान प्रदान की भावना से मुक्त समर्पण श्रद्धा का रूप धारण कर लेता है। इसमें केवल स्वयं को अर्पण करने की ही आकांक्षा रहती है साथ ही यह भी आशंका भी रहती है कि पता नहीं मेरा यह अर्पण आराध्य द्वारा स्वीकार करने योग्य है भी या नहीं --

-- कला! (अत्यन्त धीमे स्वर में) पसन्द । तुम्हारी तस्वीरों के लिये

यह लफ्ज़ बहुत छोटा है। वह तो देखने वाले को दीवाना बना देती है ।

सच क्या तुम्हें भी ?

इला : हां कुलदेव, तुम बहुत बड़े कलाकार हो । तुम्हारे चरणों में सिर्फ पूजा का दिया बन कर ही रहा जा सकता है ।

इला--------------------।

(आरज़ू ही आरज़ू , रैवती सरन शर्मा, रंगा महल ८-५-६८)

--पत्नी : भरोसा तो भगवान का है पर मैं जानती हूं कि तुम्हारे जैसा पति पाकर तो मुझे स्वर्ग के राज्य की भी चाहना नहीं है । तुम चाहे मानो या न मानो मैं तुम्हें आदमी नहीं देवता मान कर पूजतीरही हूं (पैरों पर गिरने लगती है कि गद्गद होकर दामोदर उसे उठा लेता है)

(पृष्ठ ६० " मन का रहस्य " , उदय शंकर भट्ट)

समर्पण का एक रूप यह भी है जहां बिल्कुल स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष कथन के रूप में समर्पण होता है ।--

-- मैं अपने पैरों के किंकिण नूपुर खोलकर तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूं । तुम्हारे समीप आकर मैंने लौट जाने की सामर्थ्य का त्याग कर दिया है। मैं अपनी कटि मेखला तुम्हें अर्पण करती हूं,तुम्हारे आश्रम की छाया में मैंने अपनी सब इच्छायें तुम्हारे विश्वास के आगे लुटा दी हैं। मैं अपने नख से यह हार निकाल कर तुम्हारे चरणों में अर्पण करती हूं । तुम्हारे तेज से अनुगत होकर मैंने अपने हृदय की घनीभूत ज्वाला उत्सर्ग कर दी है । -------- इस प्रकार अपना सब वैभव दूर कर अपने प्राणों की अत्यन्त अकिंचनता में अपने आपको तुम्हें देती हूं ।

लौकिक प्रेम में स्त्री के समर्पण में पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक एकनिष्ठता होती है- मैंने एक बारबस हृदय तुम्हें समर्पित कर दिया अब दूसरे को क्या दूं मेरा तनमन धन सब तुम्हारा है दूसरा इसे छू भी नहीं सकता, एक बार हाथ तुम्हारे हाथ में दे दिया तो चाहे कितना कष्ट हो मैं मरते दम तक साथ नहीं छोड़ूंगी प्राण दे दूं किन्तु तुम्हारे चरण छोड़ कर और कहीं नहीं जाऊंगी, आदि । पुरुष कभी भी नारी के प्रति इतना पूर्ण और एक निष्ठ समर्पण नहीं कर सकता।

-- ऊधौ मन नाहीं दसबीस
एक हुतौ सो गयौ स्याम संग को अवराधै ईस
सिथिल भई सबही माधौ बिनु, ज्या देह बिनु सीस

-- मन में रह्यौ नाहिन ठौर
नन्दनंदन अछत कैसेआनिये उर औंर
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत राति
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जाति
कहत कथा अनेक ऊधौ लोग लाभ दिखाईं
कह करौ मन प्रेम पूरन घट न सिन्धु समाईं
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास
सूर इनके दरस कारन मरत लोचन प्यास ।

ईश्वरोपासना या भक्ति में यह समर्पण " शरणागति " कहलाता है । भगवद्रूप प्राप्य वस्तु की इच्छा करने वाले उपायहीन व्यक्ति की संलग्न निश्चयात्मिका (निष्कृता) में बुद्धि ही प्रपत्ति का स्वरूप है - इसी को शरणागति कहते हैं ।

लक्ष्मी संहिता में प्रपत्ति के छ मार्गों का वर्णन है ।

(१) आनुकूल्य का संकल्प :- अब लौ नसानी अब न नसैहौं,
रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं
(विनय पत्रिका, १०५)

(२) प्रतिकूल्य का वर्जन :- जाके प्रिय न राम बैदेही
सो छाँडिये परम बैरी सम जदपि परम सनेही

(३) रक्षिष्यतीति विश्वास :- भरोसो जाहि दूसरो सो करो
मो को राम कानाम कल्प तरु, कलि कल्यान करो
-(विनय पत्रिका, १०४)

(४) गोप्तृत्व वरण :- कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम ?
जोहि करुना सुनि स्रवन दीन दुःख धावत हो तजि धाम ।
(विनय पत्रिका, ९३)

(५) आत्म निक्षेप :- मेरे रावरियै गति है, रघुपति बलि जाऊँ
निलज्ज, नीच, निरधन, निरगुन कह जग दूसरो न ठाकुर ठाऊँ
कीजै दास दास तुलसी, अब कृपा सिन्धु बिनमोल बिकाऊँ?
-विनय पत्रिका, पृ० १७३।

(६) कार्पण्य :- जाऊँ कहां तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतितपावन ? केहि अतिदीन पियारे ?
विनय पत्रिका, १०१

८.७ विश्वास और आस्था :-

प्रेम का आधार विश्वास ही है। बिना विश्वास के प्रेम का विकास असम्भव है। यह आस्था कि "कोई मेरा है" प्रेम को सजीव बनाये रखती है। समर्पण प्रेम का एक पक्ष है तो 'अपने होने का विश्वास' उसका दूसरा पक्ष है। आशंका का स्थान प्रेम के क्षेत्र में अस्थायी होता है। कितना भी दु:साध्य विरह हो पर सच्चा हृदय जानता है कि दोनों ओर प्रेम पलता है" (साकेत, नवम सर्ग)

यह विश्वास साधारण कथन के रूप में व्यक्त होता है। तू मुझमें है, मैं तुझमें हूं, कहीं भी रहो, कैसी भी रहो अन्तत: तुम मेरे ही हो, हमारा प्यार जन्म जन्म का है, जब तक ये चांद तारे रहेंगे, हमारा तुम्हारा स्नेह क्षीण नहीं होगा, कोई भी शक्ति हम दोनों को अलग नहीं कर सकती, आदि।

अपने स्नेह एवं भावनाओं के प्रति भी विश्वास आवश्यक है। जब तक यह विश्वास नहीं होगा प्रिय के स्नेह पर विश्वास करने का प्रश्न ही नहीं उठता है। श्रद्धा के निम्न कथन में यही विश्वास प्रदर्शित होता है -

मैं अपने मनु को खोज चली
सरिता मरु नग या कुंज गली
वह भोला इतना नहीं छली
मिल जायेगा हूं प्रेमपली।

अपने समर्पण की सत्यता एवं पूर्णता पर भी पूर्ण विश्वास आवश्यक है - मेरी सांस तुम्हारे लिये है, मेरा प्रत्येक पग तुम्हारी दृष्टि में है,हर परिस्थिति में हर रूप में मैं तुम्हारा हूं। प्रेम की उच्च एवं अलौकिक भूमि पर तो मात्र अपने ही प्रेम के प्रति विश्वास पर्याप्त है क्योंकि यहां प्रत्युत्तर एवं प्रतिदान की कामना नहीं रह जाती।

तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या ?
स्वीकृति का उठता प्रश्न कि जब फल की इच्छा
होती, मन में प्राप्ति की अभिलाषा
पर मुझको विश्वास प्राण का यह चातक
रहा सदा से और रहेगा चिर प्यासा -

\- श्री विद्यावती मिश्र

यह विश्वास, विरह एवं निराशा में भी व्यक्ति को सन्तुष्ट रखता है - 'तुमसे मिलने की आशा कम,विश्वास बहुत है'

\- श्री बलबीर सिंह 'रंग'

अपने ही प्रेम के प्रति,प्रिय के प्रति,विश्वास और आस्था आवश्यक है अन्यथा प्रेम का संकट खतरे में पड़ जायेगा। कम से कम सामान्य स्तर के लौकिक प्रेम के लिये तो यह अत्यन्त आवश्यक है -

\- तुम मेरे हो, यह विश्वास मेरे प्रेम को सतृष्ण और सजीव बनाये रखने के लिये पर्याप्त है। जिस दिन इस विश्वास की नींव उठ जायेगी उस दिन इस जीवन का अन्त हो जायेगा।

(- रंगभूमि, प्रेमचन्द)

जहां तक ईश्वर प्रेम का सम्बन्ध है भक्त को यह विश्वास रहता है कि उसमें और प्रभु में कोई अन्तर नहीं है दोनों एक है। और यह विश्वास गहरी आस्था के रूप में प्रकट होता है - 'हुक मरोवो कन परणाम केरो'। इसी विश्वास को आधार

भक्त अपने समस्त गुण अवगुणों को ईश्वर के सामने रख कर अपने को समर्पित कर देता है ।

- भगवान तो भक्त वत्सल हैं, वे कभी न कभी तो अपनायेंगे ही । इसी आस्था में भक्त कहता है -

- जौ पै हरिजन के अवगुन गहते

× × × × × × ×

जौ सुतहित लिये नाम अजामिल के अमित न दहते
जौ जयमट सांसति हर हम से वृषम खोजि खोजि नहते
जौ जगविदित पतितपावन अति बांकुर विरद न बहते
तौ बहुकल्प कुटिल तुलसी से सपनेहुं सुगति न लहते ।

विनय पत्रिका - ९७

भरोसो रीफन ही लखि भारी
हमहुं का विश्वास होत है मोहन पतित उधारी

× × × × × × ×

ऐसी उल्टी रीति देखि के उपजत है जिय आस
जग निंदित हरिचन्द हु को अपनावहिंगे करिदास :
(पृष्ठ ५७६ 'प्रेम फुलवारी ', भारतेन्दु ग्रन्थावली)

अस्तु से प्रेम करने में यह विश्वास आवश्यक नहीं क्योंकि यहां प्रतिदान की कामना नहीं रहती और न विश्वासघात की आशंका ही रहती है ।

८.६ शुभकामनाएं और आशीर्वचन :-

प्रेम के समस्त भावों में प्रिय की मंगल कामना प्रमुख है । प्रिय की सुरक्षा, आनन्द सुख यही प्रेमी की सबसे बड़ी इच्छा होती है । इसकी भाषागत अभिव्यक्ति शुभकामना एवं आशीर्वाद के रूप में होती है । अपने से बड़े एवं बराबरवालों के प्रति शुभकामनाएं एवं छोटों के प्रति आशीर्वाद दिया जाता है । शुभकामना एवं आशीर्वाद का कोई भी विषय हो सकता है । यदि प्रेम सच्चा है तो शुभकामना निष्काम होती

है और यही इच्छा रहती है कि प्रिय चाहे कहीं भी हो स्नेह का प्रतिदान दे या न दे बस स्वयं कुशलपूर्वक रहे

- तुम ऐसे ही हंसते मुस्कराते रहो, तुम्हें हंसता देख कर मैं भी प्रसन्न रह लूंगा, तुम्हारी प्रसन्नता मेरी प्रसन्नता है, तुम्हारी प्रगति की राह पर कोई रुकावट न आये, तुम यों ही सदा आगे बढ़ते रहो, तुम्हारे पथ की समस्त विघ्नबाधायें मैं दूर करूंगा, मेरी शुभकामनाएं तुम्हारी राह में बिछी हैं, मेरे रहते हुए चिन्ता की आवश्यकता नहीं, तुम्हारी राह के कांटों को मैं अपनी पलकों से चुन लूंगी, तुम्हारी उन्नति के लिये मेरे प्राण अर्पित हैं, जीवन की हर कठिनाई में मैं तुम्हारे साथ हूं, आओ तुम्हें पलकों में छुपा लूं, आंचल में छिपा लूं ।

प्रिय के कल्याण के लिये स्वयं को अर्पित करने की यह प्रवृत्ति नारी के प्रेम की विशेषता है । वह दे कर भी सुख पाती है जब कि पुरुष का अहं ले कर भी सन्तुष्ट नहीं होता । नारी अपने को नष्ट करके भी प्रिय के कल्याण की कामना करती है - मेरी आयु उन्हें लगे, उनकी समस्त रोग बलायें मुझे लग जायं, मेरा चाहे सब कुछ नष्ट हो जाये किन्तु वो सुखी रहें ।

वास्तव में वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस प्रकार की भावनायें अन्तर्मुखी ही कही जायेंगी, क्यों कि साधारणत: ये कहीं नहीं जाती । प्रेम के आवेश में अथवा किसी विशेष अवसर पर भावना के वेग में ही इनकी अभिव्यक्ति कभी कभी हो जाती है

- विलासवती : (एक फूल तोड़ कर सूंघती हुई) मेरे जीवन के प्रिय सहचर, मेरे हृदय के आनन्द, तुम्हारी सरस्वती इसी तरह मधु बरसाती रहे । यही मेरी आकांक्षा है ।

(पृष्ठ १७३, कुमार सम्भव, उदयशंकर भट्ट)

इसी प्रकार देश प्रेम के लिये की गई शुभकामनायें देश की उन्नति एवं विजय से सम्बन्धित होंगी मेरा देश - धनी बने, मेरे देश की जय हो, वह संसार में सबसे ऊपर चमके, आदि -

- सब देशन की कला सिमटि कै इत ही आवै
कर राजा नहिं लेइ प्रजन पै हेत बढ़ावै ,
गाय दूध बहु देहि तिनहि कोउ न नसावै
द्विज गन आस्तिक होइ मेघ शुभ जल बरसावै
तजि छु तु नासना नर सबै निज उछाह उन्नति करहिं
कहि कृष्ण राधिका नाथ जय हम हूं जिय आनन्द-भरहिं
(पृष्ठ ६८५, भारतेन्दु हरि गृन्थावलि, भाग २)

ईश्वर प्रेम में शुभकामनाओं का कोई स्थान नहीं है। ईश्वर स्वयं सत्यं शिवं सुन्दरं है। किन्तु भक्त कवि ईश्वर की रूप लीलाओं का वर्णन करते समय प्राय: अपने हृदय का प्रेम शुभकामनाओं के माध्यम से व्यक्त कर देते हैं। यहां मात्र शुभकामना ही नहीं रहती, न्यौछावर होने का भाव रहता है।

- लियौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूर दास बलि जाइ।

आशीर्वाद ईश्वर अथवा आराध्य द्वारा साधक को या पति द्वारा पत्नी को दिये जा सकते हैं। इसके लिये आराधक का स्थान आराध्य के समान नहीं वरन् नीचा होना चाहिये और ये ही दो स्थितियां ऐसी हैं। माता द्वारा पुत्र को वात्सल्य भाव से दिये गये आशीर्वचनों एवं मंगलकामनाओं में तथा इनमें अन्तर है। एक स्थायी भाव वात्सल्य है दूसरे का रति।

८.१० प्रेम और विषाद :-

प्रकृति की दृष्टि से प्रेम और विषाद परस्पर विरोधी भाव है। एक मूलत: सुखात्मक है और दूसरा दुखात्मक। किन्तु प्रेम के विस्तार में अन्य भावों के साथ विषाद भी आ जाता है, यद्यपि प्रेम के साथ इसका रूप भी बदल जाता है।

"प्रेम के प्रथम क्षणों में ही परिचय का सुख तथा विरह का दुख एकाकार हो जाता है, मिलन के सुख में भी विरह की शंका का दु:ख मिश्रित हो सकता है अत: स्पष्ट है कि प्रेम महाभाव है जिसका विराट रूप मूलमनोभाव सुख तथा दु:ख के प्रत्येक कोण का स्पर्श कर लेता है।"[१]

१- पृष्ठ २ खड़ी बोली काव्य में विरह वर्णन।

प्रेम के साथ ही विषाद का उदय होता है। प्रेम का पहला स्तर आकर्षण है। किसी वस्तु के प्रति आकर्षण उदय होते ही उसे प्राप्त करने की इच्छा होती है अथवा उससे दूरी का अनुभव होता है। यहीं से दु:ख और आशंका का आरम्भ हो जाता है। प्रिय के प्रति आकर्षण जागृत होने पर वह स्वयं अपने को देखता है। वह यह निश्चय करना चाहता है कि वह आराध्य के योग्य है या नहीं। अपनी दुर्बलताओं को देख कर उसे विषाद होता है - ~~वह सोचता है पता नहीं प्रिय से स्नेह का विषाद होता है~~ - वह सोचता है, पता नहीं प्रिय से स्नेह का प्रत्युत्तर मिलेगा या नहीं। आशंका ईश्वर, प्रिय अथवा किसी ऐसे प्रेम पात्र के प्रति होती है जो सजीव, चेतन एवं प्रत्युत्तर देने में असमर्थ होता है किन्तु जब आलम्बन निर्जीव एवं प्रत्युत्तर देने में असमर्थ होता है तो आशंका केवल सान्निध्य की उत्कट कामना के रूप में व्यक्त होती है जैसे देश या प्रकृति के प्रति प्रेम।

और जब प्रिय वस्तु या व्यक्ति मिल भी जाता है तो हर पल यह आशंका बनी रहती है कि उससे दूर न होना पड़े। यह आशंका दु:ख को जन्म देती है। तुम मेरे हो न, मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम मेरे हो, मुझे भूलोगे तो नहीं, मुझसे दूर तो नहीं चले जाओगे, मुझे भय लगता है मैं तुम्हें कहीं खो न दूं, तुम किसी और के तो नहीं हो जाओगे जीवन भर मेरे रहोगे न, बीच मंझधार में छोड़ कर अब तो नहीं चले जाओगे, अब मेरी लाज तुम्हारे हाथ है, आदि कथन मिलनकाल की आशंका व्यक्त करते हैं।

- फिर एकाएक उसने उस व्यक्ति के गले में बाहें डाल दीं और उसकी आंखें छलक आयीं "ओह मेरे सपनों के सौदागर कैसा भेष बना कर आये हो तुम ?" "और अगर कोई तुम्हें छीने आ जाये तो (सोहनी को अपने आलिंगन में भरने की तड़प थी)

(पृष्ठ १२१ 'सोहनी महीवाल' नवनीत, सितम्बर, १९६६)

यह आशंका दैन्य में परिवर्तित हो जाती है। प्रिय से हर प्रकार से अनुनय विनय करके प्रेमी यह चाहता है कि वह उससे दूर न हो उपर्युक्त कथनों में यह भाव भी है। नारी को अधिक आशंकित रहना पड़ता है अत: उसके प्रेम निवेदन में यह अभिव्यक्ति अधिक मिलती है। उपर्युक्त वाक्यों की भांति ही कुछ अन्य वाक्य भी हैं जैसे - रास्ते में छोड़ तो न जाओगे, हाथ पकड़ा है तो जीवन भर निभाना, मेरी चूड़ियों की लाज अब तेरे हाथ है, मेरे सुहाग की लाज अब तुम्हारे हाथ में है, आदि।

- इतनी कठिन परीक्षा न लो अलका । मैं बहुत दुर्बल हूं । मैंने जीवन मरण में तुम्हारा संग न छोड़ने का फैसला किया म है ।

(चन्द्रगुप्त, प्रसाद)

विछोह की आशंका के अतिरिक्त प्रिय यदि स्नेह स्वीकार नहीं करता अथवा प्रत्युत्तर नहीं देना चाहता तो भी दैन्य और अनुरोध के रूप में विषाद की अभिव्यक्ति होती है ।

- और औरंगजेब का हाथ जहां का तहां रह जाता है । जैसे कोई बांध देता हो हाथ को, उसका गुस्सा समाप्त हो जाता है और वह पानी पानी हो उठता है उसकी आंखों में आंसू आ जाते । वह कराह उठता - "हीरा ! पत्थरों के ढेर से भी झरने फूटते हैं । क्यों इतनी संगदिल हुई तू ?"

पृष्ठ १६१ 'इम्तहान ' अनन्त चौरसिया, नवनीत, जनवरी १९६६ ।

- यह नहीं ' विनोद नहीं सह सका । उसने अ उर्मिला को खींच कर छाती पर दबा लिया । कातर कंठ से बोला "नहीं मत कह उर्मि हां कह दे . . . . . मुझे इतनी दूर न भेज, रोक ले, अपने करीब रहने दे, मुझे रोक ले उर्मि ।

(पृष्ठ १५७ 'दो फूल एक जिन्दगी ' ऊर्मिल वेद
नवनीत जुलाई १९६७)

मिलन सुख की यह आशंका लौकिक प्रणय व्यापार में कभी कभी दोनों पक्षों की ओर से व्यक्त होती है । ऐसी स्थिति में एक पक्ष को दूसरा आश्वासन भी देता है ।

- जीवन : रानी ! अब हम कभी अलग ह तो न होंगे ? मुझे भय लगता है ।

रानी : भय है किस बात का ?

जीवन : यही कि हमारा सुख क्षण भर का न हो

रानी : मैं तो ऐसा नहीं समझती

जीवन : सच कहती हो रानी ?

(पृष्ठ ७१, अनागत)

कभी आश्वासन पुरुष की ओर से रहता है तो कभी नारी की ओर से। वास्तव में प्रेम में पुरुष भी उतना ही दुर्बल होता है जितनी कि नारी -

- जीवन कुछ समझा, कुछ नहीं समझा किन्तु रानी की आंखों के आंसुओं को समझ गया । रानी का माथा अपने वक्ष से लगा कर कपोल थपथपाते हुए बोला "पागल

नहीं होते रानी । रानी सम्हली - पूछा धीरे से - अब मुझे कभी दूर तो नहीं करोगे ?

जीवन का कंठ भर आया - क्या कल्पना करती हो ? अभी तुम्हें विश्वास नहीं हुआ है ।

(पृष्ठ ८५ अनागत)

अपने प्रति करुणा जागृत करके प्रिय के अनुग्रह को अधिक से अधिक प्राप्त करने का प्रयास रहता है। जब यह भाव रहता है कि प्रिय व्यक्ति स्वयं आकर्षित नहीं होगा या बहुत कठोर है अथवा प्रेमी उसे अपने रूप गुण से आकर्षित करने में समर्थ नहीं है तब अनायास अपने को करुणापूर्ण स्थितियों में चित्रित करके प्रिय की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास/यह चेष्टा करताहै। रामचन्द्र शुक्ल जी एक स्थान पर लिखते हैं प्रेमी कभी तो दिखाई पड़ता है कि वह भी प्रिय को अच्छा लगे और कभी ऐसे उपायों का अवलम्बन करता है जिससे प्रिय के हृदय में उसके प्रति दया उत्पन्न हो । दया उत्पन्न करके वह उसके अन्तस में प्रेम की भूमिका बांधना चाहता है ।[१]

-- अनुरोध एक पर तुमसे , मेरे स्वप्नों की रानी
उस क्षण तुम पास न आना , मेरी जब मिटे कहानी
तुमको दुखिया कर कैसे सौंपूगा यम को सांसे
कैसे मैं चैन सकूंगा बांधू मैं डूबी बांसे ---------

(पृष्ठ १५ , एक रात , श्री सुरेन्द्र)

नारी प्राय: सहज विश्वासमयी होती है और पुरुष शासन भावना से पूर्ण । शताब्दियों से पुरुष की चलना इस अधिकार को अपना विशेषाधिकार समझती आयी है। पर नारी जागरण के इस युग में प्रणय व्यापार में पुरुष को इस दृष्टि से आत्म निरीक्षण करना पड़ा । फलत: उसमें आत्मशोध एवं समर्पण की भावनायें आयीं । उसे नारी के स्नेहदान के प्रति आशंकित होना पड़ा ।

साधारणत: प्रेम का दु:ख विरह के साथ उदीप्त होता है । शास्त्रीय दृष्टि से विरह की चार अवस्थायें मानी गयी है । पूर्वराग ,मान, प्रवास और करुणा । अनुभूति की दृष्टि से इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। पूर्वराग में दु:ख , दैन्य, लज्जा, संकोच तथा आशंका साथ साथ प्रकट होती है । मान में अपराधी भाव प्रमुख रहता है । मैंने ऐसा क्यों किया -

१ - पृष्ठ ९३, चिन्तामणि - रामचन्द्र शुक्ल ।

- भूल क्यों अपनी कहीं थी
 भूल क्या वह भी नहीं थी
 अब सहो विश्वासघाती विश्व का उपहास।
 जीवन भूल का इतिहास।
 (पृष्ठ १६२, एकान्त संगीत, बच्चन)

इसके अतिरिक्त मान में क्रोध एवं आशंका भी रहती है। मान की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब प्रिय पर दूसरे का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रेम एकाधिकार चाहता है। वह केवल दो की ही स्थिति में सन्तुष्ट रहता है दो से अधिक की स्थिति में दुखी हो जाता है। वास्तव में मान का दुःख क्षणिक होता है क्योंकि भूत संयोगमय होता है, वर्तमान संयोगमय होता है और भविष्य को संयोगमय बनाये रखने के लिये मान किया जाता है। किन्तु मान का एक रूप ईर्ष्या कष्टदायक भी होता है।

वास्तविक विरह तब उत्पन्न होता है जब प्रिय को यह ज्ञात हो कि अब प्रेमी से किसी भी कारणवश एक दीर्घकाल तक मिलन सम्भव नहीं। अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस स्थिति में प्रिय के गुणों का स्मरण, मिलन की मधुर घड़ियों का स्मरण तो रहता ही है कुछ इस प्रकार के कथन भी रहते हैं जिन्हें आकर्षण की अभिव्यक्ति में कहते हैं। किन्तु यहां उनके साथ विषाद भी जुड़ा रहता है। जैसे - उनकी मधुर मूर्ति नैनों में बसी है, हृदय में बसी है। वो नेत्रों में समाये हुए हैं, आंखों में सदैव तुम्हीं तुम रहते हो, एक क्षण भी मन से नहीं हटते हो, आदि।

मधुर मिलन की स्मृति -

 जमुना कछारन की, रंग रस रारनि की
 बिपिन बिहारिनि की हौंस हुलसावती
 सुधि वृजवासिनि दिवैया सुख रासिन की
 ऊधो नित हमको बुलावन को आवती।

विरह की वेदना प्रिय से सम्बन्धित बड़ी बड़ी घटनाओं पर विचार करते करते ऊब जाती है उससे सम्बद्ध बड़ी बड़ी वस्तुओं पर ध्यान देते देते थक जाती है फिर भी उन्हें नहीं

छोड़ती है पर इस स्थिति में छोटी छोटी मनक घटनाएं/एवं वस्तुओं से अधिक स्पृहणीय लगती है।

- तुम्हें याद है क्या उस दिन की
  नये कोट के बटन होल में
  हंस कर प्रिये लगा दी थी जब
  वह गुलाब की लाल कली
  - पृष्ठ ४८, प्रवासी के गीत।

ऐसी स्मृतियाँ सामान्य परिस्थितियों को भी कितना विशेष बना देती हैं।

- आज अचानक सूनी सी सन्ध्या में
  जब मैं यों ही मैले कपड़े देख रहा था,
  किसी काम में जी बहलाने
  एक सिल्क के कुर्ते की सलवट में लिपटा
  गिरा रेशमी चूड़ी का एक छोटा सा टुकड़ा।
  - कवि भारती

विरह में प्रिय की स्मृति की तन्मयता अत्यधिक व्यापक होकर बाह्यजगत तथा परिस्थितियों के प्रति विरही या विरहिणी को अन्यमनस्क कर देती है। अन्यमनस्कता तथा जड़ता में अन्तर है। जड़ता अस्थायी वस्तु है। अन्यमनस्कता प्रिय की प्राप्ति न होने तक स्थायी। यह अन्यमनस्कता विरह दशा में इतनी तीव्र हो जाती है कि मनुष्य संसारी कामों में लगा रहने पर भी अनजाने में ही अपनी स्वाभाविक स्थिति का परिचय सबसे कराता है। इसका एक सुन्दर उदाहरण साहित्य में 'उर्वशी' नाटक में मिलता है। उर्वशी, इन्द्र की नाट्यसभा में पुरुरवा के प्रति अपनी विरह व्यथा छिपाये हुए नृत्य कर रही है। नाटक में वारुणी बनी मेनका प्रश्न करती है - सखी यहां तीनों लोकों में एक से एक सुन्दर पुरुष लोकपाल और स्वयं विष्णुभगवान आये हुए हैं इनमें तुम्हें कौन सबसे अधिक भाता है। लक्ष्मी बनी हुई उर्वशी को कहना चाहिये था 'पुरुषोत्तम' पर उसके मस्तिष्क में पुरुरवा छाया था। फिर यहां 'पुरुरवा' एवं पुरुरवा में एक सीमा तक वर्णसाम्य भी है अत: वह कह देती है 'पुरुरवा'।

विरह की एक स्थिति विकलता या व्याकुलता भी है। विकलता ऐसा भाव है जिसमें व्यक्ति की मन:स्थिति पूरी तरह अस्थिर हो जाती है। इसकी शाब्दिक एवं भाषागत अभिव्यक्ति संभव नहीं किन्तु भाषा एवं भावों की विशृंखलता तथा अस्पष्टता इसे व्यंजित करती है। प्राय: इस प्रकार के कथन इस मन:स्थिति को एक सीमा तक व्यंजित करते हैं - चैन नहीं मिलता, कल नहीं पड़ता, मन विकल रहता है, तुम्हारे बिना प्राण कलपते हैं, तुम्हारे बिना जीवन निरर्थक है, जी कर क्या करूंगा, आदि। कभी कभी साथ में प्रार्थना भी रहती है अब और न तड़पाओ अब मैं तुमसे दूर नहीं रह सकता, आदि।

विरहजन्य व्याकुलता की अभिव्यक्ति के अन्य दो रूप भी हैं। एक रूप तो प्रिय की हितकामना की आकुलता होती है। लौकिक प्रणय व्यापार अथवा देश-प्रेम तथा मित्र प्रेम तक इसका विस्तार रहता है। प्रिय जब दूर रहता है तो प्रेमी को यह चिन्ता रहती है कि पता नहीं वह कहां होंगे, कैसे होंगे, कहीं किसी विपत्ति मेंन पड़ गये हों अथवा यह कि कहीं वे मुझसे विमुख न हो गये हों।

दूसरी ओर व्याकुलता मिलन कामना के रूप में भी रहती है। संयोग के विभिन्न सुन्दर काल्पनिक पक्षों की अभिव्यक्ति इसमें होती है - आह वह दिन कितना सुन्दर होगा जब हमारा पुनर्मिलन होगा, फिर उनके दर्शन होंगे, कब आयेगा वह दिन, शीघ्र ही क्यों नहीं वह मंगलवेला आती, अब कितने दिन और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी आदि।

- भाषागत अभिव्यक्ति की दृष्टि से ऐसी अभिव्यक्ति प्रिय पात्र के सम्मुख प्रत्यक्ष रूप से होगी अथवा एकान्त प्रलाप के रूप में। कभी कभी किसी अन्तरंग मित्र के सम्मुख भी इस प्रकार की अभिव्यक्तियाँ होती हैं। इस मन:स्थिति में चिन्ता की प्रधानता होने के कारण हृदय एवं बुद्धि का संयोग लगभग बराबर रहता है। इस मन:स्थिति में इस प्रकार के वाक्य भी कहे जाते हैं -

- कब नैनों की प्यास बुझेगी, कब हृदय की ज्वाला शान्त होगी, कब मन की तड़पन समाप्त होगी, कब उन्हें भर नैन देखने का अवसर मिलेगा, कब उनकी मधुर वाणी सुनने को मिलेगी, आदि।

ऐसी स्थिति में 'कहां होगें, "कैसे होगें " के स्थान पर आकुलता का रूप कुछ इस प्रकार होगा "कब मिलेंगे ", कैसे मिलेंगे" ।

आकुल हृदय की मिलन कामना में अपनी वर्तमान करुणापूर्ण दशा का वर्णन भी रहता है । -

- 'देखो सब कुछ है एक तुम्हीं नहीं हो' (नेत्रों से आंसू गिरते हैं) प्यारे ! छोड़ के कहां चले गये ? नाथ ! आंखें बहुत प्यासी हो रही है इनको रूप सुधा कब पिलाओगे ? प्यारे बेनी की लट बंध गई है उन्हें कब सुलझाओगे ?' (रोतीं हैं) 'नाथ, इन आंसुओं को तुम्हारे बिना कोई पूछने वाला भी नहीं है कहां !

(पृष्ठ २२१ 'श्री चन्द्रावली ' भारतेन्दु)

'तुम्हारे बिना जल बिन मछली की तरह तड़प रही हैं', 'सूख कर कांटा बन गयी हैं' आदि इसी प्रकार के कथन हैं । बिहारी ने तो इस स्थिति के वर्णन में अति कर दी है ।

कभी: कभी अधिक दु:ख होने पर मिलन की यह आतुरता मात्र प्रलाप के रूप में प्रिय पात्र को सम्बोधित करके व्यक्त होती है । वास्तव में भाषा के माध्यम से प्रेम विशेषकर विरहाभिव्यक्ति में इस प्रकार के रूप सबसे अधिक मिलते हैं । साधारण शारीरिक आकर्षण से लेकर विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम के हर रूप इस मन:स्थिति में आते हैं । इस प्रलाप में एक साथ कई भावों का मिश्रण रहता है ।

शाल्व :- हृदयेश्वरी चित्रदर्शन से आज तक विक्षिप्त सा घूम रहा हूँ, नीले आकाश में, साँझ की कालिमा में, प्रात: काल की ऊषा में तुम्हारी मधुर मूर्ति....
....

(पृष्ठ ४१, विद्रोहिणी अम्बा)

जिस प्रकार शोक के दो पक्ष होते हैं - एक केन्द्रित दु:ख एवं परस्थ करुणा तथा अभिव्यक्ति के भी दो रूप हो जाते हैं - अपना दु:ख प्रदर्शन एवं दूसरे के प्रति करुणा प्रदर्शन उसी प्रकार प्रेम का विभाव भी दो रूपों में व्यक्त होता है एक तो अपना वास्तविक दु:ख को भाव या प्रभाव में हो दूसरे प्रिय की करुणा प्राप्त करने

के लिये अपने दैन्य और पीड़ा का प्रदर्शन जैसा प्राय: पूर्व राग एवं प्रवास में होता है। इस प्रकार के शोक प्रदर्शन में एक विशिष्टता रहती है। प्रिय पात्र के सम्मुख अपने को दु:खी प्रदर्शित करने के बाद भी उससे दु:खी न होने का अनुरोध रहता है। अपने को उसके प्रेम में अत्यन्त व्याकुल बना कर भी उससे विस्मृत कर देने का आग्रह रहता है। इस प्रकार के कथन से आलम्बन का प्रेम और अधिक उद्दीप्त हो कर आश्रय पर प्रकट होता है। वाचिक अभिव्यक्ति में कोई उल्लेखनीय तत्व नहीं होता है।

- वह किसी तरह आंसू पी गयी। बोली 'अच्छा, न रुको पर,....... वादा, करो कि तुम मुझे भूल जाओगे।

"तू यही चाहती है ?"

कहते हुए वह टूट गयी पर फिर भी कहा 'हां'।

'अच्छा भूल जाऊंगा' कहते हुए उसने मुंह फिरा लिया और फिर तेजी से - नीचे उतर गया।

(पृष्ठ १५२ 'दो फूल एक जिन्दगी' नवनीत, जुलाई १९५७)

आवश्यक नहीं कि प्रत्यक्ष सम्बोधन ही हो अथवा प्रिय सम्मुख उपस्थित ही हो। प्रलाप एवं स्वगत कथन के रूप में भी इसकी अभिव्यक्ति हो सकती है। रूप से अपनी करुणा जागृत करने के अतिरिक्त प्रत्यक्ष रूप से अपनी दशा का वर्णन करके भी प्रिय के अनुग्रह को प्राप्त करने का यत्न रहता है। भाषा के माध्यम से यह अभिव्यक्ति प्रार्थना के रूप में प्रत्यक्ष रूप से प्रिय के सम्मुख हो सकती है

- अचला : (गम्भीरता से) एक बात जानते हो ?

वि: क्या ?

अ : तुम्हारे भारत आने पर मैं यहां नहीं रह सकूंगी।

वि: (कुछ आश्चर्य से) तुम यहां न रह सकोगी।

अ : (गम्भीरता से) हां मैं यहां न रह सकूंगी। जब तुम योरप में थे तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा में यहां थी। यहां रहते हुए भी जब तुम नहीं आते तो तिलमिला कर उठती हूं। पत्र पर पत्र लिख कर तुम्हें बुलाती हूं। . . . .

(गरीबी अमीरी, सेठ गोविन्द दास)

वस्तुत: एक सीमा के बाद प्रेम का आवेश और तीव्रता मोह में परिवर्तित हो जाती है। मोह की वाचिक अभिव्यक्ति बिलकुल उन्माद या मतिभ्रम की अभिव्यक्ति की भांति ही रहती है साधारणत: वियोगावस्था में प्रेमजन्य विषाद मोह के रूप में और संयोगावस्था की प्रसन्नता, मद के रूप में व्यक्त होती है। इसका शरीर पर तीव्र प्रभाव पड़ता है। इसकी वाचिक अभिव्यक्ति के दो रूप होते हैं स्पष्ट कथन और प्रलाप। स्पष्ट कथन कुछ इस प्रकार के होते हैं - मैं तुम्हारे बिना पागल हो जाऊंगा, तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकूंगा, इस संसार को त्याग दूंगा, आदि। इसे ही मोहान्ध होना कहते हैं।

विरह और विरहजन्य विषाद का क्षेत्र बहुत बड़ा है। प्रेम के साथ आशंका या शोक सदैव उपस्थित रहता है चाहे जितनी आशा एवं उल्लास से परिपूर्ण जीवन हो विचारशील मस्तिष्क उसकी क्षणभंगुरता पर विचार करने के लिये विवश हो जाता है। मिलन के समय भी यत्र तत्र विरह का चिन्तन होता रहता है। ऐसी अभिव्यक्ति दो रूपोंमें होती है। प्रथम में दार्शनिक चिन्तन के आधार पर विश्व की क्षणभंगुरता के प्रकाश में मिलन का अस्थायित्व वर्णित रहता है। गम्भीर एवं शान्तमन:स्थिति वालों की ही यह अभिव्यक्ति होती है। जैसे - आज नहीं तो कल अलग तो होना ही है, आज साथ हैं कल जाने कहां कहां होंगे। अलग अलग पथ के राही हैं, नदी के दो किनारे हैं, जिन्हें कभी नहीं मिलना है, हम दोनों संसाररूपी सागर की दो लहरें हैं, सारा स्नेह प्यार झूठा है, जो सुख कुछ देर के लिये मिलना है उसके प्रति मोह कैसा।

द्वितीय रूप में भावी विरह का उल्लेख कर के मिलन सुख को अधिक से अधिक प्रत्यक्ष करने का आग्रह रहता है - चार दिन का जीवन है, इसका आनन्द उठा लो, कल का निश्चय नहीं, आओ आज ही प्रेम का चरम सुख प्राप्त कर लें, व्यर्थ की लज्जा मत करो ये रूप, यौवन क्षणिक है आज ही इसका उपभोग कर लो, आदि।

सम्भाव्य विरह का दूसरा रूप परिस्थिति-जन्य भावी विरह से सम्बन्धित रहता है। संयोग की दशा में यदि यह ज्ञात हो जाये कि एक निश्चित अवधि के बाद विरह होने को है तो हृदय की दशा विचित्र रहती है। लोकगीतों में ऐसी अनेक

मर्मस्पर्शी एवं उत्कृष्ट अभिव्यक्तियाँ हुई हैं। परदेश जाने वाले प्रियतम से हृदयग्राही निवेदन इस क्षेत्र में अपना विशेष महत्व रखते हैं। स्मरण रखने और शीघ्र लौटने के अनेक वादे किये एवं कराये जाते हैं। जैसे - शीघ्र लौट कर आना, शीघ्र लौट कर आओगे न। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा, वादा करो कि तुम मुझे भूल नहीं जाओगे, मेरी कसम खाओ कि शीघ्र लौटोगे, कभी कभी मुझे याद कर लिया करना, क्या कभी मेरी याद आयेगी, आदि।

प्रिय का गमन जब बहुत निकट आ जाता है तब जो वेदना होती है वह प्रिय के प्रवास में स्थित होने वाली वेदना से अधिक तीव्र होती है। इस व्यथा की अनेक मार्मिक स्वाभाविक एवं अस्वाभाविक, आलंकारिक एवं हृदयग्राही उक्तियां साहित्य तथा लोकगीतों में मिलती हैं। सहज वेदना के अतिरिक्त प्रिय को एकाध दिन रोकने के लिये देवी देवताओं तथा प्रकृति से की जाने वाली प्रार्थनायें बहुत मर्मस्पर्शी होती हैं। आल्हा की ये दो पंक्तियां वाचिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से सुन्दर उदाहरण हैं।

- कारी बदरिया बहिनी मोरी, कौया वीरन लागे हमार।

आजु बरज आओ मोरे क्नउज मां, कंता एक रैन रहि जाय। जब प्रिय का लौट आना अनिश्चित रहता है तब अभिव्यक्ति में करुणा के स्पर्श के साथ साथ मंगल कामना भी रहती है। स्त्रियों द्वारा प्रिय के युद्धक्षेत्र आदि में जाने पर इस प्रकार की मंगलकामनायें की जाती है - हे ईश्वर, मेरे प्रेम की रक्षा करना मेरी लाज रखना, उन पर कोई विपत्ति न आये, मेरे सुहाग की रक्षा करना प्रभु आदि।

विरहकाल में दूसरों के मिलन सुख को देख कर व्यथा होती है अपने पूर्व मिलन काल का स्मरण हो आता है। तुलसी के विरही राम मृगमृगी के संयोग को देखकर विकल हो उठते हैं और अपनी दयनीय दशा पर करुण व्यंग्य करते हैं -

- हमहिं देखि मृग-निकर पराहीं
  मृगी कहहिं तुम्ह कहं भय नाहीं
  तुम आनन्द करहु मृग जाये
  कंचन मृग खोजन ये आये।

मनुष्य सारी सृष्टि को अपने भाव की दृष्टि से देखता है । विरही अपनी करुण दशा में प्रकृति में भी विरह का हाहाकार देखता है और इस पीड़ा का युक्त भोगी होने के कारण उदार हो जाता है ।

- शैवलिनी जाओ मिलो तुम सिन्धु से, अनिल आलिंगन करो तुम गगन का चन्द्रिके चूमो तरंगों के अधर, उडुगणों गाओ, पवन वीणा बजा पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है, उठ किसी निर्जन विपिन में बैठकर आंसुओं की बाढ़ में अपनी बिकी भग्न भावी को डुबा दें आंख से ।

दुख एक सीमा पर जाकर प्रभावहीन हो जाता है । तब व्यक्ति व्यथा को स्वाभाविक स्तर पर ग्रहण करता है और अपेक्षाकृत तटस्थ हो जाता है । यह तटस्थता दो रूपों में होती है एक तो अपनी भावनाओं के प्रति तटस्थता -

प्यार मेरा फूल को भी
प्यार मेरा शूल को भी
फूल से मैं खुश नहीं, मैं शूल से नाराज
बुलबुल गा रही है आज

(पृष्ठ ६६ एकान्त संगीत)

तो कभी मात्र प्रिय के हित और सुरक्षा की कामना करके ही सन्तोष हो जाता है वहां मिलनोत्कण्ठा नहीं रहती है । आत्मिक एवं मानसिक स्तर पर प्रिय और प्रेमी दोनों एक हो जाते हैं ।

व्यवहारिक भाषा में विरहजन्य विषाद को व्यक्त करने वाले कुछ वाक्य बहुप्रचलित है जैसे - पर होते तो तुम्हारे पास उड़ कर पहुंच जाती, हर वस्तु तुम्हारी याद दिलाती है , तुम्हारी यादों को हृदय से लगाये जी रहा हूं, मुझ अनाथ की सुध लो, तुम्हारे बिना जीवन भार हो गया है, दिन गिन गिन कर कट रहे हैं, रोते रोते आँखें फूट गयीं, करवट बदल बदल कर रात काटी, तारे गिन गिन कर रात काटी, प्राण तुम्हारे दर्शनों की आस में अटके हैं एक बार आकर मिल लो, न जाने कब सांसों की डोरी टूट जायेगी, तुम्हारी राहों में पलकें बिछाये बैठी हूं, तुम्हारी राहों में आँखें बिछाये बैठी हूं, आदि ।

प्रेम के साथ शोक का सम्बन्ध है। वियोग भावना को करुणा का विशेष स्पर्श प्राप्त होता है पर करुण इस प्रेम रस के अन्तर्गत नहीं आता। करुण विप्रलम्भ एवं करुण रस में सापेक्षता एवं निरपेक्षता का अन्तर है। करुण रस में वेदना निरपेक्ष रहती है और श्रृंगार रस में वेदना सापेक्ष रहती है। करुण रस में आशा के लिये स्थान न होने के कारण रति या प्रेम शोक में परिणत हो जाता है। विप्रलम्भ में आशा की स्फूर्ति बराबर बनी रहती है।

८.११ प्रेम और प्रसन्नता या आनन्द :-

प्रेम मूलत: सुखद मनोभाव है। प्रेम में प्राप्त दुख और विषाद भी साधारण शोक से भिन्न सुखात्मक रहता है। उसमें भी माधुर्य रहता है। प्रेम के सुख को समर्पण का सुख या तृप्ति भी कह सकते हैं। पुलक, आल्हाद, उल्लास, प्रसन्नता और आनन्द इसके विभिन्न रंग हैं। प्रेमजन्य आनन्द उपर्युक्त सभी रूपों के माध्यम से व्यक्त होता है।

आलम्बन के साथ साथ प्रेम का रूप भी कुछ न कुछ परिवर्तित होता रहता है। ईश्वर-प्रेम और गुरु-प्रेम एक प्रकार का सन्तोष और अलौकिक आनन्द प्रदान करते हैं। देश प्रेम एवं प्रकृति प्रेम व्यक्ति में एक अव्यक्त उल्लास को जन्म देते हैं। इनके अतिरिक्त किसी भी आलम्बन के प्रति आकर्षण, मुग्धता, समर्पण आदि मन:स्थितियां स्वयं अपने आप में सुखात्मक हैं। हम उसी पर मुग्ध होते हैं उसी के प्रति समर्पण करते हैं जो हमें आनन्द प्रदान करती है।

प्रेमजन्य आनन्द की अभिव्यक्ति बहुमुखी होती है। प्रेम का हर्ष जीवन में कई रूपों में व्यक्त होता है यहां तक कि व्यक्ति के स्वास्थ्य, रूप एवं कार्यक्षमता में भी वृद्धि हो जाती है। यह ऐसा भाव है जिसकी वाचिक अभिव्यक्ति लगभग नहीं ही होती है। कभी भावुकतावश प्रिय के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कुछ मात्रा में इसकी अभिव्यक्ति हो जाती है - तुम्हारे प्यार ने मुझे नया जीवन दिया, तुमने मेरी उजड़ी जिन्दगी सवांर दी, मेरे सूने जीवन में नई बहार ला दी, मेरे अन्दर नया प्रकाश भर दिया, जीने की नई राह दिखा दी, तुमने मुझे हंसना, मुस्कराना सिखा दिया, गुनगुनाना सिखा दिया, आदि। इस प्रकार के वाक्य असंख्य हैं। व्यक्ति

जितना भावुक प्रकृति को होगा कथन में उतनी ही अलंकारिकता होगी । इस प्रकार की अभिव्यक्ति नारी एवं पुरुष दोनों की लगभग समान होती है । कुछ अन्य प्रचलित रूप निम्न हैं -

- तुम्हें देखकर मेरा रोम रोम खिल उठता है, मुस्करा उठता है, तुम्हारे साथ संसार सुहाना लगने लगता है । तुम्हें समर्पण कर के मैंने स्वयं को पा लिया, तुम्हें पाकर मैं धन्य हो गया, मैं भाग्यवान हूं जो मुझे तुमसा मीत मिला, तुम्हारे सान्निध्य में मुझे सब कुछ मिल गया । तुम मेरे जीवन का प्रकाश हो, जिन्दगी का गीत हो, जीवनरूपी साज की आवाज हो, मेरे सौभाग्य हो, मेरे जीवन की हर खुशी तुम्हारे दम से है, आदि, आदि ।

प्रेम करना अपने आप में सुखकर है, उसकी जलन भी सुखकर होती है । भाषा में इसकी अभिव्यक्ति कवि हृदय ही कर सकता है साधारण व्यक्ति नहीं । -

- आज मैं सब भांति सुख सम्पन्न हूं, वेदना के इस मनोरम विपिन विजन छाया में द्रुमों की, योग सी विचरती है आज मेरी मैं वेदना में

(पृष्ठ ४३, 'ग्रन्थि', पन्त)

लौकिक प्रेम में मादकता अन्य आनन्द की अभिव्यक्ति भी होता है । प्रेम ही जीवन का चैतन्य है, संगीत है प्रेमी अपने प्रिय को नियन्त्रित करता है जिससे कि जीवन में मधुर भावनाओं का कोमल कलरव हो -

वह मेरे प्रेम विहंसते जागो मेरे मधुबन में
फिर मधुर भावनाओं का कलरव हो इस जीवन में
इस स्वप्नमयी संसृति के सच्चे जीवन तुम जागो
मंगल किरणों से रंजित मेरे सुन्दरतम जागो
अभिलाषा के मानस में सरसिज सी आंखें खोलो
मधुपों से मधु गुंजारों कलरव से फिर कुछ बोलो

(पृष्ठ ६४-६५ 'आंसू' जयशंकर प्रसाद)

प्रेम के आनन्द का एक रूप तृप्ति भी है । यह तृप्ति वासना के स्तर पर भी हो सकती है और प्रेम की अत्यन्त उदात्त भावभूमि - आराध्य एवं आराधक के एक होने पर भी । यह तृप्ति मात्र अनुभूति तक सीमित रहती है । विशेषकर भाषागत अभिव्यक्ति का तो प्रश्न ही नहीं उठता है ।

इनके अतिरिक्त प्रेम में प्रिय के लिये त्याग करने में, दु:ख उठाने में भी आनन्द मिलता है । प्रेम का स्तर जैसे जैसे ऊँचा होता जाता है आनन्द की मात्रा बढ़ती जाती है ।

८.१२ प्रेम और क्रोध :-

मूल प्रकृति की दृष्टि से इन दोनों भावों में परस्पर बहुत गहरा विरोधाभास है, फिर भी अभिव्यक्ति की दृष्टि से दो स्तरों पर इन दो विरोधी भावों का संगम दृष्टिगत होता है। जहां प्रेम है वहां समर्पण के साथ साथ कुछ न कुछ अधिकार भाव भी सम्मिलित रहता है।यह अधिकार विशेष अवसरों पर मीठी झिड़की या भर्त्सना के रूप में व्यक्त होता है।(साधारण क्रोध से इसकी स्थिति बहुत भिन्न होती है।क्रोध में हिंसा एवं प्रतिकार प्रधान रहता है जब कि इसमें मात्र प्रिय की हित कामना । ये लड़नायें , भर्त्सना , वर्जना, प्रेम की ही भाषागत अभिव्यक्ति हैं । पात्र की दृष्टि से इसमें कोई अन्तर नहीं आता । ईश्वर, प्रिय, मित्र यहां तक कि देशवासियों के माध्यम से पूरा पर भी इस प्रकार की क्रोधाभिव्यक्ति हो सकती है ।

कभी कभी प्रेम जन्य वात्सल्य या विनोद भी कृत्रिम क्रोध के रूप में व्यक्त होता है -

नायिका : बड़ी रहने दो , बाये हो " त्यौनार " बन कर । जैसे तैसे इतनी कठिनाई से मैंने बाल सुलाये और बांधते तुमने फिर उन्हें बिगो दिया ।

--- बिहारी

इस प्रेमजन्य उपालम्भ में भी माधुर्य रहता है जैसे - तुमने मेरा सब कुछ तुमने ले लिया है, मेरा चमन सब तुमने चुरा लिया है, चित्तचोर कहीं के , छलिया, रसिया, दिल लेने वाले मायूसार आदि प्रेम रस से परिपूर्ण । उपालम्भ है

मधुकर स्याम हमारे चोर
गये छुड़ाई तोरि सब बन्धन दै गए हंस निकोर ।

-- बस इतनी जल्दी सारे वादे भूल गये , जब निभा नहीं सकते तो दिल लगाया क्यों था, जब यों ही भूलना था तो स्नेह बन्धन में बांधा ही क्यों, जरा यह तो सोचा होता कि मेरी क्या स्थिति होगी ।

जब उपालम्भ का आधार प्रिय की निष्ठुरता रहती है तो उपालम्भ में दैन्य भी सम्मिलित हो जाता है। ईश्वर की निष्ठुरता के प्रति इस प्रकार की अभिव्यक्तियां बहुत मिलती है लौकिक प्रणय व्यापार में भी इस प्रकार के कथनों की प्रचुरता रहती है विशेषकर स्त्रियों द्वारा । निर्मोही, निष्ठुर , हृदयहीन, फुंफलाहट, पत्थर-हृदय आदि सम्बोधन इन्हीं भावों को व्यक्त करते हैं ।

--- संघमित्रा : (उच्छ्वास) नहीं जानते तभी पूछते हो । ओह निष्ठुर कुमार आरवेट के बाद भी की वह रात भूल गये?------- (बोलते बोलते वे भावातिरेक हो जाता है) कुमारी प्रकोष्ठ का सहारा लेकर मौन हो जाती है ।

(पूर्णाहुति, विष्णु प्रभाकर)

--- प्यारे : तुम बड़े निर्मोही हो । हा । तुम्को मोह भी नहीं आता? (आंखों में आंसू भरकर) प्यारे इतना तो को भी नहीं सताते जो पहले सुख देते हैं। तुम किस नाते इतना सताते हो ।

(पृष्ठ २०५ ` श्री चन्द्रावली ` भारतेन्दु)

प्रेम में क्रोध का अपेक्षाकृत अक्रम वहां मिलता है जहां प्रिय पर दूसरे का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रेम एकाधिकार चाहता है। वह केवल दो की ही स्थिति में सन्तुष्ट रहता है। दो से अधिक की स्थिति में दु:खी और कभीकभी भयंकर भी हो जाता है । किन्तु इस स्थिति में क्रोध और प्रेम का सम्मिलित रूप एक सीमा तक ही रहता है उसके बाद फिर स्वतन्त्र क्रोध का अस्तित्व ही रह जाता है । श्री राम प्रसाद मिश्र के शब्दों में ` जिस समय प्रणय वंचिता ज्वालामुखी या पर्वतीय नदी के समान भयंकर एवं उग्र रूप धारण करती है उस समय उसके हृदय में आलम्बन के प्रति रति नामकी क्रोध का भाव रहता है जो शृंगार रस से बाहर की वस्तु है ।` भाषागत अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस मन:स्थिति में उलाहने एवं

उपालम्भ के साथ साथ ताने और कटु व्यंग्य भी रहता है। जैसे - हां हां तुम्हे मेरी चिन्ता क्यों होने लगी तुम्हे तो बहुत मिलेंगी। तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा है कि एक से तृप्ति नहीं होती है, तुम तो रसके लोभी हो, तुम्हें मैं क्यों याद आने लगी, तुम्हारा मन मेरे पास क्यों लगेगा वहां कोई और प्रतीक्षा कर रहा होगा ।

इस प्रकार के उपालम्भ में ईर्ष्या भी रहती है। इसीलिये व्यंग्य एवं कटूक्तियां अधिक रहती है। इनका लक्ष्य कभी तो प्रतिस्पर्धी और कभी प्रिय रहता है --

--जब जैसे को तैसा मिलता है तभी सच्चा प्रेम स्थापित होता है श्री कृष्ण जी स्वयं त्रिभंगी है अत: उनका कुब्जा के प्रति प्रेम भी स्वाभाविक है।-गोपीकथन

प्रिय की धृष्टताओं पर उपालम्भ के रूप में उसे निर्मोही, धोखेबाज, लोभी, भ्रमर , भंवरा, हरजाई, स्वार्थी आदि सम्बोधन मिलते हैं । इनमें उपालम्भ के साथ भर्त्सना भी सम्मिलित रहती है। पाषाणात्मा, पाषाणहृदया, आदि मात्र उपालम्भ हैं। इन्ही भावों को व्यक्त करने वाले कुछ वाक्य भी कहे जाते हैं जैसे- सारा रस ले कर चल देने वाले भंवरे , कली कली पर मंडराने वाले आदि --

-- अपने स्वारथ के सब कोउ

चुप करि रहो मधुप रस लम्पट, तुम देखे अरु ओउ
लीन्हे फिरत जोग जुवतिन को, बड़े सयाने दोउ
तो कत रस रच्यौं वृन्दावन जो पै ज्ञान कुताऊ ।।

--- सूर

उपालम्भ का एक रूप प्रत्यभिज्ञा के माध्यम से भी व्यक्त होता है- मैने क्यों उस निष्ठुर को दिल दे दिया, तुमने प्यार करके भूल की, तुम इस योग्य हो ही नही कि तुमसे प्यार किया जाय , मेरा दिमाग खराब हो गया था जो तुमसे प्यार किया|अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये यह भी कहते हैं - मैं ही हूं जो तुम्हें चाहता हूं और कोई पूछता भी नहीं, मैं ही हूं जो तुम्हारे नाज उठाता हूं आदि ।

प्रेम के उपालम्भ में प्रिय के समक्ष प्रेम मार्ग पर उठाये गये कष्टों का भी वर्णन रहता है।

-- तुम्हारे लिये मैने सबका स्नेह छोड़ दिया

तुम्हारे प्यार में जमाने भर की बदनामी उठाई

तुम्हारे लिये पागलों की तरह भटका , इतने अत्याचार सहे, आदि ।

वस्तुत: उपालम्भ का बहुत विस्तृत है। यहां मात्र उसकी मुख्य मुख्य रीतियां या शैलियां ही दी जा सकती है:।

८.१३ प्रेम के कुछ विशिष्ट रूप :-

८.१३.१ देश-प्रेम :- प० राम चन्द्र शुक्ल के अनुसार " जन्मभूमि का प्रेम देश प्रेम यदि वास्तव में अन्त:करण का कोई भाव है तो स्थान के लोभ के अतिरिक्त और कुछ नही है। इस लोभ के लक्षणों से शून्य देश प्रेम कोरी बकवाद या फैशन के लिये गढ़ा हुआ शब्द है ।[१] भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से तो शुक्ल जी लोभ एवं प्रेम को भी एक ही मानते है " मूल में लोभ और प्रेम दोनों एक ही है। इसका पता हमारी भाषा देती है। किसी रूपवान या रूपवती को देखकर " लुभा जाना" बराबर कहा जाता है। अंग्रेजी के प्रेम वाचकशब्द लव (Love) जर्मन के लुब्ध (Lufe) और लैटिन के लुबेट का सम्बन्ध संस्कृत के लोभ शब्द अथवा लुभ् धातु से स्पष्ट लक्षित होता है ।

प्रेम ऐसी भावना है जो सामर्थ्य से उत्पन्न होती है। इसमें आवेश का अभाव रहता है। इसमें प्रतिदान या प्रत्युत्तर की आकांक्षा भी नही होती है । देश प्रेम एकान्त समर्पण है, प्रेम और श्रद्धा का ऐसा मिश्रण है जिसमें देश के लिये कुछ करने , उसकी रक्षा करने का भाव प्रबल रहता है। अपनी जन्मभूमि के प्रति, वहां की मिट्टी के कण-कण के प्रति आदरपूर्ण मोह रहता है। ये प्रेम मूल भाव प्रकृति के साथ साथ देश वासियों और शासक के प्रति भी होते हैं। भाषागत अभिव्यक्ति की दृष्टि से शुभकामनायें एवं स्तुति के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है ।

जब लौं बानी बेद की, जब लौं जग की आस

जब लौं गनपति सूर अरु नारायन कीमास

जब लौं गंगा जमुना जल, जब लौं भरयौ नदीस

जब लौं कवि कविता सुमति, जब लौं सुख अहि सीस

जियौ अचल लहि राज सु ख नीरज बिना विषाद
उदय अस्त लौं मेदिनी माल्हु लहि सुख स्वाद ।।

(भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग २, पृष्ठ ७००)

देश की माता पिता के समकक्ष रखकर भी श्रद्धा व्यक्त की जाती है। भारत माता की प्रशस्ति में लिखे अभिनन्दन ग्रन्थ भी . इसी प्रकार के हैं । वस्तुत: देश-प्रेम , गुरु-प्रेम एवं ईश्वर-प्रेम, इससे भी ऊंचा है क्योंकि ये निष्काम हैं, मात्र कृतज्ञता प्रदर्शन है।

८.१२.२ गर्व :- अपने देश की समृद्धि एवं उन्नति देखकर हृदय में सन्तोष और गर्व उत्पन्न होता है -

फरकि उठी सबकी भुजा, खरकि उठि तलवार
क्यौं आपुहि ऊँचे भये आर्य मोछ के बार

आराजान को नाम आजु सब ही रासि लीनो
पुनि भारत को सीस जगत मह उन्नत कीनो

यह गर्व का भाव विस्तृत होता है। देश की कोई भी विशेषता देशवासियों का कोई भी गुण, देश की प्राकृतिक सुन्दरता, कोई भी इसका कारण हो सकती है । जैसे -

-- हम उस देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है ,
--हमारे देश में संसार का सबसे ऊँचा पर्वत हिमालय है ,
--हमारे देश की धरती सोना और चांदी उत्पन्न करती है ,
--हमारे देश का मलमल सारे संसार में प्रसिद्ध है ।
-- हम महाराणा प्रताप की संताने हैं-- आदि कथन वस्तुत: गर्व आप ही व्यक्त करते हैं । जब वर्तमान में कोई वस्तु गर्व करने योग्य नहीं होती , देश की अवनति होती रहती है तो व्यक्ति भूतकालीन ऐश्वर्य एवं शौर्य का स्मरण करके अपने गर्व की पुष्टि करता है ।

-- भू लोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला स्थान कहां
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगा जल जहां
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है ?
उसकी जो ऋषिभूमि है वह कौन ? भारतवर्ष है,
हां वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का शिरमौर है
ऐसा पुरातन देश क्या विश्व में कोई और है
भगवान की भवभूतियों का यह प्रथम भण्डार है
विधि ने किया नव सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है ।
(पृष्ठ ४, भारत-भारती)

कभी प्राचीन वैभव एवं वर्तमान की दुर्दशा की तुलना रहती है

-- कितना वैभवशाली देश था आज किस स्थिति में पहुंच गया है । इस देश के निवासी कितने बहादुर एवं आत्माभिमानी थे, आज उनका कितना पतन हो गया है आदि ।

-- तव लखि ही जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत
तहं चौथाई लोग रूखी रोटिहुं कहं तरसत
जहां कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा, माहि
देशिन को हित कछु तत्व कहुं कैसहुं नाहिं ।

देश के प्रति यह स्नेह पूर्ण गर्व ऐतिहासिक घटनाओं महान व्यक्तियों के उल्लेख एवं उनके प्रति श्रद्धांजलि के माध्यम से भी व्यक्त होता है। अतीत गौरव के स्मरण के साथ ही भविष्य को लेकर देश से सम्बन्धित सुन्दर एवं मंगल कल्पनायें करना भी देश प्रेम ही है ।

<u>शोक और विषाद</u> :- देश की वर्तमान दशा को देखकर देश प्रेमी को दुःख होता है वह खिन्न हो जाता है और प्रयत्न करता है कि कितनी शीघ्रता से उसमें सुधार किया जाय । अपनी प्रिय वस्तु की दुर्दशा देखकर ग्लानि और शोक होता है ।

-- सोई भारतभूमि भई सब भांति दुखारी
रह्यो न एकहु वीर सहसार्जुन कौशाह भंफकारी
होत सिंह को नाद जौन भारत बन मांही
तंह अब ससक सियार स्वान, स्वर आदि लखाहीं
(पृष्ठ २०५, भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २)

--नहि इनके तन रुधिर , मास नही वसन समुज्वल
नहि इनकी नारिन तन भूषण हाय आज कल
सूखे वे मुख म्लान , केश रुखे जिन केरे
वेश मलीन, छीन तन, छवि छल जात न हेरे
(- प्रेमघन सर्वस्व , भाग १, पृष्ठ ५६)

देश की वर्तमान दुर्दशा का वर्णन ही नहीहोता है दुर्दशा देखकर आत्मग्लानि एवंदु:ख भी होता है । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्ति फटकार और प्रताड़ना देताहै । यह क्रोध भी स्नेह का ही `एक अंग है। व्यक्ति उसी पर क्रोध दिखाता है जिसे वह अपना समझता है -

सीखत कोउ न कला, उदरि भरि जीवत केवल
पसु समान सब अन्न खात , पीअत गंगाजल
धन विदेश चलिजात तऊ जिय होत न चंचल
जड़ समान ह्वै रहत अकिल हत रचि न सकल कल
जीवत विदेश की वस्तु लै ता बिनु कछु नहि कर सकत
जागो जागो अब सांवरो सब कोउ रुख तुमको तकत
(भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग १ पृष्ठ ८८४)

प्रताड़ना का कारण देश की कोई भी भ्री कुरीति हो सकती है जैसे विधवा दुर्दशा, बाल विवाह, मद्यपान, अनेक विवाह , जांति पांति की भावना, अशिक्षा, अनीति, कुसंस्कार आदि ।

भर्त्सना और प्रताड़ना के साथ साथ उद्बोधन का भी स्थान रहता है । देशवासियों की भर्त्सना करके, स्वर्णिम भविष्य की कल्पना करके , वैभवशाली अतीत

का स्मरण करा के उनके हृदय में नया उत्साह जागृत करने का प्रयत्न रहता है ।

-- हमारे भारत के नवनिहालों , प्रफुल्ल वैभव विकास धारे
सुहृद् हमारे प्रियवर, हमारी माता के चरन के तारे
न अब भी अलस में पड़ के बैठो , दसों दिसा में प्रभा है छाई
उठो अन्धेरा मिटा है प्यारे , बहुत दिनों पर दिवाली आई
(कविता , कौमुदी , भाग २ , पृष्ठ ४५५)

उद्बोधन के अतिरिक्त स्वयं देश की उन्नति के लिये प्रण करना भी देश-प्रेम की वाचिक अभिव्यक्ति का ही एक रूप है जैसे मैं अपने देश के लिये प्राण देने को तैयार हूं , रक्त की अन्तिम बूंद तक देश के कल्याण के लिये न्योछावर कर दूंगा देश की आन की रक्षा के लिये सर्वस्व त्यागने को तैयार हूं , आदि ।

८.१३.२ ईश्वर और गुरु-प्रेम (श्रद्धा -भक्ति) :-

दण्डी ने भक्ति तथा प्रीति को पर्याय रूप में ग्रहण किया है[1] अपने से बड़े के प्रति प्रेम को श्रद्धा कहते हैं । श्रद्धा एवं भक्ति में कुछ अन्तर है। श्रद्धा का आलम्बन कोई भी ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो गुण, आयु ज्ञान, आदि में अपने से उत्तम हो जैसे राजा ,गुरु, ऋषि, माता पिता , प्राचीन या अर्वाचीन नेता पूज्य ग्रन्थ या सनातन नियम, आदि । जब कि भक्ति का आलम्बन केवल ईश्वर रहता हैं । दोनों के संचारी भाव- हर्ष, ग्लानि, दैन्य, गर्व, विबोध गति, आदि समान हैं । दोनों के अनुभाव में रोमाञ्च , स्तम्भ ,अश्रुपात, स्तवन, नमन, रमण आदि समान हैं । श्रद्धा और भक्ति के शारीरिक अनुभावों में अथवा शारीरिक प्रतिक्रियाओं में। सर झुकाना, हाथ जोड़ना, पुलकित होना , रोमाञ्चित होना आदि है । कंठस्वर विशेषतार्थ इसमें नहीं आती क्योंकि आवेश प्रायः नहीं रहता ।

१- प्राड् प्रणीता प्रीता रति: शृङ्गारतां गता- काव्यदर्पण २।२८१

पुलक रोमान्च आदि के कारण स्वर-भंग एवं कंठावरोध चाहे कभी मिल जाये ।

श्रद्धा भक्ति की वाचिक अभिव्यक्ति के दो स्तर आकर्षण एवं समर्पण प्रेम की सामान्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत आ जाते हैं यों तो भक्ति को नपधा भक्ति मान कर उसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया गया है। किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भक्ति की भी वास्तविक अभिव्यक्ति (दास्य और वात्सल्य भक्ति को छोड़कर) लगभग प्रेम एवं श्रद्धा के समान ही होगी । आकर्षण एवं समर्पण की वाचिक अभिव्यक्ति के साथ साथ इसमें आशंका एवं ग्लानि का भाव भी सम्मिलित रहता है। -" मैं तो इतना साधारण हूं और मेरे आराध्य इतने महान, पता नहीं मेरी पूजा स्वीकार करेंगे या नहीं" । यह आशंका एक ओर तो दैन्य एवं आत्मग्लानि के रूपमें अभिव्यक्त होती है - मेरा उपहार साधारण है और मेरे आराध्य इतने महान, पता नहीं मेरी पूजा स्वीकार भी करेंगे या नहीं , मैं किसी प्रकार भी तुम्हारे योग्य नहीं हूं, आदि । भक्ति में कृपा की आकांक्षा रहती है अतः दैन्य अधिक रहता है किन्तु श्रद्धा में प्रत्युत्तर की आकांक्षा नहीं होती अपनी दुर्बलताओं एवं दुर्गुणों पर ग्लानि मात्र रहती है यहां दृष्टि तुलनात्मक रहती है- वह इतने ऊपर है , इतने महान है। इतने ज्ञानी हैं और मैं कुछ नहीं हूं , उनमें इतना संयम एवं विवेक है मुझमें उसका अंशांश भी नहीं है। इस ग्लानि के साथ साथ श्रद्धेय के गुणों के प्रति मुग्धतापूर्ण प्रशंसा की अभिव्यक्ति भी होती है - कितना तेज है, कितना ज्ञान है, आदि।

श्रद्धा की वाचिक अभिव्यक्ति की प्रत्यक्ष शैली स्तुति है किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा ईश्वर की अतिशयोक्तिपूर्ण और एकपक्षीय प्रशंसा श्रद्धा की स्पष्ट अभिव्यक्ति है । प्रशंसा का विषय कोई भी वांछित गुण हो सकता है ।

८.१४ प्रेम- उत्तर प्रत्युत्तर या आदान प्रदान की दृष्टि से :-

एक बार व्यक्ति के हृदय में प्रेम जागृत होने पर उसकी शान्ति सरलता से नहीं होती । तब दो ही स्थितियां होती है विकास अथवा मार्गान्तिकरण । यदि प्रेम को उद्दीपन मिले और प्रत्युत्तर में प्रेम मिले तब तो उसका विकास होता जायेगा ।

विशेषकर लौकिक प्रेम (दाम्पत्य और सामान्य) प्रत्युत्तर की कामना रखता है। क्रोध की भांति ही इसमें भी उत्तर प्रत्युत्तर की स्थितियां रहती हैं। आरम्भ में एक पक्ष का आकर्षण प्रशंसा के रूप में व्यक्त होता है। द्वितीय पक्ष यदि आरम्भ में तटस्थ एवं निर्लिप्त रहेगा तो प्रथम पक्ष से दैन्यपूर्णात्मसमर्पण एवं प्रत्युत्तर के आग्रह की अभिव्यक्ति होगी। इस स्तर तक आते आते दूसरा पक्ष भी द्रवित हो जायेगा और उधर से भी आकर्षण तथा अनुगृहीत पूर्ण समर्पण व्यक्त होगा। क्रोध में इस प्रकार के भावों का आदान प्रदान बहुत स्पष्ट रहता है और तुरन्त सामने- सामने हो जाता है जब कि प्रेम में यह क्रिया प्रतिक्रिया अस्पष्ट एवं बहुत लम्बे समय तक चलने वाली होती है।

जब दोनों ही पक्षों में समान प्रेम रहता है तो अभिव्यक्ति का रूप उपर्युक्त रूप से बिलकुल भिन्न हो जाता है। इस स्थिति में प्रेम प्रदर्शन की होड़ भी लग जाती है।

एक पक्ष - तुम सुन्दर हो

द्वितीय पक्ष - तुम अतीव सुन्दर हो

ए०- मैं तुम्हारे रूप का दास हूं

द्वि०- मैं तुम्हारे गुणों का पुजारन हूं

मित्र प्रेम, स्नेह, मैत्री सौहार्द में दूसरा का पक्ष द्वारा इस प्रकार का समर्पण आवश्यक नहीं है। दो मित्रों के मध्य चाहे जितनी प्रगाढ़ मित्रता हो इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा युक्त अभिव्यक्ति नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त प्रेम के किन्हीं रूपों में प्रतिदान की कामना स्वाभाविक रूप से नहीं रहती केवल समर्पण ही समर्पण रहता है जैसे ईश्वर प्रेम, देश प्रेम, विश्व प्रेम अतः यहां प्रेम की उपर्युक्त द्विपक्षीय अभिव्यक्ति नहीं मिलती है।

८.१५ <u>प्रेम तथा अन्य भाव</u> :- प्रेम का मानवीकरण घृणा में प्रमुख रूप से होता है विशेष कर लौकिक प्रेम, दाम्पत्य एवं सामान्य प्रेम स्नेह, मैत्री, सौहार्द आदि का विलोम घृणा है। प्रेम के बाद घृणा की उत्पत्ति कैसे होती है, किस रूप में होती है, किन कारणों से होती है यह एक अलग प्रश्न है। इस प्रेम से परिवर्तित

घृणा की वाचिक अभिव्यक्ति साधारण घृणा की भांति ही निन्दा अरुचि तिरस्कार और भर्त्सना के माध्यम से होती है किन्तु इसमें और साधारण घृणा में अन्तर रहता है। इस अभिव्यक्ति के साथ साथ प्राय: इस प्रकार के वाक्यांश भी जुड़े हुये रहते हैं - मैं तुमको ऐसा नहीं समझता था, तुमसे यह आशा न थी, मुझे नहीं मालूम था कि -------, मैंने तुम्हारे बारे में ऐसा सोचा भी नहीं था अन्यथा मैं ---------,

प्रेम से परिवर्तित घृणा साधारणतया से कुछ भिन्न होती है इसे विघृण्णा कहा जा सकता है - मेरे जीवन से चले जाओ फिर मेरे जीवन में मत आना, अब मैं तुम्हें देख भी नहीं सकता , मैंने क्या बिगाड़ा था तुम्हारा , क्यों मेरा जीवन नष्ठ किया , क्योंमेरे अरमानों से खिलवाड़ किया । इस प्रकार की अभिव्यक्ति में " क्यों ?" बहुत प्रधान रहता है। अन्तर का समस्त आक्रोश का इस " क्यों ?" के माध्यम से ही व्यक्तहोता है। वक्ता इस प्रकार की भर्त्सना या प्रताड़ना तभी देगा जब कि वह स्वयं पूर्णत: निर्दोष हो और अपराधीइस क्यों , का उत्तर देने में सर्वथा असमर्थ हो । प्रेम की घृणा और क्रोध दोनों ही नैतिक आधार लेकर चलते है। नैतिक आधार लेकर चलने वाले क्रोध और घृणा की अभिव्यक्ति में आत्मविश्वास का भाव बहुत अधिक रहता है। इस आत्माविश्वास के कारण प्रताड़ना में अपशब्द, उग्रता, चुनौती, धमकी आदि कीअभिव्यक्ति नहीं के बराबर होती है। वास्तव में इन सब की अभिव्यक्ति वहीं होती है जहां आश्रय को अपनी शक्ति एवं उसके औचित्य पूरा विश्वास न हो ।

इसी प्रकार स्नेह मैत्री भी घृणा में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार की घृणा सन्ताप के माध्यम से व्यक्त होती है- मैंने उसके लिये इतना कियाऔर वह ऐसा निकला, आस्तीन का सांप निकला, मैंने उसे भाई के समान स्नेह दिया और उसने उसका बदला यह दिया, बड़ा ही कृतघ्न निकला। इसके साथ हानि की मात्रा या स्नेह की पूर्व तीव्रता अधिक होने पर क्रोध भी उत्पन्न होगा। इस क्रोध की अभिव्यक्ति साधारण क्रोध की भांति ही होतीहै।

देश-प्रेम, ईश्वर-प्रेम , गुरु-प्रेम , और विश्व-प्रेम , अर्थात श्रद्धा एवं भक्ति कभी भी घृणा में परिवर्तित नहीं होती । अधिक से अधिक यह हो सकता है कि प्रेम समाप्त हो जाये । किन्तु तब घृणा एवं क्रोध नही वरन् उदासीनता की अभिव्यक्ति होगी । यह कहा जा सकता है कि - मैं ईश्वर पर विश्वास नहीं करता , मुझे विश्व प्रेम में आस्था नहीं है किन्तु कोई नही कहता कि मुझे ईश्वर से घृणा है विश्व से घृणा है अथवा मैं अपने देश से नफरत करता हूं । यदि इस प्रकार की अभिव्यक्ति है तो स्वाभाविक नहीं वरन् अस्वाभाविक मन:स्थिति की होगी ।

-: वात्सल्य :-

६.१ काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि :-

सोमेश्वर ने रति के तीन भेद बताते हुए लिखा है" स्नेह भक्ति वात्सल्य रति के ही विशेष रूप है। तुल्यों की अन्योन्य रति का नाम स्नेह, उत्तम में अनुत्तम की रति का नाम भक्ति और अनुत्तम में उत्तम की रति का नाम वात्सल्य है।" (" काव्य प्रकाश " की" काव्यादर्श टीका)

वात्सल्य के रसत्व का उल्लेख सर्वप्रथम आचार्य रुद्रट ने किया (दि नम्बर आफ रसाज,पृष्ठ १०७) उन्होने प्रेयान नामक दसवां रस माना और उसे ही वात्सल्य रस का पर्याय समझा। दाम्पत्य प्रेम से पृथक प्रेम के चार प्रकार माने गये है - प्रेयस , वात्सल्य , प्रीति और भक्ति (दि नम्बर आफ रसाज पृष्ठ १०८-६) कवि कर्णपूर गोस्वामी ने भी प्रेम के व्यापाक रूप को लेकर इसके चार भेद माने - साम्प्रयोगिकी प्रति (दाम्पत्य प्रेम) मैत्री, सौहार्द और भाव।

पाश्चात्य विद्वानों मैकडूगल ने वात्सल्य का स्त्रोत मनुष्य की पालन की प्रवृति माना जिसके साथ स्नेह, करुणा, अनुकम्पा का संवेगा जुड़ा रहता है(Social Psychology by Mc Dougall Page 60) । फ्लूगल ने इसका आधार मानव मन में स्थित परोपकार का स्थायी भाव माना। (The Psycho Analytic Study of the family by Flugal, Page 8)| बैन ने वात्सल्य भाव का कारण बच्चे के साथ स्पर्श के अत्याधिक आनन्द की पुनरावृति को माना है। कुछ मनोशास्त्री वृद्धावस्था में अपत्य द्वारा की जाने वाली सेवा की कल्पना को इसका मूल कारण मानते है। इस प्रकार पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक वात्सल्य को भाव की संज्ञा देते है। संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने वात्सल्य को इस प्रकार की रति माना है जो स्थायी भाव की तुल्य अवरोधीय नहीं है किन्तु अपत्य स्नेह की उत्कटता आस्वादनीयता, पुरुषार्थोपयोगिता, आदि गुणों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वात्सल्य एक स्वतन्त्र प्रधान भाव है एवं स्थायी भाव के समकक्ष है। भोज(११वीश०) आदि कतिपय आचार्यों ने इसकी सत्ता का प्राधान्य स्वीकार किया। जिस रस का

स्थायी भाव स्नेह हो उसे प्रेयास कहते है और इसी का नाम वात्सल्य है। कवि कर्णपूर ने " ममकार " को (म०म०च० काव्यमाला पृष्ठ १००,नम्बर आफ रसाज से उद्धृत पृष्ठ १०६) , और " मन्दारमन्द चम्पू " के रचयिता ने " कारुण्य " को इसका स्थायी भाव माना (काव्यालंकार १२।३१) । आधुनिक विचारकों में डा० नगेन्द्र के विचार उल्लेखनीय है -

" वात्सल्य को रस परिणति में अयोग्य मानना बहुत ज्यादतीहोगी क्योंकि वात्सल्य भाव का सम्बन्ध जीवन की एक सर्वप्रथम एषणा पुत्रैषणा से है। विदेश के सभी मनोविज्ञानिकों ने भी मातृवृति को एक अत्यन्त मौलिक एवं प्रधान वृत्ति माना है। वात्सल्य भाव मानव जीवन की एक बहुत ही बड़ी भूख है जो तीव्रता एवं प्रभाव की दृष्टि से केवल काम से ही न्यून कही जा सकती है ।

(रीति काव्य की भूमिका , पृष्ठ ७२)

भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से वात्सल्य बहुत सक्षम है। इसमें न तो प्रेम एवं घृणा की भांति झिझक और संकोच का स्थान रहता है और न क्रोध और भय की भांति आवेश की अधिकता रहती है। सुस्थिर एवंशान्त मन:स्थिति भावात्मक और संवेगात्मक अभिव्यक्ति में अधिक समर्थ है होती है। मन:स्थिति की इस विशेषता के कारण तथा आवेशहीनता के कारण अभिव्यक्ति चेतन रूप में ही होती है इसलिये इसमेंव्यक्तिगत भिन्नता बहुत अधिक होती है ।

वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति एक पक्षीय होती है अर्थात वक्ता श्रोता से उत्तर की आकांक्षा नही रखता है। साथ ही वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति में दूसरे को प्रभावित करने , कष्ट पहुंचाने या सुख पहुंचाने का उद्देश्य नही रहता । व्यक्ति अपने मन की पुलक एवं हर्ष को वाणी के माध्यम से व्यक्त करता है और स्वयं ही आल्हादित होता है ।

वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति स्त्रियों द्वारा अधिक होती है । मां बच्चे को भाषा की शिक्षा देने के लिये शैशवावस्था से ही उससे अर्थहीन वार्तालाप करती है ।वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति का एक और कारण हो सकता है , प्राय: स्त्रियों का क्षेत्र घर तक सीमित होने के कारण उन्हें वार्तालाप के लिये

पुरुषों की भांति विस्तृत समाजिक परिवेश नही मिल पाता । फलस्वरूप इनकी यह इच्छा पूरी नही हो पाती । इस इच्छा की पूर्ति वे अपने शिशु से बातें करके करती है । वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति में तो भिन्नता रहती है किन्तु परिस्थितियों में अधिक अन्तर न होने के कारण अभिव्यक्ति के अधिक रूप और वर्ग नही मिलते । शिशु या सन्तान ही एक मात्र आलम्बन रहता है । "

इसी दृष्टि से यह प्रेम से भिन्न हो जाता है। प्रेम में प्रत्युत्तर की या प्रतिदान कीकामना रहती है जबकि वात्सल्य में ऐसी कोईकामना नहीं होती । वात्सल्य में प्रेम की अपेक्षा उदारता भी अधिक होती है। एक ओरतो इसका क्षेत्र प्रेम से कहीं अधिक विस्तृत रहता है दूसरी ओर वात्सल्य का आलम्बन एक साथ कई व्यक्तियों का स्नेहपात्र बन सकता है इससे व्यक्ति को कष्ट या ईर्ष्या नही होगी बल्कि और आनन्द होगा किन्तु प्रेममेंआलम्बन पर किसी और पर प्रेम देख कर कष्ट होता है । वात्सल्य में प्रेम की अपेक्षा सात्विकता अधिक रहती है ।

६.२ वात्सल्य एवं शारीरिक अभिव्यक्ति :-

अन्य भावों की भांति ही भाषेतर साधनों के द्वारा भी वात्सल्य की अभिव्यक्ति संभव है विशेषकर शारीरिक प्रतिक्रियाओं के माध्यम से । सन्तान को स्पर्श करके अपने हृदय का प्रेम उस तक पहुंचाया जाता है जैसे -

-- पुजारी ने माला पहनायी (फिर गंगा के सिर पर कांपता हाथ रखकर भरे गले से बोले " बेटी ऐसी बात मत कहो । भगवान के हृदय को कष्ट होगा लाडली ।

(पृष्ठ ३६ " गंगा " निर्गुण)

-- अम्बा : (प्यार से दोनों के सिर पर हाथ फेरती हुई) अब तुम्हारा स्वयम्बर होने वाला है जानती हो ?

(पृष्ठ ५३ " विद्रोहिनी अम्बा " उदयशंकर भट्ट)

-- भले मानुस ने पीठ पर हाथ रखा और सनेह से कहा ' होश मंगाओ बेटे । किस विपदा में फंस गये थे । आओ ऊपर आओ ।

(पृष्ठ १४ 'भूड़ियां' निर्गुण)

-- मंगलू का माथा रोगी के वक्ष पर टिका था और वह रो रहा था । रोगी का ठण्डा शिथिल हाथ मन्दगति से उसकी पीठ पर फिर रहा था और वह रुक रुक कर कह रहा था " मन छोटा नहीं करते बेटा, किसके मां बाप सदा बने रहते हैं ।"

(पृष्ठ १३ " गीला बारूद " नानक सिंह)

" पीठ पर हाथ फेरना, सिर पर हाथ फेरना आदि में सांत्वना और सुरक्षा देने का प्रयास व्यंजित होता है । किन्तु ' पीठ थपथपाने अथवा ' पीठ ठोंकने के में उत्साह और प्रोत्साहन देने का प्रयास रहता है ।

-- बड़े जोश से डेविडसन ने प्रकाश से हाथ मिलाया और उसकी पीठ ठोकी । पिता की आंखे भीग गईं ।

(पृष्ठ १५५ 'दीदी' श्री गोपाल नेवटिया, नवनीत मार्च १९५८)

-- डाक्टर : (पी० थपथपाते हुए) मेरी बच्ची । जिन्दगी बहुत कम रहम खाती है। एक बार जो ले जाती है बहुत कम बार उसे लौटाने आती है ।

(पृष्ठ ३३ ' उतार- चढ़ाव ' रेवती सरन शर्मा)

छोटे बच्चे को गोद में उठाकर भी स्नेह का प्रदर्शन होता है । बच्चे को खिला झुलाकर गोद में में उठाकर मां प्रसन्न होती है साथ ही सुरक्षा का प्रयत्न भी रहता है ।

-- उसने मातृस्नेह से विभोर हो बालिका को गोद में उठा लिया ।मानो किसी भयंकर पशु से उसकी रक्षा कर रही हो)

(पृष्ठ १३७ " प्रेम पूर्ण " प्रेमचन्द)

--(मैया मैं नाहीं दधि खायो)

कृष्ण जी अपने बचाव के लिये झूठे बहाने बनाते हैं और दही का दोना

पीछे छिपाते जाते हैं । उनकी इस शरारत पर मुग्ध होकर यशोदा माता छड़ी फेंक कर पुत्र को मुस्करा कर गले लगा लेती है । - सूरदास

-- पलंग से पलना पर धाल कै , जननि आनन्द इन्दु विलोकती ।
(काव्य दर्पण)

हर्ष एवं प्रसन्नता की अभिव्यक्ति भी वात्सल्य के साथ साथ होती है । दोनों की सम्मिलित शारीरिक अभिव्यक्ति चुंबन के माध्यम से होती है ।

-- उसने झपटकर मुन्ने को मामा की गोद से छीन लिया और उसके देर का कारण पूछे बिना पागलों की तरह बेतहाशा चूमने लगी ।
(" भोला का मामा " " नवनीत " फरवरी १९६६)

-- और गला रूँध जाने पर वह रुक गई । उसके आंसू बह रहे थे , हाथ बेटे के शरीर को सहला रहे थे और ओठ बार बार पुत्र का माथा चूम रहे थे ।
(पृष्ठ २७१ " भीगा बारूद " नानक सिंह)

-- उसने उसे लिपटा लिया अपनी जर्जर देह से । पागलों की तरह उसके भरे भरे गालों को कई स्थान पर चूम लिया । फिर उसे अलग करके दुपट्टे से उसका चेहरा पोंछ दिया और आंखों में भर आये आंसुओं को रोकते हुए चेहरे पर मुस्कान ला कर कहा - " मुन्नी बेटी, बताना नहीं किसी से , जाओ अब ।
(पृष्ठ ६१ " उनके लिये " , " नवनीत " अक्टूबर १९६६)

उपर्युक्त शारीरिक प्रतिक्रियाओं के अतिरिक्त " गले लगाना " " छाती से चिपकाना " शरीर से चिपकाना " आदि अन्य प्रतिक्रियाओं भी हैं । इनकी व्यंजना सन्तान या आलम्बन के प्रति हर्षपूर्ण वात्सल्य तथा सान्त्वना दोनों के ही लिये अवसर के अनुरूप होती है ।

-- एक सर्द हवा का झोंका जैसे हाड़ हाड़ को गला गया । नवाब ने बच्चे को अपने सीने से चिपका लिया ।अपने शरीर की गर्मी नवाब उस बच्चे के ऊपर खोल की तरह चढ़ा देना चाहता था ।
(पृष्ठ २२६ " काली मुर्गी की आत्मा " लक्ष्मीकांतवर्मा

- फिर उसने सोचा हो सकता है, वह बच्चा भी महीम का हो.......
और उसने उसको गोद में उठा लिया। सीने से लगाकर रखा था, थपकियाँ देकर सुलाने की चेष्टा की थी।

(पृष्ठ २३३ 'खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकान्त वर्मा)

उपर्युक्त शारीरिक प्रतिक्रियाओं के अतिरिक्त 'सिर सूंघना' 'कन्धे थपथपाना' आदि भी वात्सल्य की शारीरिक अभिव्यक्ति के माध्यम है। नेत्रों के द्वारा भी वात्सल्य की बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति होती है विशेषकर जब उसके साथ हर्ष या गर्व का मिश्रण भी हो।

- गंगा के आलोकोज्वल मुख को वात्सल्य से निहार कर बोले, ओठों में मुस्कान लिये 'एक सन्यासी आज आया है। कैसा करुण स्वर है बेटी।'

(पृष्ठ २६ 'गंगा' निर्गुण)

- अपनी बड़ी-बड़ी आंखों में चिर संचित स्नेह छिपाये वह माई के समीप आ बैठी। मानो स्वादिष्ट भोजन के अभाव की पूर्ति अपने एकनिष्ठ प्रेम द्वारा ही सम्पूर्ण कर देना चाहती हो।

(पृष्ठ २३२ 'घरकी लाज' सोमावीरा)

६.३ <u>वात्सल्य एवं कंठस्वर</u> :-

शारीरिक अभिव्यक्ति के बाद कंठस्वर का स्थान आता है। यदि वात्सल्य के साथ शोक या हर्ष भी जुड़ा रहता है तो आवेश के कारण कंठावरोध की प्रवृत्ति भी मिलती है।

- "अरे रामधन चाचा" न जाने कैसे अनचाहे आवेगों से माधवी का गला और आंखें भर आयीं।

(पृष्ठ २२ 'प्रत्यावर्तन' कुमुद, धर्मयुग १६ दिसम्बर १९६५)

- रोशलाल ने बीबी की गोद में सोये बच्चे को क्षण भर के लिये अपनी गोद में ले लिया। रोशलाल के गले में कैसे कुछ अटक सा गया था।

(पृष्ठ १२ 'कैंसर कविता' विजया चौहान, धर्मयुग १२ दिसम्बर

वात्सल्य की प्रवृत्ति कोमल है, अत: वाणी में एक प्रकार की मृदुता एवं कोमलता आ जाना स्वाभाविक है ।

- एक हाथ से उसे धीरे धीरे थपकाते दूसरे हाथ से उसके घुंघराले बालों को माथे पर संवारते उसने मृदु मीठे स्वर में कहा "क्या है कुमि ! क्या हुआ मेरी बच्ची ? सो जा रानी ! सो जा, लाडो ।

(पृष्ठ २५१, अम्मा पापा कटार है, सोमावीरा)

व्यवहारिक भाषा में तो ये परिवर्तन स्पष्ट हो जाते हैं किन्तु लिखित साहित्य में लेखक प्राय: संकेत कर देते हैं विशेष कर नाटकों में -

- पुजारी ने उसके मुख पर झांक कर स्नेहार्द्र स्वर में कहा "तुम यहां मेरी कोठरी में हो बेटी, अब तबियत कैसी है तुम्हारी ?" (पृष्ठ ३६ "गंगा" निर्गुण)

- "अरे मंगतू !" ताऊ किरपा ने सस्नेह पुकारा - "आज कैसे रास्ता भूल गया रे ?" (पृष्ठ ४१ "गीला बारूद" नानक सिंह)

- घबराओ मत दोस्त युवक ने स्नेह भरे स्वर में कहा "मैं भी तुम जैसा ही एक मेहनती हूं ।" (पृष्ठ ५३ "गीला बारूद" नानक सिंह)

- डाक्टर : (बड़े स्निग्ध स्वर में) अरे हम सब ने मिल कर अपनी बिटिया को बौखला दिया । नहीं नहीं हमारी बिटिया बहुत अच्छी है । कुसुम तुम तो बड़ी हो न, हमारी बिटिया को आशीर्वाद दो और चलो ।

(पृष्ठ १३ 'उतार-चढ़ाव', रेवतीशरण शर्मा)

उपर्युक्त संकेतों के अतिरिक्त "पुलकित होकर" "गदगद होकर" संकेत भी वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति के लिये दिये जाते हैं ।

- लक्ष्मी दास : (गदगद स्वर में) क्या......क्या कहती हो....बेटा ? बुरी बेटी ? बुरी बेटी ? मेरा सब कुछ.... मेरी सर्वस्व....बुरी....तू बुरी ।

(पृष्ठ ८२, 'गरीबी-अमीरी', सेठ गोविन्द दास)

६.३.१ तुतलाना :- उपर्युक्त विशेषतायें अचेतन रूप से वाणी में आती है इनके अतिरिक्त कुछ विशेषतायें चेतन रूप से भी आ जाती हैं। ये सप्रयास होती है। मातायें बच्चों से बातें करते समय तथा दुलार प्रदर्शन में तुतला कर शब्दों का उच्चारण करती हैं - मेला लाजा बेटा, क्ला कुन्दल है, छोजा निन्नी हो जा, काना काओगे। यह आवश्यक नहीं कि बच्चा इस तोतली वाणी को समझने या इससे आनन्दित होने में समर्थ हो। तुतला कर शिशु के समकक्ष बनना प्यार प्रदर्शन की ही एक शैली है।

६.३.२ विलम्बित उच्चारण :- इसी प्रकार कभी कभी स्वर को खींच कर भी स्नेह प्रदर्शन होता है। वात्सल्य में बलाघात नहीं किन्तु स्वराघात का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में रहता है किन्तु उनको किसी विशेष नियमों में नहीं बांधा जा सकता और न वर्गीकृत ही किया जा सकता है। वात्सल्य प्रदर्शन में एक ही वाक्य का उच्चारण हर व्यक्ति अपने अपने ढंग से करेगा। गांव की स्त्रियाँ द्वारा शिशु के प्रति प्रेम प्रदर्शन करते समय यह प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। वे एक विशेष लय में छोटे बच्चों को दुलारती है। कथन साधारणतः इसी प्रकार का रहता - मेरा राजा हो, मेरा सोना रे' आदि।

शब्दों को खींच खींच कर उच्चारण को विलम्बित कर देते हैं जैसे -

आओ के स्थान पर आ ऽऽ ओ

आजा के स्थान पर आ ऽऽ जा

इसी प्रकार संज्ञा के उच्चारण में भी शब्दों को खींचते हैं 'मेरी मीना का 'मेरी मी ऽ ना', मुन्नी का मु ऽ न्ना आदि। इस प्रकार से प्रथम अक्षर को खींचने के कारण अन्तिम अक्षर पर हल्का सा बल भी पड़ता है।

६.४ शब्दावृत्ति :-

शब्दावृत्ति की प्रवृत्ति भी वात्सल्य में मिलती है। यहाँ यह आवृत्ति क्रोध एवं भय की भांति आवेग की अधिकता के कारण नहीं होती वरन् भाव विह्वलता के कारण होती है जैसे 'सोजा मेरे मुन्ने सोजा'। शिशु को संकेत और निर्देश देते समय भी शब्दों को दुहरा देते हैं जैसे 'आजा मुन्ना आजा', 'खाले बेटा खाले'। यह

शब्दावृति सम्भवत: इसलिये भी होगी कि शिशु को कथन सरलता से समझ में आ जाय। यह दुहराने की प्रक्रिया कभी तो चेतन स्तर पर होती है और कभी आदतन ।

भावविह्वलता की स्थिति में आलम्बन के नाम की आवृत्ति भी होती है जैसे एक ही सम्बोधन में - मुन्ने, मुन्ना, मुन्ना राजा, मुन्ना बेटा आदि । इस आवृति मे हर बार शब्द का रूप कुछ परिवर्तित हो जाता है जैसे - गुड़िया - गुड्डी - मेरी गुड्डो, गुड्डन । इसके अतिरिक्त भावावेश में शिशु को कई नामों से सम्बोधित करते हैं - जैसे - 'मेरा गुड्डा है, मेरा सोना है - मेरा खिलौना है', 'उठ जा मेरे राजा, बेटे लाल '

- . . . . . . मोहन तुम आ गये....... तुम आ गये । आओ मेरे बच्चे आओ । अब तुम्हें कोई डर नहीं है . . . . . मेरे बच्चे मेरे गले से लग जाओ(भावावेश) मोहन मेरे बच्चे......मेरे लाल ।

(पृष्ठ १०४ 'नये पुराने' विष्णु प्रभाकर)

६.६ सम्बोधन :-

ध्वनि अथवा कंठस्वर के बाद शब्दों का स्थान है । वात्सल्य की भावात्मक एवं ~~प्रभावोत्पादक~~ संवेगात्मक अभिव्यक्ति में कुछ विशिष्ट शब्द भी सहायक होते हैं । इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण और बहुसंख्यक सम्बोधन - बोधक शब्द है इन सम्बोधनों की संख्या अनन्त है । हिन्दी में विभिन्न क्षेत्रों की भाषा की भाषा में इसके विभिन्न रूप में मिलते हैं, यही नहीं प्रत्येक व्यक्ति स्नेह प्रदर्शन के लिये मौलिक शब्दों का प्रयोग करता है । इनमें से कुछ सम्बोधन बहुत प्रचलित है जैसे - बेटा, राजा, मुन्ना, कुंवर, लाल, बबुआ, गुड्डा आदि (तथा इनके स्त्रीलिंग रूप) मेरे सोना, मेरा मैना, मेरे धन, मेरे राजहंस आदि व्यक्तिगत प्रयोग हैं ।

स्नेह का प्रदर्शन आलम्बन के नामकरण में भी उद्घाटित होता है । बच्चों के ये अर्वाचीन नाम पप्पू, डब्बू बम्पू, गुल्लू, बिट्टू, पुप्पू, बबलू आदि मन की पुलकित अवस्था की ही व्यंजना करते हैं । बच्चों के नाम को विकृत करने के पीछे भी यही भावना रहती है । भावावेश के कारण भाषा में शब्द लाघव की प्रवृत्ति आ जाती है जैसे सत्यनारायण का लघु राजा से रजुआ - रजुल्ला - रजिआ, रानी से रनिआ -

रन्नो - रनीवा, पुच्चु से पुच्चड़ - पुचपुच - पुच्चि आदि ।

६.६ विशिष्ट शब्द एवं मुहावरे :-

वात्सल्याभिव्यक्ति में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों में उन विचित्र ध्वनियों और शब्दों का स्थान भी आ जाता है जो व्यक्ति बच्चे को प्रसन्न करने या हँसाने के लिये प्रयुक्त करता है जैसे लम्बी सिसकारी, सीटी, टिक टिक, ढम ढम, पौंपों आदि ध्वननियां विभिन्न जानवरों की आवाजो एवं वाद्यों की आवाजों का अनुकरण भी मिलता है ।

कुछ लोग वात्सल्य प्रदर्शन के लिये भाषा के विशेष रूप का प्रयोग करते हैं । यह रूप सांस्कृतिक - साहित्यिक और परिनिष्ठित भाषा से कुछ भिन्न होता है तथा जनभाषा के अधिक समीप होता है । शिक्षित समाज में भी स्नेहाभि-व्यक्ति में इस शैली का प्रयोग होता है जैसे सम्बोधन के साथ 'रे' का प्रयोग 'क्या खाना खाओगे' की अपेक्षा 'क्या खाना खायेगा रे' प्रयोग अधिक स्नेहपूरित है । पुरुष 'रे' के स्थान पर 'बे' का प्रयोग अधिक करते हैं जैसे 'क्या खाना खायेगा बे', सोयेगा बे' आदि मित्रों में भी जहाँ औपचारिकता का अभाव रहता है परस्पर स्नेह प्रदर्शन के लिये 'रे' और 'बे' का प्रयोग करते हैं । 'आप' के स्थान पर 'तुम', 'तुम' के स्थान पर 'तू' का प्रयोग भी स्नेह प्रदर्शन की एक शैली है । 'तुम जाओगे' के स्थान पर 'तू जायेगा' अधिक भावपूर्ण है । किन्तु इन्हें सन्दर्भ, वक्ता, एवं परिस्थिति के साथ रखना पड़ेगा अन्यथा ये वात्सल्य की अपेक्षा तिरस्कार की व्यंजना करते हैं ।

वात्सल्याभिव्यक्ति में कुछ बहुप्रचलित सम्बोधनों ने कालान्तर में मुहावरों का रूप ले लिया । इनमें निम्न प्रमुख है -

आँखों के तारे, आँखों की पुतलियां, आँखों की रोशनी, अंखियों का नूर, 'कलेजे के टुकड़े, दिल के करार, बुढ़ापे की लाठी, अन्धे की लकड़ी, घर का चिराग, घर का उजाला, कुल का दीपक, मेरी बोलती चिड़िया, मेरा खिलौना, निर्धन का धन, गोदी की शोभा ।

६.७ वात्सल्याभिव्यक्ति में प्रयुक्त वाक्य विशेष :-

वात्सल्य की व्यंजना करते वाले विशिष्ट वाक्यों को सन्दर्भ में रख कर देखना ही उचित होगा । सन्दर्भ से अलग उनका रूप स्पष्ट ह नहीं होता ।

वात्सल्य की अजस्त्र धारा का प्रवाह शिशु जन्म के पूर्व ही आरम्भ हो जाता है । शिशु के जन्म के पूर्व भावी कल्पनाओं के माध्यम से माँ ई अनुभव करती है । जन्म के समय माता पिता का स्नेह प्रदर्शन कुछ बहुत अधिक मुखरित नहीं होता । किन्तु घर के अन्य सदस्य तथा घर की बड़ी बूढ़ियों के उद्‌गार वात्सल्य को व्यक्त करते हैं नवजात शिशु को लेकर माँ तो इतनी भावविह्वल होती है कि उसकी वाणी जड़मूक हो जाती है । दादी, नानी आदि बच्चे को गोद में लेकर दुलार से कहती हैं - "बिलकुल चांद का टुकड़ा है, फूल सा कोमल है, हीरे की कनी है कहं उसको किसी की बुरी नजर न लग जाये और माँ या अन्य संरक्षक को उसकी रक्षा के लिये अनेकों हिदायतें दी जाती हैं - इसे ऐसे सम्हाल कर रखना, ऐसे दूध पिलाना, ऐसे सुलाना, इस वस्तु से बचाना, अमुक की गोद में न देना आदि । वास्तव में यह सब वात्सल्य की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है । शिशु के अंग-प्रत्यंग को देख कर, छू कर उसका भी विश्लेषण होता जैसे - "नाक तो माँ में पड़ी है आंखें पिता की है" रंग अपनी दादी का पाया है" आदि ।

६.८ मंगलकामनायें और आशीर्वाद :-

उपर्युक्त रूप अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के हैं । प्रत्यक्ष रूप में आशीर्वाद और शुभ कामनाओं के माध्यम से वात्सल्य की व्यंजना होती है जैसे - युग युग जियो, चिरायु हो, लम्बी उम्र मिले, जीते रहो। शुभ-कामनायें तो अनन्त होती हैं । व्यक्ति के साथ साथ इनके रूप में परिवर्तन होता जाता है - बड़े आदमी बनो, खूब नाम कमाओ, माँ बाप का नाम रौशन करो, तुम्हें हर क्षेत्र में सफलता मिले । इसके अतिरिक्त शुभ अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों एवं सोहरों में भी शुभकामनायें रहती हैं, इन गीतों के माध्यम से शिशु का लेकर सुन्दर कल्पनायें की जाती हैं।जैसे निम्न उदाहरणों में -

- मेरा लाल पूत बनजारा, बाबुल का दुलारा
तेरे गले सोने की माला तू ओढ़े शाल दुशाला ।

-आजा री निदियां आजा, तेरी लाल जोहे बाट
सोने के हैं पाये जिसके रूपे कीहै खाट
मखमल का है लाल बिछौना, तकिया मालरदार
सवा लाख है मोती जिसमें लटके लाल हजार
चार बहू आवें बाले की, दो गोरी दो काली
दो झुलावें, दो खिलावें ले सोने की थाली

शिशु के भविष्य को लेकर माँ जो सपने देखती है उनकी भी अभिव्यक्ति इन गीतों में होती है । - मा सोचती है इसका लाल बड़ा होकर परदेश जायेगा । वहां से खूब धन कमा कर लौटेगा , वह इतना पराक्रमी होगा कि लोग उसके नाम पर सिर झुकायेगें । फिर बेटे की शादी होगी चांद सी बहू आयेगी और माँ छोटे से पोते को खिलायेगी आदि । इन शुभकामनाओं और आशीर्वादों का रूप समय एवं परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। किसी समय बड़े बूढ़े आशीर्वाद देते थे - तलवार के धनी हो , पराक्रमी हो, युद्ध में सदा विजयी रहो, बेटे पोतों से घर भरा रहे आदि किन्तु अब इस प्रकार के आशीर्वाद अर्थहीन प्रतीत होते है। अब उनका रूप कुछ इस प्रकार हो गया है - खूब पढ़ो ,लिखो , अच्छी सी नौकरी मिले, जीवन में हर क्षेत्र मेंसफलता मिले , छोटा सा सुखी परिवार हो आदि ।

लगभग इन्हीं आशीर्वादों की आवृत्ति किंचित परिवर्तित रूप में छठी, बरही, मुण्डन,अन्नप्राशन , कर्णछेदन, यज्ञोपवीत संस्कार आदि अवसरों पर होती है ।

बच्चा धीरे धीरे बड़ा होता जाता है। माँ उसे स्नेह और दुलार से पालती है । दैनिक क्रियाकलापों में भी माँ का वात्सल्य विभिन्न गीतों और कथनों के माध्यम से व्यंजित होता है। बच्चा दूध नहीं पीता, ठिनकता है, रोता है माँ उसे भांति भांति से पुचकारकर दूध पिलाती है खाना खिलाती है - खाना खोलो।

मेरे लाल तुम जल्दी से बड़े हो जाओगे । दूध पीने से तुम्हारी बुद्धि बढ़ेगी । थोड़ा सा और खालो । अच्छा बस एक कौर और खा लो , लो मैंने आंखें बन्द कर ली देखें कौन आकर मेरे हाथों का दही- भात खाता है , अरे कौन खा गया , आदि कह कर खेल के माध्यम से वह बच्चे को किसी तरह थोड़ा और अधिक खिलाना चाहती है। भोजन कराते समय भी वह गीत गाती है जैसे

-- चन्दा मामा आरे आवा, पारे आवा
नदिया किनारे आवा
चांदी की कटोरिया में दूधभात ले आवा
भैया के मुंह में घुटुक

-- चन्दा मामा दूर के
पुए पकाये गुड़ के
आप खायें थाली में
मुन्ने को दे प्याली में

ये गीत बाल- बुद्धि के स्तर के ही होते है । इसी प्रकार बच्चे को सुलाते समय जो लोरियां गायी जाती उनमें भी बच्चे के बुद्धि के अनुसार ही भाव रहता है । यद्यपि ये लोरियां प्राय: अर्थहीन होती है तथापि मां मीठे स्वर में इन्हें गुनगुना कर हृदय का स्नेह इनके माध्यम से व्यक्त कर देती है ।

-- मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुलावै
तू काहे न वेगहि आवै तो को कान्ह बुलावै

-- आजा री निंदरिया तू आजा मुन्ने को सुलाजा

लोरियों में भी आशीर्वाद , शुभकामनायें, और सुन्दर कल्पनायें रहती है। प्राय: इनका रूप एक ही रहता है, किन्तु शाब्दिक भिन्नता रहती है। सभी देश एवं जाति में यह वात्सल्याभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है

सभ्य तथा असभ्य सभी जातियों की माताएं लोरियां गा गा कर आनन्द प्राप्त करती है । वे यह नहीं देखती कि उनकी आवाज सुरीली है या नहीं उन्हें तो अपने शिशुओं को रिझाने से ही मतलब रहता है। झूला झुलाती हुईया शिशु की पीठ पर थपकियां देती हुई जब वे लोरी गाती है तब उनकी कभी, खुरदुरी वाणी से भी अलौकिक मिठास आ जाती है। (पृष्ठ 2[illegible], बेला फूले आधी रात / देवेन्द्र सत्यार्थी)

प्रातःकाल बच्चे को उठाते समय मां जिन वाक्यों को कहती है उनमें भी वात्सल्य व्यक्त होता है। वह उसे इस प्रकार से उठाती है कि कहीं नींद टूटने के कारण वह रोने न लगे जैसे - उठो लाल देखो गली मोहल्ले के सब बच्चे तुम्हें खेलने के लिये बुला रहे हैं, शीघ्र उठो देखो बाहर गली में तमाशा हो रहा है। उठो उठो आज हम लोगों को घूमने जाना है, आंखें खोलो देखो आज मैंने तुम्हारे लिये खीर बनाई है, आदि।

इस पर भी बालक यदि नहीं उठता तो मां उसे धमकाती है - " अब उठ जाओ बेटा देखो कितनी धूप निकल आयी है इतनी देर सोने से स्वास्थ्य खराब हो जायेगा।" और अब भी यदि बालक सोया रहता है तो मां हार कर धमकाती है - " ठीक है, मत उठो, आज तुमको घुमाने नहीं ले जायेंगे तू तो बहुत परेशान करता है आज पिता जी से तेरी शिकायत करूंगी।" किन्तु यह क्रोध वास्तविक नहीं रहता, इससे भी स्नेह ही व्यंजित होता है।

बच्चे को जगाने के लिये भी मां गीत गाती है। वास्तव में वात्सल्य ऐसे कोमल भाव की व्यंजना में संगीत बहुत समर्थ माध्यम है। साहित्य में भी इसके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं -

जागो जागो हो गोपाल
नाहिन इतो सोइयत सुनि सुत प्रात समय सुचि काल
फिरि फिरि जात निरखि मुख छिन छिन सब गोपिन के बाल
बिन बिकसे कल कमल कोष तें मनु मधुकर की माल
जो तुम मोहि न पत्याहु सूर प्रभु सुन्दर स्याम तमाल
तो तुमहीं देखो आपुन तजि निद्रा नैन बिसाल। - सूरदास

दिन भर मां और शिशु के मध्य चलने वाला सम्पूर्ण वार्तालाप ही वात्सल्य की मार्मिक अभिव्यक्ति है। शिशु के क्रियाकलापों को देखकर मां सुख में डूब जाती है और उसके मुंह से बरबस कुछ शब्द निकल पड़ते हैं। ये प्रायः सम्बोधन के रूप में रहते हैं जैसे और मेरे लाल, अरे मेरे सोना रे, मेरे छौना रे, राजा मेरी लोनचिरैया आदि। इसके अतिरिक्त तोतली वाणी में शिशु द्वारा पूछे गये छोटे छोटे प्रश्न एवं मां द्वारा तोतली वाणी में दिया गया उनका सरल सुबोध उत्तर हृदय के वात्सल्य की व्यंजना करता है।

६.६ गर्व और हर्ष :-

वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति के साथ साथ मातृत्वसुलभ गर्व और हर्ष दोनों ही मिश्रित होकर स्वाभाविक रूप से जुड़ा रहता है। वात्सल्य का हर्षपूर्ण गर्व या गर्वपूर्ण हर्ष अपने आप में पूर्णत: सात्विक भाव है। कभी तो इसकी प्रत्यक्ष और स्पष्ट कथन के रूप में वाचिक अभिव्यक्ति होती है जैसे तू मुझ निर्धन का धन है, मेरा लाल जवाहर है, मेरा असली मोती है, मेरा खजाना है, आदि। एक लोकगीत में मां यही कहती है -

-- तू मेरे देवताओं का दिया हुआ धन है
तू मेरा उधार लिया हुआ धन है
तू मेरा उधार लिया हुआ धन है
जब तूने जन्म लिया है, अमर होकर जीवन धारण कर
मैं दौड़ती हुई महादेव को फूल चढ़ाने गयी
महादेव जी प्रसन्न हो गये और तुझ सी अनमोल वस्तु मुझे मिल गयी
तू मेरा नमद धन है
तू मेरा सुगन्धित फूल है
जब तूने जन्म लिया है तो अमर होकर जीवन धारण कर

शिशु के विकास के साथ साथ उसके खेल एवं रूप सौन्दर्य का भी विकास होता है, उसकी बढ़ती हुई चंचलता एवं सौन्दर्य को परखकर मां रीझकर गर्व से कह देती है - यह मेरी गोदी की शोभा सुख सुहाग की लाली
शाही शान भिखारिन की है मनोकामना मतवाली ।।
(पृष्ठ ५७, सुभद्रा कुमारी चौहान 'मुकुल')

यह छोटा सा छौना,
कितना उज्ज्वल कितना कोमल क्या ही मधुर सलोना
(पृष्ठ ५७ 'यशोधरा' मैथलीशरण गुप्त)

छोटे बालकों में यह प्रवृत्ति रहती है कि वे किसी किसी कार्य को करने पर अथवा किसी समस्या को अपने ढंग से सुलझा देने पर वह बहुत प्रसन्न होता है

और प्रशंसा के लिये मां की ओर देखता है। जब छोटा बच्चा एक दो कदम चलना सीख जाता है तो मां हर्षित होकर कहती है- अरे मुन्ना तो चलने लगा, बड़ा बहादुर है, वाह वाह, अरे अरे , शाबाश आदि और शिशु उत्साहित होकर एक पग और आगे रखता है। इसी प्रयास में वह गिर भी पड़ता है मां तुरन्त उसे गोद में उठा लेती है और रोये न इसलिये बहला भी देती है। कोई बात नही मेरा लाल तो बहुत बहादुर है, अरे देखो ,तुम्हारे गिरने से चींटी मर गयी, देखो चींटी का सर फूट गया, जमीन हिल गयी। शिशु इन बातों में अपनी चोट भूल जाता है ।

शिशु की क्रीड़ाओं को देखकर हृदय में जो आनन्द का सागर उमड़ता है उसको वह स्वयं नही सम्भाल पाती तो पति या किसी अन्य को बुला कर इस आनन्द भागी बनाना चाहती है। देखिये आज गुड्डा चलने लगा, आज वह अपने आप सीढ़ियों पर चढ़ गया ।

-- सुत मुख देखि जसोदा फूली
हरषित देख दूध की दंतुली , प्रेम मगन तन की सुधि भूली ।
बाहिर ते तब नन्द बुलाए, देखौ धौं सुन्दर सुखदायी
तनक तनक सी दूध दंतुलिया देखौ नैन सफल करौ आई

---- सूर

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मां की दृष्टि में अपना बच्चा सबसे सुन्दर, सबसे सुशील और सबसे विनम्र होता है। कुरूप बच्चे को देखकर भी मां कहती है कितना सुन्दर है मेरा लाल कहीं इसे किसी की नजर न लगे , कहीं इसे मेरी ही नजर न लग जाये ` वह सोचती है - मेराबेटा तो बहुत भोला है, वह कोई शरारत कैसे कर सकता है । सूरदास ने यशोदा की वात्सल्याभिव्यक्ति में इस भाव का बड़ा सुन्दर और स्वाभाविक चित्र खींचा है ।

मेरो गोपाल तनक सौ कहा करि जाने दधि की चोरी
हाथ नचावत आवत ग्वालिनि जीभ करै किन थोरी
यही नहीं वे ग्वालिनों पर क्रोधित भी हो उठती है ।

-- यह सुनि माइ जसौदा ग्वालिनी गाली देत रिसाई
मैं पठवति अपनेलरिका को आवै मन बहराई
सूर स्याम मेरौ अति बालक मारत ताहि रिगाई ।

अन्त में विवश होकर उन्हें उनके कथनों पर विश्वास करना पड़ता है किन्तु उन्हें रोता देखकर करुणा से द्रवित हो जाती है ।

-- जननी के खीभै हरि रोये , झूठाहि मोहि लगावत ग्वारी ।
सूर स्याम मुख पोछि यशोदा कहत सबै युवती है लरी ।

माँ का यह वात्सल्य गर्व अनेक रूपों में सामने आता है जैसे जैसे सन्तान बड़ी होती जाती है इस गर्व की अभिव्यक्ति स्पष्ट होती जाती है --

-- सत्यवती : (विचित्रवीर्य की आत्मभर्त्सना के उत्तर में) मेरे लाल ऐसा न कहो । विधाता ने संसार का सुख देखने के लिये मुझे दो आखें दी थी । एक वां फोड़ दी तो क्या पलाश को अपने निर्गन्ध पुष्प पर गर्व नहीं होता है ।

-- इला (भावावेश में , पिता जी ।(डाक्टर की छाती पर अपना सिर टेक देती है)

डाक्टर : (उसका कन्धा पैत्रिक स्नेह से थपथपाते हुए) मैं कितना भाग्यशाली हूं कि अपना सब कुछ खोकर भी इतने बड़े, इतने प्यारे और इतने काबिल बच्चे को पा गया ।

(पृष्ठ २१ ` उतार- चढ़ाव ` रेवतीसरन शर्मा)

वात्सल्य जन्य गर्व की अभिव्यक्ति कुछ अवसरों पर अधिक स्पष्ट होती है । जब सन्तान द्वारा कोई कठिन एवं महान कार्य किया जाता है और उसमें सफलता मिलती है तो माता पिता का वात्सल्य अनायास व्यक्त हो जाता है- आखिर है तो मेरा बेटा, मेरी ही कोख से तो जन्मा है, मेरा ही दूध पीकर तो इसका यह शरीर बना है। सन्तान के प्रति भी कुछ वाक्य कहे जाते है जैसे - मैं बलि जाऊं मैं बलैया लूं , मैं न्यौछावर जाऊं । आज तुझे देखकर मेरी छाती गज भर की हो गयी । तुझे देखकरआंखे तृप्त हो गईं , आंखे ठण्डी हो गईं तेरी सफलता

देख कर कलेजा दो हाथ का हो गया , मैं तर गयी मेरी कोख धन्य हुई , आज तुमने मेरा सर ऊंचा कर दिया कुल का नाम ऊंचा कर दिया, पूर्वजों का नाम उज्जवल कर दिया ।

वात्सल्य में हर्ष एवं गर्व के उपभावों की मिश्रित अभिव्यक्ति अधिक रहती है कभी कभी हर्ष की आल्हाद या पुलक के रूप में स्वतन्त्र अभिव्यक्ति होती है। प्राय: बच्चों को खिलाते - दुलारते समय जो अर्थहीन किन्तु छन्दबद्ध कवितायें कही जाती है उनके माध्यम से हर्ष की व्यंजना होती है जैसे -

-- उड़ जा री चिड़िया , उड़ जा रे काग
मुन्नी खेले भाइयों के साथ

-- सुन री मुन्नी छोरी
मैं तुझे दूं गन्ने की पोरी

-- मुन्नी की मौसी आयी है
दूध मलाई लाई है ।

कभी स्नेह से भर कर मां तोतली वाणी में ही गा उठती है -

-- तक्ली तक्ली तक्ली
बिटिया मेरी बड़ी दुलारी
तूने क्यों कद पकड़ी
तक्ली तक्ली तक्ली ।

(पृष्ठ ११२, 'चन्दामामा', आरसी)

शिशु पर मुग्ध होकर मां कह उठती है
मेरे श्याम सलोने की है, मधु से मीठी बोली
कुटिल अलक वाले की है आकृति क्या भोली भाली
(पृष्ठ १२ द्वापर)

-- किलक और मैं लेऊं निछाई
इन दांतों पर मोती वारूं ।
(पृष्ठ ५४ पृथ्वी पुत्र)

सन्तान के कुछ बड़े होने पर यह ' हर्ष ' आशा का रूप ले लेता है जैसे- तू ही तो मेरे बुढ़ापे की लाठी है, मेरी अन्धी आँखों की रोशनी है, मेरा जीवन धन है, मेरा अंचल धन है आदि । शुभ अवसरों पर दिये जाने वाले आशीर्वाद इस हर्ष की ही अभिव्यक्ति है। जैसे - युग युग जिओ , जीते रहो , खुश रहो , फूलो फलो , ईश्वर तुम्हें लम्बी आयु दें आदि । स्त्रियों द्वारा कुछ अन्य रूप भी प्रयुक्त होते हैं जैसे ' दूधो नहाओ पूतो फलो , बूढ़ सुहागन हो, सौभाग्यवती हो कोख हरी भरी रहे । जोड़ी बनी रहे । बलायें लूं आदि ।

६.१० वात्सल्य एवं शोक :-

प्रेम की भाँति ही वात्सल्य का सुखद एवं दु:खद दो पक्ष है। वात्सल्य का दु:खद पक्ष प्रेम के वियोग पक्ष से कुछ भिन्न है। वियोग में आश्रय एवं आलम्बन के मध्य कुछ दूरी का होना आवश्यक है चाहे वह दूरी शारीरिक हो अथवा मानसिक , किन्तु वात्सल्य में बिल्कुल साथ रहने पर भी आलम्बन का तनिक सा कष्ट या पीड़ा आश्रय को कहीं अधिक दु:ख देता है। बच्चे के जरा सी चोट लग जाने पर माँ चिन्तित हो जाती है " कितनी चोट लग गयी मेरे लाल को च--च सारा हाथ सूज आया, जिसने मारा है उसके हाथ टूट जाय ।" बच्चे पर जरा सा संकट आने पर ही माँ की व्याकुलता देखने योग्य होती है - मेरे बेटे की सब रोग बलायें मुझे लग जाय वह स्वस्थ हो जाये , मेरी उम्र तुझे लगे मेरे लाल, आह कितना दुबला हो गया मेरा बेटा, मुह सूख गया है ।

वह शिशु को दु:खित नहीं देख सकती । बच्चे के हर दु:ख का निवारण करके वह उसके ऊपर ढाल की भाँति छा जाना चाहती है ।

-- शैब्या :(आँखों में आंसू भर कर) पुत्र ! चन्द्रकुल भूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर भी तू क्यों ऐसे कातर वचन कह रहा है, मैं अभी जीती हूं (रोती है)

(पुस्तक :- ' सत्यहरिश्चन्द्र ' भारतेन्दु ग्रन्थावली)

संतान का रोना माता पिता से नहीं देखा जाता है उसे हर मूल्य पर हंसते देखना चाहते हैं -

-- लक्ष्मीदास : (अचला की ओर देखते हुये और भी घबड़ा कर) क्या बात है बेटा तू रो रही है ------- क्या बात है -----क्या बात है ---- क्या बात है (अचला के सिर पर हाथ फेरते हैं)
बेटा क्या हुआ है ? ------- क्या हुआ है ? बताओ ---- बताओ बेटा मेरा कलेजा मुंह को आ रहा है । मेरा दम घुट रहा है। (एकाएक अचला की ओर देखते हुए) बेटा मैं दुःखी नहीं देख सकता । हरगिज नहीं देख सकता । तुम्हें मेरे प्राणों की कसम अगर जो तुम इसका कारण न बताओगी । -------
तेरे एक क्षण के सुख के लिये मेरे प्राण निछावर हैं बेटी (आंसू बहते हैं)
(पृष्ठ २६ ' गरीबी - अमीरी ' सेठ गोविन्द दास)

कुछ विशेष अवसरों पर वात्सल्य जन्य शोक की अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट होती है । जब सन्तान कुछ समय समय के लिये मां से अलग होने लगती है तो माता पिता विशेष चिन्तित हो उठते हैं । ऐसे अवसरों पर सन्तान एवं उसके संरक्षक को दी जाने वाली हिदायतों में स्नेह झलकता है -

-- बेटा अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना, ऐसे खाना , ऐसे सोना, ठण्ड धूप से बचना, पत्र शीघ्र लिखना आदि । संरक्षक से प्रार्थना और अनुरोध रहता है - इसे अच्छी तरह रखियेगा, इसका ख्याल रखियेगा, अभी बहुत नादान है बहुत अल्हड़ है, बाहरी दुनिया के बारे में बिलकुल नहीं जानता , मैंने इसे कभी इसे अपने से क्षण भर को अलग नहीं किया, यह बहुत संकोची है, मैं अपना हृदय आपको सौंप रहा हूं , अपने कलेजे का टुकड़ा आपको सौंप रहा हूं , अपनी दृष्टि आपको सौंप रहा हूं । इसे मैंने बड़े प्यार दुलार से पाला है। हर छोटी बड़ी आवश्यकता पूरी की है, बड़े भावों से पाला है इसे अपने बच्चे के समान पाला है आदि । बेटी की विदाई के समय भी लगभग ऐसे ही वाक्यों का प्रयोग होता है । सूर के वात्सल्य वर्णन में यशोदा का देवकी को इसी अभिप्राय से दिया गया यह संदेश कितना मार्मिक है ।

संदेसौ देवकी सों कहियौ ।
हौं तौ धाइ तिहौर सुत की माया करत ही रहियौ ।
जदपि टैव तुम जानति उनकी तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतैहिं माखन रोटी भावै ।
उबटन तेल और तातौ जल देखत हीं भजि जातै
जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करिकै न्हातै ।
सुर-पथिक सुनि मोहि रैनि-दिन बढ़्यौ रहत उर सोच ।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन ह्वै है करत संकोच ।।   सूर

धीर है लाल मेरा
होती इच्छा अमित उसको मांगने में सदा थी
जैसे ले के सरुचि सुत को मैं खिलाती
हा ! वैसे ही अब नित खिला कौन सकेगी ?

(पृष्ठ १२३ `प्रिय-प्रवास`)

इसके अतिरिक्त सन्तान के नेत्रों से ओझल रहने पर माता पिता सोचते हैं - पता नहीं कहां होगा, कैसे होगा । कैसे भोजन करता होगा, अकेले कैसे रहता होगा घबड़ाता तो नहीं होगा । रात को कहीं डरता न हो । विशेष पर्व एवं त्यौहारों पर सन्तान की स्मृति बहुत आती है - मातायें प्राय: कहती हैं - पिछली बार मेरा लाल यहीं था, आज सब कुछ है किन्तु वही इतनी दूर है । मुझे उसके बिना सारा उत्सव और पकवान फीकी फीकी लग रही है । मैं किसके लिये त्योहार मनाऊं जब मेरा बच्चा ही मुझसे दूर है मेरा तो कोई पकवान बनाने में मन नहीं लग रहा है उसे गुझिया कितनी पसन्द थी । मुझसे झगड़ झगड़ कर बनवाता था, आज किसके लिये मैं यह सब बनाऊं कौन उसे खायेगा ?

मेरे कुंवर कान्ह बिनु सब कछु वैसेहि धरयौ रहै ।
को उठि प्रातकाल है माखन को कर नेति गहै ।
सूनै भवन जसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै ।
दिन उठि घरसवैरहु ही ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै ।

जो ब्रज में आनंद हुतो मुनि मनसाहू न गहै ।
सूरदास स्वामी बिनु गोकुल कौड़ी हू न लहै ।। - सूर

और जब कुछ अन्तराल के बाद सन्तान माँ-बाप से मिलती है तो हर्ष के आवेश में वे अनेक वाक्य कहते हैं । यह अन्तराल आयु के आधार पर महत्व रखता है । बहुत छोटा बच्चा यदि कुछ ही समय बाद माँ से मिलता है तो माँ पुलकित होकर कहती है - कहाँ बिछुड़ गया था मेरा लाल, कहाँ चला गया था मेरा बच्चा, तू कहाँ चला गया था मुन्ने, मेरा तो मन ही नहीं लग रहा था । मुझे अकेले छोड़ कर कहाँ चला गया था । आदि

यदि अन्तराल की अवधि है तो और सन्तान कुछ बड़ी हो तो इस हर्ष की वाचिक अभिव्यक्ति कुछ भिन्न होती है वाक्य कुछ इस प्रकार के होते हैं - आ तुझे कलेजे से लगा लूं, छाती ठण्डी कर लूं, कलेजे से लगा कर छाती ठण्डी कर लूं । नेत्रों की प्यास बुझा लूं, नेत्र ठण्डे कर लूं, गले से लगा कर मन शान्त कर लूं, मैं बलायें ले लूं ।

..... अधीर होकर मैंने दौड़ कर रमैया को छाती से लगा लिया और उसका मुख चूम कर कहा कि "लाल तुम मेरे खिलौने हो । "

(पृष्ठ ३८ "अन्तर्नाद" वियोगी हरि)

माँ सन्तान से पूछती है - जाने कहाँ कहाँ भटक के आ रहा है देखो तो कितना मुख सूख गया है । कुछ खाया है या नहीं चलो कुछ खा लो, फिर बातें करना, आदि ।

सन्तान चाहे कितनी बड़ी हो जाये माता पिता के आगे वह सदा छोटी ही रहती है । लड़की चाहे कितनी ही बड़ी हो जाये माँ यही कहती है "अभी तो मेरी बेटी बहुत छोटी है, वह गृहस्थी का भार कैसे उठा सकती है, वह इतना काम कैसे सम्हाल सकती है ? पुत्र भी चाहे प्रौढ़ हो जाये माँ के आगे सदैव छोटा बच्चा ही बना रहता है ।

- पार्वती : फिर भी जाने तूने कैसे इतना लिख लिया । हाथ दु:ख गये होंगे पुत्र । (उनके हाथ सहलाती है) हाँ फिर क्या हुआ ।

(पृष्ठ १२७ 'कुमार सम्भव' भट्ट)

कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत उठाये जाने पर यशोदा द्वारा भी इसी प्रकार की आशंका व्यक्त की गयी थी ।

गिरिवर कैसे लियौ उठाई
कौमल कर दाबत महतारी, यह कहि लेत बलाई ।

कृष्ण गाय चराने जाते हैं तो अन्य ग्वालबाल उन्हें तंग करते हैं । यशोदा का मातृ हृदय पुत्र का यह जरा सा कष्ट देख कर भी क्रोध से भर जाता है -

- यह सुनि माई जसोदा ग्वालिनि गारी देति रिसाइ
मैं पठवति अपने लरिका कौं आवै मन बहराइ
सूर स्याम मेरौ अति बालक मारत ताहि रिगाइ ।। - सूर

'मेरौ अति बालक' में हृदय का सम्पूर्ण वात्सल्य व्यंजित हो उठता है । महाराजा दशरथ भी विश्वामित्र के हाथ में राम-लक्ष्मण को सौंपने से पूर्व यही सोच रहे थे -

कह निसिचर अति घोर कठोरा, कहं सुन्दर सुत परम किसोरा ।।
(१।२०८। बालकाण्ड)

यदि दुर्भाग्यवश कहीं सन्तान की मृत्यु हो जाती है तो वात्सल्य की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति होती है । मृत्यु पर विशेष अवसरों एवं त्योहारों पर सन्तान को याद करके जब माँ विलाप करती है उनके माध्यम से हृदय का उत्कट स्नेह ही व्यक्त होता है - मेरा संसार सूना हो गया, मेरी दुनिया उजड़ गयी, मेरा जीवन भार हो गया, मेरी आँखों की रोशनी छिन गयी, अब मुझे माँ कह कर कौन बुलायेगा कौन मेरा आँचल पकड़ कर कौन दूध मांगेगा, मैं किसके चन्द्रमुख को देख देख कर जिऊँगी । कौन मुझसे कहानियाँ सुनाने को कहेगा । मैं किसके लिये नित्य नये नये व्यंजन बनाऊँगी आदि ।

- शैव्या (रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किसने लूट लिया । हाय मेरी बोलती चिड़िया कहां उड़ गयी|हाय अब मैं किसका मुख देख कर जिऊंगी । हाय मुझे ऐसे अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया । हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किसने तोड़ डाला x x x x x हाय लाल । हाय रे मेरी आंखों के उजियाले को कौन ले गया । हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहां उड़ गया ।

(पृष्ठ ११३-११४ "सत्य हरिश्चन्द्र " भारतेन्दु ग्रन्थावली)

सन्तान की मृत्यु के बाद भी मां का हृदय इस कटु सत्य पर विश्वास करने को तैयार नहीं होता । वह पागल हो जाती है और सबसे पूछती है, बताओ मेरा बेटा कहां है तुम लोगों ने मेरे लाल को कहां छिपा लिया है, तुम झूठ कहते हो, वह नहीं मरा है । इस प्रकार से उन्माद की स्थिति में वाचिक अभिव्यक्ति प्रलाप के रूप में होती है

- मेरी स्त्री ने कहा - "कहां रख आये ? इतनी सर्दी में उस गीली मिट्टी में ? अकल तो नहीं मारी गई है जो बबुआ को सर्दी लग जाये तो । ये गद्दे और ये रजाई तो यहां रक्खी हुई है । x x x x x ठहरो मैं लिये आती हूं । " वह पागलों की तरह दौड़ी ।

(शोक " "अम्बरस्त्रल ", पृष्ठ ६८, चतुर सेन शास्त्री)

६.११ वात्सल्य और क्रोध :-

वात्सल्य और क्रोध परस्पर बिल्कुल विपरीत प्रकृति के भाव हैं । किन्तु क्रोध प्राय: वात्सल्य के उपभाव के रूप में साथ साथ व्यंजित होता है । क्रोध का यह रूप उग्र एवं हानिकारक न होकर बहुत ही मधुर और शुभ होता है । वात्सल्य में क्रोध आलम्बन को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से नहीं किया जाता वरन् हित की दृष्टि से किया जाता है । इसीलिए गर्व की भांति वह भी सुखद और पुनीत हो जाता है ।

बच्चा काफी बड़ा होने के बाद भी मां का दूध पीने की ज़िद करता है, मां उसे मना करती है मां के इस व्यवहार में भी शिशु की मंगल कामना रहती है - दूध पीने से तुम्हारे दांत खराब हो जायेंगे, लोग क्या कहेंगे कि,..कि इतना बड़ा हो गया अभी मां का दूध पीता है । इस पर भी बालक नहीं मानता तो वह भय दिखाती

है - आज बाबा जी तुम्हें अपनी कोठी में बन्द कर के ले जायगें, दूध पीने वाले बच्चों के होंठ काले हो जाते हैं तुम्हारे भी काले हो जायेंगे । इसके बाद धमकी की आवश्यकता पड़ती है - आने दो पिता जी को, आज अवश्य तुम्हारी शिकायत करूंगी । इस प्रकार प्रत्येक दण्ड का विधान भविष्य के लिये होता है, वर्तमान में मां स्वयं कोई दण्ड नहीं देती । इसका अर्थ यह नहीं कि वह दण्ड देने में असमर्थ है वरन् वह देना नहीं चाहती ।

स्नेह और वात्सल्य की भाषागत अभिव्यक्ति में रोष कभी कभी स्वाभाविक रूप से मिश्रित रहता है । स्नेह के आलम्बन पर व्यक्ति का सहज अधिकार रहता है । इस अधिकार के साथ व्यक्त होकर वात्सल्य और अधिक मुखर हो उठता है । "प्यार भरी झिड़की" "स्नेह पूर्ण भर्त्सना" आदि शैलियां इसे ही व्यक्त करती हैं ।

- सुशीला : (रुंधे कण्ठ से सभ्रम) हाय राम कैसी बातें करता है । मेरे तेरे दुश्मन । चल आ खाना खा ।

(पृष्ठ ४६ "आंचल और आंसू" विष्णु प्रभाकर)

इस अभिव्यक्ति में सन्दर्भ और परिस्थिति का ज्ञान और कंठस्वर के स्वरूप की पहचान दोनों ही आवश्यक है अन्यथा कभी कभी मात्र भर्त्सना प्रतीत होगी । "मरे तेरे दुश्मन", "तेरे दुश्मनों का भाग्य फूटे" आदि वाक्य कभी कभी इस भाव की व्यंजना कर देते हैं ।

- पागल ! तुम दोनों पागल हो ! भवन भी पागल है और तुम भी, कभी दीदी के यहां भटकना नहीं और दीदी को पकड़े रखना ।

("धूप," श्री प्रभा शास्त्री ", "नवनीत" फरवरी १९६६)

- "अरे मंगलू !" ताऊ किरपा ने सस्नेह पुकारा - "आज कैसे रास्ता भूल गया रे ?"

. . . . . . "कुशल क्षेम तो छिटेना मुझसे ?" ताऊ ने सभी सम्बन्धियों की कुशल में फटकारा बताई ।

(पृष्ठ ४१ "मीठा बालम" नानक सिंह)

- "सर्दुल भाई " चौथे दिन उसने विनय की "मुझे डेरे पर पहुंचा दो ।"

"और ।" सुर्दुल सरोष बोला - इस हालत में ? . . . . . . पागल कहीं का ! निकटवर्ती जैसे दावे से सर्दुल बोला "मुझे क्या तेरी खातिर चक्की पीसनी पड़ रही है यहां पर ?

(पृष्ठ ५५ नीला बालन्द)

"का कहताड़े बहू ।" बुढ़िया स्नेह मिश्रित रोष में बोली "वरे सिन्दूर ताईं लगवाईंहाउ ? हे राम सोहागन होय के सिन्दूर नाइ लगाईं करवाड़े

(पृष्ठ २३६ "नीला बालन्द " नानक सिंह)

- सन्ध्या : (स्नेह मिश्रित उपालम्भ के साथ) क्यों तुम्हें घर आने की बड़ी उतावली रहती है न ? मुनिया को कहां छोड़ आया ?

("ज्योत्स्ना " सुमित्रानन्दन पंत)

मां क्रोध के आवेश में भी शिशु को दुर्वचन नहीं कहती और न अभिशाप ही देती है । यदि पुत्र दुराचारी और नालायक हो तब भी मां यही कहती है - मुझ पापिन की कोख से तू जन्मा है, मेरी कोख में आग लगे, तुझे जन्मते ही मैंने क्यों नहीं मार दिया, मेरे पूर्वजन्मों का फल है कि तू ऐसा हुआ । यह सब देखने से पहले ही मैं मर जाती तो अच्छा था । मुझे यह दिन देखने के पहले ही उठा ले भगवान । तूने मेरी कोख को लजाया । आदि ।

यदि कभी मां सन्तान पर क्रोध भी करती है अथवा आवेश में उसे मार बैठती है तो बाद में उसके लिये पश्चाताप करती है - मेरे मुंह में खाक,मैंने उसे कितने कठोर वचन कहे, मुझे क्या हो गया, मैं कितनी निष्ठुर हूं उस बिचारे को इतना डांट दिया कैसा सकपका गया था । टुकर टुकर मुंह देख रहा था । मुझ निगोड़ी को क्या हो गया था, मेरे हाथ टूट जायें, मैंने फूल से बच्चे पर हाथ उठाया । मेरी जीभ कट जावे,मैंने उसे ऐसे भिड़क दिया आदि । व्यथा के साथ साथ इस आत्मग्लानि या आत्म भर्त्सना का रूप परिलक्षित होता रहता है ।

६.१२ स्त्री एवं पुरुष की वात्सल्याभिव्यक्ति में अन्तर :-

पुरुष एवं स्त्रियों की वात्सल्याभिव्यक्ति में अन्तर रहता है। स्त्रियां अपेक्षाकृत कहीं अधिक मुखर होती हैं। वे सरलता से अपने हृदय का स्नेह व्यक्त कर देती हैं।

सन्तान जितनी छोटी रहती है वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्तिगत अन्तर उतना ही स्पष्ट रहता है। पुत्र की तोतली वाणी एवं भोली शरारतों पर रीझ कर पिता उसे गोद में उठा लेगा, चूम लेगा किन्तु माँ के समान 'मेरे लाल' 'मेरे राजा कह कर दुलार नहीं करेगा। भावावेश की मात्रा अधिक होने पर पिता कह सकता है - मैं, अपने बेटे को डाक्टर बनाऊंगा, डाक्टर' आज शाम को तेरे लिये मिठाई लाऊंगा और बोल क्या लेगा', किन्तु मैं सदके जाऊं, बलि जाऊं आदि नहीं कहेगा। पुरुषों के वात्सल्य प्रदर्शन की एक अन्य विशेषता भी है। वे प्राय: स्नेह से बच्चे को गाली देते हैं अथवा अपशब्द कहते हैं जैसे - अबे नालायक तू दूध क्यों नहीं पीता है, गधा कहीं का, अरे मूर्ख ऐसा नहीं कहते, बिल्कुल उल्लू का पट्ठा है आदि। प्रौढ़ावस्था तक आते आते पुरुषों की अभिव्यक्ति का यह रूप भी परिवर्तित होता जाता है। वास्तव में इस काल में वात्सल्य का स्रोत अन्तर्मुखी हो जाता है अत: अभिव्यक्ति विशेषकर वाचिक अभिव्यक्ति नहीं के बराबर होती है। किन्हीं विशेष अवसरों पर चिन्ता या गर्व के रूप में इसका प्रदर्शन हो जाता है जैसे - 'आखिर है तो मेरा ही बेटा'। फिर भी स्त्रियों की अपेक्षा कहीं संक्षिप्त और रूखी अभिव्यक्ति होती है। निम्न उद्धरण में यह स्पष्ट है

- बिरंचालाराम : (पुत्र को देख कर) आ गया रे। बड़ी खुशी हुई।

राधो की माँ : आज बेटे को देख कर छाती ठण्डी हो गई (उससे लिपट जाती है) मेरी आँखों के तारे।

(पृष्ठ १०० 'दस हजार' उदय शंकर भट्ट)

वृद्धावस्था आते आते एक सीमा तक स्त्री एवं पुरुष की वात्सल्याभिव्यक्ति में एकरूपता आ जाती है किन्तु पुरुष का स्वभावगत गाम्भीर्य फिर भी बना रहता है। आशीर्वादों में यह अन्तर स्पष्ट मिलता है। स्त्रियों के आशीर्वादों में गृहस्थी, सन्तान, आदि का उल्लेख अधिक रहता है।

६.१३ समाज के अन्य लोग तथा भावाभिव्यक्ति :-

माता पिता के अतिरिक्त आने जाने वाले मित्र और परिचित भी बच्चे के प्रति अपना स्नेह व्यक्त करते हैं। व्यक्ति अपनी ही सन्तान नहीं दूसरे की सन्तान के प्रति भी वात्सल्य प्रकट करता है किन्तु उसमें उतनी मार्मिकता एवं स्वाभाविकता नहीं होती। प्राय: प्रशंसा एवं आशीर्वाद के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है - कितना प्यारा बच्चा है बहुत होनहार लड़का है, देख कर तबियत प्रसन्न हो गई, बड़ी प्यारी लड़की, बड़ा सुशील बच्चा है भगवान इन्हें लम्बी आयु दे, ईश्वर इनकी रक्षा करे आदि। इसके अतिरिक्त बच्चे से प्यार से तुतला कर बोल कर, उसे इच्छित वस्तु देकर भी स्नेह प्रदर्शित करते हैं "इसे जरा देर को मेरी गोद में दे दीजिये, बड़ा प्यारा बच्चा है, कुछ देर मुझे खिलाने दीजिये," आदि भी वात्सल्य है किन्तु इसे मात्र आकर्षण कहना ठीक होगा। यदि बच्चा रोने लगे तो सारा स्नेह समाप्त हो जायेगा।

६.१४ आलम्बन की आयु एवं अभिव्यक्तिगत भिन्नता :-

बच्चे के विकास के साथ साथ अभिव्यक्ति का रूप भी परिवर्तित होता जाता है। बाल्यावस्था में वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति बालक की प्रशंसा वार्तालाप, प्रश्नोत्तर के माध्यम से अधिक स्पष्ट होती है, शेष स्नेहपूर्ण सम्बोधन आशीर्वाद आदि पहले वाले ही रहते हैं। बाल्यावस्था के बाद लड़के एवं लड़कियों के स्नेह प्रदर्शन में अन्तर आ जाता है पुत्र को लेकर माँ विभिन्न कल्पनायें करती हैं किन्तु पुत्री के लिये केवल मंगलकामना ही रहती है। साथ ही वात्सल्य में वेदना का मिश्रण भी हो जाता है कि जिस पुत्री को मैं इतने प्यार दुलार से पाल रही हूं पता नहीं उसका आगे का जीवन कैसा बीते। उसे कैसा घर मिले। पुत्रों को दिये जाने वाले आशीर्वाद भी कुछ भिन्न होते हैं जैसे - तुम्हें अच्छा घर-वर मिले, राजकुमार सा पति मिले, पति की प्यारी हो, राजरानी बनो, अपने घर में सुखी हो, फूलो फलो, सदा सुहागन हो, अक्षय सन्तान हो, तुम्हारी मांग चांद सितारों से भरी जाये, आदि। लड़कों द्वारा प्रणाम करने पर बड़े बूढ़े कहते हैं "बस्ती से बड़े हो जाओ" किन्तु लड़की द्वारा प्रणाम किये जाने पर शायद ही यह आशीर्वाद मिले।

इन वाचिक अभिव्यक्तियों के कुछ रूप तो परम्परागत होते हैं जैसे विभिन्न स्नेहपूर्ण सम्बोधन, आशीर्वाद, शुभकामनायें आदि और कुछ व्यक्तिगत और मौलिक होते हैं। इनमें नये नये सम्बोधन, बच्चे के रूप या शारीरिक विशेषताओं पर प्यार से दिये गये नाम, बच्चे की मनपसन्द वस्तुओं पर गीत और तुकबन्दी करना आदि है। बच्चे के दुलारने का ढंग भी प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न भिन्न होता है। लिंगगत-भिन्नता तो मिलती ही है; स्त्रियों में भी परस्पर वाचिक अभिव्यक्ति की भिन्नता स्पष्ट मिलती है। यह भिन्नता संस्कार, शिक्षा आदि के कारण होती है। ग्रामीण स्त्रियां वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति में अधिक मुखर होती हैं, सन्तान के प्रति स्नेह प्रदर्शन में संकोच नहीं करती। उनका यह प्रदर्शन स्वाभाविक, अकृत्रिम एवं मूलप्रवृत्त्यात्मक अभिव्यक्ति के अधिक निकट होता है। उनकी अपेक्षा शहर की शिक्षित स्त्रियां वात्सल्य की वाचिक अभिव्यक्ति में संकोच का अनुभव अधिक करती हैं। एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा - यदि किसी ग्रामीण स्त्री का पुत्र परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो जाता है तो वह भावविह्वल हो कर कहती है - अरे मेरे लाल तूने तो पुरखों को तार दिया, तू युग युग जिये बेटा, मेरी उम्र तुझको लगे, तू बड़ा आदमी बने (कलक्टर बनें - एक ग्रामीण प्रयोग, इसी प्रकार 'अफसर बनें' भी)। मैं बलिहारी जाऊं आदि किन्तु एक शिक्षित नवयुवती इस अवसर पर सम्भवत: कुछ इतना ही कहेगी - 'मेरा मुन्ना तो बड़ा राजा है, शाबाश बेटे, बोलो क्या पुरस्कार लोगे'। इसका यह अर्थ नहीं कि यहां वात्सल्य की मात्रा ग्रामीण स्त्री से तनिक भी कम होगी, वरन् अभिव्यक्ति की मुखरता कम होगी। ग्रामीण स्त्री की अभिव्यक्ति आगे भी हो सकती है - 'मेरा लाल तो पढ़ पढ़ कर आधा हो गया, कैसा छोटा सा मुख निकल आया है।' एक आधुनिका मां कहेगी - 'इधर तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत गिर गया है उस पर ध्यान दो।'

यदि बाप अथवा मां कम आयु के हुए तो भी वाचिक अभिव्यक्ति सीमित होगी। ऐसे में लज्जा का भाव अधिक रहता है, तथा वात्सल्य एकान्त में उमड़ता है। प्रथम सन्तान के प्रति भी मां बाप का वात्सल्य अन्तर्मुखी अधिक होता है वास्तव में वे प्रदर्शन के अभ्यस्त नहीं होते। इस आयु में अल्हड़ता भी अधिक होती है।

६.१५ सन्तान अथवा शिशु द्वारा वात्सल्याभिव्यक्ति :-

वात्सल्य भाव की अभिव्यक्ति का एक पक्ष और भी है। प्रेम की ही भाँति इसमें भी आलम्बन द्वारा आश्रय के प्रति वही भाव प्रकट किया जाता है। वात्सल्य भाव का सम्बन्ध ही वत्स से है अत: वत्स के अन्य भावों की अभिव्यक्ति भी आश्रय के अन्दर वात्सल्य जागृत करती है।

शिशु जब कुछ बड़ा हो जाता है तथा स्नेह प्रदर्शन एवं उसके प्रभाव को समझने लगता है तो वह स्वयं भी कभी कभी माँ या अन्य प्रिय व्यक्ति के प्रति इसका प्रदर्शन करता है।* बच्चे के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह माँ के प्रति ही वात्सल्याभिव्यक्ति करें जो भी उसे प्यार और सुरक्षा देगा वह उसी के प्रति अपने स्नेह का प्रदर्शन करने लगेगा चाहे वह व्यक्ति या पिता दादी नानी अथवा आया ही क्यों न हो।

प्रारम्भ में शिशु के वात्सल्य की अभिव्यक्ति शारीरिक होती है। शैशवावस्था के अन्त तक वह माँ तथा अन्य प्रियजनों को अपनी तोतली वाणी में सम्बोधित करने लगता है। कोई प्रिय व्यक्ति जब उससे बहुत देर बाद मिलता है तो वह 'अम्मा' 'अम्मा' या 'दादी-दादी' कह कर हुमकता हुआ उनकी गोद में जाने का यत्न करता है और इसी प्रकार अपना स्नेह व्यक्त करता है।

कुछ बड़ा होने पर बालक दिवास्वप्न देखता है वह विभिन्न कल्पनायें करता है और योजनायें बनाता है जैसे "मैं एक घोड़ा बनाऊंगा " उस पर बैठ कर परियों के देश जाऊंगा। ऐसी परिकल्पनाओं में वह अपने प्रिय व्यक्ति को भी सम्मिलित कर

---

* What he (child) actually feels we do not know but we can recognise his love responses when he feels happy and secure. These responses vary a smile may appear, he makes attempts at gurgling and cooking and finally in slightly older children the extension of the arms, which may be regarded as the forerunner of the embrace of adults.

Page 123, 'The Emotional Problem of Childhood".

स्वन-सी लेता है। यदि उससे पूछा जाय कि तुम किसे साथ ले जाओगे तो वह तुरन्त कहेगा "मां को"। यदि किसी अप्रिय व्यक्ति का नाम लेकर पूछा जाय तो वह तुरन्त "ना" कर देगा। बालमानस की इस प्रवृत्ति का वर्णन निम्नपंक्तियों में बहुत सुन्दर है -

मुझे बुलाते चन्दा मामा
माँ मामा घर जाऊंगा
और वहां से माँ मैं तेरे
लिये खिलौना लाऊंगा।

(पृष्ठ ५१४ 'आरसी' आरसी प्रसाद सिंह)

कुछ और बड़ा होने पर बच्चा मां या दादी से कहानियां सुनने की हठ करता है। यह हठ भी स्नेह प्रदर्शन का ही एक रूप है। बच्चा उसी से हठ करता है जिस पर अपना स्नेहाधिकार समझता है। विभिन्न वस्तुओं और खिलौनों की मांग भी वह उन्हीं से करता है जिनके लिये शिशु समझता है कि ये उससे स्नेह करते हैं।

कुछ और समझ आने पर बच्चे भी प्रियजनों की चिन्ता उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार वे उनकी करते हैं मां की तबियत खराब होने पर बच्चा अत्याधिक चिन्तित हो जाता है और उसके पास से हटना नहीं चाहता। बार बार मां से प्रश्न पूछता है - मां दर्द हो रहा है? मां तुम रो क्यों रही हो, मां रो नहीं। और अपने ढंग से सहानुभूति देने का भी प्रयास करता है यद्यपि यह सहानुभूति भी बड़ों के अनुकरण पर ही होती है - 'मां अभी तुम ठीक हो जाओगी, इस दवा से तुम्हारा दर्द बिल्कुल अच्छा हो जायेगा आदि। इस प्रकार के स्नेह का प्रदर्शन लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक करती हैं। भावुक प्रकृति के लड़के बचपन से ही पिता की अपेक्षा मां के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं।

कई बार मा को दु:खी देख कर बच्चे बहुत विह्वल हो जाते हैं। वे मां को अथवा कोई भी प्रिय दु:खित व्यक्ति को हर प्रकार से सांत्वना देने का प्रयास करते हैं - मां तुम रो नहीं, मां तुम घबड़ाओ नहीं, जब मैं बड़ा हो जाऊंगा तो सब ठीक हो जायगा मां। सन्तान के बड़े होने के साथ साथ इस सांत्वना में बल

और दृढ़ता आती जाती है । मां अथवा प्रिय व्यक्ति को पीड़ित करने वाले के प्रति शिशु का रोष भी स्नेह प्रदर्शन का ही एक अंग है ।

- अमुक व्यक्ति (पिता भी हो सकता है) बहुत गन्दा है, मैं उससे कुट्टी कर दूंगा, उससे कभी नहीं बोलूंगा, उसे प्यार भी नहीं करूंगा, बड़ा हो जाऊंगा तो उसे खूब मारूंगा आदि । निम्न पंक्तियों में द बच्चे की यही प्रवृत्ति झलकती है -

अभी तुम होती रानी हो न
तुम्हें मैं पहनाऊंगा मुकुट
मार्ड अब आगी कैना बहुत
कलेजा बलाबली पिल कौन ।

(पृष्ठ २०६ 'चित्तौड़ की चिता ' डा० रामकुमार वर्मा)

वास्तव में परिवार के संस्कार एवं वातावरण का प्रभाव शिशु की वाचिक अभिव्यक्ति पर बहुत अधिक पड़ता है । जिस परिवार का वातावरण स्वस्थ एवं प्रेममय होता है उस परिवार का बच्चा अधिक स्नेही होता है जिस बच्चे को प्रेम मिलता है वही प्रेम की अभिव्यक्ति भी करता है ।

बच्चों के स्नेह प्रदर्शन की एक और शैली भी है - उनका स्नेह आग्रह के रूप में व्यक्त होता है । जैसे हम तो दादी के हाथ से ही खाना खायेंगे या हम तो मां के पास ही सोयेंगे, हम पिता जी की गोद में बैठेंगे ।

बाल्यावस्था आते आते बच्चे स्नेह के प्रदर्शन में संकोच का अनुभव करने लगते हैं और किन्हीं विशेष परिस्थितियों जैसे बहुत दिन बाद मिलने पर अथवा, अधिक दिन के लिये दूर जाने के पूर्व ही स्नेह की वाचिक अभिव्यक्ति होती है । किशोरा-वस्था में भी लगभग यही स्थिति रहती है । प्रौढ़ावस्था तक आते आते सन्तान माता पिता के प्रति वात्सल्य का आलम्बन ही नहीं रह जाती वरन् एक सहारा भी हो जाती है । जब जवान बेटा कहता है - "मां मेरे रहते तुम क्यों चिन्ता करती हो" तो मां गद्गद् हो जाती है । बेटे के द्वारा कहे जाने पर "मां बिना तुम्हारे हाथ का खाये पेट ही नहीं भरता है " मां पुलकित हो जाती है ।

जिस प्रकार बड़े प्यार से बच्चे का नाम बिगाड़ देते हैं उसी प्रकार बच्चे भी प्रिय पात्र का नाम विकृत कर देते हैं - मां का अम्मी, अम्मु, मां या पिता के लिये पापा, पप्पा, भैया का भैय्यु, दीदी या जीजी का दिदि या जिज्जि, आदि। बालक सदैव पिता से अधिक मां को प्यार करता है।**

जीवन के आरम्भिक पांच वर्षों में शिशु घर से अधिक सम्बन्धित रहता है। अत: उसके स्नेह के पात्र सीमित रहते हैं किन्तु लगभग पांच वर्ष बाद वह समाज के अन्य लोग मित्र, अध्यापक आदि के प्रति भी स्नेह प्रदर्शित करने लगता है किन्तु संकट में वह माता-पिता का ही सान्निध्य चाहता है।

जब तक बच्चा माता पिता की एक ही संतान रहता है स्नेह प्रदर्शन के उपर्युक्त रूप ही रहते हैं। जब घर में द्वितीय सन्तान का आगमन होता है तो पहला बच्चा अपने को उपेक्षित सा महसूस करने लगता है और प्रतिक्रिया के स्वरूप मां पर अपना अधिकार जताने का प्रयत्न करता है। छोटे भाई या बहन के प्रति वह ईर्ष्यालु हो उठता है - इसे हटा दो, यह गन्दा है, ये तो रोता है, इसे जहां से लाये हो वहीं छोड़ दो, तुम हमें अपने पास सुलाओ।

किन्तु कभी कभी परिस्थितियां इसके विपरीत होती हैं। छोटे भाई या बहन के प्रति वह बहुत स्नेह प्रदर्शित करता है। छोटे बच्चे के प्रत्येक क्रियाकलापों को वह ध्यान से देखता है और उनके प्रति हर्षित होकर विस्मय प्रदर्शित करता है। मां देखो इसका कितना छोटा मुंह है, अरे इसके तो दांत ही नहीं है, यह कैसे हंसता है आदि।

** बालक मां बाप दोनों में अथवा घर में जिस किसी को भी ज्यादा प्यार करता है अथवा जिस किसी की भी घर में ज्यादा चलती है उसी का ज्यादा अनुकरण करता है जिससे घर में उसी प्रकार उसे भी प्रधानता मिल जाय। कई बार छोटे बच्चों में बड़ों की सी चेष्टायें एवं व्यवहार देख कर हम हंसा करते हैं किन्तु विचार करने पर पता चलता है कि वह केवल किसी ऐसे प्रौढ़ व्यक्ति का अनुकरण मात्र है, जिस व्यक्ति को बालक बहुत प्यार करता है।

(पृष्ठ ४१ 'बचपन' मैरी चैडविक)
अनुवादक प० अमरनाथ विद्यालंकार

वह माँ से ज़िद करता है कि इसे मेरी गोदी में दे दो, इसे मेरे पास सुला दो । कोई यदि कह दे कि हम तुम्हारे छोटे भाई को ले जा रहे हैं तो बच्चा तुरन्त रुआंसा हो जाता है - नहीं मैं इसे तुम्हें नहीं ले जाने दूंगा । कभी कभी बड़ी बहन छोटे बच्चे के प्रति बिल्कुल मातृवत दुलार का प्रदर्शन करती हैं ।

व्यवहारिक बुद्धि का ज्ञान होने पर अपनी कार्यसिद्धि के लिये बालक कभी माँ के प्रति तो कभी पिता के प्रति कृत्रिम स्नेह का प्रदर्शन करता है । `माँ तुम बड़ी अच्छी हो हमें यह फ्राक दिला दो`, या मम्मी देखो पापा तो डांटते हैं तुम हमें मिठाई दिला दो । , `हम पापा के साथ बाजार जायेंगे, हम पापा के बेटे हैं, माँ मारती है वह गन्दी है` आदि ।

बच्चे के वात्सल्य की वास्तविक और सम्पूर्ण अभिव्यक्ति गुड्डे,गुड़ियों के खेल के माध्यम से होती है विशेषकर लड़कियों की । वे गुड्डे गुड़ियों के प्रति मातृवत दुलार का प्रदर्शन करती हैं उन्हें गोद में लेकर खिलाती हैं, पालने पर झुला कर लोरी गा कर सुलाती हैं, उनका ब्याह रचाती है और अन्य संस्कारों का पालन भी करती है । इस प्रक्रिया द्वारा वे उस पूरी प्रक्रिया का प्रदर्शन करती हैं जो उन्होंने अपनों से बड़ों के अनुकरण द्वारा सीखी है ।

बच्चे का माता पिता के लिये रोना भी वात्सल्य की ही अभिव्यक्ति है । बच्चे का भाषा-भण्डार सीमित होता है अत: अभिव्यक्ति के रूप भी सीमित रहते हैं ।

-: हास्य :-

१०.१ काव्य शास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि :-

भरत द्वारा मान्य नौ स्थायी भावों में हास्य सबसे अधिक सुखात्मक है। भरत ने ओष्ठ दर्शन, नासिका तथा कपोल का स्पन्दन, दृष्टि व्याकोच या आंकुचन आदि को अनुभव के तथा आलस्य, अवहित्था, तन्द्रा, निद्रा, स्वप्न, प्रबोध असूया, आदि को व्यभिचारी के अन्तर्गत रक्खा है। भारतीय मतानुकूल हास्य प्रेम की शक्ति का ही यत्किंचित् परिवर्तित रूप है। भारतीय दृष्टि हास्य को राग प्रधान मान कर ही चलती है जबकि फ्रायड एवं हाब्स नामक मनोवैज्ञानिकों ने इसका आधार घृणा एवं विद्वेष माना है। आलंकारिकों में सामान्यतः हास्य को भामह, उद्भट तथा दण्डी ने अलंकार के अन्तर्गत और वामन ने गुण के अन्तर्गत ले लिया है। रुद्रट ने शारीरिक कुरूपता, असाधारण वेष या अनौचित्यपूर्ण कार्यों के आधार पर पनपने वाले इस रस का मूलतः स्रोत अशिक्षित या असभ्य बालकों एवं व्यक्तियों से सम्बन्ध माना। रुद्रट ने पहली बार हास्य को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा।

पाश्चात्य विद्वानों ने हास्य प्रवृत्ति के मूलमें मनुष्य की दूसरों की अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता की भावना को अधिक महत्व दिया है हाब्स नामक मनोवैज्ञानिक के अनुसार दूसरों को अपनी अपेक्षा हीन देखकर मनुष्य की गर्व भावना को तृप्ति मिलती है परिणाम स्वरूप हास्य उत्पन्न होता है/हेनरी बर्गसाँ चेतन की यन्त्र चलित अथवा जड़वत क्रियाओं के कारण हास्य की उत्पत्ति मानते हैं।

१०.२ हास्य की शारीरिक अभिव्यक्ति :-

हास्य का जन्म भाषा से प्राचीन है। कामना पराक्रम और विजय से उत्पन्न हास्य को व्यक्त होने के लिये वाणी का आश्रय नहीं लेना पड़ता है। उसके लिये शारीरिक क्रियाकलाप पर्याप्त है। उपर्युक्त उत्तेजनाओं के अवसर पर वह नैसर्गिक रूप में प्रकट हो जाता है। इस प्रकार किसी के हास के शारीरिक अनुभावों

को किन्हीं वर्गों में नहीं बांटा जा सकता । ये अगणित है और व्यक्तित्व के अनुसार निर्मित एवं परिवर्तित होते रहते हैं किन्तु यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि हास्य की अभिव्यक्ति में शारीरिक विशेषकर मुख की रूप रेखायें बहुत प्रभाव डालती हैं। भाषा यहां गौण है शारीरिक अभिव्यक्ति प्रमुख। शारीरिक क्रिया कलाप जहां एक और हास्याभिव्यक्ति करते हैं वहीं दूसरी और हास्योत्पत्ति में भी समर्थ होते है शारीरिक अनुभावों के कुछ उदाहरण -

--- - - - - फिर हम भी नहीं कहेंगे कुछ ! फिर धीरे से आंखें मुन्धी करके ओठों को गोल बना कर कहा ---------

(दायरे , पृष्ठ ८ रांगेय राघव)

--सेठ के मोटे अधर खिल कर कानों तक खिंच आये ।

(पृष्ठ २६६ " राख की पुड़िया " सोमावीरा)

--यह सुनते ही हवलदार की आंख खिल गई । उसकी घनी मौछ के नीचे एक हंसी आकर फिसल गई । बड़े संकोच के साथ बोला " अरे मेमसाहब कुछ सनीचर का प्रभाव था, पैरका चक्कर उतार रहा था " और इतना कह कर वह खिलखिला कर हंस पड़ा ।

(पृष्ठ ३३ " खाली कुर्सी की आत्मा ")

-- मैं क्या करूं तुम्हारी ऐसी चेष्टा देख कर मेरी हर्षोंही दीठि हो जाती है ।

(नायिका कथन , बिहारी)

" मुख खिलना ", नैनों में मुस्कराना ," नेत्र चमक उठना " ओंठ फैल जाना " आदि हास्य के कुछ शारीरिक अनुभाव हैं। इसी आधार पर आंग्ल विद्वान पैस्थोरिडीकुलस और जर्मन काव्यशास्त्री अ-ह्यूमर (Un-Humour) की कल्पना करते हैं जो केवल क्रिया के बहुल मात्र से आभूत हो जाता है इसका रूप हा हा है । इसी आधारा पर संस्कृताचार्यों ने हास्य के निम्नलिखित भेद किये हैं ।

उत्तम - स्मित , हसित

मध्यम- विहसित , उपहसित

अधम - अपहसित , अतिहसित

यह वर्गीकरण आन्तरिक मनोभावों के बाह्य शारीरिक प्रभाव की कसौटी पर कसता है। भरत ने हास्य के दो प्रकार के भेद किये है। एक भेद के अनुसार हास्य आत्मस्थ एवं परस्थ दो प्रकार का होता है जब व्यक्ति हंसता है तो आत्मस्थ हास्य और दूसरों को हंसाता है तो परस्थ हास कहलाता है। यदा स्वयं हसति तदा आत्मस्थ: । यदा तुपरं हासयति तथा परस्थ: (नाट्य शास्त्र : चौ०सं० पृष्ठ ७४)

आत्मस्थ हास्य हास्याभिव्यक्ति है और परस्थ हास्य हास्योत्पत्ति अथवा परिहास । आगे चल कर भाषा और अन्य विविध कलाओं के विकास के साथ साथ हास का प्रसार चित्रों और शब्दों में व्यंजित हो उठा । [१] धीरे धीरे शारीरिक अनुभावों के स्थान पर भाषा हास्य की अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण होती गई ।

भाषा के माध्यम से हास्याभिव्यक्ति की अगणित शैलियाँ हैं। उनमें से कुछ प्रमुख एवं प्रचलित शैलियों का उल्लेख इस अध्याय में है ।

१- " The original humour was expressed by action, not by words, It was, and is represented by progresive gradation as victory, cruelity teasing horse play, hazing practical jokes and April Fool. But as early as art and letter themselves, humour found its expression in drawing and in words "

(Humour, Its theory and Technique, Leacock, pp 12)

१०.३ हास्य एवं कंठ स्वर :-

अन्य भावों की भांति कंठस्वर द्वारा हास्याभिव्यक्ति एवं हास्योत्पत्ति होती है ।

साधारणतया से तो वाणी को जानबूझ कर विकृत कर के बोलना ही हास्यास्पद लगता है। पुरुष द्वारा स्त्री की वाणी में बोलने का प्रयत्न , अथवा स्त्री द्वारा पुरुष की वाणी में बोलने का प्रयत्न नाक से बोलना, गला दबा कर बोलना हास्य के विभिन्न अनुभाव हैं/कुछ उदाहरण -

-- आपने अक्सर सुनाहोगा बीबी दुआयें मांगती है " हे ईश्वर या अल्लाह मेरी उम्र मेरे साविन्द को लग जाये " (स्त्री की आवाज में बोलना)

-- क्या आप नहीं चाहते कि आपको कोई (स्त्री की आवाज बना कर) एजी, ओजी , सुनो जी कह कर पुकारे ।

(दफ्तर में शादी बी०एम० आनन्द १७-५-६८ हवा महल कार्यक्रम)

वाणी को दबा कर एवं विकृत करके बोलना भी हास्य को जन्म देता है ।

-- अरे हाजिर हूं लल्लू लाल , अरे भई तुमने बुलाया तो हम चले आये ।

(हास्यास्पद कांपती हुई दबी दबी आवाज)

(मुन्शी जी, नन्द लाल शर्मा , हवा महल, कार्यक्रम १३-५-६८)

-- और यदि डिस्टर्ब करना ही था तो थोड़ी देर जाकर पंखा झलती पति ------ परमेश्वर - - - - प्यारे का अलाप करती या कहती कि तुम्हारी पसन्द की कोई स्वीट डिश बनाई है ।

(हास्यपूर्ण विकृत स्वर में बोलना)

(यह भी एक झलकी है रामकुमार " हवा महल कार्यक्रम १-८-६८)

वाणी को चेतन रूप से विकृत करने के दो कारण होते हैं किसी को प्रसन्न करने की इच्छा अथवा स्वयं अपने मन की के उल्लास , पुलक को व्यक्ति

करने का प्रयत्न । कभी कभी आन्तरिक आक्रोश भी वाणी को विकृत कर देता है किन्तु ऐसी स्थिति में आश्रय के अन्दर हास्य नहीं होता है वरन वह दूसरों के हास का आलम्बन बन जाता है। गम्भीर समस्या को हलका रूप देने में अथवा साधारण समस्या को गम्भीर रूप देने में भी वाणी को लोग विकृत करते हैं विशेषकर विनोदी स्वभाव के व्यक्ति --

--रानी : लगता है आपके नाक की हड्डी बढ़ गई है ।
रमेश : मेरी नाक की हड्डी ? (बड़े नाटकीय ढंग से) भाभी तब तो शीरनी बांधिये । क्यों कि मैं अपनी इस छोटी और बैठी हुई नाक से बेहद बेजार हूं । इसने रोमान्स की दुनिया मेंमेरा सारा कैरियर खराब कर दिया । मैं किसी भी शर्त पर आध,पौन इन्च ऊंची एवं लम्बी करने को तैयार हूं ।

(पृष्ठ २१६ " डाक्टर बीबी " रेवतीशरण शर्मा ," पत्थर और आंसू संग्रह)

हास्योत्पत्ति एवं हास्याभिव्यक्ति में वाणी का प्रयोग काकु वक्रोक्ति के रूप में भी होता है। प्राय: ऐसे उच्चारणों में हास्य के अन्य तत्त्व भी रहते हैं किन्तु कहने का विशिष्ट ढंग हास्य को निखारता है। कभी केवल उच्चारण की विशिष्टता ही हास्याभिव्यक्ति करती है ।

-- एक मित्र : मेरी सरलता तो आप जानते ही हैं ।
दूसरा मित्र : जी हां आप तो पूरे महात्मा हैं ।

दूसरी पंक्ति साधारण स्वीकारोक्ति है । किन्तु " जी हां " पर बलाघात और जी का विलम्बित उच्चारण (जीऽऽहां) तथा " पूरे महात्मा पर बलाघात तथा " पू " का विलम्बित उच्चारण (पूऽरे महात्मा) हास्य की सशक्त अभिव्यक्ति करते हैं । ये विशिष्टता कथन को काकु वक्रोक्ति के माध्यम से तीखे व्यंग्य का रूप दे देती है ।

हास्यपूर्ण कथनों में शब्दों के उतार- चढ़ाव का विशिष्ट क्रम नहीं

निर्धारित किया जा सकता क्योंकि इस भाव में आवेश और आकस्मिकता का अभाव रहता है ताने, व्यंग्य, कटाक्ष आदि को स्पष्ट करने में कंठस्वर का प्रयोग देखता है और इसी के आधार पर यह निर्णय होता है कि व्यंग्य, ताने और कटाक्ष में क्रोध है अथवा हास्य)

-- सुनकर सिन्धु खिलखिला उठी " वाह बड़ा अच्छा काम सौंपा है अपनी मुंहबोली बहन को ! यह काम यदि उसे पूरा करना पड़े तब तो सात जन्म और लेने पड़ेंगे, इसी घर में ।

(पृष्ठ १२६-१३० " अटूट अमंगल " सोमावीरा)

यदि खिलखिलाना शब्द हटा दिया जाय तो यह निश्चित करना कठिन है कि व्यंग्य विनोदपूर्ण है अथवा क्रोधपूर्ण । ऐसे में कण्ठस्वर ही सहायक होगा । क्रोध में इस कथन के दो भाग होंगे और दोनों का रूप अलग अलग आरोहात्मक अवरोहात्मक होगा ।

-- बड़ा अच्छा काम सौंपा है अपनी मुंहबोली बहन को

जब कि हास्यपूर्ण मन:स्थिति में " बड़ा अच्छा " पर बल पड़ेगा और शेष कथन का उच्चारण सम स्तर पर होगा ।

-- वे दिन हवा हुए भैया जब पढ़ने के नाम पर तबीयत सी फाख्ता उड़या करते थे । भाई के हाथ से पुस्तक छीन कर सुनीता बोली " पढ़ने के नाम पर तो रोज बहुत गांठ चुके अब तो दफ्तर में बैठकर कलम घिसो और महामी रानी की भी हजूरी में --------

(पृष्ठ २४३ " भाई बहन " सोमावीरा)

सन्दर्भ में अलग कर के देखने पर उपर्युक्त कथन भर्त्सना प्रतीत होता है जबकि ये मात्र उपहास है। क्रोध में इस कथन के प्रत्येक शब्द पर बल देकर उच्चारण होगा जब कि विनोद में उच्चारण साधारण, कंठस्वर कोमल और हास्य का पुट लिये होगा ।

--" चार मील तक जर्मन नही छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने पीछे हट जाने का हुक्म दिया नही तो " ----

" नही तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते। क्यों ? सूबेदार हजारा सिंह ने मुस्करा कर कहा।

(पृष्ठ ५० " उसने कहा था " चन्द्रधर शर्मा गुलेरी)

उपर्युक्त उद्धरण में " नही तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते क्यों ? भर्त्सनापूर्ण व्यंग्य प्रतीत होता है। क्रोध के कथन का रूप आरोहात्मक होगा। जबकि हास में अपेक्षाकृत सम स्वर पर उच्चारण होगा क्रोध में क्यों का उच्चारण अधिकार पूर्ण भर्त्सना व्यक्त करता है जबकि हास में बल्ला है कोई अर्थ नही देता। लिखित साहित्य में इन स्थलों पर लेखक को इस अन्तर की ओर इंगित करना पड़ता है। उपर्युक्त कथन के बाद " मुस्कराकर " इसी प्रकार का संकेत है।

शुद्ध हास्य की अपेक्षा व्यंग्य कटाक्ष, ताना बोली में कंठस्वर अधिक प्रभावशाली होता है। व्यंग्य ऐसी बातों का द्योतक है जिनमें कुछ कटुता या तीक्ष्णता हो और साथ ही कुछ कौशलपूर्ण आक्षेप एवं परिहास भी मिला हो। व्यंग्य का यह तत्व उसके शब्दों पर नहीं बल्कि उसकी पद रचना या शब्द योजना पर आश्रित रहता है।

शुद्ध हास्य में शब्दों का उच्चारण विलम्बित रहता है। जैसे " अरे" का अ रे। " अरे " विस्मय व्यक्त करता है अ रे हास। इसी प्रकार " धत तेरे की " या " धत तेरे की " घृणा की अभिव्यक्ति है किन्तु ध त ते रे की " ध त ते रे की " हास्यपूर्ण मन:स्थिति को व्यक्त करते हैं। एक शब्द है। जी हां -- , इसका विलम्बित उच्चारण जी हां" हास्य व्यक्त करता है।

१०.४ अक्षरों का विशिष्ट प्रयोग :-

कंठस्वर के पश्चात हास्याभिव्यक्ति में सहायक विशेष एवं शब्दों का स्थान आता है। हास्य ही एक ऐसा भाव है जो अन्य भावों की अपेक्षा बहुत सीमित रूप से मात्र एक अक्षरों के द्वारा भी व्यक्त होता है। बोलचाल में " स " के स्थान पर " श ", " ल " के स्थान पर " न " और " स " के स्थान पर " फ "

का प्रयोग हास्याभिव्यक्ति में पूर्णतः समर्थ है। कभी कभी शारीरिक दोष के कारण कुछ की भाषा में उपर्युक्त मिलती है। संगीत के स्थान पर अंघंगीत , ' सब ' के स्थान पर ' शब ' नाला ' का स्थान पर ' नाना ' आदि । साहित्य में इस प्रकार के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलेंगे । विदेशियों द्वारा एवं अहिन्दी भाषियों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी में भी ऐसे प्रयोग मिलेंगे क वास्तव में हास्याभिव्यक्ति की यह शैली चेतन एवं अचेतन दोनों स्तरों पर यह की शैली चेतन एवं अचेतन दोनों स्तरों पर अपनायी जाती है ।

अंग्रेजों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी में ' त ' एवं ' द ' के स्थान पर ' ट ' एवं ' ड ' का प्रयोग होता है ।

--- झूठ बोलटा है । शेर का चारो तरफ टो खाई है वह किस माफिक छलांग मारने सकटा है ? तुम पबलिक कोबहकाय दिया । टुमरा चालान होगा ।

(पृष्ट ५१, भैया अक्लि बहादुर)

इसी प्रकार बंगालियों की हिन्दी में अ का ओ के रूप में उच्चारण तथा ' स ' के स्थान पर तालव्य ' श ' का प्रयोग -

--' बाबा चाकर होम एई रोकम बोलता है। तार पौरे होम शाला बेटी बोई माफिक बोलने लगा ।

(पृष्ठ १७, मार मार के हकीम)

पंजाबियों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी में अक्षरों के द्वित रूप का प्रयोग हास्य उत्पन्न करता है । ' न ' और ' र ' के स्थान पर ' ण ' वा ' ड़ ' तथा अकारान्त शब्दों के अन्त में ' ब ' का उच्चारण भी उनकी विशिष्टता है। जैसे विश्वनाथ व

दाढ़ी है कर नाँ ? बाबा ? बाबा दाढ़ी तो मर्दों का हुस्ण है । बिना बाल का चेहरा जनखड़ा सा लगता है । तभी तो हम लोग कभी बाल नहीं काटता । समझा बाबी ।

(पृष्ठ ११६, हलवोरी लाल)

१०.५ अक्षरों का द्वित प्रयोग :-

शब्दों को द्वित करके हास्याभिव्यक्ति की प्रवृत्ति साधारण भाषा में भी मिलती है। विनोदपूर्ण मन:स्थिति में ` अरे ` का अर्रे ` ` गजब ` का ` गज्जब ` ` बेटा ` का ` बेट्टा ` ` चूना ` का ` चुन्ना ` कर देते हैं।

१०.६ शब्दों का अपकर्ष, विपर्यय, आवृत्ति , असंगति :-

कर देते हैं। डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित और जी०पी० श्रीवास्तव के अनुसार अपकर्ष , विपर्यय , आवृत्ति असंगति तथा यान्त्रिक क्रिया को हास्य का उपकरण माना हास्योत्पादन के लिये नाटककार इन्हीं पांच रीतियों का प्रयोग करते हैं। उपर्युक्त पांचों स्थितियाँ भाषा में भी हास्य का कारण बनती है। उन लोगों ने यह माना कि यह पांच रीतियाँ घटना, शब्दावली, पात्र के शारीरिक गुण मानसिक गुण और रहन सहन के माध्यम से अपना काम करती है। ये पाचों प्रवृत्तियाँ एक शब्द के अन्दर भी मिलती है। आवृत्ति के उदाहरण तो पीछे दिये हुये हैं। इसी प्रकार शाब्दिक विपर्यय भी हास्य का कारण बनता है। जैसे लखनऊ, नखलऊ, अमरूद - अरमूद, सिगरेट सिरगेट। कभी कभी यह विपर्यय दो साथ साथ आने वाले शब्दों के मध्य भी रहता है। प्राय: शीघ्र बोलने के प्रयत्न में ऐसी भूलें हो जाती है और हास्य का कारण बनती है। दाल चावल , चाल दावल , दाल रोटी राल- टोटी, रजाई गद्दा गदाई रज्जा आदि। यह विपर्यय पूरे वाक्य के बीच दो शब्दों में भी हो जाता है। जैसे ` कटोरी में घी रक्खो , के स्थान पर ` घी में कटोरी रक्खो , सर पर टोपी पहनो ` के स्थान पर टोपी पर सर पहनो। इस प्रकार की भूले अचेतन रूप से होती है।

कुछ ऐसे शब्द जिनमें असंगति या विषमता होती है हास्योत्पत्ति में सहायक होते है। ` मूर्ख ` शब्द के पर्यायवाची लगभग सभी शब्द हास्यपूर्ण होते है , जैसे उल्लू , अक्ल बहादुर, सैरबहु-भिल्ली, गपोड़ी , आदि।

-- कुछ तो बात है उल्लू हो। पर उल्लू भी नहीं अब तो उनकी भी खबरबाजी तस्वीरें अखबार में छपती है।

(पृष्ठ ७ ; दायरे ` रांगेय राघव)

उपर्युक्त कथन में पूरे वाक्य में अकेला " उजबक " शब्द हास्यास्पद बनाता है , फिर " उजबक " के लिये सदरधारी विशेषण हास्य को और तीखा बनाता है। " उजबक " की भाँति की जांगलूस , बगटुट, चपरगट्टू , मठुआ बौधू आदि कुछ अन्य शब्द भी पूरे वाक्य में अकेले ही आ कर हास्याभिव्यक्ति कर सकते हैं । इसी श्रेणी में लहालोट , अल्लटप्पू , गिलगिल पिलपिल, अररधम , अण्टाग़फील , लालबुझक्कड़, चपरगट्टू , गजबजाए, गुटरगूं आदि ऐसे ही शब्द है ।

१०.७ हास्यपूर्ण नाम एवं उपनाम :-

कुछ नाम भी विचित्र एवं हास्यास्पद होते है , हास्य नाटकों में इनका प्रयोग बहुत प्रचलित है जैसे गुडघण्टाल,शेखचिल्ली , शक्की मल , दिलजला, सत्यानाशी , धुआरचन्दु आदि । किन्तु कुछ विशेष चरित्रों एवं पात्रों को इस प्रकार का नाम अधिक दिया जाता है जैसे सेठ जी एवं नौकर को । सेठ वर्गों को दिये जाने वाले नामों में कौड़ीमल, छेदीलाल, टकामल , भिखारीदास, आदि है इन नामों की पात्रों से असंगति ही हास्य उत्पन्न करती है। नौकरों को प्रायः बुद्धू, मक्खड़, फक्कड़ , भिखारी, बण्ठल आदि अर्थहीन नाम दिये जाते है। नामों की भाँति ही कुछ हास्यप्रद उपनाम भी होते हैं , विशेषकर कवियों के लिये । जैसे नाजुक ,अकेला" ," भावुक " , रंगीन" ," निराला" ," घायल दिल" , दिवाना ," आशिक " आदि ।

१०.८ व्याकरण के विचित्र प्रयोग हास्यपूर्ण उपमायें :-

कभी कभी अनुवाद की विचित्रता शब्दों को हास्यास्पद बना देती है जैसे father-in-law का " कानूनी बाप " व्याकरण के नियमों का विचित्र पालन भी देखने में आता है जैसे " महाकाव्यगुरा" के समानान्तर " महाकाव्य भणिका ", " सज्जनों " के साथ " सजनियो " , सभापति" का स्त्रीलिङ्ग " सभापत्नी " इस प्रकार एक शब्द अकेले ही पूरे वाक्य और सन्दर्भ को हास्यास्पद बना देता है। एक उदाहरण -

-- यहीं तो तुम्हारी गलतफहमी हुई । अरे भोले शंकर । तू भूम भूम कर चलता ,जितना अच्छा लगता है उतना यों मक्खन के गोले के समान बैठा नहीं

सम्पूर्ण कथन में ' भोलाशंकर ' सम्बोधन हास्योत्पत्ति में सहायक है । हास्यास्पद उपमायें भी हास्य उत्पन्न करती हैं । जैसे -

--' बस आ गये ' अड़ियल घोड़े की तरह रूक कर संगीमामा ने अपना जूता इस प्रकार पटका मानों अभी भी नेशनल कैडेट कोर ' की परेड कर रहे हो ।

(' मामी ' प्रो० धीरेन्द्र पृष्ठ ११५ नवनीत सितम्बर १९६१)

' अड़ियल घोड़े ' की उपमा ही इस कथन की विशिष्टता है।

-- अरे मामी क्यूं तारीफ कर रही हो मेरी । कैसा मेरा मुँह और कैसा मुँह भलाना । मुँह तो आप लोगों का है जैसेतोप है तौऽप ।

(' कोयले की चोरी ' हरिशंकर पारसाई , हवा महल कार्यक्रम २७-७-६८)

मुँह की उपमा तोप से देने से कथन हास्यपूर्ण हो गया है ।

क्रोधी व्यक्ति के लिये ' रेटमक्म ' सिद्धान्तहीन व्यक्ति के लिये बे पेंदी का लोटा ' , रूखे सूखे व्यक्ति के लिये निचुड़ा हुआ नीबू ' मोटे व्यक्ति के ' हलूयपिलो - उपमायें हास्य उत्पन्न करती है। ' दुलकी चाल ', घोड़ों के लिये उपयुक्त होता है किन्तु यही यदि किसी विशिष्ट चाल वाले व्यक्ति के लिये कहा जायतो हास्य उत्पन्न करता है। (हीनोपमा)

१०.६ शब्दों का विशिष्ट प्रयोग :-

उपमाओं के अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे होते है जो यद्यपि अपने आप में हास्यप्रद नहीं होते तथापि वाक्य में उनका अन्य शब्दों एवं कथन से संयोग हास्य उत्पन्न करता है । जैसे निम्नलिखित उदाहरण में ' आपरेशन ' एवं ' मंच पछाड़ ' शब्द । ' मंच और ' पछाड़ ' की सन्धि हास्य उत्पन्न करती है ।

-- हम अपनी बैठक में एक पुरानी कविता का आपरेशन कर रहे थे । अर्थात उसमें कुछ नवीन सामयिक व्यंग्य शामिल करके , ' मंच- पछाड़ ' कविता का रूप दे रहे थे ।

(' अनजान ' काका हाथरसी , नवनीत , अप्रैल १९६७)

-- तो समके जनाब इसीलिये बहुत सम्भाल सोचकर अपनी चोंच खोलता हूं ।

' चोंच खोलना', साधारण क्रिया है किन्तु प्रस्तुत कथन में आकर हास्यास्पद हो गई है। निम्नलिखित उद्धरण के 'पकवान' और 'पोथी' अलग अलग साधारण शब्द है पर उनका एक साथ प्रयोग पूरे कथन को हास्यपूर्ण बनाता है ।

-- जब बैलो तब पकवान पोथी खोल लेती हो ।

ऐ है --- पकवान से पेट भरता है, शेक्सपियर और इब्सन से पेट नहीं भरता ।

(पसन्द अपनी अपनी ' हेमांगिनी रानाडे , हवा महल १६-५-६८)

शब्दों का एक विशिष्ट ढंग से प्रयोग हास्यास्पद होता है जैसे - निम्न उद्धरणों में -

-- अरे भाई बसन्त की बहारें और फिर जवान जवान औठों से निकले गीत और गालियां, भई वाह भई वाह । दिल जवानी की यादों के स्विमिंगपूल में कूदकर तैरने लगता है ।

(मुन्शी जी' , नन्दलाल शर्मा , हवा महल कार्यक्रम १३-५-६८)

--आता है हरसाल सुहाना पहली का त्योहार
लक्ष्मी सतवती बीवी भी घर में पाकेट मार ।

-- रमेश : हां तो यह उनके ज्ञान के लौबान और शिक्षा के धूप की खुशबू है जिससे यह सारा घर यूं महक रहा है।

-- सुरेश : अब तू जा और चाय का इन्तजाम कर । लो प्यारे अब हाथ मुँह धो कर अपने आपको डिसइन्फेक्ट कर लो ।

(पृष्ठ १११' डाक्टर बीबी' रेवतीसरन शर्मा 'पत्थर और आंसू' संग्रह)

' डिसइन्फेक्ट के प्रयोग की भांति ही अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी भाव में प्रयोग हास्योत्पत्ति के लिये किया जाता है। जैसे निम्न पंक्तियों में -

जिसमें डार्ट का हैन्स हो और बैंक बैलेंस
कम से कम सब लाख लाइफ-इन्शोरेंस

लाइफ-इंश्योरैन्स , लाज का पर्दा फाड़ो
इमिटेशन लव के झटकों से उसे पछाड़ो
ऐसे लव का ढब बतला दो मिस किसमिस को
फंस जाये जब मनी मनी लव कहते उसको

(आधुनिक प्रेम पर काका का फटाका 'मनीलव', धर्मयुग पृष्ठ ५६ नवम्बर १९६६)

साधारण बोलचाल में भी अंग्रेजी का प्रयोग कथन को हास्यास्पद बना सकता है जैसे कोई कहे " ठीक है ठीक है मैं उसका दिमाग दुरुस्त कर दूंगा" क्रोध की अभिव्यक्ति करता है किन्तु " आल राइट आलराइट मैं उसका दिमाग टाइट कर दूंगा " से केवल हास्य कीअभिव्यक्ति होती है ।

इसमें अनुप्रास एवं तुकबन्दी भी महत्वपूर्ण है। यदि प्रयोग में विचित्रता के साथ तुकबन्दी भी हो तो हास्य औरतीखा हो जाता है जैसेनिम्न उदारण है

बर्फ गिरी शिमले में , सर्दी दिल्ली में बढ़ जाये ।
जैसे साहब घर में लड़कर दफतर में गुर्राये ।

एक ओर जहां " साहब " के साथ " गुर्राये " शब्द का प्रयोग हास्याभिव्यक्ति करता है दूसरी ओर बाय रब " जाय " एवं " गुर्राय " की तुकबन्दी । निम्नलिखित कविता में हास्य के ये दोनों ही तत्व आये है -

तोड़ दिये तोमड़े लड़ाक तरबूजन के
पैतेड़े तरबूजन के सोपड़े बड़ाम से
कविपाल कद्दू कली कैथन बगार डारे
जामुन पिये न बचे आम कहीं जाम से
गाजर मदारी कद्दू कद्दू कांकरी को काट
ओरयो मुंह मूरी को मरोरे बब धाम से
भूषन भनत चीमिटा के पच्चा बाबूराम
अस्म शस्त्र सौंपत बिहारी भूखनाम से

१०.१० अनुप्रास एवं तुकबन्दी :-

वाक्यों की विशिष्ट संरचना भी हास्योत्पत्ति में सहायक होती है। विनोदपूर्णमन:स्थिति को व्यक्त करने के में लिये तुकबन्दी युक्त वाक्य बहुत समर्थ होते हैं। जैसे -

-- जी क्या कहा ? आप इस कहानी के बारे में मेरे विचार जान गये हैं ? सच है ? मैं बिचारा किस्मत का मारा कहाँ आपके चक्कर में फँस गया।

(पृष्ठ ७३ ` कुछ ऐसी बात जो चुप हूँ ` देवराज दिनेश पृष्ठ ७३ नवनीत सितम्बर १९६१)

-- आ जाइये यूँ न तड़पाइये, बस्ती की जनता आप जैसी हस्ती के बिना फाकामस्ती कर रही है। स्थिति अत्याधिक दयनीय हो गई है। मेरी न पूछिये आपकी याद में रोज आठ आठ आँसू रोता हूँ।

(पृष्ठ २७ ` मुस्कुराहट की तलाश पचास रुपये इनाम `; लक्ष्मी कान्त वैष्णव धर्मयुग ३ मार्च १९६८)

साधारण बोलचाल में भी इस प्रकार की तुकबन्दी हास्याभिव्यक्ति में सहायक होती है। जैसे यदि कोई कहे कि ` नारी विपदा होती है ` तो मात्र निन्दा प्रतीत होती है किन्तु ` नारियाँ बिल्कुल बीमारियाँ हैं ` में परिहास भाव व्यक्त है। इसी प्रकार यह कथन ` तूने मेरे मंग में रंग डाल कर सब चौपट कर दिया ` क्रोध पूर्ण लगता है किन्तु ` तूने मेरे मंग में रंग डाल कर रंग मेंमंग कर दिया ` विनोदात्मक उक्ति बन गयी है।

१०.११ कथोपकथन में तुकबन्दी :-

तुकबन्दी कथन की भाँति ही कथोपकथन में भी मिलती है। तुकबन्दी पूर्ण कथोपकथन अधिक हास्यपूर्ण होते हैं जैसे -

-- हम समझ गये इसमें क्या होगा। त्यागी जी साहस के दो चार इन्जेक्शन और देकर विदा होने लगे तो हमने पूछा ` रस `? उन्होंने कहा ` बस `?

(` [illegible] ` काका हाथरसी, नवनीत, अप्रैल १९६७)

साधारण व्यवहार में प्रयुक्त भाषा में यह तुकबन्दी कभी अनायास आ जाती है और कभी सप्रयास । जैसे किसी ने कहा " हम तो सिर्फ चन्दा मांगने आये है तो दूसरे ने उत्तर दिया " तो यही बन्दा रह गया था" किसी तीसरे उपस्थित व्यक्ति ने मजाक में कहा" जी हां वे फन्दा आप ही के गले पड़ेगा" । इस प्रकार साधारण सा वार्तालाप चन्दा फन्दा और बन्दा की तुक मिलने से परिहास में परिवर्तित हो गया ।

कभी कोई व्यक्ति कोई) साधारण सी बात कहता है उसका साथी उसके वाक्य से कोई शब्द विशेष के तुक पर नया शब्द बन कर उत्तर दे देता है और वार्तालाप परिहास बन जाता है जैसे -

एक मित्र : अरे चलो यहां से , यही चक्कर मालूम पड़ता है । अभी दुम्मी की शीशी निकालेगा ।

दूसरा मित्र : चक्कर नहीं घनचक्कर

जीवन एवं साहित्य में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिल जायेंगे । कभी एक ही व्यक्ति किसी बात को एक बार साधारण ढंग से कहता है फिर विनोद में इसे हल्का रूप देने के लिये तुकबन्दी शैली का आश्रय लेता है जैसे - " मैं शीघ्र ही निपट कर आता हूँ" कह कर " मैं चटपट निपट कर आता हूं " ।

१०.१२ हास्यपूर्ण सम्बोधन :-

जहां शाब्दिक प्रयोगों के माध्यम से हास्याभिव्यक्ति में के अन्तर्गत ही विशिष्ट सम्बोधनों का भी स्थान है कभी कभी अति औपचारिक अथवा अति अनौपचारिक सम्बोधन भी हास्य उत्पन्न करते हैं ।

-- सुरेश : वाह मेरे उस्ताद । वाह कामयाब हो जाने दे पगड़ी बांधूंगा और सवा सेर बताशे बांटूंगा ।

(पृष्ठ २२२ " डाक्टर बीबी " रेवती सरन शर्मा , पत्थर और आंसू "संग्रह

मेरे उस्ताद' मित्र को दिया जाने वाला अत्यन्त अनौपचारिक सम्बोधन है। इसी प्रकार मित्र को बेटे , यार , गुरु , और स्नेहपूर्ण परिहास में गुंड्डा, नालायक, आदि भी कहते हैं ।

इस प्रकार के अतिई अनौपचारिक सम्बोधन पुरुषों के मध्य अधिक चलते हैं , स्त्रियाँ इतनी अधिक अनौपचारिक नहीं हो पातीं औपचारिक सम्बोधनों में अत्यन्त निकट के व्यक्ति पत्नी, पुत्र, भाई आदि को दिये गये सम्बोधनई हास्य पूर्ण आते है जैसे -

--- (पति, पत्नी से)

हां तो श्रीमती कमला देवी जी आपको मुझसे क्या तकलीफ है ?

इसी प्रकार पत्नी के लिये' श्रीमती जी ' देवी जी , मेम साहब , मैडम, बेगम साहिबा आदि प्रयोग होते हैं ।

मित्र से साहब , हुजूर , मिस्टर , गरीबपरवर, महाशय जी आदि सम्बोधन आते हैं । पात्र विशेष के साथ सम्बोधन की असंगति या बहुत अधिक संगति भी हास्य उत्पन्न करती है

मोटी स्त्री को ' कनकछड़ी ' , कामिनी । छोटे नेत्रों वाली स्त्री को मीनाक्षी या मृगनैनी , कर्कशा स्त्री को कोकिल कण्ठा - मृदुबैनी का सम्बोधन देना हास्य उत्पन्न करता है । किसी ढोंगी, पाखंडी व्यक्ति को भगत जी, पंडित जी कहना दूसरों के लिये हास्य का कारणबनता है ।

---कुछ सम्बोधन अपनी अर्थहीनता के कारण हास्यास्पद है और मेरे बाप,
~~बीच कुछ सम्बोधन अपनी अर्थहीनता के कारण हास्यास्पद है और मेरे बीच~~ ,
ओ मेरे चाचा के ताऊ ।

उपर्युक्त सम्बोधनों की विचित्रता उनकी असंगति में है। किन्तु सम्बोधनों की सटीक अनुकूलता भी हास्य का कारण बनती है जैसे किसी चुगलखोर व्यक्ति से कहना ' कहिये नारद जी -----' किसी मोटे व्यक्ति को कहना ' आइये धरती डोल सिंह जी -----' (' जी ' का प्रयोग)

परिपाटी में बांधे सम्बोधन भी हास्य का आलम्बन हो सकते हैं जैसे पति द्वारा पत्नी को दिया गया क्यां सम्बोधन ," ओ मुन्ने की अम्मा ---" तथा पति द्वारा पत्नी को दिया गया सम्बोधन, " ए जी" " ओ जी " । मेम साहब " सुनिये जी " आदि ।

यदि वक्ता एवं श्रोता दोनों की विनोदपूर्ण मन:स्थिति हो तो ऐसे सम्बोधनों किसी के प्रत्युत्तर में इसी प्रकार का उत्तर भी मिलता है । ऐसे स्थान पर हास और गहरा हो जाता है , किसी जैसे - ओ रे घर की नार, कहो भरतार या और मेरी सरकार कहो भरतार ।

१०.१३ तकिया कलाम :-

शब्दों के प्रयोगों के साथ ही तकिया कलाम का स्थान भी है। कुछ लोगों की आदत होती है कि किसी शब्द विशेष का प्रयोग वाक्य में कई बार करते हैं । यद्यपि वक्ता का उद्देश्य हास्याभिव्यक्ति करना नही रहता तथापि शब्द विशेष का अनुचित प्रयोग श्रोता के लिये हास्य का कारण बना जाता है । जैसे -

-- आई समझ में , वह बारात बहुत बड़ी थी । आई समझ में तथा घोड़े और मोटर भी थीं आई समझ में ।

-- मैं आज तुम्हारे यहां आऊंगा, जो है सो , तुम मिलोगे, जो है सो, ठीक सात बजे , जो है सो ।

इसी प्रकार क्या कहते हैं " मतलब " ," बात यह है कि " , क्या नाम है" , आदि कुछ बहुत प्रचलित तकिया कलाम हैं ।

१०.१४ व्याकरण के नियमों की अवहेलना :-

जहां तक हास्याभिव्यक्ति में वाक्यों की संरचना का प्रश्न है कोई विशेषता नही निश्चित की जा सकती । चेतन रूप से विनोदपूर्ण मन:स्थिति की ...

वाक्य को प्राय: व्याकरण के अनुशासन से मुक्त कर देते हैं । इस प्रकार के वाक्य व्याकरणानुशासित वाक्यों की अपेक्षा अधिक हास्याभिव्यक्ति एवं हास्योत्पादन में अधिक समर्थ होते हैं । जैसे निम्न कथन अपने विश्रृंखलित रूप के कारण ही हास्याभिव्यक्ति में समर्थ है

-- आये उस्ताद । वेरी गुड । मस जी तबियत खुश हो गई । एक मिन्ट में मजा आ गया ।

अहिन्दी भाषियों एवं विदेशियों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी में व्याकरणगत अशुद्धियाँ हास्य उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। लिंग, वचन, कारक आदि के विचित्र प्रयोग मिलते हैं । जैसे मद्रासियों की भाषा में लिंग के प्रयोग प्राय: गलत मिलते हैं जैसे - उसका पापा अभी तक नहीं आई थी , कल हमारा बहन मद्रास से आयेगा । माई खाना खायेगी । बंगालियों की हिन्दी में भी लिङ्ग० सम्बन्धी यह दोष मिलता है जैसे बंगाली स्त्री द्वारा कहा गया यह वाक्य- आप जाने सकता है, हम आपको कुछ नहीं बोलेगा । पंजाबियों द्वारा लिङ्ग० की अशुद्धियाँ नहीं होती है किन्तु सर्वनाम एवं कारकों की प्रयोग में अवश्य विचित्रता मिलती है। जैसे तुमने मैंने का तैंने - मैंने , हमारे के स्थान पर म्हारे का प्रयोग । इसी प्रकार कारकों के प्रयोग में भी अशुद्धियाँ मिलती है किन्तु इनका किसी हिन्दी भाषी द्वारा जानबूझकर प्रयोग ही हास्य उत्पन्न करता है जैसे तुम्हे मैंने किताब दी थी । का तैंने को मैंने किताब दी थी" । मैं क्या जानूं " के स्थान पर " मैंने क्या जानूं " । " हमें नहीं जाना हैं" के स्थान पर म्हारे को नहीं जाना हैं" । " मुझे नहीं जाना है" के स्थान पर " मैंने नहीं जाना हैं" ।

१०.१५ हास्याभिव्यक्ति एवं श्लेष तथा व्यंजना :-

श्लेषपूर्ण एवं द्वि‌अर्थक कथना हास्याभिव्यक्ति एवं हास्योत्पत्ति में बहुत समर्थ होते हैं । शब्दों की यह द्वयार्थकता कई रूपों में प्रकट होती हैं ।

कभी कभी उच्चारण के द्वारा भी एक शब्द का दूसरा अर्थ प्रकट किया जा सकता है । जैसे " आप बहुत अकलमन्द हैं" कथन में " अकल " एवं " मन्द " के बीच में विराम छोड़ देने से अर्थ बदल जाता है। किसी व्यक्ति के लिये कोई साधारण ढंग से अपने विचार व्यक्त करता है - " वो कोई बहुत ही अकलमन्द है " । वहाँ उपस्थित दूसरा व्यक्ति उसी से दूसरा अर्थ लेकर कहे जी हाँ वह सचमुच बहुत अकल मन्द है, तो पूरा कथन परिहास में परिणित हो जाता है ।

वास्तव में श्लेष शैली वहीं सार्थक होती है जहाँ आलम्बन एवं श्रोता उसका दूसरा सांकेतिक अर्थ समझने में समर्थ हो । व्यवहारिक जीवन में तो व्यक्ति समझ कर केवल मुस्कराकर अथवा हंस कर रह जाता है किन्तु साहित्य एवं लिखित भाषा में यह कथोपकथन के माध्यम से बिखरता है । जैसे किसी की शक्ति शौर्य की तुलना यदि अजगर से की जाय तो श्रोता उसका अर्थ अजगर के आलस्य, जड़ता एवं मक्कारी लेकर हंस भी सकता है। इस प्रकार की हास्याभिव्यक्ति में सन्दर्भ बहुत अधिक महत्व रखता है । कोई अपनी खराब वस्तु ओं के लिये यदि यह कहे कि यह तो अद्वितीय है और श्रोता उस वस्तु की निकृष्टता को ही उस वस्तु की अद्वितीयता मान कर कहे " जी हां सचमुच ही वह अद्वितीय है" तो हास्य उत्पन्न होता है ।

कभी ऐसा होता है कि किसी शब्द का प्रयोग वक्ता एक अर्थ में करता है और श्रोता उससे भिन्न अर्थ लेकर उत्तर देता है। यह कभी चेतन स्तर पर होता है और कभी अनायास । विनोद एवं परिहास के लिये अर्थ को बदल देते हैं क

-- भाई , आजकल मैं बेकार हूँ ।
तो एक कार क्यों नहीं खरीद लेते ।
-- मेरा अन्तिम समय आ गया है ।
अभी तुम्हें बहुत दिन जीना है ।

जो तुम " हरि प्यारी मा स्यां बानर को कछु काम

'हरि' शब्द को लेकर प्राय: परिहास होता है जैसे -

--रीझहि राजकुँवरि छवि देखी, इन्हहि बरा हरि जानि बिसेषी
(रामायण, नारद प्रसंग)

इस श्लेष शैली के आधार पर उस बहुत से चुटकुले एवं परिहासपूर्ण प्रसंग है। जैसे, एक बार एक समाज-सुधारक ने जेल में आकर क़ैदी से कहा " जिन मूर्खों के कारण तुम्हें सजा भुगतनी पड़ी, तुम्हारा कर्तव्य है कि उसका सुधार करो ।" कैदी ने उत्तर दिया " आप विश्वास रखिये मैं अगली बार दस्तानों का प्रयोग अवश्य करूँगा । (यह श्लेष कभी कभी उत्तर में रहता है जैसे निम्न लिखित उदाहरणों में -

एक व्यक्ति ने अपने मित्र से कहा " कुछ कुत्ते मालिक से अधिक बुद्धिमान होते है उदाहरण स्वरूप ------" मित्र ने बात काटते हुये कहा " उदाहरण की आवश्यकता नहीं तुम्हारे कुत्ते के बारे में मैं सुन चुका हूँ " इस कथन में जहाँ एक ओर कुत्ते की प्रशंसा है वहीं मित्र की मूर्खता पर व्यंग्य भी है ।

एक बार एक लड़के ने अपनी बहन से पूछा " पापा के बाल क्यों झड़ गये हैं" बहन ने समझाकर " बुद्धिमान लोगों की यही निशानी होती है" भाई ने उत्तर दिया " ओह - अब समझा तुम्हारे बाल इतने लम्बे क्यों हैं ।

उपर्युक्त उदाहरणों में उत्तर जानबूझकर ऐसा दिया गया है किन्तु अनजाने में भी व्यक्ति ऐसा दोअर्थों वाला उत्तर दे जाता है जैसे -

-- रोगी : डाक्टर साहब , खाँसी तो अब बन्द हो गई है लेकिन साँस अब भी रुक रुक कर आती है ।

डाक्टर : चिन्ता न करो मेरी दवा करते रहोगे तो वह भी बन्द हो जायेगी ।

प्रस्तुत उदाहरण में डाक्टर का अभिप्राय कष्ट दूर होने से है किन्तु एक दूसरा अर्थ मृत्यु का अपने आप निकाला जाता है । इसी प्रकार किसी के द्वारा पूछे गये प्रश्न का लोग अनजाने में ही दूसरा अन्यार्थ अर्थ लेकर उसका उत्तर दे देते हैं जैसे-

पत्नी के अनुशासन से परेशान एक पति से किसी ने पूछा ' आप विवाह से पहले क्या करते थे ।'

पति : अजी साहब जो कुछ भी मन में आता था वही करता था । प्रश्न मात्र कार्य या पेशे से सम्बन्धित है पर पति , ने उसका उत्तर अपने ढंग से दिया ।

साधारण जीवन में हास के कई रूप मिलते हैं वक्रोक्ति और वचन विदग्धता (wit) इन्हीं में से एक है । इसका सम्बन्ध बुद्धि से है । किसी उक्ति में गर्भित बुद्धिग्राह्य अर्थ से एक प्रकार का चमत्कार उत्पन्न होता है जो श्लेष चमत्कार से सम्बन्ध रखता है किसी परिचित शब्द के अर्थ को अनपेक्षित रूप से रख कर उसके द्वारा भिन्न अर्थ की व्यंजना कराना ही विट या विदग्धता है । एक उदाहरण -

-- निर्गुन कौन देस को वासी
मधुकर हँसि समुझाय सौंहैं दे पूछति सांच न हांसी ।

यहाँ निर्गुन शब्द का अतिरिक्त अर्थ लिया गया है। निम्न उदाहरण में 'देना ' शब्द का श्लेष के आधार पर प्रयोग किया गया है -

-- लोग भी कैसे अजीब हैं कि दाऊ ऐसे दानी को मक्खीचूस कहते हैं । बेचारे घर में किवाड़ देकर सोते हैं । हां गाली देने में आप बड़े उदार हैं। यदि कोई दुत्कारा देता है तो उसकी मांची मार देने में आप बड़े उदार हैं। दूसरों को दोष देने में भी दाऊ की बराबरी कोई दूसरा नहीं कर सकता ।

१०.१६ अतिशयोक्ति शैली और हास्य :-

अतिशयोक्ति पूर्ण कथन तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन विनोदपूर्ण मनःस्थिति की अभिव्यक्ति की ही एक शैली है । इस शैली में एक ओर जहां हास की अभिव्यक्ति होती है वहीं दूसरी ओर हास्य उत्पन्न भी होता है। उपहास

अथवा खिल्ली उड़ाने में वर्णनात्मक शैली के साथ इसका प्रयोग होता है। वक्ता की अनभिज्ञता में ही उसके कथन में किसी तत्व की अतिशयोक्ति हास्य उत्पन्न करती है।*

-- अजी बारात का खाना । राम का नाम लो । पता नहीं कमबख्तों ने वनस्पति घी छुआ रक्खा था गया । मुझसे तो दस कचौरियों से ज्यादा खाया नहीं गया । पर पेट तो मांगता ही है ।

दस कचौरियों से ज्यादा कुछ " खाया नहीं गया " बरबस हास्य उत्पन्न करता है। इसी प्रकार के अन्य कथन " खाते खाते मेरा तो पेट फट गया " बहुत खाया की अपेक्षा अधिक हास्यपूर्ण है ।

अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी हास्योत्पत्ति में बहुत समर्थ होता है ।

-- पेठ के बौड़े अधर खिलकर कानों तक खिंच आये

-- सामने एक बछड़ा खड़ा था, जैसे कन्नौती खींचे कोई घोड़ा खड़ा हो चौकन्ना सा । शायद वह गाल पर मक्खी बैठते ही अपने कान हिलाने लगेगा ।

(पृष्ठ ५७ " दायरे " रांगेयराघव)

यहां बछड़े की सतर्कता के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के साथ साथ तुलना की अतिशयोक्ति भी हास्य उत्पन्न करती है। इस प्रकार निम्न उद्धरण में भी हास्य का यही तत्व है -

--" तो चिढ़ती क्यों हो " सुनीता बोली " भगवान की दया से तुम भी किसी फिराक से कम नहीं ।"

(पृष्ठ २५१ " माई बहन " सोमावीरा)

इसी प्रकार लम्बे व्यक्ति की तुलना ऊंट से करना मेढ़क सी आंखे, चूहे सा शरीर, तोते सी नाक आदि बरबस, हास्य उत्पन्न करते हैं। किन्तु ये आलम्बन के लिये हास्य नहीं वरन् खिन्नता का कारण बनते है ।

१०.१७ विरोधाभास, असंगति तथा अतिशयोक्ति :-

अतिशयोक्ति, विरोधाभास तथा असंगति शैली हास की अभिव्यक्ति

की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण नहीं है किन्तु उपहास में एवं अतिशयोक्ति की दृष्टि से चेतन या अचेतन रूप से हास्य उत्पन्न करके दूसरों का मनोविनोद करने में बहुत सशक्त है।

उपहास की दृष्टि से किसी व्यक्ति की दुर्बलता का अथवा दोष का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हास्य उत्पन्न करता है। और वर्णन में कहीं असंगति अथवा विरोधाभास हो तो और अच्छा है। जैसे निम्न कथन में -

-- दयाराम जी ने दयालु होकर बेनी कवि के घर पर कुछ आम - भेजे। बेनी कवि आमों का वर्णन करते हुये कहते हैं आम इतने बड़े हैं कि चिऊंटी क्या मच्छड़ के मुंह में भी समा जायें। सासों की हवा लगने से कोसों भागते हैं उन्हें ऐनक लगा कर देखना पड़ता है। उनका कहां तक वर्णन करें, प्रयत्न करने पर ब्रह्मा के दर्शन हो सकते हैं पर आमों को नेत्रों से देखना असम्भव है।

एक ओर ' दयाराम जी का दयालु ' होना और होकर दान में ऐसी वस्तु देना दूसरी ओर की असंगति और दूसरी ओर आमों के छोटेपन के वर्णन की अतिशयोक्ति आदि कई तत्व मिल कर हास्य उत्पन्न करते हैं।

-- इनसे मिलिये, उम्र एक सौ दस, दिल अभी अठारह साल का और दिमाग की जाड़ लाठी।

(पृष्ठ ११ ' बातें ' रांगेयराघव)

इसी प्रकार - इनसे मिलिये, बूढ़े हो गये तो क्या जवानों का दिल रखते हैं, ' तन काला है तो किन्तु मन बहुत गोरा है ' ' तन बहुत कठोर है पर मन बहुत कोमल है ', इस भीमकाय शरीर के अन्दर छोटा सा दिल है, आदि वाक्य असंगति के कारण आलम्बन का उपहास करते हैं।

हास्य उत्पन्न करने में यह शैली अधिक समर्थ है। चेतन रूप से किन्हीं विरोधी अथवा असंगत बातों का एक साथ उल्लेख करना अथवा किसी वस्तु या क्रिया की आन्तरिक असंगति का वर्णन हंसाने में समर्थ होता है। जैसे -

-- कल खरीद रही हैं मैडं, सर्दी है जो आई
बाल उगाने वाला लोशन, कैसे गंजा भाई

-- मैम पांच सौ में मिलती, इक सौ में प्रोफेसर
   बीस तीस में पंडित मिलता , एक पान में कविवर

-- सरकस में वह वीर निडर शेरों को नाच नचाय
   घर में मुन्ने की मां से कांपे और डरे
      करम गति टारे नाहिं टरे

कभी कभी यह विसंगता या असंगति पात्र की प्रकृति एवं उसके कथन या कार्यकलापों के मध्य भी दिखाई पड़ती है । किसी अत्यन्त रसिक स्वभाव के व्यक्ति को परिस्थितियों से विवश होकर वैराग्य की बातें करते देख अथवा किसी साधु सन्यासी को रसिकतापूर्ण बातें करते देख कर हंसी आ जाती है यह विरोध अथवाअसंगति जितनी अधिक होगी हास्य उतना ही तीखा होगा ।

प्रस्तुत उदाहरण केवल इसीलिये हास्यपूर्ण है क्योंकि यह एक ऐसे पात्र का कथन है जो वास्तव में बहुत रसिक है किन्तु संकट देखकर ऐसा कह रहा है -

--मुझे माफ करो , मुझे माफ करो । अब मेरी उम्र प्रेम में एडवेंचर करने की नहीं रह गई है ।
(' मुन्शी जी ' नन्दलाल शर्मा , ' हवा महल ' कार्यक्रम १३-५-६८)

कथन में सन्दर्भ एवं प्रसंग की परस्पर असम्बन्धता भी हास्य का कारण बनती है -

-- अपनी सतरंगी बुश्शर्ट फाड़े ज्वाला सारथी का बढ़ुवे । कुछ गम्भीर होकर बोले -

" विशुद्ध चेतना के मार्मिक विषय में आपने जो मिट्टी खाने और गोबर आसव पीने की बात कही ---------।
(पृष्ठ ६०६ " खाली कुर्सी की आत्मा " लक्ष्मीकांत शर्मा)

विरोधाभास एवं असंगति को लेकर कुछ वाक्य मुहावरों की भांति लोकप्रिय

हो गये हैं जैसे , अन्धे का नाम नयन सुख , चलती को गाड़ी कहें , बने दूध का खोया ।

जाने अथवा अनजाने में असंगति एवं विरोधात्मक की अतिशयोक्ति कथन को उटपटांग वार्ता (non-sense talk) का रूप दे देती है । इस प्रकार के कथन हास्याभिव्यक्ति एवं उपहास के लिये न होने मात्र से हास्य उत्पन्न कर सकते हैं ।

-- अचल होहि अहिवात तुम्हारा
जब तक टाइप घिसे न सारा
जीवित रहे वधूवर प्यारे
कागज फटे न जब तक सारे
रहे प्रीति निसि वासर पक्की
जब तक चले भूत की चक्की

कुछ व्यक्ति जिनमें बुद्धि औसत से कम होती है के साधारण कथन भी अपनी अर्थहीनता एवं असंगति के कारण इसी श्रेणी में आ जाते हैं । यद्यपि यहां वक्ता का प्रयोजन न तो हास्याभिव्यक्ति रहता है और हास्योत्पत्ति , उपहास का पात्र तो वह स्वयं ही रहता है ।-

-- मैम साहब और मैं समझता था कि वह यह सब परेम में कहती थी----
मैं तो यही समझता था लेकिन वह सचमुच मुझे कुछ समझती थी -----सचमुच-----
लेकिन उसके पास रूप था । सांवली थी तो क्या हुआ मैमसाहब बड़ी सलोनी थी ।
आम की फांकों की तरह उसकी आंखें थीं, पतले तराशे परवल की फांक की तरह
उसके होंठ थे ------ बिल्कुल कार्तूस की तरह नाक और ------------

(पृष्ठ २७ " खाली कुर्सी की आत्मा)

उपर्युक्त उद्धरण में स्वयं को कुछ समझे जाने की आत्म स्वीकृति तथा परवल के फांक से होंठ एवं कार्तूस सी नाक अनायास हास्य उत्पन्न करती है । वक्ता इन सब से अनभिज्ञ है ।

-- जी हाँ और मैं उन पांच लाख बदनसीबों में से एक हूं कि मैं तो अपनी शादी की हर उम्मीद खो बैठा था मैनेजर साहब । मुझे विश्वास हो गया था कि जैसा मैं क्वांरा पैदा हुआ था वैसा ही मर जाऊंगा । " क्वांरा पैदा हुआ था वैसा ही मर जाऊंगा " अपनी अर्थहीनता के बाद भी हास्यप्रद है ।

-- जी हां मेरे बाप ने शादी की और जहां तक मेरा ख्याल है मेरे दादाने भी शादी की थी यह रिवाज तीनपीढ़ी से चला आ रहा है मैं इसे तोड़ना नहीं चाहता ।

कथन का बेढंगापन अनायास आया हुआ है ।

१०.१८ सटीक कथन एवं हाजिर जवाबी :-

ऊटपटांग तथा असंगत बातों एवं उत्तरों से ठीक विपरीत स्थिति सटीक कथनों की होती है। सटीक उत्तर हाजिर जवाबी के अन्तर्गत आते हैं । हाजिर जवाबी जहां एक और वक्ता की विनोदपूर्ण या उल्लासपूर्ण मन:स्थिति की अभिव्यक्ति करती है वही दूसरी और वक्ता द्वारा हास्योत्पत्ति के प्रयास को भी स्पष्ट करती है। इस प्रकार के कथनों में कभी तो व्यंग्य का भाव रहता है कभी मात्र विनोद विनोदपूर्ण कथनों की भी कई शैलियां हैं। साधारण से प्रश्न अथवा कथन का तुरन्त और आवश्यकता से अधिक लम्बा उत्तर देना तथा उत्तर में तथ्य का अभाव । जैसे उत्तर निम्न कथन में :-

(निकले हुए पेट के लाभ गिनाते हुए)

-- हां हां क्यों नहीं । इससे पतलून कमर पर टिकी रहती है क्रीज बनी रहती है , फोटो अच्छा गिरता है। भैया एक एक बात अपनी उंगलियों पर गिनाते हुए बोले ।

(पृष्ठ १०१ " सम्भया हमरो और वे दोनो " सोमावीरा)

-- (पत्नी) - मैं कह रही थी -----------

पती - कहिये साहब जरूर कहिये , दास्ताने हाल सुनाने को हम ही तो रह गये हैं ।

अपनी हास्यास्पद स्थिति को छिपाने के लिये लोग तुरन्त कोई बात बना देते हैं । इस प्रकार की हाजिर जवाबी में विनोद नहीं रहता वरन अपने बचाव का प्रयत्न रहता है किन्तु परिस्थितियों के कारण अन्य लोगों के लिये हास्य का कारण जैसे गिरने की झेंप मिटाने के लिये कोई कह दे " मैं तो जरा जमीन सूंघ रहा था " तो दर्शक एवं श्रोता को हंसी आ जायेगी, जरा ईश्वर हाथ तो उपस्थित दूसरे श्रोता को हंसी आयेगी । चोरी से मिठाई खाते हुए पकड़ा जाये और व्यक्ति की बरबस हंसी आ जायेगी ।

-- राजेन्द्र समझ गये बड़ा धोखा खाया । मगर जवाब के शेर थे । बोले तो क्या करना । तुम्हारा स्वांग बिगाड़ देता ? मैं भी इस तमाशे का मजा ले रहा था। (पृष्ठ १३७)

--श्यामदुलारी ने एकान्त में कहा " तुम तो वहाँ से खूब भागे । राजेन्द्र अकड़ कर बोले ", भागता क्यों भागने की तो कोई बात न थी ।

वास्तव में हाजिरजवाबी का प्रयोग सबसे अधिक दूसरों के उपहास एवं व्यंग्य में किया जाता है । इन स्थलों पर आलम्बन के अन्दर हास्य का पूर्णत: अभाव रहता है। जैसे कोई व्यक्ति कहे " तुम्हारे दिमाग में तो भूसा भरा है " सुनने वाला तुरन्त पलट के कहे " और तुम्हारे दिमाग में तो वह भी नहीं है " तो कहने वाला बिल्कुल चुप हो जायेगा । इसी प्रकार " तुम बहुत बेवकूफ हो " के उत्तर में कहे " सारी बुद्धि तो ईश्वर ने तुम्हें दे दी है।" वास्तव में इस प्रकार के उत्तर द्वारा वक्ता को बिल्कुल निरुत्तर करने का प्रयास रहता है । इसीलिये इसकी कमी में आवश्यकता से अधिक तीखे हो जाते हैं । इनमें व्यंग्य भाव प्रधान रहता है । जैसे -

एक अंग्रेज - हिन्दुस्तानी बड़े झूठे हैं।

नौकर - और अंग्रेज झूठों के बादशाह ।

जब तक हाजिर जवाबी में चिढ़ाने का भाव रहता है तब तक तो वह हास्य के क्षेत्र में आती है , व्यंग्य एवं ताना हो सकता है किन्तु विद्वेष तथा रोष नहीं होना चाहिये जैसे निम्न उदाहरणों में व्यंग्य एवं उपहास तो है किन्तु विद्रोह नहीं ।

-- लड़का बोला " मुझे चाहिये बीबी सुघड़ स्यानी
अच्छा खाना बना सके जो " बोली नटखट रानी
" अरे हमारी बावर्चिन के बन जाओ भरतार
ए री नटखट ! हट हट तुमसे सभी गये हैं हार ।

-दिल्ली की बोली

-- आज पिया मत जाओ दफ्तर जाओ
अमरैया में मुझे झुलाओ
रानी तुम्हें झुलाने को तो
बड़ी कुछ होगी दरकार

वास्तव में यहां ताना व्यंग्य या व्याजोक्ति (irony) का भाव प्रधान रहता है जिसमें बात को सीधे न कह कर उक्ति मर्मत्व के साथ कहा जाता है । जिससे भाव सुननेमें प्रतारणा स्वरूप न लगे किन्तु मूलत: उसमें घृणा का कुछ भाव सन्निविष्ट हो । इसमें लेखक की वाक् भंगी अथवा रचनाभंगी का विशेष महत्व है ।

कभी कभी उत्तर ऐसा होता है कि अनायास हंसी आ जाती है जबकि वक्ता का यह अभिप्राय नहीं होता है । वह साधारण ढंग से प्रश्न को बिना समझे उत्तर दे देता है। इसमें वक्ता की अज्ञानता ही हास्योत्पादन मेंसहायक होती है। हास्याभिव्यक्ति का यहां प्रश्न ही नहीं उठता । हास्योत्पत्ति के लिये यह अज्ञानता: कभी तो स्वाभाविक होती है और कभी जानबूझ कर अपनायी जाती है यहां जानबूझ कर अपनायी जाती है । यहां भी प्रश्नकर्ता को चिढ़ाने और खिझलाने का भाव

प्रधान रहता है। जैसे किसी से पूछा जाय कि " आप शराब क्यों पीते हैं" और वह उत्तर देता है कि "फिक्र नहीं तो क्या करूं उसका ? तो प्रश्न पूछने वाला चिढ़ जायेगा।

जहां भगवान स्वाभाविक होती है वह प्रश्नकर्ता को भी हंसी आ जाती है। जैसे निम्न प्रसंग में -

हास्य व्यंग्य लेखक श्री हरिशंकर परसाई सिंह को अपने इतिहास ज्ञान पर बहुत गर्व था। एक बार उनके एक मित्र ने उनसे पूछा " भई परसाई जरा यह तो बताओ कि अकबर जहांगीर और शाहजहां को कहां कहां दफनाया गया है।" परसाई जी सोच में डूब गये, बोले " अपनी अपनी कब्रों में दफन होंगे और कहां होंगे।

वास्तव में ऐसे उत्तरों में बात को टालने का प्रयत्न रहता है, साथ ही अपनी अज्ञानता को छिपाने का भी। जैसे किसी से पूछा जाय " चोर की क्या पहचान है और वह उत्तर दे उसकी दाढ़ी में तिनका होता है।

वक्ता के मुख से आधी बात सुनकर शेष अपनेआपपूरा कर देना भी हाजिरजवाबी का एक प्रकार है जैसे -

---- कांता : अजी आप सुनियेगा। आज कल तो यह बड़ी मजेदार बातें करने लगे हैं। ऐसे ब्रिलियंट फिकरे कहते हैं कि --------

रमेश : एक हजार वाट के मरकरी बल्ब भी फीके पड़ जाते हैं क्यों ?

(पृष्ठ ८२ " रोशनी " रेवतीशरन शर्मा " पत्थर और आंसू)

१०.१६ विनोद :-

हास्य का एक रूप विनोद है (humour) है। वास्तव में शुद्धता की दृष्टि से हास्य मे इसका दूसरा स्थान है (हंसने , खिलखिलाने और अट्टहास का पहला स्थान है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से विनोद की शुद्ध अभिव्यक्ति मात्र स्मिति तक सीमित रहती है, और कभी कभी खिलखिलाहट में। वास्तव में विनोद का भाव अपने प्राकृतिक रूप में तो नेत्रों की चमक और मुख की रेखाओं द्वारा

द्वारा ही व्यक्त होता है । जहां तक हास्य उत्पन्न करने का प्रश्न है हास्य ~~के क्षेत्र में~~ हास्य के क्षेत्र में " विनोद " सबसे अधिक सशक्त एवं निर्दोष मन:स्थिति है। शिशु एवं बालकों में यही भाव रहता है। यह एक ऐसी कल्पना का रूप असम्बद्ध शक्ति है जिसकी सहायता से विचार या कल्पना का रूप असम्बद्ध विकृत अथवा इस प्रकार अद्भुत हो जाये कि उसका फल हास्य हो ।

इसका एक रूपपरिहास भाव से अपने उपर व्यंग्य करना अथवा कल्पना में अपने को हास्यास्पद स्थिति में डालकरउससे हास्य उत्पन्न करना है । इसमें श्रोता एवं वक्ता दोनों ही आनन्दित होते हैं । प्राय: मोटे , गंजे या अत्यन्त लम्बे व्यक्ति अपने उपर ही व्यंग्य करते है जैसे किसी मोटे व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति ने पूछा " आप बच्चों के चिढ़ाने पर गुस्सा क्यों नही होते " क्यों कि " मैं उसको मारने उनके पीछे पीछे नहीं भाग सकता इसलिये उन्होंनें मुस्करा कर उत्तर दिया । भोजन के सम्बन्ध में भी प्राय: भारी शरीर वाले व्यक्ति कहा करते है " अरे इतने से मेरे क्या होगा ----" " इतना तो कहीं पता भी नही चलेगा -- क्या खिला रहे हो यह तो ऊंट के मुह मेंजीरे के समान है ।" स्थान के सम्बन्ध में भी जैसे -" इतनी जगह तो मेरे अकेले के लिये ही कम होगी " ।

--डाक्टर : (हंसते हुए) अरे नही भाई नहीं । ऐसा न करना । वरना बाहर निकलते ही लोग मुझे हाथों हाथ नही लेंगें हां बच्चे जरूर मेरे उत्तर पत्थर फेंकते हुए पीछे दौड़ेंगें । मेरा बदन वैसे ही भारी है, जान बचाने के लिये दौड़ भी न सकूंगा ।

(पृष्ठ ११ " उतार चढ़ाव " रेवतीसरन शर्मा पृस्थर एवं आंसू)

जिस तरह स्वयं पर व्यंग्य रहता है उसी प्रकार दूसरों की भी हास्यप्रद स्थिति में कल्पना अथवा स्मरण हास्य उत्पन्न करता है। कभी कभी कुछ अपशब्द भी रहते हैं किन्तु वह सम्बन्ध की निकटता के प्रतीक होते हैं। द्वेष अथवा क्रोध से उनका लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं रहता है ।

--शैलेन्द्र: अच्छा डाक्टर साहब , आप भी इसे लिफ्ट देने लगे । भगवान के लिये रहम खाइये । अगर आपने दो चार बार इसकी बातों का समर्थन किया तो इसके कदम जमीन पर नहीं पड़ेंगे । यह आंख मूंद कर हवा में नाक उठाये यूं चला करेगा जैसे जीने पर चढ़ा जा रहा हो ।

(पृष्ठ १२ ' उतार चढ़ाव ' रेवतीसरन शर्मा ' पत्थर एवं आंसू '

अनुपस्थित व्यक्ति ,वस्तु अथवा बीती हुई बातों , घटनाओं को लेकर भी विनोद का भाव जागृत हो जाता है । एकान्त में व्यक्ति ऐसी स्थिति में हंस पड़ता है किन्तु विनोद पूरा खुल कर नहीं आ सकता । इसके लिये श्रोता एवं वक्ता अथवा दर्शक का होना आवश्यक है ।

--दूसरा: और तुमने महाराज के विदूषक को देखा था । उसकी सूरत देखकर हंसी के मारे पेट में बल पड़ गये हा------हा------हा---हा------ उफ । अब भी हंसी के मारे पेट फूल जाता है ।

(पृष्ठ ४७ ' किंकिणी अम्बा ' उदयशंकर भट्ट)

-- और जानते हो अशोक जब किसी को दूल्हा बनाया जाता है तो उसकी आंखों में इतना सुरमा डाल देते हैं कि कुछ देख ही न सके , मुंह में पान डाल देते हैं जिससे वह फरियाद न कर सके और बैण्ड की आवाज से उसकी सोचने की शक्ति भी खत्म हो जाती है । इस तरह मिट्टी का माधो बन कर वह आता है और किसी की लड़की को ब्याह ले जाता है ।

(' अन्धेरी मीनार ' सुरेन्द्र गुलाटी ' रत्नाकर कार्यक्रम ' २८-७-६८)

साधारण से कथन को भी हास्यपूर्ण रूप दे देना विनोदपूर्ण मन:स्थिति की अभिव्यक्ति है । ऐसे कथन एक ओर जहां और वक्ता के मन के हास्य को व्यक्त करते हैं वहीं दूसरी ओर हास्योत्पन्न करके दूसरों का हंसाने में भी सहायक होते हैं जैसे -

-- तब स्वर्णकार-संघ के मन्त्री को स्वप्न में हमारी दाढ़ी के दर्शन हुए और आकाशवाणी हुई कि वत्स तुम्हारा संकट काका हाथरसी के द्वारा ही दूर हो सकता है । जाओ उनसे सम्पर्क स्थापित करो ।

(पृष्ठ ८१ ' अकल ' काका हाथरसी , ' नवनीत ' अप्रैल १९६७)

अहा सुहानी सर्दी आई , बाज रहा मन कूक
फूल बान तज मदन चलाये बफीली बन्दूक
प्रेम निवेदन करते करते लगी पड़ोसी बजने
तुम समझी मैं बूढ़ा खूसट, किया प्यार मंसूख

' विनोद ' का भाव शिशुओं और युवकों में अधिक रहता है। स्त्रियों में यह कम मिलता है। बुढ़ापे में भी ' हास ' का रूप लगभग यही होता है अर्थात निर्दोष और निष्प्रयास , इसमें वक्ता का उद्देश्य मात्र स्वं आनन्द लेना दूसरों को भी आनन्दित करना रहता है ।

१०.२० परिहास या मसखरी :-

हास का एक हल्का रूप ' परिहास ' है जो मित्र मण्डली में मिलता है । इसका एक नाम मसखरी भी है। मित्र वर्ग में किये जाने वाले मजाक में दूसरों को चिढ़ाने का प्रयत्न रहता है किन्तु इसके पीछे दुर्भावना नहीं होती इसमें अपशब्द , भर्त्सना, प्रताड़ना, अपमान जनक सम्बोधन सब मिलते हैं किन्तु उनमें द्वेष और विद्वेष नहीं होता, मात्र औपचारिकता का अभाव स्वं परस्पर निकटता व्यक्त होती है । जैसे एक मित्र द्वारा दूसरे मित्र से कहना ," अरे नालायक तू तो बिल्कुल भोंदू है ।" कभी अपनी सूरत भी देखी है शीशे में ।

--- हूं -------- भाभी ने भी कही थी न यह बात । वह बड़ी समझदार है, पता नहीं कैसे तुझ जैसे गंवार के पल्ले पड़ गई ।

(बनवारी बैक गये " गोपाल ग्रामोफोन" हवा महल" कार्यक्रम १०-५-६८)

---सुरेश : (हंसते हुए) अबे वा मया बन्दर वाली सूरत हरकत पर जिसने सीख देने वाली बया का घोंसला उजाड़ा था ।रानी ! तुम इसकी अकल कामी इलाज करवाओ । मुझे तो इसके दिमाग में भी खलल मालूम पड़ता है ।

(पृष्ठ २१८" डाक्टर बीबी ' रेवती सरन शर्मा)

इस प्रकार का परिहास जीजा-साली , भाभी-देवर तथा मित्रों के मध्य चलता है ।

१०.२१ उपहास या खिल्ली :-

भर्त्सना एवं व्यंग्य में जहाँ विद्वेष भी सम्मिलित हो जाता है वहां से मजाक मजाक न रह कर उपहास में परिवर्तित हो जाता है । अंग्रेजी भाषा में इसके लिये आइरनी, सर्काज्म और सैटायर शब्द आते है । 'आइरनी' वह वक्रोक्ति अथवा विद्रूप हैं जिसमें बात को सीधे या तीरर्वचन के साथ न कह कर इस उक्ति मर्मत्व के साथ कहा जाये कि ऊपर से बात सुनने में प्रतारणा स्वरूप न लगे किन्तु उसमें घृणा अथवा तिरस्कार का कुछ भाव सन्निविष्ट हो । इसमें परिहास के समान दोष का मजाक उड़ाकर मात्र आनन्द प्राप्त करना ही उद्देश्य नहीं होता वरन् आलम्बन को चोट पहुंचाने का प्रयत्न भी रहता है। अतिशयोक्ति, अपमान जनक अथवा तथा रूपक आदि के माध्यम से यह व्यक्त होता है। आलम्बन के अन्तर्गत हास का अभाव रहता है। उपहास करने की कुछ निश्चित शैलियाँ होती हैं -

किसी व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक महत्व देना उस व्यक्ति का उपहास उड़ाना है। इस महत्व देने में गम्भीरता का अभाव आवश्यक है। उदाहरण स्वरूप किसी साधारण से व्यक्ति का अत्याधिक स्वागत करना ' आइये पधारिये स्वागत है , मेरे अहोभाग्य की आपके दर्शन हुए, अरे मैं तो धन्य धन्य हो गया, मेरा घर आपसे पवित्र होगा ।' आदि वाक्य कहना उसका उपहास करना है। सन्दर्भ इसमें बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसी प्रकार किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके साथ स्वामी सेवक का सम्बन्ध हो अथवा पद, और आयु में अपने से छोटा हो को बहुत आदरपूर्ण सम्बोधन देना उसका उपहास करना है जैसे नौकर से सुनिये श्री बाबू हरिराम जी, पुत्र अथवा छोटे भाई को श्रीमान जी, साहब, एवं हुजूर पत्नी या छोटी बहन को देवी जी अथवा कुमारी जी, श्रीमती जी, बेगम साहिबा, मित्र को गरीबपरवर जहांपनाह, महाराज छोटे बच्चों के नाम के आगे जी लगा कर सुनिये बबलू जी, मुन्ना जी, इधर आइये कहना उनके प्रति उपहास भाव व्यक्त करता है। इसके विपरीत किसी योग्य व्यक्ति को उसके योग्य सम्बोधन नदेना

अथवा हास्यजनक अथवा अपमानजनक सम्बोधन देना भी हास्य व्यक्त करता है। जैसे शेखचिल्ली, गपोड़ी, महाराज, छबाड़ी, श्री चार सौ बीस, नवाब के मुल्क बगुला भक्त, गुरुदेव, आदि सम्बोधन देना। सन्दर्भ एवं आलम्बन की स्थिति यहां भी महत्वपूर्ण होती है।

इसी प्रकार किसी अयोग्य व्यक्ति की अत्याधिक प्रशंसा करना वास्तव में उसका उपहास करना है। आलम्बन या तो इन प्रशंसाओं को सत्य मान कर पुलकित होता है। अथवा इनकी सत्यता जानकर संकुचित होता है। दोनों ही स्थिति में वह अन्य के हास्य का पात्र बनता है, पहली स्थिति में कुछ अधिक ही। भरी सभा में किसी ऐसे व्यक्ति से जो अपने अन्दर योग्यता न रखता हो अथवा योग्यता का भ्रम भर रखता है, को सम्बोधित करके कहना - वाह, वाह, आपसे मिलिये महान आत्मा है, बड़े पहुँचे और हुये हैं, एकदम धुरन्धर विद्वान हैं, आपकी महानता का क्या कहना, सूर्य के दीपक दिखाना है, इनका नाम तो बच्चे बच्चे की ज़बान पर है, आदि कहना उसका उपहास करना ही है।

किसी व्यक्ति के सामने अपने को बन कर हीन प्रदर्शित करना तथा उसके उल्टे सीधे कार्यों की प्रशंसा करना उसको बेवकूफ बनाना है। फिर अन्य श्रोताओं अथवा पाठकों के लिये वही हास्य का कारण बन जाता है जैसे निम्न कथन " मैं भला किस खेत की मूली हूँ, आपके सामने मेरी क्या हस्ती"।

-- उसकी यह हिम्मत कि आपके मुंह लगे, आपने अच्छा किया, उसे पाठ पढ़ा दिया। आपकी तो धाक जम गई, चारों ओर आपका दबदबा बैठ गया है, लोग आपके नाम से कांपते हैं।

यह तो उपहास उड़ाने की कुछ शिष्ट शैलियां हैं। पढ़े लिखे सभ्य वर्ग में इन्हीं विधियों का प्रयोग अधिक मिलता है। प्रौढ़ वर्ग का उपहास इसी श्रेणी का होता है।

उपहास के कुछ कटु रूप भी होते हैं जिसमें वक्रोक्ति, श्लेष, असंगति, आदि के माध्यम से पात्र पर ऐसा प्रहार किया जाता है कि वह तिलमिला उठता है।

किन्तु दूसरे लोगों के लिये हास्य की सामग्री मिल जाती है। किसी के बोलने के विशिष्ट ढंग, चाल, आदि का अनुकरण अवश्य हास्य उत्पन्न करता है। प्राय: बालक वर्ग, बूढ़ों की चाल, क्रियाकलाप तथा उनकी कांपती हुई बोली का अनुकरण करते हैं।

किसी की भाषा में पाये जाने वाले दोषों का बार बार उल्लेख करके भी उसकी हंसी उड़ाई जाती है। कुछ लोग "स" "न" आदि का उच्चारण "फ" "न" करते हैं अथवा "स" को "श" कहते हैं। उनके दोषों को जानबूझ कर स्वयं दोहराना उस व्यक्ति के चिढ़ एवं दूसरों के हास्य का कारण बनता है। कभी कभी किसी व्यक्ति के शुद्ध कथन को जानबूझकर अशुद्ध करके व्यक्ति को चिढ़ाया जाता है जैसे कोई मांगे मुझे कापी चाहिये, तो दूसरा जानबूझकर अनजान बन कर कहे अच्छा तो आपको टाफी चाहिये, इतने बड़े हो गये अब भी टाफी खाते हैं। वह व्यक्ति फिर स्पष्ट करेगा "नहीं नहीं मुझे कापी चाहिये दूसरा फिर कहे "हां हां समझ गया आपको टाफी चाहिये, वही दे रहा हूँ"।

कोई व्यक्ति कहे मुझे मंग से परहेज है सुनने वाला उसे चिढ़ाने के लिये कहे "अच्छा तो आपको रंग से परहेज है? तो पहला व्यक्ति अप्रसन्न हो जायेगा।

कुछ स्थितियां एवं प्रसंग ऐसे होते है कि उन पर की गई जरा सी टीका, टिप्पणी हास्य उत्पन्न कर देती है। किसी के वस्त्र, रूपरंग आदि पर व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी क्या उपहास ही है, विशेषकर स्त्री वर्ग में उपहास की यह चीज बहुत लोकप्रिय है। यही बातें मित्र वर्ग में परिहास का रूप में ले सकती है।

१०.२२ क्रोध और हास्य :-

"वरकाशम" में व्यंग्योक्ति को निन्दा कहलता है किन्तु यह आइरनी

के समान बुद्धिग्राह्य नहीं होता । ' ह्यूमर ' में अतिशयोक्ति होती है किन्तु यथार्थता नहीं होती । उपहास वस्तु , व्यक्ति या भाव के उपहास का उद्देश्य सत्य ही हो जाता है। इसमें कटुक्ति और घृणा की मात्रा बहुत होती है ।

--पिता :(झुंझलाकर) उसके बाबा के पास ये है , उसके ताऊ के पास यह है, मैं पूछता हूं उस ताऊ के भतीजे के पास क्या है ।

---पापा : कम से कम एक मामले में तो वह तुम्हारी तरह है।

मम्मी : (उत्साह से) किस मामले में ?

पापा : दिमाग न होने के मामले में

मम्मी : शटअप ।।

(प्रश्न और पत्थर ' रेडियो नाटक , नरेश मेहता)

ऐसे प्रसंगों में आश्रय को क्रोध आता है किन्तु वक्ता एवं तीसरा व्यक्ति उसका आनन्द उठा सकता है। इसी प्रकार क्रोध में वादी प्रतिवादी के मध्य होने वाले उत्तर प्रत्युत्तर में प्रायः इस प्रकार के वाक्य कहे जाते हैं कि शान्तमन:स्थिति वाले तीसरे व्यक्ति के लिये हास्य का कारण बनते हैं । किसी की झुंझलाहट एवं खिसियाहट तो प्रायः ही दूसरों के हास्य का आधार बनती है क्यों कि इसमें रौद्र एवं हिंसा नहीं होती । जब कि वक्ता हास्य की इस बात से अनभिज्ञ रहता है कि उसका क्रोध दूसरे के हास्य का कारण बन रहा है ।

-- ऐसा अन्याय तो देवता भी नहीं सहन कर पाते । मेहता तो फिर इन्सान है। झुक कर बोला ' नहीं जी आप भाई के रुपयों की फिक्र न करें, शौक से अपनी हड्डी तुड़ा लें ।

(पृष्ठ १०३ ; सन्ध्या लहरें और वे दोनों, सोमावीरा) .

गोपियों द्वारा उद्धव की दी गई प्रतारणा में हिंसा और द्वेष नहीं मात्र झुंझलाहट थी। द्वेष भी था तो कृष्ण पर , उद्धव पर नहीं, उसी से पाठक

के लिये पूरा प्रकरण वीर रस के स्थान पर हास्य रस का हो जाता है ।

-- उधो यदि हम लोगों को मालूम होता है कि तुम्हारे मित्र को सीधापन पसन्द नहीं है तो हम लोग भी पीठ पर एक हड़िया बांध कर कुबड़े बन जाते , या कोई न कुछ रूपिया खोज कर उससे कूबड़ बनाना सीख लेते ।- ग्वाल कवि

उधरा : (लड़ियाये ढंग से) मेरे लिये तुम गालियां भी नहीं सुन सकते हो ।

पीताम्बर : आप मुझे एक दिन टाइप करवा के दे दीजिये कि आपकेलिये क्या क्या करना होगा । उसके साथ ही उसके करने का क्रमवाई मीन द सीरियल आर्डर समझी ।

(' किराये का कमल ' (रेडियो नाटक) नरेश मेहता)

पत्नी : हां तो अब तुम मुझे प्यार से कम्मो को कह कर क्यों नहीं पुकारते । कहते हो ' बच्चों की मां '

पति : (झिझला कर) अरे तो बच्चों की मां नहीं तो क्याअपनी मां कहूं ?

कभी कभी कायर और असमर्थ व्यक्ति का रोष भी दूसरों के हास्य का कारण बनता है। विशेषकर जब वह अपनी बहादुरी का वर्णन करे, आत्मप्रशंसा करे अथवा ऐसे वाक्य कहे जिसमें शौर्य प्रदर्शन का प्रयत्न हो तो किन्तु भय व्यक्त हो रहा हो । जैसे निम्न कथन में

--पजामा सरकाते और हाथ में छड़ी लिये बरबाद दरियाबादी अपने बरामदे से उतर कर हाते में आ चुके थे और छड़ी तान तान कह रहे थे " अबे - कमीने बदजात मुझे ताव दिखाता है , समझता है तेरे कहने से मैं हाते के बाहर आ जाऊंगा---- मैं कहता हूं मैं इतना बेवकूफ नहीं हूं ---- तेरे हिम्मत हो तो हाते केअन्दर आ जा ------ ।

(पृष्ठ ११० 'खाली कुर्सी की आत्मा' लक्ष्मीकांत वर्मा)

इसी प्रकार " मुझे ताव मत दिलाओं" मुझे, गुस्सा मत दिलाओं नहीं तो-------" देखो अगर कहीं मुझे क्रोध आ गया तो ---- आदि वाक्य मय से अधिक हास्य जागृत करते हैं। संयोगवश यदि कहीं वक्ता में रौद्र इसका बिल्कुल अभाव हो ।तो वह हास्य का ही आलम्बन बना जाता है।

क्रोध में " बड़बड़ाना" भी एक स्थिति है। यह निरर्थक और कभीकभी प्रलाप की भांति ही अर्थहीन प्रक्रिया होती है ऐसा " बड़बड़ाना" भी दूसरों के लिये हास्य उत्पन्न करता है जैसे - " यह शहर है या चिड़ियाघर एक के बाद एक जानवर जाने कहां से टपके आ रहे है। मैं तो पागल हो गया हूं, यहां नाक में दम कर दिया है लोगों ने जैसे मेरा घर बस स्टाप हो गया है। शायद सब कोई स्कीम बना कर मुझे परेशान कर रहे हैं।" बूढे एवं सनकी चिड़चिड़े व्यक्ति का बड़बड़ना हास्य का स्थायी आलम्बन है।

१०.२३ हास्य के स्थायी आलम्बन और हास्य की अभिव्यक्ति में भिन्नता :-

इसके अतिरिक्त हास्यरस के कुछ अन्य स्थायी आलम्बन और उद्दीपन होते है। आलम्बन में पेटू व्यक्ति - चौबे, चिड़चिड़ा पति, पत्नी भीरू पति, कर्कशा पत्नी, कंजूस, अति अधिक आयु का कुंवारा, बहुत अधिक मोटा, लम्बा अथवा नाटा व्यक्ति। उद्दीपन में किसी का गिरना, निरर्थक क्रोध करना, उल्लू बनाया जाना, आदि आता है। कुछ हास्यपूर्ण स्थितियाँ भी है। जैसे कंजूस का दान, जीजा-साली, भाभी देवर के मजाक आदि। साधारणत: इनमें से प्रत्येक स्थिति एवं आलम्बन के साथ हास्य का स्वरूप और शैली परिवर्तित होती रहती है। पेटू व्यक्ति के अनुसार जिसमें सदा भोजन के प्रति अतृप्ति और कामना का भाव बना रहता है अपनी अतिशयोक्ति और शैली केकारणहास्य उत्पन्न करते हैं

— अभी बारात का खाना। राम का नाम लो। पता नहींकमबख्तों ने वनस्पति भी डाला रक्खा था क्या। बस अमीरियों से ज्यादा खाया नहीं गया पर पेट तो मांगता ही है।

अकेले
-- अकिल्ले रामधन ने बीस लड्डू , चौबीस पेड़ा और बारह पुरी खाईं । तुम तो जानो हो मेरे दांत नाय, सोऊ पन्द्रह लड्डू, दस पेड़ा और पांच पुड़ी खाय सकों । का बताऊं बीमें बचै है खालई सात पगंत उठि गई नाय पांच सात लड्डू और तो खाव तो ।

(पृष्ठ ७ " लोक-परलोक" उदयशंकर भट्ट)

कर्कश पत्नी एवं पत्नी भीरू पति सदा से हास्य का स्थायी आलम्बन रहे है । यहां असंगति हास्य का कारण है। पति का पत्नी से भयभीत होना उसकी स्तुति या प्रशंसा करना ही हास्य उत्पन्न करता है ।

---- बुड्ढाबाबा : आंधी प्रबल, वह (पत्नी) तो आंधी से भी प्रबल है, याद आते ही कलेजा मुंह को आने लगता है ।

(पृष्ठ ५६" विद्रोहिणी अम्बा" उदयशंकर भट्ट)

--दफ्तर में वह वीर निडर शेरों को नाच नचाय
घर घर में मुन्ने की मां से कांपे और डरे
करम गति टारे नाहि टरे ।

-- जब पूछे भूचाल क्यों आया था उस रात ,
जब पहुंचे घर देर से तैंनें समझ लो बात ।
कि बीबी फट पड़ी चक्की के दो पाट

इसी प्रकार कंजूस एवं उसकी दानशीलता भी हास्य का कारण बनती है। यहां विरोधाभास एवं असंगति हास्य का कारण बनती है। हास्य का यह प्रसंग संवादात्मक न होकर वर्णनात्मक होता है। मीठी चुटकियों एवं व्यंग्य के रूप में इसमें हास्य का समावेश होता है । उदाहरण स्वरूप रईस के यहां से मिली रजाई के सम्बन्ध में कविराय के विचार :-

कवि राम को राजा ने प्रसन्न होकर एक रजाई दान में दी है । शहर भर

में दान की सुकीर्ति फैल गई है। परन्तु कवि उसे पाकर दो घड़ी तो आवाक रह गया, उससे कुछ कहते नहीं बना । ऐसा प्रतीत होता है मानों उसे किसी महान कारीगर ने बनाया है और अभी तक पूरी तरह प्रवीण नहीं है।अत: कम ही काम लिया है । रजाई की तो यह हालत है कि सांस लेते ही उपर और नीचे का कपड़ा उड़ गया और दो दिन दिया में रुई बनाने पर को रुई रह गयी ।

--दीना पात कबूर को तामें तनिक पिसान
राधा जू करने लगे लखे हमारे दान

१०.२४ हास्याभिव्यक्ति को प्रभावित करने वाले कुछ तत्व :-

हास्य पर आयु एवं व्यक्तित्व कानुकूल प्रभाव पड़ता है। हास्य आत्मपरक होने के कारण व्यक्तिवादी होता है। हास्य के प्रति अपनी निर्जी और पृथक कार्य और शक्ति होती है जो आयु और शिक्षा की वृद्धि के साथ परिवर्तित होतीरहती है । बच्चे बात बात पर हंसते है जब कि वयस्क नहीं । तरुण, हास्य और श्रृंगार की मादक छाया में ही आनन्द खोजते हैं, जब कि वृद्धों पर हास्य बड़ी कठिनता और शक्ति के व्यय से प्रभाव डालता है। इस प्रसंग में एब मार्टिन (Abe Martin) का कथन उल्लेखनीय है :-

" Fun is like life insurance, the older you get the more it costs ".

जहाँ तक अभिव्यक्ति का प्रश्न है स्मित हास्य अपने शुद्ध रूप में व्यक्त होता है । कविवर पंत ने एक स्थान पर कहा है " यह है शैशव का सरल हास, सहसा उर में आ जाता है " इसे व्यक्त करने के लिये प्रयास नहीं करना पड़ता है और न किसी शैली का आश्रय लेना पड़ता है बच्चों का हास, स्मित से लेकर" खिलखिलाहट" तक व्यक्त होता है । खिलखिलाहट " एवं " अट्टहास " में अन्तर है ।

"खिलखिलाहट" एक प्रकार की मधुरता पुलक और निर्दोष भाव रखता है। युवावस्था में हास्य " अट्टहास" के रूप में अधिक व्यक्त होता है । किशोर एवं युवावर्ग कई शैलियों में अपना हास्य व्यक्त करते हैं - कंठस्वर, हास्यपूर्ण शब्दों का प्रयोग, अन्तर्गत असंगत प्रलाप के माध्यम से , असंगति अतिशयोक्ति और विरोधाभास के द्वारा। आयु के बढ़ने के साथ "अट्टहास" का क्षेत्र सीमित होने लगता है और स्मित - विहंसित द्वारा हास की अभिव्यक्ति होती है । वृद्धावस्था में केवल " स्मित " रह जाता है ।

इसी प्रकार हास्य का क्षेत्र भी सीमित होता जाता है । बच्चे अधिक संवेदनशील होते हैं। वे बिना कारण के और छोटी छोटी बातों पर हंसते हैं । जरा सी भी अतिशयोक्ति , असंगति, विरोधाभास और नवीनता उन्हें हंसा सकती है। किन्तु भाषागत विशेषताओं की अपेक्षा प्रत्यक्ष दर्शन उन्हें अधिक प्रभावित करता है। हास्य के सूक्ष्म आलम्बन एवं उद्दीपन की ओर उनका ध्यान नहीं जाता स्थूल वस्तु, एवं प्रत्यक्ष घटना उन्हें हंसा सकती है। किन्तु काल्पनिक घटनाओं , वस्तुओं एवं परिस्थितियों में भी वह उतनी ही रुचि लेते हैं - जितनी प्रत्यक्ष घटनाओं में। परिकल्पनायें बच्चों को उतना ही आनन्द देती हैं जितनी बड़ों को प्रत्यक्ष घटनायें बच्चों में अपने पराये का भेद नहीं होता उपहास, व्यंग्य उनके हास्य क्षेत्र में नहीं आते । किन्तु यह अभेद स्थिति उनके हास्यक्षेत्र को विस्तार भी देती है अपने सगे के गिरने पर भी वह उतना ही हंसेगा जितना किसी पराये पर । किसी वस्तु या व्यक्ति के बारे में गहराई से सोचने में असमर्थ होने के कारण वह सरलता से आनन्दित हो सकता है। बाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था तक बालक दूसरों की उलझन, परेशानी से भी आनन्द उठा सकता है किन्तु तभी तक जब तक कि परिस्थितियां करुण रस के अन्तर्गत न आ जाये। युवावस्था में हास्य का क्षेत्र आत्म केन्द्रित हो जाता है ।अपनी विजय, सफलता, पराक्रमजन्य सन्तोष उसे अधिक आनन्द देता है। प्रौढ़ावस्था से वृद्धावस्था तक हास्य के क्षेत्र में पूर्वस्मृतियाँ

का स्थान महत्वपूर्ण रहता है। नाट्य असंगति , विचित्रता, विरोधाभास अथवा भाषागत वक्रोक्ति एवं श्लेष उन्हें अधिक नहीं हंसाती ।

हास्याभिव्यक्ति का रूप सभ्य- असभ्य तथा शिक्षित अशिक्षित के मध्य भिन्न भिन्न होता है । असभ्य अशिक्षित और ग्रामीण अभिव्यक्ति उन्मुक्त एवं स्वच्छन्द होती है । इसका हास्य भरत द्वारा बनाये गये अपहसित तथा अतिहसित भेदों के अन्तर्गत आता है। वास्तव में प्रथम यह भेद हास के वेग के आधार पर किये गये हैं । जितना ही सभ्य अथवा शिष्ट व्यक्ति होगा, वह इन आवेगों को उतना ही संयमित करने में समर्थ होगा । किन्तु इस प्रकार के " हस " को मात्र असभ्य अथवा शिष्ट व्यक्तियों तक सीमित नहीं किया जा सकता। मित्र- मण्डली बराबर के स्तर के एवं आयु के व्यक्तियों के मध्य भी चाहे वे स्त्री हो या पुरुष इस प्रकार का हास्य मिलता है। ऐसे स्थानों एवं परिस्थितियों में हास्य का आधार भी अमर्यादित और कभी कभी अश्लील भी हो जाता है। सभा में अपने से बड़े या छोटों के साथ, अपरिचित के साथ हास्य की अभिव्यक्ति स्मिति एवं हसित तक सीमित रहती है। एकान्त में किसी प्रकार के उद्दीपन अथवा आलम्बन को देखकर या उनका स्मरण करके जो हास्य उत्पन्न होता है उसका रूप भी स्मित या हसित के समान ही रहता है । स्मित शब्द अंग्रेजी में " स्माइल" (Smile) शब्द का पर्याय्यत कहा जा सकता है। कपोलों पर हल्की रक्तमाभ, तथा अलक्षित दन्त पंक्ति आदि पर छटाओं को स्मित के अन्तर्गत माना गया है। इसी से कुछ आगे जब मुंह और नेत्र कुछ उत्फुल्ल से दिखाई देने लगते हैं तब उस अवस्था को " हसित " कहा जाता है ।

१०.२५ हास्य एवं अन्य भाव :-

हास्यपूर्ण मन:स्थिति का विलोम चिड़चिड़ाहट का भाव है , किन्तु साधारणतः जब एक व्यक्ति की हास्य पूर्ण मन:स्थिति हो तो वह तुरन्त चिड़चिड़ा नहीं बन जायेगा । बीच में कई स्तर और आयेंगे । इसको समझने के लियेविशिष्ट

परिस्थितियों की कल्पना करना पड़ेगा । यदि कोई व्यक्ति बहुत ही विनोदपूर्ण मन:स्थिति से गुजर रहा है तथा मित्रों के मध्य परिहास कर रहा है या किसी को चिढ़ा कर स्वयं अपना और दूसरों का भी मनोरंजन कर रहा हो, इसी बीच में अन्य बड़ा व्यक्ति या माता पिता आकर कह और तीक्ष्ण स्वर में उसे टोक दे अथवा प्रताड़ित करें तो विनोदपूर्ण मन:स्थिति बिलकुल लुप्त हो जाती है । प्राय: इस प्रकार के वाक्य जैसे - " क्या ही ही लगा रक्खी है, निठल्लों की तरह दिन भर यही काम रह गया है, दिन भर धमाचौकड़ी मचा रखते हो, क्या मुंह फाड़ रहे हो या बत्तीसी निकल रहे हो, आदि । विनोद के स्थान पर उदासी को उत्पन्न कर देते हैं और व्यक्ति का परिहास बिलकुल बन्द हो जाता है।वह मौन धारण कर लेता है ।

यदि हास का रूपपरिवर्तन अन्य परिस्थितियों में भी हो सकता है। कोई व्यक्ति किसी का उपहास कर रहा हो और उसमें कोई अनुचित और कटु शब्द कह दे तो सुनने वाला व्यक्ति क्रोध में आ जाता है और पलट कर कोई कटु बात कह देता है फलत: हास्य का स्थान क्रोध ले लेता है जैसे- किसी व्यक्ति की बुद्धि की दुर्बलता को लेकर कहा जाय कि " वे बहुत ही बुद्धिमान है , अमुक स्थानों पर उन्होंने अपनी बुद्धि का ये कमाल दिखाया है ।" और ये सब बातें उसकी मूर्खता की ही पुष्टि कर रही हों । श्रोता इन्हें सुन कर चाहे करना मुंह तोड़ जवाब दूंगा । तथा साथ ही दो चार अपशब्दों का प्रयोग भी कर दे तो उपहास करने वाले को भी क्रोध आ जायेगा और हास्यपूर्ण मन:स्थिति क्रोध में परिवर्तित हो जाती है। और वह हास्य भूल कर कह देगा " देखूं तो तुम्हारी हिम्मत , जरा तो देखो ।

हास्यपूर्ण स्थिति कभी कभी करुणा में भी परिवर्तित हो जाती है। कहीं कुछ व्यक्ति मिलकर किसी विकृत और विचित्र रूप रंग वाले व्यक्ति अथवा अपाहिज का उपहास कर रहे हों तो जब तक वह चिढ़ेगा और खीझेगा तब तक तो दूसरों को हंसने की सामग्री मिलती रहेगी किन्तु यदि वह ग्लानि और दु:ख से रो पड़े

तो उपहास करने वाला जनसमूह करुणा से वशीभूत हो जायेगा और अपने कहे पर उससे क्षमा मांगेगें ।

" कोई मेरा यह आशय कदापि नही था कि तुम्हारी भावनाओं को ठेस लगे , हमे माफ करो ।" यदि इतना कहने की दृढ़ता भी न हो तो भी हृदय में पश्चाताप का अनुभव करते हुए लोग चुपचाप वहां से हट जायेंगे अथवा आपस में ही यह कहेंगें कि " हम लोगों से आज बहुत गलत काम हुआ । इस प्रकार हास्य करुणा में परिवर्तित हो जाता है ।

हास्यपूर्ण मन:स्थित के परिवर्तन के उपर्युक्त रूप स्वाभाविक है। इनके अतिरिक्त हास्य घृणा क्रोध अथवा भय में भी परिवर्तित हो सकता है किन्तु उस परिवर्तन में अस्वाभाविकता होगी । जैसे दो मित्रों का परस्पर मधुर परिहास चल रहा है । इसी बीच में एक मित्र को मालूम हो कि उसका साथी विश्वासघाती है तो वह बिल्कुल उग्र रूप धारण कर लेगा । इस प्रकार के परिवर्तन में हम वाचिक अभिव्यक्ति के स्तरों को निर्धारित क्रम नही दे सकते । यहां दोनों भावों के परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा ।

-: निर्वेद :-

११.१ काव्यशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :-

निष्क्रियात्मक होने के कारण भरत ने शान्त रस के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है। इसका स्थायी भाव " शम " समस्त व्यापारों का लय रूप है। शान्तरस में क्रियाओं के पूर्णशमन का प्रदर्शन सम्भव नहीं केवल स्वभावगत शान्ति एवं लौकिक सुख दु:ख के प्रति विराग की ही अभिव्यक्ति हो सकती है। नाना विषयों के दोष दर्शन से अनेक प्रकार के उद्विग्न तथा दु:खित चित्त की शम परिपोष की अवस्था को शान्तरस कहते हैं। कुछ विद्वान भक्ति का अन्तर्भाव शान्तरस में करने के पक्ष में है। वस्तुत: शान्त तथा भक्ति में अनुराग और वैराग्य का अन्तर है। शान्त का मार्ग ज्ञान का मार्ग है और मोक्ष कामना ही इसका लक्ष्य है। शान्त में निर्विकारता का महत्व है और भक्ति में स्वार्थ सम्बन्धों को छोड़कर भी पारलौकिक शक्ति से उसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। शान्त में आत्मज्ञान का होना प्राथमिक आवश्यकता है जबकि भक्ति में नहीं। शान्त में जुगुप्सा का महत्व अधिक है। शान्त में जुगुप्सा संसार से शक्ति का मन पूर्णतया हटाती है, भक्ति की जुगुप्सा ईश्वर के प्रति अपनी हीनता का प्रदर्शन है। शान्त निर्गुणनिराकारोपासना है और भक्ति सगुणोपासना भक्ति में श्रद्धा एवं विश्वास प्रमुख है। दोनों में कुछ समानता भी होती है। विषयपराङ०मुखता, नित्यानित्यवस्तु विवेक तथा वैराग्य दोनों में ही मात्रा भेद से उपस्थित रहते हैं।

डाक्टर राघवन ने रुद्रभट्ट के अप्रकाशित ग्रन्थ " रस कलिका" के आधार पर लिखा है कि रुद्रभट्ट ने वीर रस के भेदों के समान शान्त के भी वैराग्य, दोषनिग्रह, सन्तोष तथा तत्व साक्षात्कार नामक चार भेद माने है।

लौकिक विषयों से मन को हटाकर केवल मोक्षोपकारक व्यापारों में लगाना ही शम है। वेदान्त में यह साधना रूप है और साहित्य में साध्यरूप। हेमचन्द्र

के विचार से तृष्णाक्षय का नाम `शम` है और अभिनव गुप्त तृष्णाक्षय सुख को शान्त का स्थायी मान कर चले है। शम एक भावनात्मक शब्द है। यह भावना सुख शान्तिया सन्तोष की है। हर्ष, विस्मय, अहंभाव क्रोध आदि किसी भी भाव का स्पर्श होने से भी यह इस अवस्था को नहीं छोड़ता है। शम अभाव रूप नहीं है अपितु परब्रह्म पर केन्द्रित मन:स्थिति है और इसमें विस्मय, अहंभाव आनन्द, आदि व्यभिचारी तथा रोमाञ्च, नेत्र निमीलन, आदि अनुभाव मिलकर शान्त रस को व्यक्त करते हैं।[१]

जहाँ तक अभिव्यक्ति का प्रश्न है इस भाव की अभिव्यक्ति अल्पतम होती है। शान्त भाव केवल अनुभव किया जा सकता है। इसे व्यक्त करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती क्योंकि यह स्व- केन्द्रित है। भक्ति में अवश्य अपने भाव-पुष्पों को आराध्य को समर्पित करने के लिये भाषा की आवश्यकता पड़ती है।

११.२ <u>शारीरिक अभिव्यक्ति :-</u>

वास्तव में शान्तरस की शारीरिक अभिव्यक्ति प्राय: नहीं नहीं के बराबर होती है। यह शारीरिक क्रियाओं के शैथिल्य की स्थिति है। आवेश का अभाव होने के कारण भी इस भाव की शारीरिक प्रतिक्रियायें क्रमश नहीं ही होती है। फिर भी आनन्दाश्रु -बिन्दु प्रकट होना, भाव विभोर, नेत्र , रोमांच नेत्र - निमीलन, शरीर शैथिल्य आदि इस मन:स्थिति को किसी सीमा तक व्यक्त करते हैं।

११.३ <u>कंठस्वर :-</u>

साधारणत: निर्वेद की वाचिक अभिव्यक्ति ही दुर्लभ होती है फिर आवेशहीनता के कारण कंठस्वर पर बिल्कुल प्रभाव नहीं पड़ता। केवल स्वर की शिथिलता और अतिरिक्त गम्भीरता ही शान्तमन:स्थिति की अभिव्यक्ति करती है।

१- पृष्ठ २५२ रस सिद्धान्त: स्वरूप विश्लेषण, डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित

---कुमार : (शिथिल पर शान्त स्वर) प्रणाम मन्ते प्रणाम , नमो बुद्धाय नमो बुद्धाय, बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्म्मं शरणं गच्छामि बुद्धाय, संघ शरणं गच्छामि (कहते कहते कुमार की आंख रुक जाती है , नेत्र मुंद जाते है ।

('पूर्णाहूति' विष्णु प्रभाकर)

--धर्म : (एक शान्त भारी गम्भीर आवाज सुनाई देती है) हां बेटा तेरी यह दुनिया अब तुमसे जुदा होती है। तेरे संगीसाथी यार दोस्त तुमसे जुदा होते है । नश्वर चीजों से तेरा नाता टूटता है और अनश्वर चीजों से जुड़ता है ।

(पृष्ठ २३७ " श्मशान," रेवतीसरन शर्मा)

पुलक भरी गद्गद् वाणी को शान्त रस के अनुभावों में गिना जाता है तथापि वो शान्तमन:स्थिति को व्यक्त नहीं करती । इस प्रकार की वाणी या कंठस्वर प्रसन्नता हर्ष और कृतज्ञता को व्यक्त करती है ।

--हरि० :(प्रणाम करके गद्गद् स्वर में) प्रभु आपके दर्शन से सब इच्छा पूरी हो गई तथापि आपके अनुसार यह वर मांगता हूं कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ वैकुण्ठ जाये और सत्य सदा पृथ्वी पर निवास करें ।

(पृष्ठ १२७, सत्य हरिश्चन्द्र , भारतेन्दु ग्रंथावली)

जहां किसी भी प्रकार की इच्छा या कामना प्रकट होती है वह शान्तभाव की अभिव्यक्ति नही हो सकती। इस भाव की वाचिक अभिव्यक्ति में कंठस्वर के विशेष उतार-चढ़ाव , बलाघात स्वराघात, लय आदि का सर्वथा अभाव रहता है। सम लय और साधारण सी स्वर पर शान्तमन:स्थिति की अभिव्यक्ति होती है। शान्तभाव की अभिव्यक्ति में वाणी के गाम्भीर्य के लिये एक शब्द 'ठहराव' प्रयोग करना उचित है। पूरे के पूरे कथन में एक ठहराव और गूंज होती है । कथन अथवा वाक्य का प्रत्येक शब्द स्पष्ट और अलग अलग ध्वनित होता है। इसी विशेषता के कारण ही साधारण कथन भी शान्तमन:स्थिति को व्यक्त करने में समर्थ होते हैं, जैसे निम्न उदाहरणों में -

-- बूढ़ा चिलम पी चुका था । धुएं को भीतर निगलते हुए कुछ ठहरकर किन्तु दृढ़ता के साथ बोला" पिछली दुनिया ऐसी नहीं थी -------मुझे लगता है कि आज की दुनिया की आत्मा खोखली हो गई है ------ आज के आदमी का लोहा कुछ कुत्सित हो गया है।"

(पृष्ठ ६५, खाली कुर्सी की आत्मा', लक्ष्मीकान्त वर्मा)

११.४ जुगुप्सा और विरक्ति :-

शान्तरस अथवा भाव के काव्य शास्त्रीय दृष्टि से अनेक तत्व उपभाव एवं संचारी भाव गिनाये गये हैं जिनमें प्रमुख है जिनमें प्रमुख है -निर्वेद , धृत, हर्ष, मति, स्मृति, विषाद, उत्सुकता, आवेश तथा वितर्क । किन्तु जहाँ तक भावगत अभिव्यक्ति का प्रश्न है कुछ सीमित संचारी भावों एवं उपभावों की अभिव्यक्ति की सम्भव है। और स्वाभाविक है। शान्तरस का मूल तत्व वैराग्यभाव है। इसका आधार विरक्ति एवं अनासक्ति है। इसकी भावागत अभिव्यक्ति संसार की क्षणभंगुरता, अनित्यता, असत्यता एवं निस्सारता पर अपने उद्गार प्रकट करके होती है ।

११.४.१ संसार के प्रति :-

संसार की क्षणभंगुरता एवं अनित्यता के प्रति संत एवं भक्त कवियों के काव्य में अनेक उक्तियां मिलती हैं। विभिन्न उपमाओं और रूपकों के माध्यम से इसे स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं - यह सम्पूर्ण संसार क्षणभंगुर है, आज इसका अस्तित्व है कल नहीं रहेगा , यह संसार बालू की भीति के समान है , अभी है अभी नष्ट हो जायेगा । संसार कुहासे के समान शीघ्र नष्ट होने वाला है, इसकाअस्तित्व पानी के बुलबुले के समान है -

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जात है, ज्यों तारा परभात ।

--- का मांगू कुछ थिर न रहाई, देखत नैन चला जग जाई
इकलख पूत सवा लख नाती, ता रावन घर दिया न बाती ,

लंका सा कोटि समंद सी खाई , ता रावन की खबर न पाई
आवत संग न जात संगाती, कहा भयौ दर बाँधे हाथी ।
कहै कबीर अन्त की बारी हाथ भाड़ जैसे चले जुआरी ।

इसी प्रकार के अन्य कथन भी - बड़े बड़े विद्वान , पराक्रमी , योद्धा महात्मा आदि इस पृथ्वी पर आये पर आज उनका नाम भी बाकी नहीं रह गया है ।कई के वंश समाप्त हो गये हैं। अनेक सभ्यताओं का निर्माण हुआ। किन्तु आज उनके चिन्ह भी नहीं मिलते । ऐसे नश्वर संसार के प्रति मोह कैसा । ऐसे अनित्य संसार में स्वयं को रमाने से क्या लाभ ।

संसार अनित्य ही नहीं असत्य भी है। इस असत्यता के प्रति भी अनेक प्रकार की उक्तियाँ मिलती है जैसे - संसार स्वप्न के समान है। जैसे नेत्र खुलने पर स्वप्न अदृश्य हो जाते हैं उसी प्रकार ज्ञान होने पर संसार का आकर्षण समाप्त हो जाता है। संसार मरू प्रदेश में चमकती हुई बालू के समान मृगतृष्णावत है । संसार सेमल के फूल के समान ऊपर से आकर्षक किन्तु अन्दर से सारहीन है। यह दुनिया नर्मिन माया का भ्रमजाल है, संसार झूठ है, माया है, आदि । इस प्रकार साधारण कथोपकथन के माध्यम से लोग सृष्टि के प्रति अपनी विरक्ति प्रदर्शित करते हैं ।

११.४.२ सम्बन्धों के प्रति :-

संसार वास्तव में है क्या ? एक व्यक्ति का संसार उसके कुटुम्बियों मित्रों एवं कुछ परिचितों तक ही सीमित है रहता है। ये सारे सम्बन्ध ही उसका संसार है । वास्तव में ये सम्बन्ध भी उतने ही झूठे, क्षणभंगुर, असत्य और सारहीन हैं। वैराग्य उत्पन्न होने पर लोग अपने सगे सम्बन्धियों से भी विमुख हो जाते है और सारे सम्बन्धों को झूठ मान लेते हैं । कभी कभी इसके विपरीत स्थिति होती है । सम्बन्धों की निस्सारता का ज्ञान होने पर व्यक्ति का मन वैराग्य की ओर झुकता है। दोनों ही स्थितियों में सम्बन्धों के प्रति उक्तियाँ लगभग समान ही रहती है - ये सारे नाते रिश्ते झूठे है, इनमें कोई सार नहीं है ,

वास्तव में कोई किसी का नहीं है। सब अपने स्वार्थ के है , न कोई किसी का पिता है न कोई किसी का पुत्र है । न कोई किसी का भाई है और न कोई किसी की बहन, जब तक स्वार्थपूर्ति होती रहती है तभी तक का साथ रहता है अत: इनके लिये दु:ख करना व्यर्थ होता है । व्यक्ति संसार में अकेले आता है और अकेले जाता है कोई मृत्यु में इसका साथ नहीं देता । कष्ट और पीड़ा भी व्यक्ति अकेले भोगता है कोई उसमें सम्मिलित नहीं होता है । अत: ऐसे सम्बन्धों के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये । सब सम्बन्धी मित्र भी सुख के ही साथी होते है , समय पर कोई साथ नहीं देता - आदि कथन सम्बन्धों के प्रति विरक्ति प्रदर्शित करते हैं ।

ऐसी अभिव्यक्तियां किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर नहीं होती है । वरन् निराशापूर्ण मन की सहज अभिव्यक्ति के रूप में वार्तालाप के मध्य अथवा सहज कथन के रूप में होती है ।

११.४.३ लोक व्यवहार के प्रति :-

सम्बन्धों की असत्यता ज्ञात होने पर समस्त लोक व्यवहार भी असत्य प्रतीत होने लगता है। प्रेम, वात्सल्य, दया, परोपकार सब कुछ छल और दिखावा प्रतीत होने लगता है। यहाँ तक कि समस्त मानवीय संवेदनायें ढकोसला लगने लगती है। पत्नी का प्यार, माँ की ममता, मित्र का स्नेह सब बन्धन बन जाता है। वाचिक अभिव्यक्ति का रूप कुछ इस प्रकार का होता है - संसार का समस्त व्यवहार झूठा है, प्रत्येक हंसी के पीछे आंसू है , सुन्दर व्यवहार के अन्दर भी कटुता और स्वार्थ है, नम्रता प्रदर्शन के पीछे व्यक्ति का अपना स्वार्थ रहता है, दया प्रदर्शन के पीछे व्यक्ति की अहम तुष्टि रहती है, आदि कथन लोक व्यवहार के प्रति अनास्था व्यक्त करते हैं । विरक्त व्यक्ति अनायास अथवा कभी दूसरों को भी ज्ञान का प्रकाश देने के उद्देश्य से इन उक्तियों का प्रयोग करते हैं। किन्तु इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति एवं विचारों की अभिव्यक्ति प्रत्येक शान्तमन:स्थिति वाले व्यक्ति की नहीं होती है। केवल समाज से अलग रहने वाले योगी एवं वैरागी ही ऐसी अभिव्यक्ति कर सकते हैं । वृद्ध एवं गम्भीर व्यक्ति इन भावों को समझते हुए भी मौन रहते हैं । उनका यह भाव भाषा नहीं वरन व्यवहार के माध्यम से व्यक्त होता है ।

११.४.४ अधिकार और ऐश्वर्य के प्रति :-

संसार सम्बन्धि और लोक व्यवहार के प्रति यह दृष्टिकोण एक प्रकार की अरुचि का विकास करता है। इस अरुचि के कारण संसार के ऐश्वर्य , भोग, सुख, अधिकार और प्रभुत्व से भी व्यक्ति उदासीन हो जाता है । इस द्वितीय प्रवृत्ति का विकास भी आवश्यक है नहीं तो व्यक्ति वैरागी होने के स्थान पर अनास्था और अविश्वास का आधार लेकर पशु और दानव बन जाये। साधारणतः इस द्वितीय भाव की अभिव्यक्ति व्यवहार में ही होती है। कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर या अवसर विशेष पर इसकी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति हो जाती है - ये संसार का ऐश्वर्य भोग रोग के समान है और संसार यम की यातना के समान है ---

-- भोग रोगसम भूषण भार, वन यातना सरिस संसार ।

----- पर मैं सच कहता हूं तुमसे, इस नर हत्याकाण्ड से मुझे विरक्ति हो गई है , इस रक्त रंजित सिंहासन पर बैठ कर राज्य करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। तुम निश्चिन्त मन से जाओ और राज्य भोगो । ~~दुर्योधन वन में निश्चिन्त मन से जाओ और राज्य भोगो~~ । दुर्योधन वन में जाकर दिन बितायेगा ।

(पृष्ठ २१)

--दुर्योधन : मैं तो यह कह चुका हूं युधिष्ठिर कि मुझे विरक्ति हो गई है , मेरी समझ में आ गया है कि अब प्राणों की तृप्ति की चेष्टा व्यर्थ है। विकलता के इस मरुस्थल में तृप्ति की एक बूंद भी आयेगी तो सूख कर रह जायेगी ।

(पृष्ठ २१ " महाभारत की सांझ", भारत भूषण अग्रवाल)

यह ज्ञान व्यक्ति को पारदर्शी दृष्टि प्रदान करता है ऐश्वर्य की झूठी चकाचौंध उसे आकर्षित नहीं करती । वह उसमें भ्रमित नहीं होता है ।

-- विभीषण : आज जिन जगमगाते भवनों को देखकर हमारी आंखे चौंधिया जाती है, उनकी दीवारों में भी मिट्टी की बनी ईंटें हैं ।

साधारण व्यक्ति के लिये ऐश्वर्य एवं अधिकार सुख का मापदण्ड होता है जब कि वैरागी के लिये मात्र एक जंजाल । गीता में कहा है -

-- हे कुन्तिपुत्र सर्दी गर्मी और सुख दुःख को देने वाले इन्द्रीय और विषयों के संयोग तो क्षणभंगुर एवं अनित्य है इसलिये हे भरतवंशी/अर्जुन उनको तू सहन कर ।

११.४.५ <u>स्वयं के प्रति :-</u>

जहां व्यक्ति इस संसार के सांसारिक प्रपंच से लोक व्यवहार से घृणा करता है वहीं स्वयं से भी अरुचि जागृत हो जाती है । सबसे पूर्व तो अपने स्थूल शरीर से ही घृणा होती है। इस घृणा की स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है- जन्म से लेकर मृत्यु तक शरीर दुःखों का कारण बनता है, फिर भी इसी से हम मोह करते हैं । इसी शरीर के माध्यम से और इसी के लिये हम अनेकों पाप करते हैं औरबार बार जन्म मरण के चक्करमें पड़ते हैं । काम क्रोध मद लोभ मोह का निवास स्थान यही शरीर है ।

शरीर की दुर्गति का स्पष्ट वर्णन करके भी सन्तों ने इसकेप्रति अपनी घृणा का प्रदर्शन किया है।सूर तुलसी कबीर आदि की रचनाओं में इस प्रकार के अनेक वर्णनात्मक पद मिलते हैं । कुछ अन्तर के साथ सबका भावार्थ लगभग एक ही रहता है - जन्म लेने से पूर्व ही मां के गर्भ में शरीर के कारण कष्ट होता है। जन्म के पश्चात यही शरीर अनेक रोगों का घर बनता है। यह शरीर क्षणभंगुर है और नाशवान है। मलमूत्र , मांस , हड्डी, रुधिर, नाखून ,बाल खाल आदि गन्दी वस्तुओं से बना है। शरीर के अन्दर भी मल भरा हुआ है। नव द्वारों से मल निकलता है । यह शरीर लोभ मोह का निवास स्थान है। शरीर के कारण ही रागद्वेष और अहंता होती है। ऐसे अधम एवं निन्दनीय शरीर से क्या मोह । इसी शरीर पर बुढ़ापा और मृत्यु आती है। इस शरीर का गर्व न करो । मृत्यु के पश्चात इसकी अनेक दुर्गति होगी । इसी शरीर को सियार कौवे और गिद्ध

जायेंगे । इसी शरीर में अनेक कीड़े पड़ेंगे और यह सड़ कर दुर्गन्ध देगा । अन्त्येष्टि क्रिया में जिस पुत्र को तूने बहुत स्नेह देकर पाला है वही लकड़ी लेकर इस सर को फोड़ कर जलायेगा । तुम्हारा यह रूप रंग, तुम्हारी सुन्दर त्वचा जिस पर तुम्हें गर्व है सब अग्नि में जल कर राख हो जायेगी । कबीर देखता है -

कौड़ी कौड़ी जोरि कै , जोरे लाख करोर
चलती बार न कछु मिल्यौ , लई लंगोटी तोर
हाड़ जरै ज्यौं लाकड़ी, केस जरै ज्यौं घास
सब जग जलता देख कर भयो कबीरा उदास ।

इस शरीर पर आधारित जीवन भी उतना ही क्षणभंगुर एवं नाशवान है जितना यह शरीर, फिर ऐश्वर्य घर और परिवार के प्रति मोह ममता कैसी । हम इस क्षणभंगुर जीवन के क्षणभंगुर सुख में ही स्वयं को भूले रहते हैं जब कि -

--झूठे सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद ।
जग चबैना काल का, कछु मुख में कछु गोद ।
--कबीर

जीवन कब समाप्त हो जायेगा हम नहीं जानते हैं । जब तक सांस चलती है मनुष्य झूठे मद अहंकार में स्वयं को भूला रखता है किन्तु किसी भी क्षण अचानक सांस का तागा टूट जायेगा । शरीर रूपी पिंजरे में प्राणरूपी पंछी कैद है जहां उसे अवसर मिला वह पिंजरा छोड़ कर उड़ जायेगा । बस सब कुछ समाप्त हो जायेगा । प्राय: इस प्रकार की उक्तियों की पुष्टि के लिये लोग किसी सन्त आदि के प्रसिद्ध दोहे का उद्धरण दे देते हैं । जैसे -

मालिन आवत देखकर कलियां करें पुकार ।
फूले फूले चुनि लिये , कालि हमारी बार ।।

जीवन का अन्त इतना अनिश्चित है कि कोई नहीं जानता की कब अन्तिम घड़ी आ जायेगी । कबीर ने एक स्थान पर कहा है -

--कबिरा यह जग कुछ नहीं , छन खारा छन मीठ
काल्हि जु बैठी मांडिया, आज मसाणा दीठ

इस अनिश्चित एवंअनित्य जीवन में कुछ वस्तुयें और क्षाणिक है जैसे रूप और यौवन । रूप और यौवन पर गर्व करना व्यर्थ है। इसीलिये " चार दिन की चांदनी " ," मौसमी बहार " आदि विशेषण यौवन के लिये प्रयुक्त होते हैं ।

--अस्थिर यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल
कचों के चिकने काले व्याल
केंचुली कांस सिवार, गूंजते हैं सब के दिन चार
सभी फिर हाहाकार । - पन्त

-- विकसते मुरझाने को फूल , उदय होता छिपने को चन्द/शून्य होने को भरते मेघ, दीप जलता होने को मन्द यहां किसका अनन्त यौवन, अरे अस्थिर यौवन ।

-- महादेवी

यौवन के प्रति सन्तों ने अपनी स्पष्ट घृणा प्रदर्शित की है। व्यक्ति जीवन के अधिकतम पाप यौवन में ही करता है। यौवन काल जीवन का निकृष्ट काल है । आदि अभिव्यक्तियों यौवन के प्रति जुगुप्सा प्रदर्शित करती है ।

११.४.६ अपनी मानसिक दुर्बलताओं के प्रति:(ग्लानि, आत्म भर्त्सना)

इस संसार की अन्य वस्तुओं के साथ साथ व्यक्ति को स्वयं सेभी जुगुप्सा हो जाती है । अपनी दुर्बलतायें औरअपने कुकर्म व्यक्ति में ग्लानि पैदा उत्पन्न कर देते है । यह ग्लानि ईश्वर अथवा आराध्य के समक्ष दैन्य रूप में व्यक्त होती है। शान्तमन:स्थिति में दैन्य की मात्रा बहुत अधिक होती है। किन्तु यह दैन्य शोक एवं भय केअनुभाव दैन्य से बहुत भिन्न है। इस दैन्य में ग्लानि और

आत्महीनता लौकिक वस्तुओं और सम्बन्धों को लेकर होती है । जबकि भक्तिभाव में ईश्वर के समक्ष आत्मसमर्पण के रूप में दैन्य भाव प्रकट होता है। कष्टपूर्ण दैन्य कष्टप्रद होता है। जबकि यह दैन्य मन को निर्मल कर चित्त को शान्त कर देता है । साधारण कथन के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है ।-

---- मैंने अपना जीवन व्यर्थ गंवा दिया । सांसारिक प्रपंचों में ही अपनी आयु नष्ट कर दी ।

--जन्म सिरानौं अटकैं अटकैं
राजकाज सुत वित की डोरी बिनु विवके फिर्यौं भटकै
कठिन जु गांठि परी माया की तोरी जाति न फटकै
ना हरि भक्ति न साधु समागम ,रह्यौ बीच ही लटकै
सूरदास सोभा क्यों पावै , पिय विहीन धनि मटकैं ।
----- सूर

ईश्वर ने पांच इन्द्रियां दी तो मैंने उनका भी सदुपयोग नहीं किया वरन दुरूपयोग ही किया। मोहरूपी मल सारे शरीर में लगा हुआ है । पर नारि को काम भाव से देख कर मैंने नेत्र मलहीन कर लिये , मन देख विषयवासनाओं से मलिन है। अहंकार एवं मान सम्बन्धी कामनाओंसे यह हृदय मलिन पड़ गया है और सहज आत्मानन्द त्याग देने से जीव मलिन हो गया है। दूसरोंं की निन्दा सुन सुन कर कान तथापरापवाद कह कह कर जीभमलिन हो गई है। अनेक जन्मों से संचित यह मइल सरलता से नहीं छूट सकता ।[१]

" मैंने तो कुछ भी नहीं किया । जन्म यों ही बीता जा रहा है अति दुर्लभ मनुष्य तन पाकर भी कभी निष्कपट तन मन और वचन से रामनाम स्मरण नहीं किया। लड़कपन तो अज्ञान में ही चला गया । उस समय चित्त में आज से भी अधिक चंचलता थी । जब जवानी रूपी जल चढ़ा तो उसमें स्त्रीरूप कुपथ्य कर बैठा ।

१- पद संख्या ८५, विनय पत्रिका

बीच की अवस्था धन कमाने में खोई । अब जब कि बुढ़ापे ने आकर अंग प्रत्यंग शिथिल कर दिये हैं मणिहीन सर्प के समान सिर पीट कर पछताता है पर इस असह्य दावानल को बुझाने कोई मित्र नहीं आता । जिनके लिये अनेक पाप कर्म किये वे भी आज पास नहीं बैठते हैं ।[१]

अरे मन तूने कभी विश्राम नहीं किया, शान्त होकर नहीं बैठा आत्मानन्द भूल कर दिन रात चक्कर लगाता रहा और इन्द्रियों की खींचातानी में ही लगा रहा। यद्यपि विषयों के साथ तूने दारुण दुःख भोगे हैं फिर भी तू उन्हें नहीं तजता है । मेरा मन हठ नहीं छोड़ता है । यद्यपि दिन रात इसे अनेक प्रकार का उपदेश देता हूं, समझाता हूं पर वह अपने स्वभाव की ही करता है, प्रकृति नहीं छोड़ता ।

" सारा जीवन नाचते नाचते बीत गया। बारबार जन्मा और बार बार मरा। नाना प्रकार के इच्छारूपी वस्त्र तथा लोभ आदि अलंकार धारण कर जड़ और चैतन्य एवं पृथ्वी पाताल और आकाश में कौन ऐसा स्वांग बचा जो न किया हो । देवता, मुनि, दैत्य, सर्प , मनुष्य , आदि ऐसा कोई न रहा जिससे मैंने कुछ न कुछ न मांगा हो। पर इनमें से किसी ने मेरा दारुण दुःख न दूर किया। अब नेत्र, हाथ, पांव, बुद्धि तथा बल सभी थक गये हैं , सबने मुझे अकेला छोड़ दिया।

अपनी स्थिति से परिचित होने के पश्चात मनुष्य शान्ति की प्राप्ति के लिये ईश्वर के शरण में जाता है । इसकी भी कोई विशेष भावनागत अभिव्यक्ति नहीं होती । यह तो अभी तक चली आयी क्रमशः विकसित होती मनःस्थिति का एक सोपान है ।

---" हे प्रभु मेरे समान भी कोई मूर्ख नहीं। यद्यपि मछली और पतिंगे मूर्ख कहे जाते हैं पर मेरी बराबरी वे भी नहीं कर सकते हैं । मैं उनसे कहीं बढ़कर मूर्ख हूं । पतिंगे ने सुन्दर रूप देखकर दीपक को आग नहीं समझा और मछली ने आहारवश हो कर लोहे को कांटा नहीं जाना । दोनों ही बिना जाने जले किन्तु

१- पद-संख्या ८३ , विनय-पत्रिका

मैं कष्ट देखकर भी विषय संग नहीं छोड़ता हूं अतएव मैं उन दोनों से अधिक अज्ञानी हूं । महामोह रूपी नदी में बहता रहता हूं । भगवान के चरणकमलों की नौका छोड़कर बार बार क्षणिक विषय सुख रूपी फेन को पकड़ता हूं । मैं संसाररूपी सांप से डंसे जाने के कारण बहुत डरा हुआ हूं तथापि गुरु गरुड़ रूपी भगवान की शरण में न जाकर मेढ़क की शरण में जाता हूं । जो स्त्री पुत्रादि काल कलेवा है उन्हीं से अपनी रक्षा करवाना चाहता हूं । भला मुझ सरीखा कौन मूर्ख होगा।[१]

यहीं पश्चाताप धीरे धीरे निष्काम भक्ति में परिवर्तित हो जाता है -

ऐसेहि ही जन्म गंवायौ
समुझि न परी विषय रस गीध्यौ हरि हीरा घर मांझ गंवायौ।
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ प्यास न गई दिसौ दिसि धायौ ।
जन्म जन्म बहु करम किये हैं तिनमें आपुन आप बंधायौ
ज्यौं सुक सैमर - फल आसा लागि निसि बासर हठि चित लायौ
रीतौ परयौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयो तूल तांबरौ आयौ
ज्यौं कपि डोरि बांधि बाजीगर कन कन कौं चौहटे नचायौ ।
सूरदास भगवत भजन बिनु काल व्याल पै आपु खवायौ ।

अभी तक निर्वेद का विरक्ति और घृणा पक्ष प्रधान था किन्तु यहां से मन ईश्वर की ओर उन्मुख होकर क्रमशः तटस्थ और शान्त होता जाता है ।

निर्वेद अथवा वैराग्य भाव को जागृत करने के लिये कई घटनायें और परिस्थितियां उत्तरदायी हैं। किन्तु मुख्यतः इसके दो कारण हैं - सुख का अतिरेक और दुःख का अतिरेक । दोनों ही स्थितियों में विरक्ति जागृत होती है। भावागत अभिव्यक्ति स्पष्ट कथन के रूप में रहती है तथापि इसमें परस्पर कुछ भिन्नता रहती है।

१- पद संख्या ८९, विनय पत्रिका , तुलसी

११.५ सुख के अतिरेक से उत्पन्न वैराग्य :-

सुख का अतिरेक व्यक्ति में ऊब पैदा करता है। पूर्ण तृप्ति के बाद इन्द्रीय सुख व्यर्थ प्रतीत होता है। इसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट कथन के रूप में होती है, जैसे - अधिकार सुख सारहीन है, व्यर्थ है, ऐश्वर्य मन को शान्ति नहीं देता, वह सच्चा सुख और सन्तोष भी नहीं देता। धन मनुष्य को ईश्वर से दूर कर देता है, उसमें झूठा अहं उत्पन्न कर देता है। धन नाशवान है अतः इसका मोह नहीं करना चाहिये। ईश्वर एवं प्रकृति के नियम को अथाह धन भी नहीं परिवर्तन कर सकते। धन से केवल लौकिक विषय वासनायें ही शान्त हो सकती है आत्मिक शान्ति नहीं मिलती। धन से स्थूल भौतिक सुख ही प्राप्त हो सकते हैं। रोग वृद्धावस्था एवं मृत्यु पर धन का कोई वश नहीं होता है। दैवी दुःखों को धन नहीं दूर कर सकता। विरक्ति की अभिव्यक्ति एक अन्य दृष्टिकोण से भी हो सकती है जैसे - सम्पत्ति एक जंजाल है। व्यक्ति एक बार इस मायाचक्र में फंसा तो उससे उबर नहीं पाता। फिर तो वह सम्पत्ति की सुरक्षा एवं वृद्धि में लगा रहता है और इसी प्रयत्न में अनेक दुष्कृत्य भी करता है। धन के कारण चित्त सदैव चंचल रहता है। धन मनुष्य के शत्रुओं को बढ़ता है।

संसार से विरक्त साधुओं के उपदेशों में कंचन कामिनी की उपमा विष, अग्नि, विषैले सर्प बन्धन, नागपाश आदि से की जाती है। इन उपमाओं के द्वारा उपर्युक्त भावों की व्यंजना का ही प्रयत्न करता है।

११.६ दुःख के अतिरेक से उत्पन्न वैराग्य :-

इसकी अनुभूति भिन्न प्रकार की होती है - इस संसार में कहीं भी शान्ति नहीं है। जीवन दुःखों का मूल है। बेकारी, गरीबी, अपमान, आदि के कारण जीवन नर्क हो गया है। जन्म लेना पिछले जन्मों के दुष्कृत्यों का ही फल है। मन कभी तृप्त नहीं होता नित्य नई आवश्यकतायें उत्पन्न होती हैं। मृगतृष्णा के समान सुख

के लिये भटकते भटकते ही जीवन बीत जाता है। इस संसार में कुछ भी सुन्दर और आकर्षक नहीं है। इस संसार से मोह करना ही व्यर्थ है आदि ।

विरक्ति की अभिव्यक्ति सुख एवं दु:ख दोनों के अतिरेक से होती है । एक पक्ष सौन्दर्य के अतिरेक से दु:खी होता है और दूसरा निर्धनता और कुरूपता से । जुगुप्सा की मात्रा दोनों में ही समान रहती है ।

११.७ शान्तमनास्थिति अथवा वैराग्य की अभिव्यक्ति :-

शान्त भाव के दो स्तर हैं । प्रथम स्तर तो दु:ख की अनुभूति यह निर्वेद का दु:खात्मक पक्ष है। द्वितीय स्तर आन्तरिक सुख की प्राप्ति अर्थात सम्यक दृष्टि का ज्ञान है यह पूर्णत: सुखात्मक मन:स्थिति है। संसार, जीव, शरीर, तन मन से प्राप्त विषाद ही उस पृष्ठभूमि का निर्माण करता है जिस पर स्थिति पूर्ण तथा और सम्यक दृष्टि ज्ञान के माध्यम से शान्त भाव का उदय होता है। सुख और दु:ख हमारे मन की दो विभिन्न अवस्थायें है।सुख तथा दु:ख हमारे मन की स्थिरता, शान्ति एवं सन्तुष्टि पर निर्भर है। दु:ख वह मन:स्थिति है जिसमें हमारा मन अशान्त,अस्थिर एवं असन्तुष्ट रहता है । सुख वह मानसिक दशा है जिसमें हमारा मन शान्त एवं स्थिर रहता है। हम सन्तोष का अनुभव करते हैं । चित का सन्तुलन ठीक रहता है । मन में आह्लाद छाया रहता है , मुख मुद्रा प्रसन्न रहती है। इस मन:स्थिति की अभिव्यक्ति इस प्रकार के स्पष्ट कथनों के माध्यम से होती है -

--सुख हमारे बाहर नहीं है हमारे अन्दर है। मन को परमात्मा में एकाग्र करने में ही सच्चा सुख है। सच्चा सुख आत्मानुभूति में ही प्राप्त होता है। बाह्य सुखों में सुखाभास केवल मृगतृष्णा है। सुख आत्मा में है अज्ञान के पर्दे ने उसे ढक रखा है। सुख दुख इस जगत सांसारिक वस्तुओं में नहीं प्रत्युत हमारे मन में है । हमारा मन ही सुख दु:ख का आधार है ।

सुख दु:ख की स्थिति का ज्ञान हो जाने के बाद सुख के वास्तविक स्वरूप को पहचानने का यत्न रहता है अथवा वास्तविक सुख का ज्ञान हो जाने पर उसकी कथन के रूप में अभिव्यक्ति होती है ।

--सुख संग्रह में नहीं त्याग में है। सुख सांसारिकता में नहीं संसार में दूर हटने में है। सुख आवश्यकताओं की तृप्ति में नहीं आवश्यकताओं के शमन में है। क्षणिक विषय वासनाओं की पूर्ति में सुख नहीं है। इन्द्रिय सुख, सुख नहीं मृगतृष्णा मात्र है। प्राप्य में ही सुख है अप्राप्य में नहीं। दूसरे के सुख से अपने सुख की भावना व्यर्थ है। सच्चा सुख अपनी कर्तव्यपूर्ति में है, सुख सन्तोष में है आदि। ये स्थितप्रज्ञ बुद्धि की आरम्भिक अभिव्यक्तियाँ हैं।

बुद्धि जैसे जैसे स्थिर होती जाती है जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलता जाता है। प्रथम स्तर पर सुख के वास्तविक स्वरूप की पहचान है। द्वितीय स्तर पर सुख दुःख के प्रति व्यक्ति तटस्थ दृष्टिकोण अपना लेता है। यह स्थिति स्थिर प्रज्ञ की है। स्थिर बुद्धि की व्याख्या करते हुये गीता में कहा है।

-- जैसे सब ओर परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में नाना नदियों के जल उसको चलायमान न करते हुये भी समा जाते हैं वैसे ही स्थित बुद्धि पुरुष के प्रति सम्पूर्ण भोग किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं। वह परम शान्ति को प्राप्त होता है न कि भोगों को चाहने वाला।

(२।७० गीता)

-- जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममतारहित और अहंकार रहित स्पृहारहित हुआ बर्तता है वह शान्ति को प्राप्त होता है।

(२।७१ गीता)

११.८ सम्यक दृष्टि ज्ञान :-

सम्यक दृष्टि ज्ञान हर वस्तु को समान दृष्टि से देखता है सुख एवं दुःख दोनों ही उसके लिये बराबर है। गीता में द्वितीय अध्याय में इस भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है --

-- सुख दुःख लाभ हानि, और जय पराजय को समान समझ कर उसके उपरान्त युद्ध के लिये तैयार हो। इस प्रकार से युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।

(२।३८ गीता)

--समत्व बुद्धियुक्त पुरुष पुण्य पाप दोनों को ही इस लोक में त्याग देता है अर्थात उनमें लिपायमान नहीं होता इससे समत्व बुद्धि योग के लिये ही चेष्टा कर । यह समत्व बुद्धि योग ही कर्मों में चतुरता है अर्थात बन्धन से छूटने का उपाय है ।

(२।५० गीता)

व्यावहारिक जीवन में इस भाव की अभिव्यक्ति साधारण कथन के रूप में होती है। अनेक उपमाओं और रूपकों के माध्यम से इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है जैसे सुख दु:ख समान है, यह जीवन रथ के दो पहिये है । सुख के साथ दु:ख और दु:ख के साथ सुख आता ही रहता है। धूपछांव के समान सुखदु:ख जीवन में आते जाते रहते हैं । सुख दु:ख को समान भाव से लेना ही महानता है जैसे चांद जिस तेज को लेकर उदय होता है उसी तेज को लेकर अस्त हो जाता है । प्रत्येक दु:ख की काली रात्रि के पीछे सुख का सवेरा छिपा रहता है। प्रत्येक काले बादल के पीछे एक चमकदार विद्युत का प्रकाश होता है । बिना दु:ख के सुख नहीं मिलता है आदि ।

साथ ही संसार की पीड़ा एवं दु:ख के प्रति भी सहनशील दृष्टिकोण का विकास होता है :-

-- हे पुरुष श्रेष्ठ सुख दु:ख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को यह इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं करते वह मोक्ष के लिये योग्य हैं ।

(२।१५ गीता)

११.६ <u>तटस्थता :-</u>

यह समत्वबुद्धि व्यक्ति को तटस्थ बना देती है। तटस्थता के दो रूप है - तृष्णाक्षय सुख और निर्लिप्तता । तृष्णाक्षय सुख में व्यक्ति वास्तविक सन्तोष का अनुभव करता है सांसारिक आकर्षण उसे लुभा नहीं सकते । वह धन वैभव के

प्रति उदासीन हो जाता है । इस भाव की वास्तविक अभिव्यक्ति व्यवहार के माध्यम से ही हो सकती है किन्ही विशिष्ट अवसारों पर ही भाषा के माध्यम से व्यक्त होती है जैसे किसी लोभी और कंजूस को दिये गये उपदेश मनुष्य जन्म के समय खाली हाथ आता है और मृत्यु के पश्चात भी खाली हाथ जाता है फिर धनसंचय से क्या काम । जो कुछ ईश्वर ने दिया है वही बहुत है । आवश्यकता से अधिक लेकर क्या होगा , ईश्वर सबकी रक्षा करता है वही आवश्यकतायें भी पूरी करेगा ।

--साँई इतना दीजिये जामे कुटुम समाय
  मैं भी भूखा ना रहूं , साधु न भूखा जाय ।। कबीर

--रूखी सूखी खाय कै ठण्डा पानी पीव ।
  देख परायी चूपड़ी मत ललचावै जीव ।।

भाग्यवादियों की अभिव्यक्ति भी कुछ इसी प्रकार की रहती है किन्तु तृष्णाक्षय कीअभिव्यक्ति में कर्महीन नहीं वरन कर्मशील भाग्यवादी ही आयेगा । गीता में इस प्रकार केआसक्तिहीन और कर्मशील भाग्यवादियों की व्याख्या करते हुए बताया है ।

-- तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे , फल में कभी नहीं और तू कर्मों में फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे ।

(२।४७ गीता)

संसार के समस्त गुणों एवं अवगुणों के प्रति समान भाव रखना शान्त मन:स्थिति का एक आवश्यक और स्वाभाविक लक्षण है। शाब्दिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से कोई विशेषता नहीं होती , साधारण कथन मात्र देते हैं जैसे -

--विषम परिस्थितियों और कठिनाइयों में भी हमारी मन:स्थिति

धैर्य एवं शान्तिपूर्ण होनी चाहिये । संसार की गति अपने क्रम के अनुसार चलती जाती है तो चलती रहे हम क्यों उससे विक्षुब्ध अथवा दु:खी हों । जो कुछ भी मनुष्य करता है वह सब मनुष्य नहीं करता । संसार का पालनकर्ता ईश्वर है । मनुष्य तो उसके हाथ की कठपुतली मात्र है - इन विषमताओं और चिन्ताओं से मुक्ति का रहस्य भगवान ने स्वयं गीता में स्पष्ट किया है -

--ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।

(१८।६१)

अर्जुन ! ईश्वर सर्वप्राणी मात्र के हृदय में विराजमान है और जगत के सब प्राणियों को यन्त्र पर चढ़ाये हुए पट्टे के समान इच्छानुसार चलाता है ।

११.१० मृत्यु के प्रति सम्यक दृष्टि :-

यह तटस्थता एवं निर्लिप्तता मृत्यु के प्रति भी दार्शनिक भाव जागृत करती है।साधारणत: यह अनुभूतितक ही सीमित रहती है। किन्तु किसी की मृत्यु पर शोक सन्तप्त सम्बन्धी को सांत्वना देने के लिये कुछ वाक्य कहे जाते हैं जो इस मन:स्थिति की बाह्य अभिव्यक्ति हैं ।जैसे ---

--- संसार तो एक सराय है । यहां कब और कौन स्थायी रूप से रहा है। व्यक्ति संसार में अकेले आता है और अकेले चला जाता है । मृत्यु स्वाभाविक है। जीव,मृत्यु के द्वारा नवजीवन प्राप्त करता है । मृत्यु द्वारा हमारी आत्मा पुराने शरीर रूपी फटे हुए वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्र धारण करती है ।

- वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।

(२।२२ गीता)

जन्म का अर्थ तो दु:खों में प्रवेश है ही/मृत्यु के द्वारा सम्पूर्ण दु:खों से मुक्ति मिलती है। मृत्यु से डरने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह एक अनिवार्य स्थिति है।जीवन प्रश्न है तो मृत्यु उसका उत्तर है। जितने श्वास नियति ने दिये हैं उनसे एक भी अधिक मिलने वाला नहीं । इस संसार में कौन है जिसकी मृत्यु नहीं आती ।

-- वैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार
एक कबीरा ना मुवा, जिसका राम अधार ।

मृत्यु ऐसी वस्तु नहीं है जो औरों पर न आयी हो केवल मात्र हमीं पर आ पड़ी हो । वैद्य,रोगी, यति,ज्ञानि,महात्मा, विद्वान्-मूर्ख सभी मृत्यु के मार्ग से गये हैं। जब मृत्यु का बुलावा आता है तब कोई भी उसे नहीं रोक सकता। सृष्टि एवं विनाश तो प्रकृति का नियम है जो आया है वह जायेगा ही ।

नश्वर शरीर के लिये शोक करना व्यर्थ है । यह तो हाड़मांस , रक्त, मज्जा,आदि निर्जीव पदार्थों से बना हुआ एक ढांचा मात्र है। मरने के बाद शरीर रूपी मिट्टी ज्यों कि त्यों पड़ी रहती है। वास्तविक वस्तु आत्मा है।आत्मा अजर अमर है। उसका नाश नहीं होता है। यह शरीर पंचतत्वों से बना है। फिर पंचतत्वों में विलीन हो जाना ही मृत्यु है ।

मृत्यु एक विश्राम स्थल है।जीव यहां से नयी शक्ति धारण करके चलता है ।

-- जैसे जीवात्मा की इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है इस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होता ।

(२।१३ गीता)

-- " जुए की कौड़ी की तरह आदमी की जिन्दगी और मौत का सवाल है । अपनी मुट्ठी में होते हुए भी, खुद उन्हें संचालित करते हुए भी तुम निश्चय नहीं कर सकते कि कौन सी कौड़ी चित पड़ेगी और कौन सी पट -------"

(पृष्ठ १६,खाली कुर्सी की आत्मा , लक्ष्मीकांत वर्मा)

-- मृत्यु से आतंक नहीं होता बल्कि मृत्यु तो एक प्रसन्नतापूर्ण निद्रा है जिसके पश्चात जागरण का आगमनहोता है ।

-- गांधी

-- मृत्यु,जीवन से उतनी ही सम्बन्धित है जितना जन्म ।

-- रवीन्द्र

-- जब तक चिरनिद्रा में नेत्रनिमीलित न कर लें तब तक कोई भी व्यक्ति प्रसन्ननहीं होता ।

-- एसाइलस्

--जीवन के बीच हम मृत्यु में ही होते हैं ।

-- बुक आफ़ कामन प्रेयर

--मृत्यु से डरना क्यों । यह तो जीवन का सर्वोच्च साहसिक अभियान है ।

-- चार्ल्स फ्राहमैन

--ईश्वर ने ही जीवन दिया था, ईश्वर ने ही जीवन ले लिया ।धन्य है वह ईश्वर । बाइबिल

-- मृत्यु से अधिक सुन्दर और कोई घटना नहीं हो सकती ।

-- वाल्ट व्हिटमैन

मृत्यु का स्वागत चाहे धार्मिक दृष्टि से किया जाय अथवा वैज्ञानिक दृष्टि से शान्तमन:स्थिति आवश्यक है । वैज्ञानिक भी इसी मन:स्थिति से पुलक कर मृत्यु के प्रति तटस्थ हो पाता है ।

-- डाक्टर ; मजबूर और लाचार ? तुम इसे इन्सान की मजबूरी और लाचारी कहती हो ? मैं कहूं कहूँ कि हमें मौत की रियायत नसीब है वरना जिन्दगी एक बवाल और दुनिया बीमार, बूढ़ों और बदसूरतों का एक बदशक्ल बगीचा बन जाती । इस दुनिया में जो भी जवानी, जौलानी और रंगीनी देखती हो वह सब मौत के दम से है ।

(पृष्ठ २३० इन्सान, 'पत्थर और आंसू,' रेवतीसरन शर्मा)

बड़े बूढ़ों द्वारा किसी की मृत्यु पर कहे गये वाक्य इसी मन:स्थिति के सूचक होते हैं। जैसे अमुक व्यक्ति मर गया कहने के स्थान पर अमुक का स्वर्गवास हो गया, वो बैकुण्ठ वासी हुए, उसको मोक्ष मिल गया, वे मुक्ति पा गये, उन्हें नवजीवन मिला, वे भगवान के शरणों में गये, उन्हें सद्गति प्राप्त हुई, उनका जन्म सुधर गया, जिसने दिया था उसी ने ले लिया, आदि।

११.११ शान्तभाव एवं ईश्वरोपासना :-

शान्त मन:स्थिति में ईश्वर के प्रति किन भावों की अभिव्यक्ति होती है यह एक विवादास्पद प्रश्न है। समीक्षा, आकर्षण, एकाग्रता, विनय आदि मन:स्थिति शान्त भाव के नहीं वरन् भक्ति के विभिन्न सोपान हैं शान्त भाव में तो ईश्वर के प्रति अगाध विश्वास एवं अटूट श्रद्धा की ही अभिव्यक्ति होती है। जबकि " दैन्य " अनुरोध " उपालम्भ " " कामना " आदि का अस्तित्व है तब तक मन:स्थिति को शान्त नहीं कहा जा सकता। जब उस द्वैत भाव का नाश हो जाता है और ईश्वर एवं उपासक के मध्य का " स्वार्थ " लुप्त हो जाता है तभी शान्त भाव की स्थिति होती है। निर्वेद वास्तव में संसार में होता है, किन्तु उसकी परिणति ईश्वर में होती है। संसार में सब कुछ अशान्त है मात्र वही शान्ति है। ईश्वर के प्रति विश्वास, कृतज्ञता एवं समर्पण का प्रदर्शन ही इसकी वाचिक अभिव्यक्ति है। यह अनुभूति भी अलौकिक अनुभूति का विषय है, कि इसका अभिव्यक्ति क्षेत्र बहुत सीमित है जैसे किसी शुभ अथवा अशुभ घटना पर मात्र इतना कह कर सन्तोष कर लेना कि यह ईश्वर की माया है", प्रभु जो कुछ करता है अच्छा करता है"।

--हरिश्चन्द्र : तब क्या चिन्ता है ? शास्त्र एवं ईश्वर पर विश्वास करो। सब कल्याण होगा। सदा सर्वदा सबका मंगल साधना करने पर भी जो आपत्ति आ पड़े उसे निरी ईश्वर की इच्छा समझ कर सन्तोष करना चाहिये।

(पृष्ठ ४०, सत्य हरिश्चन्द्र " भारतेन्दु ग्रंथावली)

इस स्थिति तक आते आते व्यक्ति की सभी इच्छायें पूरी हो जाती है। प्रौढ़ एवं वृद्ध लोगों के मुख से प्रायः यह सुनाई पड़ता है कि भगवान की कृपा से सब सुख भोग लिया अब तो मुक्ति मिल जाती, ईश्वर ने बहुत कुछ दिया अब कोई

इच्छा नहीं है बस अब तो अपने चरणों में स्थान दो, बस अब तो यही इच्छा है कि ईश्वर के चरणों में बना रहूं , प्रभु की गोद ही सबसे सुखद और शीतल है । भक्त कवियों की रचनाओं में इस प्रकार की अनेक उक्तियां मिल जायेंगी जिनमें दु:खी मन को शान्ति देने के लिये ईश्वर के चरणों में ध्यान लगाने का संकेत रहता है --

मन रे परसि हरि के चरण ।
सुभग सीतल कमल कोमल त्रिविध ज्वाला हरण ।
जिन चरण प्रह्लाद परसे इन्द्र पदवी धरण ।
जिन चरण प्रह्लाद भेदूयों , नख छिख सिरि धरण ।
जिन चरण प्रभु परस लीन्हो तरी गौतम घरण ।
जिन चरण काली नाग नाथ्यों गोप लीला करण
जिन चरण गोर्वधन धार्यो गर्व मघवा हरण
दास मीरा लाल गिरधर अगम तारण तरण ।

-- हे मन ! परम कृपालु श्री रामचन्द्र जी का स्मरण कर । वह संसार को दारुणभय को दूर करने वाले हैं, जन्म मरण के चक्र से मुक्त करने वाले है । उनके नेत्र कमल के समान है, मुख हाथ और चरण भी लाल कमल के सदृश्य है उनका सौन्दर्य अगणित कामदेव के समान है , शरीर नवीन नील मेघ जैसा सुन्दर है, पीताम्बर बिजली की सुन्दर चमक के समान शोभित हो रहा है । ऐसे पुण्यश्लोक जानकीरमण श्री रघुनाथ जी को मैं नमस्कार करता हूं । [१]

उद्विग्न चित्त को राम का नाम शान्ति देने वाला होता है

-- हे जीव ! जब तक तू रामनाम प्रेम से न कहेगा तब तक तू कहीं भी जा, भौतिक , दैविक और दैहिक तापों से जलता ही रहेगा । तू गंगा के किनारे रहकर भी पानी को तड़पता रहेगा । कल्पवृक्ष के नीचे भी तुझे दरिद्रता सताती रहेगी ।[२]

१- पदसंख्या ४५ , विनय पत्रिका

२- पद संख्या ८० विनय पत्रिका

वास्तव में शान्तमन:स्थिति मात्र अनुभव की वस्तु है। इसकी अभिव्यक्ति असम्भव के समान है। भरत ने इसीलिये इसे स्थायी भावों में स्थान नहीं दिया था। "प्रशम" का अर्थ ही है समस्त रागद्वेष एवं कामनाओं की शान्ति। अत:वाचिक अभिव्यक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता है। किन्तु ऐसी मन:स्थिति से भी व्यक्ति करुणा सहानुभूति जैसे अलौकिक दैवी भावों से मुक्त नहीं होता। अपने लिये नहीं तो दूसरों के सहानुभूति देने के लिये ही इस भाव की अभिव्यक्ति होती है। जीवन के कुछ विशिष्ट अवसर जैसे मृत्यु, सम्पत्ति हानि। असाध्य रोग-, दुर्बलता आदि में सन्तप्त मन को शांति देने के लिये कुछ विशेष वाक्य कहे जाते हैं। यह अवसर घटना एवं व्यक्तित्व के आधार पर असंख्य रूप एवं रीतियों के व्यक्त होते हैं इनका रूपनिर्धारण असम्भव है। केवल कुछ उदाहरणों के माध्यम से इन्हें समझा जा सकता है जैसे -

-- अतीत मृतप्राय है। जो समय चला गया वह सदासर्वदा के लिये चला गया। उस पर हमारा कोई वश नही है। भविष्य को देखो। मन को चंचल मत बनाओ।

-- अकेले ही चलो। अकेलेपन से भयभीत न हो जो हुवा उसे भूल जावो। मनुष्य से ही अपराध होते है। इस पर झींक झींक कर अपना जीवन कंटकयुक्त मत करो। अपने अपमान को भूल जाओ। निरर्थक शोक मत करो। भविष्य से आशंकित मत हो। ईश्वर जो करेगा अच्छा ही करेगा। मन से वृथा भय को निकाल दो। स्वधर्म पालन के लिये कष्ट सहो। इन्द्रियों सहित अन्त:करण शुद्ध रक्खो। मन वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न दो। सब भूत प्राणियों के प्रति हेतु रहित दया रक्खो तुम्हारी अन्तरात्मा जिस बात की गवाही न दे उसे न करो आत्मालोचना करना सीखो। शत्रुभाव से मुक्त रहो। प्राप्य को देखकर प्रसन्न हो अप्राप्य की चिन्ता मत करो। कृतज्ञता की आशा मत करो। कृतज्ञ बनो। त्यागी बनो, उदार बनो।जीवन में सदुद्देश्य कार्य करते चलो।

--क्रोध विषधर सर्प है । क्रोध न करो । इन्द्रियों को वश में रक्खो । तमोगुण का त्याग करो । अहं भाव का नाश करो । दु:ख का अस्तित्व है कहां, हम नाना पदार्थों एवं विषयों से सुख पाने की अपेक्षा करते हैं, वही दु:ख है आदि ।

११.१२ निर्वेद एवं अन्य भाव :-

निर्वेद स्वयं समस्त भावों की शान्ति है अत: अन्य भावों के साथ इसका रूप परिवर्तन नहीं होता है। एक बार इस भाव स्थिति में आने के पश्चात अन्य भावों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का प्रश्न ही नहीं उठता ।

सहायक पुस्तकें

१- अतीत के चलचित्र - श्रीमती महादेवी वर्मा
प्रकाशक - भारती भण्डार, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण सं० २००३

२- अटैची केस - डा० रामकुमार वर्मा
प्रकाशक - राम लाल पुरी, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
प्रथम संस्करण १९५६

३- अलंकारपियूष - प० रमाशंकर शुक्ल " रसाल "
प्रकाशक - राम नारायन लाल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९३०

४- अलंकार प्रदीप - अध्यापक राम रत्न
प्रकाशक - नागरी प्रचारणी सभा, आगरा, प्रथम संस्करण स० २०००

५- अलंकार प्रश्नोत्तरी - बाबू जगन्नाथ प्रसाद
प्रकाशक - जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर, प्रथम संस्करण १९१८

६- आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन- डा० गणेश दत्त गौड़
प्रकाशक - सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, प्रथम संस्करण १९६५

७- आदिम युग - उदयशंकर भट्ट
प्रकाशक - आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

८- आठ एकांकी नाटक - डा० रामकुमार वर्मा (सम्पादक)
प्रकाशक - हिन्दी भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९६०

९- आंसुओं के फूल - पी०डी० आजाद
प्रकाशक - साहित्य कला अकादमी, बरेली, प्रथम संस्करण १९६४

१०- आधुनिक हिन्दी काव्य में वात्सल्य रस - डा० श्रीनिवास शर्मा
प्रकाशक - अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६४

११- आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रेम और सौन्दर्य - डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल

प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली , संस्करण

१२- आनन्दमय जीवन - प्रो० रामचरण महेन्द्र

प्रकाशक - गीताप्रेस , गोरखपुर , तृतीय संस्करण सं० २०१४

१३- और खाई बढ़ती गई - श्री भारत भूषण अग्रवाल

प्रकाशक - भारतीय ज्ञान पीठ काशी, प्रथम संस्करण १९५६

१४- काव्य दर्पण (अभिनव साहित्य शास्त्र) - रामदहिन मिश्र

प्रकाशक - ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर, प्रथम संस्करण १९४७

१५- कहै पकड़ीदास - चिरंजीत

प्रकाशक - आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली प्रथम संस्करण १९६४

१६- काले कौए : गोरे हंस - विनोद रस्तोगी

प्रकाशक - ओरियण्टल बुक डिपो, दिल्ली

१७- करुण रस (मध्य युगीन हिन्दी काव्य के परिवेश में) - डा० ब्रजवासी लाल श्रीवास्तव

प्रकाशक - हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६१

१८- काव्यधारा - राम नारायण मिश्र

प्रकाशक - सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद , प्रथम संस्करण १९६१

१९- खाली कुर्सी की आत्मा - लक्ष्मीकान्त वर्मा

प्रकाशक - किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९५८

२०- खड़ी बोली काव्य में विरह वर्णन - डा० राम प्रसाद मिश्र

प्रकाशक - सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, प्रथम संस्करण १९६०

२१- गुप्तधन - प्रेम चन्द्र , प्रस्तुतकर्ता अमृत राय

प्रकाशक - हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९६२

२२- गुलेरी जी की अमर कहानियां - सम्पादक शक्तिधर गुलेरी
मुद्रक - श्रीपत राय, सरस्वती प्रेस, बनारस, तृतीय संस्करण १९४५

२३- गीता वाक्य - नानक सिंह
प्रकाशक - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६२

२४- गरीबी या अमीरी - गोविन्द दास

२५- चन्द्रगुप्त (नाटक)- जयशंकर प्रसाद
प्रकाशक - भारती भण्डार, तेरहवां संस्करण सं० २०११

२६- जीवन की लहरें (कविता संग्रह) - डा० ब्रजमोहन गुप्त
प्रकाशक - साहित्यकार संसद, प्रयाग, प्रथम संस्करण १९५६

२७- जहां लक्ष्मी कैद है - राजेन्द्र यादव
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ,द्वितीय सं स्करण १९६०

२८- जवानी और छ: एकांकी - उदयशंकर भट्ट
प्रकाशक - आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६१

२९- जी०पी० श्रीवास्तव की कृतियों में हास्य विनोद- श्याम मुरारी जैसवाल
प्रकाशक- लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण १९६३

३०- जौहर की ज्योति - राम कुमार वर्मा
प्रकाशक - राज कमल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण १९६७

३१- दायरे - डा० रांगेयराघव
प्रकाशक - हिन्दी पाकेट बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५९

३२- दीपशिखा - महादेवी वर्मा
प्रकाशक - भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण सं० २०११

३३- दुर्गावती (ऐतिहासिक नाटक) - बदरीनाथ भट्ट
प्रकाशक- गंगा पुस्तक कार्यालय, लखनऊ, प्रथमावृत्ति सं० १९८२

३४- दुर्गादास (ऐतिहासिक नाटक)- द्विजेन्द्र लाल राय, अनु०प० रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक - हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, चतुर्थावृत्ति १९२४

३५- दैवी सम्पत्ति - स्वामी शुकदेवानन्द सरस्वती

प्रकाशक- परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश, प्रथम संस्करण सं० २०१८

३६- धुंध में डूबे हुए - बद्रीनाथ

प्रकाशक- प्रभात प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९६४

३७- धरती के बेटी तथा अन्य कहानियाँ - सोमावीरा

प्रकाशक - आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६२

३८- ध्वनि विज्ञान- गोलोक बिहारी ढल

प्रकाशक - प्रेम बुक डिपो, आगरा, प्रथम संस्करण १९५८

३९- टूटे सपने - द्विजेन्द्र नाथ मिश्र " निर्गुण "

प्रकाशक - किताब महल , इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९५४

४०- निर्मला - प्रेम चन्द

प्रकाशक - सरस्वती प्रेस, बनारस

४१- नाट्य कला - रघुवंश

प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६१

४२- नाटक और रंगमंच - राम कुमार

प्रकाशक - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

४३- पचास कहानियाँ - राजेन्द्र अवस्थी तृषित

प्रकाशक - भारतीय साहित्य मन्दिर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६३

४४- पिछली रात की बरफ (रेडियो नाटकों का संग्रह) - नरेश मेहता

प्रकाशक - हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, प्रथम संस्करण १९६२

४५- पत्थर और आंसू - रेवती सरन शर्मा

प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९६०

४६- फूल की तनहाई - कृष्ण चन्दर
प्रकाशक - लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ,प्रथम संस्करण १६६३

४७- बारह एकांकी - विष्णु प्रभाकर
प्रकाशक - भारतीय ज्ञान पीठ, काशी, प्रथम संस्करण १६५८

४८- बचपन - मैरी वैडविक , अनु० प० अमर नाथ विद्यालंकार
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन , दिल्ली, तृती संस्करण १६५४

४६- बचपन के दो दिन- डा० देवराज उपाध्याय
प्रकाशक - मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण १६५६

५०- बच्चों की आदतों का विकास - राम मूर्ति मेहरोत्रा
प्रकाशक - विद्या मन्दिर, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण १६४६

५१- बाल मनोविकास - सरयू प्रसाद चौबे
प्रकाशक - किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण १६६३

५२- बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य - डा० कृष्णादेव झारी
प्रकाशक - शोध प्रबन्ध प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १६६६

५३- भाषा विज्ञान पर भाषण- मैक्समूलर,अनु० डा० हेमचन्द्र जोशी
प्रकाशक- सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १६५७

५४- भारतेन्दु ग्रन्थावली - ब्रजरत्न दास (सम्पादक)
प्रकाशक - राम नारायण लाल, इलाहाबाद,प्रथम संस्करण ,सं०१६६२

५५- भूमिजा - सर्वदानन्द
प्रकाशक - भारतीय ज्ञान पीठ काशी, वाराणसी

५६- भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच- पं० सीताराम चतुर्वेदी
प्रकाशक - हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ,प्रथम संस्करण १६६४

५७- भारती भूषण - सेठ अर्जुनदास केडिया
प्रकाशक भारतीय भूषण कार्यालय, काशी, प्रथम संस्करण

५८- भाषा विज्ञान कोश - डा० भोला नाथ तिवारी
प्रकाशक - ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्रथम संस्करण सं०२०२०

५९- मनोविज्ञान और शिक्षा - डा० सरयू प्रसाद चौबे
प्रकाशक - लक्ष्मी नारायण लाल, आगरा, आठवां संस्करण १९६६

६०- मनोविज्ञान - राबर्ट एस० वुडवर्थ, अनु० उमापति राय चन्देल
प्रकाशक - दि अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड , लखनऊ
द्वितीय संस्करण १९५६

६१- मनोविज्ञान - प्रयुक्त और अप्रयुक्त - मधुकर
प्रकाशक - सैन्ट्रल बुक डिपो , इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९५७

६२- मुहावरे और कहावतें - बाल मुकुन्द 'अर्श' मलसियानी
प्रकाशक - विद्या प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९५७

६३- मुहावरा मीमांसा - डा० ओम प्रकाश गुप्त
प्रकाशक - बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना

६४- मनोविज्ञान - वुडवर्थ और मार्क्विस अनु० उमापति राय चन्देल
प्रकाशक - द अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय संस्करण १९६३

६५- मनोविज्ञान - जगदानन्द पाण्डेय
प्रकाशक - तारा पब्लिकेशन्स हाउस, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण १९६५

६६- ये रेखायें ये दायरे - विष्णु प्रभाकर
प्रकाशक - हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई , प्रथम संस्करण १९६७

६७- रंगभूमि - प्रेम चन्द
प्रकाशक -

६८- राजपूत बच्चे (कहानी संग्रह)- आचार्य चतुरसेन शास्त्री
प्रकाशक - गौतम बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली , द्वितीय संस्करण सं०२००६

६९- रसरत्नाकर - हरिशंकर शर्मा
प्रकाशक - राम नारायण लाल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९४५

७०- रस सिद्धान्त - स्वरूप विश्लेषण - डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९६०

७१- रस मीमांसा - आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
प्रकाशक - काशी नागरी प्रचारणी सभा

७२- चिन्तामणि - आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
प्रकाशक - काशी नागरी प्रचारणी सभा

७३- लोक परलोक - उदय शंकर भट्ट
प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन , प्रथम संस्करण १९५८

७४- विजय पर्व (नाटक)- राम कुमार वर्मा
प्रकाशक - राम नारायन लाल, प्रयाग, प्रथम संस्करण १९५६

७५- व्यंजना और नवीन कविता - प० राममूर्ति त्रिपाठी

७६- विद्रोहिणी अम्बा - उदयशंकर भट्ट
प्रकाशक - आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण १९६४

७७- वीरपूजा - हरनाथ बासुकी , अनु० प० रूप नारायण पाण्डेय
प्रकाशक - पन्नालाल सिंघई, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण १९२३

७८- शमिष्ठा - अनीता चट्टोपाध्याय
प्रकाशक - शारदा मन्दिर, दिल्ली प्रथम संस्करण १९५४

७९- सुदर्शन सुधा - सुदर्शन
प्रकाशक - इण्डियन प्रेस लिमिटेड , प्रयाग , प्रथम संस्करण १९२६

८०- सप्तरश्मि - गोविन्द दास
प्रकाशक - किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९४१

८१- सिकन्दर - बुद्ध सुदर्शन
प्रकाशक- के० के० मौरा एण्ड कम्पनी, बम्बई,आठवां संस्करण

८२- साहित्य पारिजात - प० शुकदेव बिहारी मिश्र
प्रकाशक - गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, प्रथम संस्करण

८३- सूर सागर - प्रथम भाग

८४- हिन्दी गद्य काव्य - डा० पद्म सिंह शर्मा
प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण १६५८

८५- हाथी के दांत - अमनाथ नलिन
प्रकाशक - आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण १६५६

८६- हिन्दी काव्यालंकार- जगन्नाथ प्रसाद
प्रकाशक - जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर , सन १६१८

८७- हिन्दी काव्यशास्त्र - आचार्य शान्ति लाल जैन
प्रकाशक - साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद

८८- हिन्दी मुहावराकोष - भोला नाथ तिवारी
प्रकाशक - किताब महल , इलाहाबाद , प्रथम संस्करण

८९- श्रेष्ठ कहानियां - मोहन राकेश
प्रकाशक - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण

अंग्रेजी पुस्तकें :-

90. A comprehensive Dictionary of Psychological and Psychoanalytical Terms - By Horace B.English & A.V.A. Champney English, Second Edition 1958, America

91. Behavior and Development in Childhood - By Alfred L.Baldwin , The Drydin Press, New York

92. Childhood and Society - By Erik H.Erikson Image Publishing Co.Ltd.London

93. Children and Language Art - By Herrick & Tacobs
Printed - Hall, America, Fifth Edition-1958

94. The Communication of Emotional Meaning
-By Goel R Davitz McGraw- Hill Book Company

95. Child Psychology - By Thompson
Second Edition

96. Dictionary of Psychology - By Philip Lawrence Harriman
Philosophical Library - New York

97. Elements of the Science of Language by Taraporewala
Published by Sibendranath Kanjilal.
Third Edition - 1962

98. The Emotional Problem of Childhood
-By Zoe Benjamin University of London,
First Edition- 1948

99. Encyclopedia of Educational Research -
Edited by Harris & Liba
The Macmillan Company, New York, Third Edition-1960

100. Emotion of Men - By Frederick H Lund
McGraw Hill Book Company, New York -1930

101. Emotional Problems in Living - By Pearson
W.W.Norton & Company, Inc, New York-Third Edition

102. Emotion in Man and Animal by Paul Thomas Young
New York, Second Printing- 1947

103. Fear and Depression, Their Causes and Selftreatment
-By Allan Worsley

104. Infant Speech - By M.M.Lewis
London - Kegan Paul Trench Trubher Co.Ltd.,
First Edition 1935

105. Language - By Leonard Bloomfield

106. The Language and Thought of the Child
-By Jean Piaget Meridian Books,
-Published by Noonday Press

107. Language its Nature, Development and Origin
-By Otto Jesperson

108. The Psychology of Adolescent Development
-By Raymond G.Kuhlen Horper & Brothers-New York
First Edition 1952

109. Psychology Applied to Human Affairs -
-By J.Stanley Gray McGraw-Hill Book Company,
New York, Second Edition

110. The Psychology of Adolescence -By Fowler B.Books
George G.Harrap & Co.Ltd.,London

111. The Psycho Analytic Study of the family-
By J.C.Flugel Lowe And Bydone Printers Ltd.London
5th Edition-1935

112. The Story of Language - By Mario Pei
George Allen & Unwin Ltd. London

113. Speech in the Elementary School -By Mardel Ogilvie
Mc Graw Hill Book Company, London.
First Edition -1954

114. Studies in feeling and Desire -By J.C.Flugel
Gerald Duckworth & Co.Ltd. London

115. Slow to Talk - By Jane Beasley

Bureau of Publications . Columbia University,

New York, Second Edition -1957

116. The Nature of Emotion - Edited by Magda B.Arnold

Penguin Modern Psychology